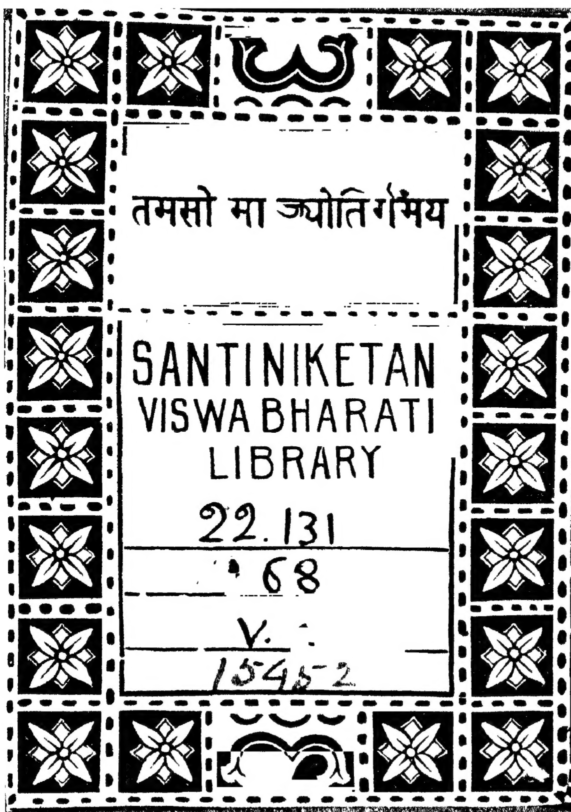


तमसो मा ज्योतिर्गमय
SANTINIKETAN
VISWA BHARATI
LIBRARY
22.131
68
V.
15452

ॐ

श्रीबृहदारण्यकोपनिषत्

पंडित श्रीपीतांबरशर्मकृत

समूल सटीक संपूर्ण शंकरभाष्यानुसार

वेदांतदीपिका

नामक भाषा टीकासहित

ताका

द्वितीयतृतीयाध्यायरूप द्वितीयभाग

कर्त्तानें मुमुक्षुनके हितार्थ

मुंबाईमें

जावजी दादाजी इन्होंके

"निर्णयसागर" छापखानेमें छपवायके प्रकट किया

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" ॥ १ ॥

संवत् १९४८ इंग्रेजी सन १८९२.

॥ श्लोकः ॥

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांतडिंडिमः ॥ १० ॥

अथ श्री बृहदारण्यकोपनिषदो द्विती-याध्यायस्यानुक्रमणिका ॥ २ ॥



प्रथम अजातशत्रु-ब्राह्मण ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्यानुक्रमणिका समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

द्वितीयतार्त्तियाध्याययोरनुक्रमणी शुभा ।
समाप्तिमगमत्त्वत्र सत्प्रसंगप्रदर्शिनी ॥ २ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीद्वितीयाध्यायारंभः २

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

दृप्तबालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—दृप्त (गर्वित) बालाकि ऐसा

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य प्रथम मजातशत्रुब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

टीकाः—आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै । औ

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषत् द्वितीयाध्यायगत प्रथमब्राह्मणस्य टिप्पणम् ॥ १ ॥

द्वितीयाध्याय (उक्त प्रथमाध्याय)विषै सूत्रित जे विद्या

स ॥ स होवाचाजातशत्रुं काश्यं । ब्रह्म

प्रसिद्ध अनूचान् (अनुवचनविषै समर्थ, वक्ता) गार्ग्य होताभया ॥ सो काशिपति

---

[2]ताके अन्वेषण (खोजने)के हुये सर्व अन्विष्ट (खोज्या) होवैहै । औ [3]सोई आत्मतत्व सर्वतें अतिशय प्रिय होनेतें खोजनेकूं योग्य है । "[4]आत्माकूंहीं जाने । अहं ब्रह्मास्मि" ऐसैं आत्मतत्व । एक विद्याका विषय है ॥ औ [6]जो भेद-

---

अरु अविद्या । तिनमैं अविद्या प्रपंचनकरी । अब विद्याकूं प्रपंचन करनेवास्ते चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायकूं आरंभ करते हुये आचार्य । वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं ॥

२ ननु अन्य अर्थोंके होते आत्मतत्वहीं अनुसंधान करनेकूं योग्य है । ऐसैं क्यूं कहते हो ? तहां कहैहैं ॥

३ तिसी (आत्मतत्व)की हीं खोजनेकी योग्यताके विषै परम प्रेमका आस्पद होनेकरि परमानंदतारूप अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

४ आत्मतत्वके ज्ञानकूं सर्वभाव (सर्वात्मता)की प्राप्तिरूप फलवाला होनेतैंबी । सोई (आत्मतत्वहीं) खोजनेकूं योग्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

५ उक्त परिपाटी (रीति)करि प्रसिद्ध अर्थकूं संक्षेपकरि कहैहैं ॥

६ उक्त अर्थांतरकूं अनुवाद करैं हैं ॥

ते ब्रवाणीति ॥ स होवाचाजातशत्रुः

अजातशत्रुकेप्रति कहताभयाः—"ब्रह्म तेरे ताईं कहताहूं" ऐसें ॥ सो अजातशत्रु

[भेददृ]ष्टिका विषय है सो "अन्य यह है। अन्य मैं हूं ऐसें। सो नहीं जानता है" ॥ यह अविद्याका विषय है। "एकै प्रकारसैंहीं देखनेकूं योग्य है। सो मृत्युतें मृत्युकूं पावता है। जो इस (अनानाभूत ब्रह्म) विषै नानाकीन्यांईं देखताहै" इत्यादि वाक्यनकरि सर्व उपनिषदनविषै विद्या अविद्याके विषय प्रविभक्त (विभागकूं प्राप्त किये) हैं ॥ तिनमैं जो अविद्याका विषय

७ ननु भेददृष्टिके विषयकूं अविद्याकी विषयता कैसें है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो पुरुष भेददृष्टिके परा[धीन] [पु]रुषा जानता है। ऐसें अविद्या तिस (भेद) दृष्टिकी मूल सूचन करी। तिस हेतुकरि ता (अविद्या)का जो विषय। सो भेददृष्टिका विषय है ॥

८ ननु उक्त प्रकारके विद्या अरु अविद्याके विषय असं[कीर्ण] (अमिलित) माननेकूं कैसें शक्य होवै हैं? तहां कहैहैं॥

९ सप्तान्नब्राह्मणविषै वृत्त (उक्त) अर्थकूं कथन करै हैं॥ [इहां] आदिपद जो है। सो साध्य अरु साधनके अवांतर [भेद]के संग्रह अर्थ है। उक्त प्रकारका भेदहीं विशेष है। ति[सवि]षै विनियोग कहिये व्यवस्थापन। तिसकरि। यह अर्थ है॥

सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥

कहताभया:—इस वाक्‌विषै गौअनके सहस्रकूं देतेहैं । जनक जनक । ऐसें प्रसिद्ध जन धावन करैहैं । ऐसें ॥ १ ॥

है ॥ सर्वहीं साध्य साधनादि भेदरूप विशेष विषै विनियोग (व्यवस्थापन)करि तृतीयाध्याय (प्रथमाध्याय)की समाप्तिपर्यंत व्याख्यान किया ॥ औ[10+13] सो व्यांख्यान किया अविद्याका विषय सर्वहीं दो प्रकारका है । भीतर[14] प्राण जो है सो गृहके स्तंभादि रूप उपष्टंभकीन्यांई उपष्टंभक

१० उपसंहार ब्राह्मणके अंतविषै वृत्तकूं अनुवाद करैहैं ॥

११ अथवा उक्त जे विद्या अरु अविद्याके विषय । वे असंकीर्ण (विभक्त) कैसें माननेकूं योग्य हैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१२ तहां उत्तर ग्रंथके विषयके परिशेष अर्थ पुरुषविध (चतुर्थ) ब्राह्मणके शेषकूं आरंभ करिके उक्तकूं दिखावैहैं ॥

१३ तब अविद्याके विषयकूं समाप्त होनेतैं अविद्वान् गार्ग्यकी प्रवृत्ति कैसें भयी ? यह आशंका करिके । तिसके अर्थ अवांतर विभागकूं अनुवाद करै हैं ॥

१४ तिनहीं दोनूं प्रकारोंकूं दिखावते हुये आदिविषै सूक्ष्म शरीरकूं उपन्यास करै हैं ॥

प्रकाशक अमृत है औ [15]बाह्य कार्यलक्षण अप्रकाशक [16]जन्म नाशरूप धर्मवाला गृहके [17]तृण कुश मृत्तिकाकेसम [18]सत्य शब्दका वाच्य [19]मर्त्य है। औ तिसंकरि अमृत शब्दका वाच्य प्राण छन्न (आच्छादित) है। इस रीतिसैं उपसंहार कीया है। औ सोइ प्राण बाह्य आधारनके भेदनविषै अ-

15 ताकी बाह्यकरणद्वारा स्थूलविषयोविषै प्रकाशकता औ अमृतरूपता व्युत्पादन करी। द्वितीय प्रकारकूं कहते हुये स्थूलरूपकूं दिखावै हैं ॥

16 ताके किसीवी प्रकारसैं सूक्ष्मदेहकूं अरु सत्यके प्रकाशक होनेतें अप्रकाशकपनैकूं अरु आगमापायी होनेकरि अवहेयपनैकूं (तंडुलके तुपाकी न्यांई। अवहनन करनेके योग्यपनैकूं) सूचन करै हैं ॥

17 जैसैं गृहका तृणादि बाहिरका अंग है। तैसैं सूक्ष्मदेहका स्थूलदेह बाहिरका अंग हे। तथापि तृणादिकसैं विना गृहके व्यवहारके अयोग्यताकी न्यांई तिस (सूक्ष्मदेह)कीबी स्थूलदेहविना व्यवहारकी योग्यता नहीं हैं। ऐसैं मानिके कहे हैं ॥

18 तिस (स्थूलदेह)का पूर्वप्रकरणके अंतविषै "नाम-रूप सत्य है" इस ठिकाने प्रस्तुतपना है। ऐसैं कहेहैं ॥

19 सर्वथा बाधसैं रहिततारूप सत्यता है। इस शंकाके निवारण करनेकूं विशेषण देते हैं ॥

20 ताके कार्यकूं दिखावै हैं ॥

21 वृत्तकूं अनुवाद करिके अजातशत्रु-ब्राह्मणकूं अवतार करै हैं। इहां आदित्य अरु चंद्रआदिक बाह्य आधारके भेद

नेक प्रकारसैं विस्तृत है ॥ प्राणरूप[22] एक देव है ऐसैं कहियेहै । तिसीहींका[23] बाह्यपिंड । एक । साधारण । विराट् । वैश्वानर । आत्मा । पुरुषविध । प्रजापति । क । हिरण्यगर्भ । इत्यादि पिंडप्रधान (उपाधिविषयक) शब्दोंकरि कहिये है । सो सूर्यादि प्रविभक्त करणोंकरि युक्त होवै है ॥ औ एकरूप[24] औ अनेकरूप ब्रह्म इतनाहीं है । इसतैं पर (अन्य) नहीं है । औ प्रत्येक[25] शरीर भेदनविषै परिसमाप्त चेतनवाला[26] कर्त्ता[27]

हैं औ याका अनेकप्रकारपना "अतिष्ठाः (उल्लंघन करिके वर्त्तनेवाला) है । मूर्द्धा (सर्व भूतनका मस्तक) है" इत्यादि वक्ष्यमाण गुणोंके वशतैं देखनेकूं योग्य है ॥

२२ तब तिसकी एकता किसप्रकारसैं है ? तहां कहेहैं ॥

२३ प्राणका नानात्व औ एकत्व कहा । तिनमैं एकत्वकूं विवरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राणकाहीं स्वभावभूत अनात्मारूप समष्टिरूप पिंड है । सो उपाधिकूं विषय करनेवाले हिरण्यगर्भादि शब्दोंकरि तहां श्रुति स्मृतिनविषै कहिये है औ सो "अग्नि मूर्द्धा है । चंद्र अरु सूर्य चक्षु हैं" इत्यादि श्रुतितैं सूर्य आदिक प्रविभक्त करणोंकरि युक्त होवै है ॥

२४ जो ब्रह्म समस्त अरु व्यस्तरूप है । सो यह हिरण्यगर्भमात्रहीं है । तिसतैं अधिक नहीं है । ऐसैं हिरण्यगर्भकूं स्तुतिका विषय करै हैं ॥

२५ एकताकूं स्पष्ट करिके प्राणके नानात्वकूं स्पष्ट करै हैं॥

२६ गोत्वआदिक जातिकी तुल्यताकूं निषेध करैहैं ॥

२७ सांख्यमतकी न्यांई केवल भोक्तापनैके पक्षकूं निवा-

[illegible] है ॥ इस अविद्या[illegible] विषयकूंहीं आ[illegible]भावकरि प्राप्तभया गार्ग्य ब्राह्मण। वक्ता (पू[illegible]पक्षवादी) स्थापन करियेहै । तिस (अमु[illegible]ख्यब्रह्म) तें विपरीत (मुख्यब्रह्म) विषे आत्म[illegible]दृष्टिवाला अजातशत्रु नाम[illegible] राजा। श्रोता (सि[illegible]द्धांतवादी) स्थापन करियेहै ॥ [28] ऐसैंहीं जातैं पूर्वपक्ष अरु सिद्धांतकी आख्यायिकारूपकरि सम्यक् वर्णन किया अर्थ। श्रोताके चित्तकूं वश होवैहै। यातैं आख्यायिकाकरि युक्त होना चाहिये॥ जातैं विपर्ययके हुये तर्कशास्त्रकीन्यांई के-

---

[illegible] करे हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिस अमुख्यब्रह्मतैं विपरीत जो मुख्यब्रह्म । तिसविषै आत्मदृष्टिवाला राजारूप श्रोता सिद्धांतवादी है ॥

२८ ननु वक्ता अरु श्रोतारूपसैं आख्यायिका क्यूं रचिये है ? तहां कहैहैं ॥

[illegible] पूर्वशब्दके अर्थकूंहीं स्पष्ट करे हैं ॥ इहां यातैं आ[illegible]ख्यायिकाकरि होने योग्य है ॥

[illegible] आख्यायिकाके अनंगीकारविषै दोषकूं कहैहैं ॥ इहां [illegible] है—जैसैं तर्कशास्त्रकरि प्रतिपादन किया जो [illegible] जाननेकूं नहीं शक्य होवै है । काहेतैं उत्प्रेक्षाके [illegible] निरंकुश होनेतैं । तैसैं प्रश्न उत्तर अरु भावसैं [illegible] वाक्योंकरि केवल अर्थ जाननेमैं आवता है । जब [illegible] नहीं आश्रय करिये है । तब तिन वाक्योंकरि

वल अर्थके अनुसारी वाक्योंकरि सम्यक् वर्णन किया अर्थ दुर्ज्ञेय होवैहै । वस्तुकूं[31] अत्यंत सूक्ष्म होनेतें ॥ तैसें[32] कठवल्लीविषै "जो (परमात्मा) बहुत पुरुषनकरि श्रवणके अर्थबी प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं है" इत्यादि वाक्यनकरि सुंदर संस्कारवाली (शुद्ध) देवबुद्धि (सात्विकीबुद्धि) करि गम्यता औ सामान्यमात्रबुद्धि (तामसी अरु राजसी बुद्धि)करि अगम्यता सविस्तर दिखाई है ॥ औ "आचार्यवान् पुरुष जानता है । आचार्यतेंहीं विद्या" ऐसें छांदोग्यविषै ॥ औ "वे ज्ञानी अरु तत्वदर्शी ज्ञानकूं उपदेश करैहैं" ऐसें गीताविषै औ इहांबी शाकल्य अरु याज्ञवल्क्यके संवादसें महत् तात्पर्यकरि ब्रह्मकी अत्यंत गंभीरता आगे कहियेगी ॥ तातें[33] आख्या-

---

प्रतिपादन कियाबी अर्थ दुर्विज्ञेय होवै है । तिस हेतुकरि सो (आख्यायिका) सुखकरि समजने अर्थ अनुसरनेकूं योग्य है ॥

३१ ननु याकी दुर्विज्ञेयता काहेतें है ? तहां कहैहैं ॥

३२ उक्त प्रकारके वस्तुकी दुर्विज्ञेयताविषै श्रुति स्मृतिके संवादकूं दिखावै हैं ॥ इहां सुष्ठुसंस्कारवाली परिशुद्ध देवबुद्धि सात्विकी बुद्धि है औ सामान्यमात्र जो बुद्धि । सो तामसी औ राजसी बुद्धि है ॥

३३ ब्रह्मके दुर्विज्ञेयपनेविषै फलितकूं कहैहैं ॥

यिकारूपसैं पूर्वपक्ष अरु सिद्धांतरूपकूं आपादान करिके। ऐसैं वस्तुके समर्पण अर्थ [34]आचारविधिके उपदेशअर्थ । इस (द्वितीय अध्याय)का आरंभ श्लिष्ट (उभय अर्थयुक्त) है ॥ [35]ईसरीतिसैं आ-चारवाले वक्ता औ श्रोताके मध्य आख्यायिका-विषे अनुगतअर्थ निश्चित होवैहै । [36]औ केवल

---

३४ आख्यायिकाके सुखसैं प्रतिपत्ति अर्थ उक्त अर्थांतरकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उत्तम पुरुषतैं अधम पुरुषकरि प्रणिपात अरु उपसदन (उपसत्ति) आदिकद्वारा विद्या ग्रहण करनेकूं योग्य है औ अधम पुरुषतैं (क्षत्रियादिकतैं) उत्तम पुरुष (ब्राह्मणादिक)करि तिस (प्रणिपात आदिक) विना श्रद्धाआदिक मात्रसैं सो (विद्या) प्राप्त होवै है ।इस आचार प्रकारके ज्ञापनरूप अर्थवालाबी यह अर्थ है ॥

३५ आख्यायिकाके उक्त प्रकारके अर्थविषै नित्यताकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—वक्ता अरु श्रोताके मध्य उक्त प्रकारके आचारवाले श्रोताकरि विद्या प्राप्त करनेकूं योग्य है औ तिस प्रकारके वक्ताकरि सो (विद्या) उपदेश करनेकूं योग्य है । ऐसा यह अर्थ । इस आख्यायिकाविषै अनुगत जानीये है । तातैं आचारविशेषके दिखावनेकूं यह आख्यायिका युक्त है ॥

३६ आगम (वेद)के अनुसारी गुरुके संप्रदायतैंहीं तत्वज्ञान प्राप्त होवै है औ जो केवल तर्क है । तिसके वशतैं यह बुद्धि नहीं सिद्ध होवै है । तिसप्रकार हुये केवल तर्कसैं करी हुयी तत्वबुद्धि होवै है । इस संभावना (निश्चय)के निषेध अर्थ आख्यायिका है । एसरीतिके पक्षांतरकूं कहैहैं ॥

तर्कबुद्धिके निषेधअर्थ आख्यायिका है औ "[37]यह मति तर्ककरि प्राप्त होनेकूं योग्य नहीं है । तर्कशास्त्रसैं दग्धपुरुषके अर्थ [मति देना] नहीं" ऐसैं श्रुतिस्मृतिकरि श्रद्धा जो है सो ब्रह्मविज्ञानविषै परमसाधन है । यह आख्यायिकाका अर्थ है ॥ ॥ [38]तिसैं प्रकारहीं गार्ग्य अरु अजातशत्रुकी अतीव श्रद्धालुता आख्यायिकाविषै देखियेहै [39]औ "श्रद्धावान् ज्ञानकूं पावताहै" ऐसैं गीता स्मृति है ॥ ॥ [40]तहां पूर्वपक्षवादी [41]अविद्याके विषय ब्रह्मका वेत्ता [42]असम्यक् ब्रह्मका वेत्ता होनेतैंहीं दृप्त (गर्वित) अरु बलाकाका अपत्य (संतान) होनेतैं बालाकि ऐसा प्रसिद्ध आख्यायिकाविषै अनूचान कहिये अनुवचनविषै स-

---

३७ केवल तर्कसैं तत्वबुद्धि नहीं सिद्ध होवै है । इस अर्थविषै श्रुति स्मृतिकूं दिखावै हैं ॥

३८ प्रकारांतरसैं आख्यायिकाकूं अवतार देके तिसविषै आख्यायिकाकी अनुसारिताकूं दिखावै हैं ॥

३९ श्रद्धा जो है । सो ब्रह्मज्ञानविषै परम साधन है । इस अर्थविषै भगवत्कीबी संमतिकूं कहैहैं ॥

४० आख्यायिकाके अर्थके बहु प्रकारसैं स्थित हुये ताके अक्षरोंकूं व्याख्यान करै हैं ॥

४१ बालाकिकी पूर्वपक्षवादिताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

४२ ताके गर्वितपनेविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

मर्थ वक्ता वाग्मी (वाचालु) गोत्रतैं गार्ग्य होताभया॥ सोई किसी कालविशेषविषै अजातशत्रु नामवाले काश्य (काशिराज)केप्रति समीप जायके "तेरेतांई ब्रह्मकूं कहताहूं" ऐसैं कहताभया ॥ ऐसैं उक्तिका विषय भया जो अजातशत्रु।सो कहताभया किः—गौअनका सहस्र देतेहैं ॥ इस वाक्विषै जो तूं मेरेकूं "तेरेतांई ब्रह्मकूं कहताहूं" ऐसैं कहताभया । तितनामात्रहीं गोसहस्रके प्रदानविषै निमित्त है । यह अभिप्राय है ॥ ॥ ननु साक्षात् ब्रह्मका कथनहीं गोसहस्रदानविषै काहेतें निमित्तकूं अपेक्षा करता नहीं औ "तेरेतांई ब्रह्मकूं कहता हूं" इसरीतिकी यह वाक्हीं तो गोसहस्र दानविषै काहेतें निमित्तकूं अपेक्षा करती है? यातैं "तेरेतांई ब्रह्मकूं कहताहूं" यह वाक्हीं गोसहस्रके दानविषै निमित्तकूं अपेक्षा करै है? तहां कहियेहै:—जातैं श्रुतिहीं राजाके अभिप्रायकूं कहतीहै:—[४३]जनक दाता है । जनक श्रोता है । ऐसैं

४३ श्रुतिकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां प्रसिद्ध जनकके दातापनै आदिकका प्रकाशक "वै" ऐसा निपात है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासावादित्ये

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई

प्रसिद्ध है ॥ इन दोनूं वाक्यनविषे "जनक । जनक" ऐसैं दोनूं पद । अभ्यास (आवृत्ति)के विषय करियेहैं औ "वै" शब्द जो है सो प्रसिद्धिके प्रकाशने अर्थ है।[४४]जनक दित्सु (दाता) है औ जनक शुश्रूषु (श्रोता) है। ऐसैं जानिके ताकेतांई ब्रह्मके श्रोता वक्ता औ प्रतिजिघृक्षु (धनादिकके लेनेकी आशावाले) जन दौडते (अभिगमन करते) हैं । तातैं (मुक्तकी प्रसिद्धिके अतिक्रमणतैं) सो सर्व (दातापना आदिक) मेरेविषेबी तूं संभावना करताभया हैं । यह राजाके अभिप्रायकी समाप्ति है ॥ १ ॥

टीकाः—इस प्रकारसैं श्रवणकी इच्छावाले अभिमुखीभूत (सन्मुख भये) राजाकेप्रति सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह आदित्यविषे औ चक्षुविषे एक अभिमानी चक्षुरूपद्वा-

---

४४ वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा

यह आदित्यविषै पुरुष है। याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं। ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इस (विज्ञेयब्रह्म) विषै संवादकूं

रकरि इस हृदयविषै प्रविष्ट औ मैं[45] भोक्ता अरु कर्त्ता हूं। ऐसैं अवस्थित पुरुष है। याहीकूं मैं ब्रह्म देखताहूं कहिये इस कार्यकरणके संघातविषै उपासना[46] करताहूं ॥ तातैं[47] मैं तिस पुरुषरूप ब्रह्मकूं तेरेतांई कहताहूं। उपासना कर। ऐसैं ॥ ॥ उक्त (उक्तिका विषय) जो अजातशत्रु सो मा[48] मा (मति कहो मति कहो) ऐसैं हस्तसंज्ञासैं निवारण करता हुया प्रत्युत्तर क-

४५ हृदयविषै प्रविष्ट भोक्ता मैं हूं। इत्यादि प्रत्यक्ष अनुभवकूं प्रमाण करै हैं ॥

४६ दृष्टिके फलरूप निरंतरताकरि अभ्यासकूं दिखावैहैं ॥

४७ तितनेकरि मुजकूं क्या आया? तहां कहैहैं ॥

४८ "मा मा (मति मति)" इस प्रतीककूं लेके अभ्यासके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां निवारण करताहुया कहताभया। ऐसैं संबंध है ॥

अतिष्ठाः सर्व्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेव-

मति कर ॥ सर्व भूतनका अतिष्ठा (उल्लंघन करिके स्थित होनेवाला) मूर्द्धा (शिर) औ राजा है। ऐसें निश्चयकरि मैं याकूं उपासताहूं। ऐसें ॥ जो याकूं ऐसें उपास-

हताभयाः—इस जानने योग्य ब्रह्मविषै संवादकूं मति कर। इहां "मा[४९] मा" ऐसा जो द्विवचन है। सो आबाधन (च्यारी ओरतें बाध करने)के अर्थ है ॥ ऐसें[५०] (तेरेकरि उक्त प्रकारसें) जो विज्ञानका विषयरूप अर्थ है तिसविषै हम दोनूंकूं विज्ञानके सम होनेतेंहीं विज्ञानवानताके समान हुयेबी हमकूं अविज्ञानवालेकीन्याईं स्वीकारकरिके तिसीहीं अर्थकूं हमारेप्रति उपदेशसें दिखावनेवाले (जनावनेहारे)

४९ एक "मा" का निवारकतारूप अर्थ है औ द्वितीय "मा" का संवादके साथि संगतिरूप अर्थ है। ऐसें विभागके संभव हुये द्विवचन (तिन दोनूं मा शब्दनका साथिहीं कथन) काहेतें है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५० ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

मुपास्तेऽतिष्ठाः सर्व्वेषां भूतानां मूर्द्धा राजा भवति ॥ २ ॥

ताहै । सो सर्व भूतनका अतिष्ठा मूर्द्धा राजा होवैहै ॥ २ ॥

तुजकरि हम बाधित होवैंगे । [५१]यांतें इस ब्रह्मविषे संवादकूं मति कर ॥ जब अन्य जानताहैं तब सो ब्रह्म कहनेकूं योग्य हैं औ जो (ब्रह्म) मुजकरि जानियेहीं है । सो कहनेकूं योग्य नहीं हैं ॥ ॥ [५२]औ जब [illegible]नताहैं किः—तूं ब्रह्ममात्रकूं जानताहैं। परंतु ताके विशेषकरि उपासनके फलनकूं नहीं जानताहैं ऐसें ? सो माननेकूं योग्य नहीं है । जातें सर्व इसकूं मैं जानताहूं । जो तूं कहताहैं॥ कैसें किः—अतिष्ठाः कहिये सर्व भूतनकूं अतिक्रमणकरिके स्थित होवैहै औ सर्व भूतनका मूर्द्धा (शिर)है औ प्रसिद्ध राजनेतें

---

५१ तथापि गार्ग्यका किंचित् बाधन कैसें भया ? तहां कहैहैं ॥

५२ "सर्व भूतनका अतिष्ठा है" इत्यादि वाक्यकूं शंकाद्वारा अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां इतिशब्द जो है । सो गुणोंकी उपासनाकी समाप्ति अर्थ है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ चन्द्रे

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह

(दीप्तिरूप गुणकरि युक्त होनेतें) राजा है ॥ ऐसें इन विशेषणोंकरि विशिष्ट यह ब्रह्म। इस कार्यकरणके संघातविषे कर्त्ता औ भोक्ता है। ऐसें मैं प्रसिद्ध इस पुरुषकूं उपासताहूं इति (ऐसें) ॥ फलबी इस प्रकारके उपासककूं होवैहे ॥ इहां इतिशब्द जो है सो गुणोंके उपासनाकी समाप्ति अर्थ है ॥ ॥ [५३]जो इस पुरुषकूं ऐसें (उक्तप्रकारसें) उपासताहै। सो अतिष्ठा औ सर्वभूतनका मूर्द्धा औ राजा होवैहे ॥ जैसे गुणका उपासनहीं है। तैसाहीं फल होवैहे "[५४]तौं (परमेश्वर)कूं जैसें जैसें उपासताहै। सोई होवैहे" इस श्रुतितें ॥ २ ॥

टीकाः—अजातशत्रुकरि संवादसें आदित्यरूप ब्रह्मके निषेध किये हुये। सो गार्ग्य चंद्र-

---

५३ पूर्वोक्त रीतिसें तिन गुणोंकरि विशिष्ट ब्रह्मके उपासकके फलकूंबी जानताहूं। ऐसें कहिके फलवाक्यकूं ग्रहण करै हैं ॥

५४ उक्त प्रकारका फल क्यूं कहिये है? तहां कहैहैं ॥

पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अ-

---

चंद्रविषै पुरुष है । याहींकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसें । सो अजातशत्रु कहताभयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर। बडा शुक्लवस्त्रवाला सोमराजा है। ऐसा निश्चय करिके

माविषै अन्य ब्रह्मकूं प्राप्त होताभया ॥ ॥ जोइ यह चंद्रविषै औ मनविषै अरु बुद्धिविषै एक पुरुष भोक्ता औ कर्त्ता है। ऐसें पूर्वकीन्याईं विशेषण है ॥ कहिये याहिकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं। औ तूं ऐसें उपासना कर ॥ ऐसें कहे हुये सो अजातशत्रु कहताभया किः—इसविषै मा मा (मति मति) संवादकूं कर ॥

---

५५ एक पुरुष है ताहीकूं मैं ब्रह्म ऐसें उपासताहूं औ तूंबी ऐसें उपासना कर । ऐसें कहे हुये "मा मा (मति मति)" इत्यादि वाक्यकरि अजातशत्रु कहता भया । ऐसें कहेहैं ॥

हमेतमुपास इति॥ स य एतमेवमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति। नास्यान्नं क्षीयते ॥ ३ ॥

मैं इनकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ सो जो याकूं ऐसैं उपासताहै। ताका दिनादिनाविषै सुत (अग्निहोत्ररूप यज्ञाविषै सोमवल्लीका रस) है। सो प्रसुत (सोमयागादि विकृतिनविषै प्रसृत) होवैहै ॥ औ याका अन्न क्षयकूं पावता नहीं ॥ ३ ॥

---

[५६]बृहंत् (महान्)। अरु पाण्डर (शुक्ल)है वस्त्र जिसका सो यह पाण्डरवासा है। [५७]प्राणकूं जलरूप शरीरवाला होनेतैं ॥ [५८]औ जो अन्नभूत अरु यज्ञ

---

५६ भानुमंडलतैं द्विगुण चंद्रमंडल है। इस प्रसिद्धिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

५७ चंद्रके अभिमानी प्राणका पांडर (शुक्ल) वस्त्र कैसैं संभवै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— जातैं पुरुष शरीरसैं वस्त्रकी न्यांई वेष्टित होवै है औ जलोंका शुक्लपना प्रसिद्ध है औ "जल प्राणके वस्त्र हैं" यह श्रुति है। यातैं प्राणका शुक्लवस्त्रवान्‌पना युक्त है ॥

५८ सोम शब्दकरि केवल चंद्रमा नहीं ग्रहण करियेहै।

(प्रकृति)विषै लतास्वरूप उपजता है । ऐसा सोमराजा है । ऐसें प्रसिद्ध तिस चंद्रमारूप औ बुद्धिनिष्ठ लतास्वरूप पुरुषकूं एकरूप करिके याहींकूं "मैं ब्रह्महूं" ऐसें उपासता (अहंग्रह उपासना करता) हूं ॥ [59] जो उक्तप्रकारके गुणवाले ब्रह्मकूं उपासताहै । ताकूं दिनदिनमैं यज्ञ (अग्निहोत्ररूप प्रकृति)विषै जो सोमरूप सोमलताका रस है । सो विकारन (सोमयागादि विकृतिन)विषै प्रसवकूं प्राप्त होवैहै । औ इस [60] अन्नस्वरूप उपासकका अन्न क्षयकूं पावता नहीं ॥ ३ ॥

किंतु लतावी ग्रहण करिये है । काहेतें समान धर्मवाली होनेतें । ऐसें कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—लतास्वरूप चंद्रमाकूं औ बुद्धिनिष्ठ पुरुषकूं एककी न्यांई करिके ताकी अहंग्रहकरि उपासना है ॥

५९ अब उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥ इहां यज्ञशब्दकरि प्रकृति कही है औ विकार शब्दकरि विकृतियां ग्रहण करिये हैं । यातैं उक्त प्रकारके उपासककूं प्रकृति अरु विकृतिके अनुष्ठानका सामर्थ्य लीलाकरि प्राप्त होने योग्य है ॥

६० अन्नके अक्षयकी उपासनाकी अनुसारी होनेतैं । घटितपनैकूं अभिप्रायका विषय करिके उपासककूं विशेषण देते हैं ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठास्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति । तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥ ४ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह विद्युत्विषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर । तेजस्वि है । ऐसा निश्चयकरिके मैं इसकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो तेजस्वीहीं होवैहै ॥ तेजस्विनीहीं याकी प्रजा होवैहै ॥ ४ ॥

टीकाः—[६१] तैसैं विद्युत्विषै त्वचाविषै औ हृदयविषै एक देवता है । ताका तेजस्वी ऐसा विशेषण है । ताका फलः—निश्चयकरि तेज-

---

६१ संवाद (विवाद)रूप दोषकरि चंद्ररूप ब्रह्मकेवी निषेध कीये हुये बालाकि अन्य ब्रह्मकूं कहेहैं ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्त्तीति वा अहमेतमुपास इति ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभया:—जोई यह आकाशविषै पुरुष है । याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहता भयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर । पूर्ण अप्रवर्त्ति है । ऐसा निश्चय करिके मैं इसकूं

स्वी होवैहै । या(उपासक)की प्रजा तेजस्विनी होवैहै ॥ ईहां[६२] विद्युतनकी बहुलताके अंगीकारतें आत्मा (आप उपासक)विषै औ प्रजाविषै फलकी बहुलता है ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसें आकाशविषै कहिये हृदयाकाशविषै औ हृदयविषै एक देवता है ॥ पूर्ण औ अप्रवर्त्ति है । ये दोनूं विशेषण हैं । तिनमैं पूर्णतारूप विशेषणका फल यह है:—निश्चित प्र-

६२ ननु एक उपासन अनेक फलवाला कैसैं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते पूर्य्यते प्रजया पशुभिर्नास्यास्माल्लोकात्प्रजोद्वर्त्तते ॥ ५॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं वायौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स हो-

---

उपासताहूं ऐसें ॥ जो याकूं ऐसें उपासता है सो प्रजाकरि अरु पशुनकरि पूर्ण होता है। याकी प्रजा इस लोकतें उद्वर्त्तन (विच्छेद)कूं पावती नहीं ॥ ५ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभया:—जोई यह वायुविषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं

जाकरि औ पशुनकरि पूर्ण होवैहै ॥ अप्रवर्त्ति विशेषणका फलः—याकी प्रजा इस लोकतें उद्वर्त्तन (विच्छेद)कूं प्राप्त होती नहीं कहिये प्रजाके संतानका अविच्छेद होवैहै ॥ ५ ॥

टीकाः—तैसें वायुविषै प्राणविषै औ हृदयविषै एक है। ताका विशेषणः—इंद्र (परमेश्वर)। वैकुंठ (अप्रसह्य)। औ नपरोंकरि जित पूर्वा

**वाचाजातशत्रु र्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा इ-
न्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अ-
हमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपा
स्ते जिष्णुर्हापराजिष्णुर्भवत्यन्यतस्त्य-
जायी ॥ ६ ॥**

ऐसें ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इस-
विषै संवादकूं मतिकर ॥ इंद्र परमेश्वर वैकुंठ
(अप्रसह्य) अपराजिता सेना है । ऐसा नि-
श्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसें ॥ जो
याकूं ऐसें उपासताहै सो जिष्णु अपराजि-
ष्णु अरु अन्यतस्त्यजायी होवैहै ॥ ६ ॥

होनेतैं अपराजिता ऐसी सेना । [६३]मरुतन (वा-
युन)के गणरूपताकी प्रसिद्धितैं ॥ उपासनका
फलबीः—निश्चयकरि जिष्णु (जयनशील)
औ अपराजि[६४]ष्णु (अन्योंकरि अजित स्वभाव-

---

६३ एक वायुविषै अपराजिता सेना है । ऐसा गुण कैसैं संभवै है ? तहां कहैहैं ॥

६४ तीन विशेषणके तीन फलकूं क्रमसैं व्युत्पादन करै हैं ॥ इहां जो हवि फेंकियेहै । तिस सर्वकूं भस्मी करनेकरि संहारता है । तिसकरि अग्नि "विषासहि" है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति । विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह अग्निविषे पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसें ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इसविषे संवादकूं मतिकर । विषासहि है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ॥ जो याकूं ऐसें उपासताहै सो विषासहि होवैहै । विषासहि याकी प्रजा होवैहै ॥७॥

वाला) होवैहै औ अन्यतरस्त्यन (अन्यमातातें उत्पन्न सपत्नों)का जायी (जयनशील) होवैहै ॥ ६ ॥

टीकाः—अग्निविषे वाचाविषे औ हृदयविषे एक है । ताका विशेषण विषासहि (अन्यों-ग

स होवाच गार्ग्यो य एवायमप्सु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह जलोंविषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इसविषै संवादकूं मतिकर । प्रतिरूप है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं

मर्षयिता) है । अग्निकी[६५] बहुलतातैं फलकी बहुलता पूर्वकीन्यांई है ॥ ७ ॥

टीकाः—जलोंविषै रेतविषै औ हृदयविषै एक है । ताका विशेषणः—प्रतिरूप (अनुरूप[६६])है । अर्थ यह जो श्रुति स्मृतिसैं अप्रातिकूल है ॥ ताके

६५ जैसैं पूर्व विद्युतनकी बहुलताकरि आत्माविषै औ प्रजाविषै फलकी बहुलता कही । तैसैं इहांबी अग्निकी बहुलतातैं उपासकके आत्माविषै औ प्रजाविषै प्रदीप्त अग्निवान्‌पना सिद्ध होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

६६ प्रतिकूलतारूप प्रतिरूपता (प्रतिबिंबता) होवैगी । यह निषेध करै हैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते प्रतिरूपꣳ हैवैनमुपगच्छति नाप्रतिरूपमथो प्रतिरूपोऽस्माज्जायते ॥ ८ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स

ऐसें । सो जो याकूं ऐसें उपासताहै । प्रतिरूपहीं याकूं प्राप्त होवैहै । अप्रतिरूप नहीं ॥ औ यातें प्रतिरूप जन्मताहै ॥८॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह आदर्शविषे पुरुष है । याहीकूं मैं ब्रह्म

उपासनका फलः—प्रतिरूप (श्रुति स्मृतिकी आज्ञासैं अनुरूप) हीं या (उपासक)केतांई प्राप्त होवैहै । औ यातें विपरीत अन्य फल नहीं होवैहै ॥ इस (उपासक)तें तिस प्रकारका (श्रुति स्मृतिसैं अनुकूल) हीं [पुत्र] उपजता है ॥ ८ ॥

टीकाः—आदर्शविषे औ प्रसाद (प्रसन्नता)

होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा रोचिष्णुरिति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति । रोचिष्णुर्हास्य प्रजा भवत्यथो यैः सन्निगच्छति सर्वांस्तानतिरोचते ॥ ९ ॥

उपासताहूं ऐसें ॥ सो अजातशत्रु कहताभया:—इसविषे संवादकूं मतिकर । रोचिष्णु है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसें । जो याकूं ऐसें उपासताहै सो रोचिष्णुहीं होवैहै । रोचिष्णुहीं याकी प्रजा होवैहै । औ जिनोंकेसाथि सम्यक् निर्गमन करैहै तिन सर्वकूं अतिक्रमण करिके रोचता (प्रकाशता) है ॥ ९ ॥

के स्वभाववाले अन्य खड्गआदिकविषे औ सत्व[६७]-गुणकरि शुद्धि स्वभाववाले हार्द (हृदयसंबंधि मन)विषे एक देवता है । ताका विशेषण:—

६७ " औ हार्दविषे " याहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां सर्वत्र " एका " इस विशेषणकी " देवता " ऐसें विशेष्यताकरि संबंधकूं पावती है ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा असुरिति वा अहमेतमु-

---

अर्थः–सो गार्ग्य कहताभयाः–गमन करनेवालेके पीछेतें जोई यह शब्द अनंतर उदय होवैहै। याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसें ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः–इसविषै संवादकूं मतिकर । असु (जीवन

रोचिष्णु (दीप्तिस्वभाववाला) है ॥ औ फल । सोई (रोचिष्णुपना) है॥ इहां रोचनके आधारकी बहुलतातैं फलकी बहुलता है ॥ ९ ॥

टीकाः–जिस तिस गमन करनेवालेकेताँई जोइ यह शब्द प्रष्ठतैं पीछे उदय होवैहै औ अध्यात्मरूप जीवनका हेतु प्राण है। ताकूं एकरूप करिके कहैहैंः–याहीकूं मैं ब्रह्म ऐसें उपासताहूं। इत्यादि ॥ असु जो प्राण। जीवनका हेतु है। यह गुण है। ता (गुणवाले उ-

पास इति॥ स य एतमेवमुपास्ते सर्व्वꣳ हैवास्मिँल्लोक आयुरेति । नैनं पुरा कालात्प्राणो जहाति ॥ १० ॥

स होवाच गार्ग्यो एवायं दिक्षु पुरुष

हेतु प्राण) है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसैं । जो याकूं ऐसैं उ-पासताहै सो इस लोकविषै सर्वहीं आयुकूं पावताहै । याकूं कालतैं पूर्व प्राण छोडता नहीं ॥ १० ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह

पासन)का फलः—सर्व आयुकूं इस लोकविषै पावताहै । कर्मकरि यथाप्राप्त जो आयु है ताकूं कहिये कर्मफलकरि परिच्छिन्नकालतैं पूर्व रोगआदिककरि पीड्यमानबी या (उपासक) कूं प्राण त्यागता नहीं ॥ १० ॥

टीकाः—दश दिशाओंविषै । दोनूं कर्णों-विषै औ हृदयविषै एक देवता है । औ अवि-

---

६८ "सर्व आयुकूं" इस वाक्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥

एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचा-जातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान् ह भवति नास्माद्गणश्छिद्यते ॥ ११ ॥

दिशाओंविषै पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इस विषै संवादकूं मतिकर। द्वितीय अनपग है। ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसैं। जो याकूं ऐसैं उपासताहै। द्वितीयवान्हीं होवैहै। या (उपासक)तैं गण विच्छेदकूं पावता नहीं ॥ ११ ॥

युक्त (वियोगरहित) स्वभाववाले अश्विन[६९] (अश्विनिकुमार) नामक दो देव हैं सो। तिस (देव)का गुणः—द्वितीयवान्पना औ अनपगत्व (परस्पर अवियुक्तता) है। दश दिशाओंकूं औ अश्विनिकुमारोंकूं इस प्रकारके धर्मकरि युक्त

---

६९ कौंन फेर यह एक देवता है? तहां कहैहैं ॥

७० उक्त फलवाले दोनूं गुणोंकूं उपपादन करैहैं ॥

**स होवाच गार्ग्यो य एवायं छाया-
मयः पुरुषः एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥
स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदि-
ष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति ॥**

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जोई यह छायामय पुरुष है याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसें ॥ सो अजातशत्रु कहताभयाः—इसविषे संवादकूं मतिकर । मृत्यु है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं

होनेतें ताके उपासककूं सोई कहिये गणका अविच्छेद औ द्वितीयवान्पना (साधु भृत्योंकरि परिवृत्तपना) फल[71] होवैहै ॥ ११ ॥

टीकाः—छाया (बाह्य अंधकार)विषे अरु अध्यात्म (आंतरीय) आवरणस्वरूप अज्ञानविषे औ हृदयविषे एक देवता है । ताका विशेषण (उपमा) मृत्यु है । ताके उपासनका

---

७१ शब्दब्रह्मके उपासककी न्यांई तमोब्रह्मके उपासककूंबी फल होवै है । ऐसें कहैहैं ॥

स य एतमेवमुपास्ते सर्व्वं हैवास्मिँल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्युरागच्छति ॥ १२ ॥

स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्म-

ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै सो इस लोकविषै सर्वही आयुकूं पावताहै । याकूं कालतैं पूर्व मृत्यु आवता नहीं ॥ १२ ॥

अर्थः—सो गार्ग्य कहताभयाः—जो यह

फल सर्व पूर्ववत् जानिलेना । मृत्युके[72] अनागम हुये रोगादि पीडाका अभाव विशेष है ॥ १२ ॥

टीकाः—आत्मा (प्रजापति) विषै बुद्धिविषै औ हृदयविषै एक देवता है ॥ ताका उपासक निश्चयकरि आत्मन्वी ([73]आत्मवान्) होवैहै औ याकी प्रजा निश्चयकरि आत्मन्विनी

---

७२ औ फल भेदके हुये उपासनका भेद कैसैं होवै है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७३ व्यस्तब्रह्मोंकूं उपन्यास करिके । अब समस्तब्रह्मकूं उपदेश करै हैं ॥ आत्मवान्‌ता कहिये वश्यात्मकता ॥

नि पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति ॥ स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा आत्मन्वीति वा अहमेतमुपास इति ॥ स य एतमेवमुपास्ते आत्मन्वीह भ-

---

आत्मा(बुद्धि)विषै पुरुष है । याहीकूं मैं ब्रह्म उपासताहूं ऐसैं ॥ सो अजातशत्रु कहताभया:—इस (उक्तब्रह्म)विषै संवादकूं मतिकर । आत्मन्वी (आत्मवान्) है । ऐसा निश्चय करिके मैं याकूं उपासताहूं ऐसैं ॥ जो याकूं ऐसैं उपासताहै । सो आत्मन्वी (आत्म-

---

(आत्मावाली) होवैहै । बुद्धिकी[७४] बहुलतातैं प्रजाविषै [फलका] संपादन है ॥ ॥ आपहीं परिज्ञात होनेकरि आदित्यादि वस्तुरूप ब्रह्मोंके उक्त प्रकारके क्रमकरि प्रत्याख्यात (निषिद्ध) भये क्षीण भया है । ब्रह्मविज्ञान जिसका औ अप्रतिभासमान (अप्रतीयमान) है उत्तर जि-

---

७४ फलकूं आत्मगामी होनेतैं प्रजाविषै तिसका कथन उचित नहीं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

वत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा भवति ॥
स ह तूष्णीमास गार्ग्यः ॥ १३ ॥
स होवाचाजातशत्रुरेतावन्नू ३ इत्ये

वान्) होवैहै। आत्मन्विनी याकी प्रजा होवैहै ॥ सो गार्ग्य तूष्णी होता भया ॥ १३ ॥

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—क्या [ब्रह्म जान्या]है? [तब] गार्ग्य कहताभयाः—] इतनाहीं [जान्या]है। [तब अजातशत्रु कहताभयाः—] इतने [विदित]

सकूं ऐसा जो गार्ग्य (बालाकि)। सो तूष्णी (नीचे मस्तकवाला) होताभया ॥ १३ ॥

टीकाः—तिस गार्ग्यकूं तिसप्रकारका च्यारी ओरतैं लखिके (जानिके) सो अजातशत्रु कहताभयाः—"क्या इतनाहीं है" ऐसैं। कहिये क्या इतनाहीं ब्रह्म तेरेकरि निर्ज्ञात (जान्या) है अथवा अधिकबी है ॥ इस रीतिसैं कहा। तब इतर (गार्ग्य) कहताभयाः—"इतनाहीं

---

७५ विचारके अर्थ स्तुति है। ऐसैं कथन करैहैं ॥

तावद्धीति ॥ नैतावता विदितं भवतीति ।
स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ॥१४॥

करि [ब्रह्म] विदित नहीं होवैहै ऐसें ॥
सो गार्ग्य कहताभयाः—उपगमन करताहूं
(तेरेप्रति शरण होताहूं) ॥१४॥

है" ऐसें ॥ ॥ इतने विदित (जानने) करि
ब्रह्म विदित (विज्ञात) नहीं होवैहै । इस अ-
भिप्रायकरि अजातशत्रु कहताभयाः—तूं किसं[७६]
अर्थ "ब्रह्म तेरेतांई कहता हूं" ऐसें गर्वित
(गर्वयुक्त भया) हैं ॥ ॥ ननु. क्या इतना जो
विदित है सो विदितहीं नहीं होवैहै? तहां क-
हियेहैः—[७७]फलवाले विज्ञानके श्रवणतैं [इतनाहीं
विदित विदितहीं होवै] नहीं [७८]औ वाक्यनकी
अर्थवादताहीं (स्तुतिमात्रकी बोधकताहीं)
जाननेकूं शक्य नहीं है । जातैं "सर्व भूतनका

७६ वाक्यार्थकूं शंका समाधानकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७ आदित्यआदिकके अविदितपनेके निषेधकूं प्रतिज्ञा करिके हेतुकूं कहैहैं ॥

७८ ये वाक्य । फलवाले विज्ञानके परायण नहीं हैं । अर्थवादरूप नहीं होनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

अतिष्ठाः (अतिक्रमणकरिके वर्तनेवाला)है ” इत्यादिक अपूर्वविधिके परायण वाक्य । प्रति उपासनाके उपदेशकेतांई लखियेहैं [७९]औ तिन (उपासनाओं)के अनुसारि फल विभक्त (न्यारे न्यारे) सर्वत्र (सर्वठिकाने) सुनिये हैं । [८०]उक्त वाक्यनकी अर्थवादताके हुये यह असमञ्जस (असमीचीन) होवैगा ॥ ॥ [८१]ननु तब इतनेकरि विदित नहीं होवैहै। इस प्रकार तुम कैसें कहते हो ? तहां अजातशत्रु कहैहैः—[८२]यह दोष नहीं है। काहेतें ज्ञानके निषेधकूं अधिकारीकी अपेक्षा-वाला होनेतें ॥ [८३]जातें श्रवणकी इच्छावाले अ-जातशत्रुकेतांई ब्रह्मके उपदेश अर्थ अमुख्य ब्र-

---

७९ औ फलवाले होनेतें अपूर्वविधिके परायण ये वाक्य हैं । ऐसें कहैहैं ॥

८० अर्थवादताके हुयेबी तिन वाक्यनकूं अपूर्वविधिरूप अर्थवान्ता क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८१ वाक्यनकी फलवाले विज्ञानविषै तत्परताकूं अंगीकार करिके । निषेध वाक्यकी गतिकूं प्रतिवादी पूछताहै ॥

८२ तिस (निषेध वाक्य)की व्यर्थताकूं सिद्धांती । परि-हार करै हैं ॥

८३ वेदन (जानने)के निषेधकूं अधिकारीकी अपेक्षावाला होनेतैं । ऐसें कथन किये अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

ह्मका वेत्ता गार्ग्य प्रवृत्त भयाहै। तातैं मुख्य ब्रह्मके वेत्ता अजातशत्रुकरि अमुख्य ब्रह्मका वेत्ता जो गार्ग्य। सो "जिस मुख्य ब्रह्मकूं तूं कहनेकूं प्रवृत्त भया हैं। ताकूं नहीं जानताहैं" ऐसें कहनेकूं युक्तहीं है ॥ [८४]जब (जो) अमुख्य ब्रह्मका विज्ञानबी अजातशत्रुनैं निषेधका विषय किया होवै। तब (तो) ता (अमुख्यब्रह्मज्ञान)कूं "इतनेकरि" ऐसें नहीं कहता। किंतु "तुजने कछुबी जान्या नहीं" ऐसें कहता। तातैं ये (उक्त प्रकारके) ब्रह्म। अविद्याके विषयविषै होवैहैं [८५]औ परब्रह्मके विज्ञानकूं इस (अमुख्य ब्रह्मके) विज्ञानरूप द्वारवाला होनेतैं "इतनेकरि विदित नहीं होवैहै" ऐसें कहनेकूं

८४ ननु "इतनेकरि विदित नहीं होवै है" ऐसें अविशेष (सामान्य)कारि अमुख्य ब्रह्मका ज्ञानबी अजातशत्रुनैं निषेध किया होवैगा? ऐसें जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं। ऐसें कहैहैं ॥

८५ किंवा:—निष्काम पुरुषकरि जब ये (उक्त प्रकारके) उपासन। अनुष्ठान करिये हैं। तब इन (उपासनों)कूं ब्रह्मज्ञानरूप अर्थवाले होनेतैं अमुख्य ब्रह्मज्ञानके निषेधविना तिनके निषेधका संभव है। ऐसें कहैहैं ॥

युक्तहीं है ॥ अविद्याके विषयविषै इन (आदि-त्यादिकन)का विज्ञेयपना (ज्ञानका विषयपना) औ नाम रूप कर्म स्वरूपपना तृतीय (प्रथम) अध्यायविषै दिखाया । तातें "इतनेकरि विदित नहीं होवैहै" ऐसें कहनेवाले अजातशत्रुकरि "अधिक ब्रह्म जाननेकूं योग्य है" ऐसें दिखाया होवैहै ॥ औ सो (ब्रह्म) अनुपसन्न (उपसत्तिरहित) पुरुषकेतांई कहनेकूं योग्य नहीं है । इस आचारविधिका जाननेवाला गार्ग्य । आपहीं कहताभयाः—जैसें अन्य शिष्य गुरुकेप्रति होताहै । तैसें मैं तेरेप्रति उपसन्न (शरणागत) होताहूं ऐसें ॥ १४ ॥

---

८६ ननु आदित्यआदिकहीं मुख्य ब्रह्म हैं । यातें निषेधकी व्यर्थता तिस अवस्थावाली है? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८७ आदित्यआदिककी मुख्यब्रह्मताके असंभवतें निषेधकूं घटित होनेतें तिस (निषेध)के सामर्थ्यतें सिद्ध अर्थकूं उपन्यास करै हैं ॥

८८ उपगमन (गुरुसमीपजाने)के वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥ यह आचार विधिरूप शास्त्रवचन हैः—आपत्कालविषै अब्राह्मणतें अध्ययन विधान करियेहै औ जहां लगी अध्ययन होवै । तहां लगी गुरुकी अनुसारी वर्तनेरूप

स होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैत-द्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद्ब्रह्म मे वक्ष्यती-

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—सो प्रतिलोम (विपरीत) है। जो ब्राह्मण हुया क्षत्रियकेप्रति "ब्रह्म मेरेताई कहैगा"

टीकाः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—सो प्रतिलोम (विपरीत) है ॥ सो क्या कि? जोः—ब्राह्मण (उत्तमवर्ण) है। सो आचार्य-ताविषै अधिकारी हुया अनाचार्यस्वभाववाले क्षत्रियकेप्रति "मेरेताई ब्रह्मकूं कहैगा (उ-पदेश करैगा)" ऐसैं शिष्यकी वृत्तिकरि समीप जावै (उपसत्तिपूर्वक शरणागत होवै)। यह (ऐसैं करना) आचारकी विधिरूप शास्त्रनविषै निषिद्ध है ॥ तातैं तूं आचार्य हुयाहीं स्थित-हो। तेरेकूं मैं विज्ञापन (सूचन) करूंगाहीं ॥ जिसके विदित भये ब्रह्म विदित होवैहै । ऐसा

सुश्रूषा कर्त्तव्य है। अब्राह्मणरूप गुरुविषै (गुरुकेपास)शिष्य अत्यंतवास जैसैं होवै तैसैं वसै नहीं ॥

८९ आदित्यआदिक ब्रह्मतैं मुख्यब्रह्मकी विलक्षणताकूं कहैहैं ॥

ति। व्येव। त्वा ज्ञपयिष्यामीति। तं पाणावादायोत्तस्थौ॥ तौ ह पुरुषꣳ सुप्तमाजग्मतुस्तमेतैर्नामभिरामन्त्रयाञ्चक्रे । बृहन् पाण्डरवासः सोम राजन्निति। स

ऐसें जानिके उपगमन करै॥ तूं स्थित हो। तेरेतांईं विज्ञापन करूंगा (ब्रह्म जनावूंगा) ऐसें। ता (गार्ग्य)कूं हस्तविषै लेके ऊठताभया॥ वे दोनूं सुप्त पुरुषकेप्रति गमन करतेभये। ताकूं इन नामोंकरि [अजातशत्रु]आमंत्रण करताभयाः—हे बृहन्! शुक्ल वस्त्रवाला! सोम। राजन्! ऐसें सो ऊठता न

जो मुख्य ब्रह्म । सो जाननेकूं योग्य है ॥ फेर तिस गार्ग्यकूं लज्जासहित जानिके। विश्वासके जननअर्थ हस्तविषै ग्रहण करिके ऊठताभया ॥ वे गार्ग्य अरु अजातशत्रु कहींक राजगृहके प्रदेशविषै सुप्त (सोये) पुरुषकेपास आवतेभये। औ ता सुप्त पुरुषकूं प्राप्त होयके। हे बडा ! अरु शुक्लवस्त्रवाला ! हे सोम !

नोत्तस्थौ । तं पाणिना पेषं बोधयाञ्च-
कार। स होत्तस्थौ ॥ १५ ॥

भया ॥ ताकूं हस्तसैं मरोडीके बोधन कर-
ताभया। [तब] सो ऊठताभया ॥१५॥

हे राजन्! ऐसैं इन (पूर्वउक्त) नामोंकरि
आमंत्रण करताभया (बुलावताभया) ॥ ऐसैं
बुलाया हुयाबी सो सुप्त पुरुष नहीं उठाता-
भया। तब तिस अप्रतिबुद्ध्यमान (नहीं जगे)
पुरुषकूं हस्तसैं मरोडीके बोधन करताभया (ज-
गावता भया)। तिसकरि सो (सुप्त पुरुष) ऊ-
ठताभया ॥ ९० तातैं जो गार्ग्यकरि अभिप्रेत (अ-
भिप्रायका विषय किया) पुरुष है। यह इस
शरीरविषै कर्त्ता भोक्ता ब्रह्म नहीं है ॥ १५ ॥

९० व्याप्रियमाण (शरीरके बाहिरभीतर जाने आनेरूप
व्यापारवाले) प्राणकेहीं संबोधन अर्थ पृथक् उक्त नामके
अश्रवणतैं औ आपेषण (हस्तके मरोडने) करि उत्थानतैं
तिस (प्राण)का अभोक्तापना सिद्ध होवै है । ऐसैं फलि-
तकूं कहेहैं ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तो-ऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषः क्वैष त-

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—जिस (काल)विषै यह (पुरुष) यह (सोवना) जैसें होवै तैसें सुप्त होताभया । जो यह विज्ञानमय (बुद्धिबहुल) पुरुष है । यह

टीकाः—[९१]नैनु फेर सुप्त पुरुषकेपास गमन अरु ताके संबोधन औ उत्थापनकरि गार्ग्य अभिमत ब्रह्मका अब्रह्मपना जनाया। यह कैसें जानियेहै ? [९२]जागरित कालविषै गार्ग्यकरि अभिप्रेत (अभिमत) पुरुषरूप ब्रह्म है। सो जैसें करणोंविषै सन्निहित (समीपविषै प्राप्त) है । तैसें अजातशत्रुकरि अभिप्रेत पुरुषबी भृत्यन (किंकरन)

---

९१ "वे (अजातशत्रु अरु गार्ग्य) दोनूं सुप्तपुरुषके प्रति गमन करते भये" इत्यादि सुप्त पुरुषके प्रति गतिकी उक्तिके तांई प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥ इहां यह अर्थ है:—गार्ग्य (बालाकि) अरु काश्य (अजातशत्रु)करि अभिमत दोनूं पुरुषनके जागरितमैं करणोंविषै सन्निधानके अविशेषतैं तहांहीं विवेक क्यूं न दिखाया ॥

९२ जागरित करणोंविषै दोनूंके सन्निधानके हुयेबी मिश्रभावतैं विवेचन दुष्कर है । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

दाऽभूत्कुत एतदागादिति । तदु ह न मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥

तब कहांथा ? कहांतैं यह (आगमन) जैसें होवै तैसें आवताभया ? ऐसें ॥ सो (उभय) बी गार्ग्य (मैं) नहीं जानताहूं ॥ १६ ॥

विषै तिनके स्वामीकीन्यांई राजाके सन्निहितहीं है । किंतु[९३] भृत्य अरु स्वामीरूप गार्ग्य अरु अजातशत्रुकरि अभिप्रेत पुरुषनके जो विवेक (भेदज्ञान)के निश्चयका कारण है । सो संकीर्ण (मिलित) होनेतैं अनिश्चित विशेषवाला है । [९४]जो भोक्ताका द्रष्टापना हीं है [९५]औ जो अभोक्ताका दृश्यपनाहीं है द्रष्टापना तो नहीं है । औ सो दोनूं (द्रष्टापना अरु दृश्यपना) इहां (जाग्रत् कालविषे) संकीर्ण (मिलित) होनेतैं विवेचन करिके दिखावनेकूं अशक्य हैं । यातैं सुषुप्तपुरु-

---

९३ ननु तब स्वामी अरु भृत्यके दृष्टांतकरि तिन दोनूंका विवेकबी सुकर होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

९४ तिन दोनूंके विवेकके निश्चयका जो कारण है । ताकूं कहैहैं ॥

९५ ननु सो (विवेकके निश्चयका कारण) अनिश्चित विशेषवाला कैसैं है ? यह शंका भयी । यातैं सो कहैहैं ॥

षकेप्रति गमन है ॥ ॥ [९६] ननु सुप्तपुरुषविषैबी वि-
शिष्ट (श्रेष्ठ) नामोंकरि बुलाया भोक्ताहीं स-
न्मुख देखताहै अभोक्ता नहीं । यह निर्णय
नहीं होवैगा ? [९७] यह कथन बनै नहीं:—काहेतें
[९८] जोई सत्य (पंचभूत)करि ढांप्या प्राणात्मा अ-
मृतरूप है औ वाक् आदिकनके अस्तकूं प्राप्त
हुये जो अस्तकूं पावता नहीं औ जाका जल
शरीर है औ जो शुक्लवस्त्रवाला है औ जो श-
त्रुरहित है औ जो बडा है औ जो षोडशकला-
वाला सोम राजा है । सो स्वव्यापार (मूलश-
ब्दादिक)विषै आरूढ जान्या हुयाहीं अस्तकूं
अप्राप्तभये स्वभाववाला है । [९९] औ ताके विरोधी

---

९६ यद्यपि जागरितकूं छोडीके सुप्तपुरुषविषै विवेकके अर्थ
तिन दोनूंका उपभवन है । तहां जो भोक्ताहीं स्वनामोंकरि
संबोधनका विषय किया । सो तिस शब्दकूं सुनेगा । अचे-
तन नहीं । तथापि इष्ट विवेककी सिद्धि नहीं होवै है । का-
हेतें गार्ग्य अरु अजातशत्रुके अभीष्ट दोनूं आत्माके मध्य उ-
त्थितके संशयतें ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै हे ॥

९७ सिद्धांती संशयकूं निराकरण करै हैं ॥

९८ विशेष अवधारणकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

९९ उक्त विशेषणवाले प्राणके निद्राविषै अवस्थानके हु-
येबी ताकूं तब भोगका अभाव है । काहेतें तहां अन्य भो-
क्ताके अंगीकारतें ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

अन्य किसीकाबी व्यापार तिस कालविषै गार्ग्य करि अभिप्रायका विषय नहीं करियेहै । [१००]तातैं स्वनामोंकरि आमंत्रित (बुलाये) हुये तिसकरि प्रबोधकूं पावना योग्य था [१०१]औ प्रबोधकूं पावता नभया । [१०२]तातैं परिशेषतैं गार्ग्यकरि अभिप्रेत ब्रह्म (प्राण)का अभोक्तापना है । [१०३]जो तिसका भोक्ता स्वभाव होवै तो प्राप्तभये स्वविषयकूं भोगेगाहीं । औ भोगतानहीं । तातैं अभोक्ता है ॥ [१०४]जातैं दाहक स्वभाववाला अरु प्रकाशक स्वभाववाला हुया वह्नि (अग्नि) प्राप्तभये तृण अरु उलप (फैलनेवाली वेल वा बाल तृण) आदिक दाह्य (जलावने योग्य) स्वविषयकूं .नहीं जलावताहै औ प्रकाशने योग्य स्वविषयकूं नहीं प्रकाशताहै ऐसें नहीं है ॥ [१०५]जब प्राप्त भये स्वविषयकूं जलावता

१०० तिसीके भोक्तापनैविषै फलितकूं कहैहैं ॥

१०१ ननु तब तिस (प्राण)कूं प्राप्त शब्दका श्रवण होहू ? तहां कहैहैं ॥

१०२ परिशेषतैं सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

१०३ प्राणके अभोक्तापनैकूं व्यतिरेकद्वारा साधतेहैं ॥ इहां प्राण जातैं नहीं भोगता है । तातैं अभोक्ता है । यह शेष है ॥

१०४ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥

१०५ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

नहीं औ प्रकाशता नहीं । तब यह वह्नि दग्धा (दाहक) औ प्रकाशयिता (प्रकाशक) है। यह नहीं निश्चय करियेहै ॥ [106] जैसें यह गार्ग्य-करि अभिप्रेत प्राण जब प्राप्त शब्दादि वि-षयकी उपलब्धि (अनुभवरूप भोग)के स्व-भाववाला होवैहै। तब बृहत् (बडा)अरु शुक्ल वस्त्रवाला इत्यादि शब्दरूप स्वविषयकूं प्राप्त होवै (ग्रहण करै)। जैसें प्राप्त तृण अरु उलप-आदिककूं वह्नि अव्यभिचारकरि (नियमकरि) दाहकरै औ प्रकाश करै । ताकीन्यांई । [जातें ग्रहण करता नहीं] [107] तातें प्राप्त शब्दादिकनके अप्रतिबोधतें (अनुभवके अभावतें) प्राण अ-भोक्ता स्वभाववाला है । ऐसें निश्चय करियेहै ॥ [108] जातें जाका जो स्वभाव निश्चित है । सो ता (स्वस्वभाव)केतांई कदाचित्बी व्यभिचारकूं पा-वता नहीं । यातें (संबोधनरूप शब्दके अश्रव-

---

१०६ उक्त अर्थकूं संक्षेप करिके कहैहैं ॥

१०७ प्राणके उक्त अभोक्तापनैकूं उपसंहार करै हैं ॥

१०८ यद्यपि प्राण निद्राविषै शब्दादिकनकूं नहीं जानता है । तथापि भोक्ता स्वभाववाला होवैगा ? यह कथन बनै नहीं । ऐसें कहैहैं ॥

णतैं) प्राणका अभोक्तापना सिद्ध भया ॥ ॥ [१०९]ननु संबोधनरूप अर्थवाले नामविशेषकरि संबंध (शक्तिवृत्ति)के अग्रहणतैं प्राणका अप्रतिबोध (अजागरण) होवैगा ऐसैं जो कहै । [११०]कहिये जैसैं बहुतनके बैठे हुये स्वनामविशेषकरि संबंधके अग्रहणतैं सुनता हुयाबी संबोधनका विषय किया जो पुरुष सो " यह मुजकूं संबोधन करैहै (बुलावताहै) " ऐसैं विशेषकरि जानता नहीं । तैसैं प्राण "ये बृहत् (बडा)। इत्यादिक मेरे नाम हैं " ऐसैं अग्रहीत संबंधवाला होनेतैं संबोधनरूप अर्थवाले शब्दकूं ग्रहण करता नहीं । परंतु अविज्ञाता होनेतैंहीं नहीं । यातैं यह (प्राणका भोक्तापना) होवैगा ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । [१११]सो बनै नहींः—काहेतैं देवताके अंगीकार किये हुये स्वनामोंकेसाथि स्वसंबंधके

---

१०९ ननु तिस (प्राण)कूं स्वनामका जो अग्रहण है । सो संबंधके अग्रहणका किया है । अनात्मताका किया नहीं ? इसप्रकार प्रतिवादी । शंका करै है ॥

११० शंकाकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करै है ॥

१११ देवताकूं संबंधका अग्रहण अयुक्त है । काहेतैं सर्वज्ञ होनेतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती । उत्तर कहैहैं ॥

अग्रहणके असंभवतैं ॥ [112] जातैं जाकी चंद्रआदिक अभिमानिनी देवता है अरु अध्यात्मरूप प्राण भोक्ता अंगीकार करियेहै। ताका तिस (ग्रहण-कर्त्ता देवता) करि सम्यक् व्यवहारअर्थ विशेष-नामसैं संबोध अवश्य ग्रहण करनेकूं योग्य है। [113] अन्यथा आह्वानआदिक (संबोधन याग स्तुति नमस्कारआदिक) विषयविषै संव्यवहार (अ-भिज्ञा भोग अरु प्रसादआदिक) अघटित हो-वैगा ॥ ॥ [114] ननु प्राणतैं व्यतिरिक्त भोक्ताके प-क्षविषैबी अप्रतिपत्ति (संबंधके अग्रहण) तैं ता-कावी भोक्तापना अयुक्त है? ऐसैं जो कहै। [115] कहिये जाका प्राणतैं व्यतिरिक्त भोक्ता है ता-

---

११२ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥ इहां "तया (तिसके साथि)" इस शब्दकरि ग्रहणकर्त्ताका निर्देश है ॥

११३ "अवश्य" ऐसैं सूचनाकरी अनुपपत्तिकूं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि याग स्तुति अरु नमस्कार आदिक ग्रहण करिये हैं। औ संव्यवहार कहिये अभिज्ञा भोग अरु प्रसाद आदिक ॥

११४ ननु संबोधनरूप नामका औ तिसका किया अ-नात्म दोष तुह्मारेकूं इष्ट (प्राणतैं भिन्न) जो आत्मा है। ताकूंबी तुल्य है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

११५ संक्षेपकरि उक्त शंकाकूं प्रतिवादी। वर्णन करैहै ॥

कूंबी बृहत्‌आदिक नामोंकरि संबोधनके हुये बृहत्‌आदिक नामोंकी तब (सुषुप्तिदशाविषै) प्रतिपत्ति (अनुभूति) युक्त है। तिस (प्राणतैं अतिरिक्त आत्मा)कूं विषय करनेवाले होनेतैं औ [११६] कदाचित्‌बी बृहत्‌आदिक शब्दोंकरि संबोधनकूं प्राप्त किया पुरुष जागरणकूं प्राप्त भया नहीं देखीयेहै। तातैं (तुज सिद्धांतीकरि इष्ट आत्माकूं संबोधनरूप शब्दके अग्रहण हुयेबी भोक्तापनैके अंगीकारतैं) यातैं संबोधनकी अप्रतिपत्ति (अग्रहण) प्राणके अभोक्तापनैविषैबी अकारण है। इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। [११७] सो बनै नहीं:—काहेतैं तिस (प्राण)वालेकूं तिस

---

११६ ननु प्राणतैं अतिरिक्त आत्माकूं संबोधनका श्रवण हैही? ऐसैं जो सिद्धांती कहै सो बनै नहीं। इसप्रकार प्रतिवादी कहैहै॥ इहां "तातैं" इस तत् शब्दका तुह्मारेकूं इष्ट जो आत्मा। ताकूं संबोधनरूप शब्दकी अप्रतिपत्तिके हुयेबी भोक्तापनैके अंगीकारतैं यह अर्थ है। यातैं प्राणके भोक्तापनैविषैवी संबोधनका अग्रहण अकरण है॥

११७ जैसैं हस्त। पाद्। अंगुली। इत्यादि नामके कथन किये हुये मैत्र (पुरुषविशेष) ऊठता नहीं काहेतैं ताकूं सर्व (सारे) देहका अभिमानी होनेकरि तन्मात्र (हस्तआदिमात्र)का अनभिमानी होनैतैंहीं॥ तैसैं काशीपति अजातशत्रूकूं इष्ट जो आत्मा। ताकूं सर्व कार्यकरणका अ-

(प्राण)मात्रके अभिमानके असंभवतें । ताका प्राणतें व्यतिरिक्त भोक्ता है । सो प्राणादि करणवान् प्राणी है[११८] जाकूं प्राण देवतामात्रविषै अभिमान नहीं है । जैसें हस्तविषै ॥ [११९] तातें प्राण नामकरि संबोधनके हुये संपूर्ण अभिमानीकी अप्रतिपत्ति युक्तहीं है । [१२०] परंतु प्राणके असाधारण (स्वकीय) नामके संयोगके हुये अप्रतिपत्ति (अप्रतिबोध) युक्त नहीं । [१२१] औ विशिष्ट (बु-

---

भिमानी होनेतें अंगुलि स्थानीय प्राण मात्र है तिस (सारे कार्यकरणके अभिमान)के अभावतें । ताके नामका अग्रहण है । अचेतनभावतें नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

११८ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

११९ प्राणमात्रविषै प्राणादि करणवाले आत्माके अभिमानके अभावहुये फलितकूं कहैहैं ॥

१२० चंद्रकूंबी प्राणका एकदेशरूप होनेतें तिनके नामोंकरि संबोधनके हुये संपूर्ण अभिमानी हुया ऊठता है। इहांबी अंगुलिआदिक दृष्टांतके संभवतें ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१२१ गोत्व जातिकी न्यांई । ताकी सर्व वस्तुविषै समाप्तितें " मैं हूं " ऐसें सर्वत्र अभिमानकी सिद्धितें । बोध अरु अबोध तुल्य होवैंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विशिष्ट आत्माकूं देवताविषै आत्मभावके अभिमानके अभावतें औ इतर (चेतनमात्र)कूं कूटस्थज्ञप्तिमात्र

द्धिविशिष्ट प्राणतैं भिन्न) आत्माकूं देवताविषै आत्मभावके अभिमानके अभावतैं अरु इतर (शुद्ध आत्मा)कूं कूटस्थ ज्ञप्तिमात्रताकरि ता (अभिमान)के अयोगतैं प्राणकी औ तिस व्यतिरिक्त आत्माके बोध अरु अबोधकी तुल्यता नहीं है ॥ ॥ [122]ननु स्वनामके प्रयोगके हुयेबी अप्रतिपत्ति (अजागरण)के देखनेतैं प्राणतैं इतर आत्माका भोक्तापना अयुक्त है ? ऐसैं जो कहै । [123]कहिये सुषुप्त पुरुषका जो लौकिक देवदत्तादि नाम है। तिसकरिबी संबोधनकूं प्राप्त किया (जगाया) सुषुप्त (सोया) पुरुष कदाचित् नहीं जागता है । तैसैं प्राण । भोक्ता हुयाबी नहीं जागता है ॥ इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । [124]सो बनै नहीं:—काहेतैं आत्मा अरु प्राणकी सुप्तता अरु

(अविकारी ज्ञानस्वरूप) होनेकरि ताके (उक्त अभिमानके) अयोगतैं तिन दोनूंकी तुल्यता नहीं है ॥

१२२ प्रकारांतरकरि ता (प्राण)के अभोक्तापनैकूं निवारण करता हुया प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां प्राणसैं इतर आत्माका भोक्तापना अयुक्त है । यह शेष है ॥

१२३ ताहीकूं वर्णन करै है ॥

१२४ अब विशेषकूं दिखावते हुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

असुप्तताके विशेष (भेद)के संभवतैं ॥ [१२५]सुप्त होनेतैं प्राणसैं ग्रस्त होनेकरि उपरत करणोंवाला आत्मा उच्चारण कियेबी स्वनामकूं ग्रहण करता नहीं । [१२६]परंतु असुप्त प्राणकी भोक्तृताके हुये ताकूं सो उपरत करणवान्पना वा संबोधनका अग्रहण युक्त नहीं है ॥ ॥ [१२७]ननु अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधन अयुक्त है ? ऐसैं जो कहै । [१२८]कहिये जातैं प्राणकूं विषय करनेवाले प्रसिद्ध प्राणादि नाम हैं । तिनकूं छोडीके अप्रसिद्ध बृहत्तादि नामोंकरि संबोधन अयुक्त है । लौकिक

१२५ अजातशत्रुकूं अभीष्ट आत्माके सुप्तपनै (सोवनै) करि युक्त फलकूं कहैहैं ॥

१२६ ननु प्राणकूंबी संहृत (उपरत) करणवाला होनेतैं स्वनामका अग्रहण है ? यह आशंका करिके ता (प्राण)के असुप्तपनैके किये कार्यकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:— करणोंके स्वामीके व्यवहार करते हुये करणोंका उपरम नहीं संभवै है औ अनुपरत करणोंवाले तिस (प्राण)कूं स्वनामका अग्रहण अयुक्त है ॥

१२७ ननु प्राणके नाम होनेकरि अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधनतैं ता (प्राण)का अनुत्थान है । अनात्मा होनेतैं नहीं ? इसप्रकार प्रतिवादी । शंका करै है ॥

१२८ ताहीकूं प्रतिवादी स्पष्ट करै है ॥ इहां प्रसिद्धकूं अनुवाद करिके । अप्रसिद्ध विधेय (कहने योग्य) है । यह लौकिक न्याय है ॥

न्यायके अपोह (निराकरण)तें ॥ [१२९]तातें भोक्ताहीं हुये प्राणकूं अप्रतिपत्ति (अजागरण)है ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। [१३०]सो बनै नहीं:-काहेतें अप्रसिद्ध नामोंकरि प्राणके संबोधनकूं चंद्रदेवताके प्रत्याख्यान (निषेध)रूप अर्थवाला होनेतें कहिये [१३१]केवल संबोधनमात्रकी अप्रतिपत्तिकरिहीं असुप्त अध्यात्मिक प्राणकी अभोक्तृताके सिद्धभये जो चंद्रदेवताकूं विषय करनेवाले नामोंकरि संबोधन है सो " चंद्रदेवतारूप प्राण इस शरीरविषै भोक्ता है" इस गार्ग्यकी विशेष प्रतिपत्तिके निराकरण अर्थ है ॥ [१३२]जातें सो (उक्त प्रतिपत्तिका निराकरण) लौकिक नामकरि संबोधनके हुये करनेकूं शक्य

१२९ अप्रसिद्ध नामोंकरि संबोधनकी अयुक्तताविषै फलितकूं कहैहैं ॥

१३० चंद्रदेवता। इस देहविषै कर्त्ता अरु भोक्ता आत्मा है। इस गार्ग्यके अभिप्रायके निषेधविषै देवता नाम ग्रहणके तात्पर्यतें तिन (चंद्रदेवताके नामों)का ग्रहण अर्थवान् है। ऐसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१३१ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥

१३२ प्राणादिकनकेबी संबोधनके हुयेबी ताका निराकरण करनेकूं शक्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां लौकिक नामकूं देवताविषयताके अभावतें। यह अर्थ है ॥

नहीं है । तातैं इहां अलौकिक नामोंकरि । प्राणका संबोधन है ॥ [133] प्राणके निषेध करनेकरि प्राणसैं ग्रस्त होनेतैं अन्य करणों (इंद्रियन)की प्रवृत्तिके असंभवतैं तिनके भोक्तापनैकी शंकाका असंभव है [134] औ अन्य देवताके अभावतैं ॥ अन्य देवताके भोक्तापनैकी शंकाका असंभव है ॥ ॥ [135] ननु "अतिष्ठाः (अतिक्रमणकरिके वर्त्तनेवाला)" इससैं आदिलेके । "आत्मन्वी (आत्मवान्)" इस अंतवाले ग्रंथके भागकरि गुणवाली देवताके भेदकूं दिखाया होनेतैं । चंद्रदेवतातैं अन्यदेवताका अभाव नहीं है । यातैं तुह्मारा कथन अयुक्त है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । [136] सो बनै नहीं—काहेतैं तिस (दे-

---

१३३ प्राणके अभोक्तापनैके हुयेबी इंद्रियनकूं भोक्तापना है? ऐसैं केइक कहते हैं । तिनके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥

१३४ प्राणरूप करणवाले चंद्र देवताओंकी अभोक्तृताके हुयेबी अन्य देवता इहां भोक्ता होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१३५ तहां उपक्रमके विरोधकूं प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां पूर्व दिखाया होनेतैं अन्य देवताका अभाव नहीं है । यह शेष है ॥

१३६ स्वतंत्र देवताका भेद नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती समाधान करै हैं ॥

वताभेद)की प्राणविषैहीं एकताके अंगीकारतैं ॥ औ सर्व श्रुतिनविषै[१३७] औ[१३८] अरु नाभिके दृष्टांतकरि "सत्यकरि छन्न (ढांप्या) प्राण वा अमृत है ॥" ऐसैं प्राणतैं बाह्य अन्य भोक्ताके अनंगीकारतैं ॥ औ "यैहैं[१३९] (प्राण)हीं सर्व देव हैं । औ कौंन एक देव है ? प्राण है ॥ इस रीतिसैं सर्व देवनकी प्राणविषैहीं एकताके उपपादनतैं ॥ तैसैं[१४०] करणोंके भेदनविषै अदेवताके भेदोंकीन्यांईं भोक्तापनैकी अनाशंका है । देहके[१४१] हस्त-

---

१३७ प्राणविषै देवताभेदकी एकतामैं युक्तिकूं कहैहैं ॥ इहां अन्य देवताका भोक्तापना नहीं है । काहेतैं गार्ग्यकूं स्वपक्षके विरोधतैं । यह शेष है ॥

१३८ " सर्व श्रुतिनविषै " ऐसैं कहा । तिन श्रुतिनकूं संक्षेपतैं दिखावै हैं ॥

१३९ "हे याज्ञवल्क्य ! कितने देव हैं" इत्यादि वाक्यसैं संक्षेप अरु विस्तारकरि सर्व देवनकी प्राणात्माविषैहीं एकता उपपादन करियेहै । यातैं देवताका भेद नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहांः—प्राणतैं पृथक् भूत देवके आत्मातैं अतिरेक (भिन्नता)के हुये असद्भावकी प्राप्तितैं । सर्व देवताके भेदका प्राणविषै अंतर्भाव है । ऐसैं कहनेकूं "च" शब्द है ॥

१४० करणोंकी अभोक्तृताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

१४१ तहां अन्य उदाहरणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं हस्तआदिकविषै प्रत्येकका भोक्तापना नहीं अंगीकार क-

पादादि भेदनविषे जैसें है तैसें । काहेतें स्मृति ज्ञान अरु इच्छा आदिक वृत्तिनके प्रतिसंधान (अनुसंधान)के असंभवतें ॥ [142]जौतें अन्यकरि दृष्ट वस्तुकूं अन्य । स्मरता । जानता । इच्छता । वा प्रतिसंधान करता नहीं । तातें करणोंके भेदोंविषे भोक्तापनैकी आशंका युक्त नहीं है । [143]वौ विज्ञानमात्रकूं विषयकरनेवाली भोक्तापनैकी आशंका कदाचितूबी नहीं संभवे है ॥ ॥ [144]ननु संघात (भूतचतुष्टयका समुदायरूप स्थूलदेह)हीं भोक्ता

रियेहै । तातें श्रोत्र अरु नेत्रादिकविषैबी भोक्तापनैकी आशंका युक्त नहीं है । काहेतें तिनविषै स्मृतिरूप ज्ञानकी इच्छाके औ " जो मैं रूपकूं देखता भया । सो मैं शब्दकूं सुनताहूं " इत्यादि प्रतिसंधानके अयोगतें ॥

१४२ अनुपपत्ति (अयोग)कूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

१४३ निराश्रय (निरधिष्ठान) क्षणिक विज्ञानके भोक्तापनैकी आशंकाबी प्रतिसंधानके असंभवतैंहीं निषेधकरी । ऐसें कहैहैं ॥

१४४ प्राणादिकनके अनात्मभावकूं कहिके । स्थूलदेहके तिस (अनात्मभाव)के कहनेकूं प्रतिवादी पूर्व पक्ष करैहै ॥ इहां संघात कहिये भूत चतुष्टयका समाहार (समुदाय)रूप स्थूलदेह । औ " मैं गौर हूं । देखताहूं " इत्यादि प्रत्यक्षकरि ता (स्थूलदेह)के आत्मभावके दर्शनतें । यह भाव है ॥

होहू । [१४५]व्यतिरिक्त (संघातसैं भिन्न भोक्ता)की कल्पनासैं क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो [१४६]बनै नहीं:—काहेतैं आपेषण (मरोडने)के हुये विशेषके दर्शनतैं ॥ [१४७]जैव प्राण अरु शरीरका संघातमात्र भोक्ता होवै । तब संघातमात्रके अविशेषतैं सदा पिष्ट औ अपिष्ट पुरुषके प्रतिबोध (जागरण)के विषै विशेष नहीं होवैगा औ फेर[१४८] संघाततैं व्यतिरिक्त भोक्ताके

---

१४५ प्रमाणके अभावतैं स्थूलदेहतैं अतिरिक्त आत्माकी कल्पना युक्त नहीं है । ऐसैं प्रतिवादी कहैहै ॥

१४६ संघातकी आत्मताकूं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

१४७ विशेष दर्शनकूं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥

१४८ हे सिद्धांती ! तुह्मारे पक्षविषैंबी हस्तके पेषण अरु अपेषणके हुये उत्थानविषै कैसैं विशेष होवै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ता (व्यतिरिक्त भोक्ता)के संघातके साथि संबंधविशेष जे:—स्वकर्मोंकरि आरंभ करनेकी योग्यता । आत्मता । आत्मीयता (स्वकीयत्व) अरु स्वप्राणोंकी परिपालन करनेकी योग्यता आदिक हैं । तिन (संबंध विशेषन)की अनेकतातैं हस्तके पेषण अरु अपेषणविषै इंद्रियनके उद्भव अरु अभिभव (तिरोभाव)करि कृत वेदनाकी स्पष्टता अरु अस्पष्टतास्वरूप विशेष युक्त है औ उत्तम मध्यम अरु अधम कर्मोंके फलरूप सुख दुःख अरु मोहके कर्मोंके उद्भव अरु अभिभवकृत विशेष (भेद)के संभवतैं उक्त प्रकारका विशेष संभवै है ॥

हुये ताके संघातके साथि संबंधविशेषकरि अनेकतातैं पेषण अरु अपेषणकृत वेदनातैं सुख दुःख मोह अरु मध्यम अधम उत्तम कर्मफलके भेदके संभवतैं विशेष (विलक्षणता) युक्त है। [१४९] परंतु संघातमात्रविषै संबंधकरि कर्मफलभेदके असंभवतैं विशेष युक्त नहीं है॥ औ [१५०] तैसें शब्द स्पर्शादिकनकी पटुता अरु मंदताआदिकका किया जो विशेष है। सो संघातवादविषै अयुक्त है॥ [१५१] औ यह विशेष है। जातैं स्पर्शमात्रकरि अ-

---

१४९ ननु परपक्ष (संघातमात्र भोक्ता) विषैबी तैसाहीं विशेष होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं तहां (संघातमात्रविषै) स्वकर्मौंकरि आरंभ करनेकी योग्यताआदिक संबंधविशेष वा कर्मफलका भेद नहीं घटता है। काहेतैं संघातवादीकरि अतींद्रिय (संस्काररूप) कर्मौंके अनंगीकारतैं। यातैं संघातमात्र भोक्ताके हुये प्रतिबोध (जागरण) विषै विशेषकी असिद्धि है॥

१५० शब्द अरु स्पर्श आदिकनकी पटुता। अतिपटुता। मांद्य। अतिमांद्य। इत्यादिककरि किया विशेष। बोधविषै देखीये है। सोबी संघातवादविषै नहीं सिद्ध होवै है। इस आशयकरि कहैहैं॥ इहां चकार जो है। सो विशेषशब्दके अनुकर्ष (पीछेसैं ग्रहण) अर्थ है॥

१५१ ननु तब प्रतिबोधविषै विशेष मति होहु? यह आशंका करिके कहैहैं॥

प्रतिबुद्ध्यमान (नहीं जागे) सुप्तपुरुषकूं अजात-शत्रु हस्तसैं मरोडीके मरोडीके जगावताभया। [१५२] तातैं जो मरोडनेकरि स्फुरत् होतेकीन्यांईं कहींतैंबी आये हुयेकीन्यांईं औ पूर्व विपरीत पिंडकूं बोध चेष्टा आकारविशेष आदिक (गुणा-दिक)वान्ताकरि आपादान करताहुया जागता भया। सो संघाततैं अन्य औ गार्ग्य अभिमत ब्रह्मोंतैं व्यतिरिक्त है। यह सिद्ध भया ॥ [१५३] औ प्राणकूं संहत (संघातरूप) होनेतैं ताकी परा-र्थताका संभव है ॥ [१५४] गृहके स्तंभआदिककीन्यांईं शरीरके भीतर उपष्टंभक (आश्रय) जो प्राण। सो शरीर आदिकके साथि संहत (मिलित)है। ऐसैं हम कहतेहैं ! [१५५] औ अर अरु नेमिकी-

---

१५२ विशेष दर्शनके फलकूं कहैहैं ॥ इहां आदिशब्दकरि गुणआदिक ग्रहण करिये हैं ॥

१५३ देहादिककी अनात्मताकूं कहिके । प्राणकी अना-त्मताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥

१५४ हेतुकूं साधते हैं ॥

१५५ जैसैं रथचक्रकी नेमि (परिधि) औ अर (चक्रगत काष्ठविशेष) परस्पर मिलित होवै हैं । तैसैंहीं प्राणकी सं-हति (मिलौनी) है । ऐसैं कहैहैं ॥

न्यांई नाभि[१५६]स्थानीय इस प्राणविषै सर्व अर्पित-
है। ऐसैं सुनियेहै । [१५७]तातैं ग्रहादिकनकी न्यांई
अवयवनके समुदायके जातिवालेतैं व्यतिरिक्त
(आत्मा)के अर्थ मिलित होवैहै । इस प्रका-
रसैं हम जानते हैं ॥ [१५८]स्तंभ भित्ति तृण काष्ठआ-

१५६ किंवाः—"रथचक्रकी नाभिस्थानीय प्राणविषै सर्व समर्पित है" ऐसैं सुनिये है । तातैं ता (प्राण)का संहतपना (मिलितपना) युक्त है । ऐसैं कहैहैं ॥

१५७ प्राणके संहतपनेके फलकूं कहैहैं ॥

१५८ ननु प्राणकी ग्रहादिककी न्यांई परार्थताके हुयेबी संहतकी शेषिता अंगीकार करनेकूं योग्य है । काहेतैं ग्रहा-दिकनकूं तैसैं देखनेतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहांः— स्वरूपकरि स्तंभआदिकनके जन्म । वृद्धि । न्हास । विनाश । नाम । आकृति । औ कार्य । ये धर्म हैं । तिनकी निरपे-क्षताकरि प्राप्त करी है सत्ता अरु स्फुरण जिसनैं । सो तिन स्तंभादिक विषयनविषै द्रष्टा औ श्रोता औ मंता औ विज्ञाता है । तिनकी औ तिनके संघातकी तदर्थता (द्रष्टाके अर्थ हो-नैपना) देखिके प्राणादिकनकीबी तिस प्रकारता (तदर्थता) होनेकूं योग्य है । ऐसैं हम मानते हैं । इसरीतिसैं संबंध है ॥ औ प्राणआदिक जो है सो । स्वातिरिक्त (अपनेसैं भिन्न) द्रष्टाका शेष (उपकारक) है । संहत होनेतैं । ग्रहादिककी न्यांई । इस अनुमानतैं सत्ताविषै औ तिनकी प्रतीतिविषै प्राणादिककी विक्रियाकी निरपेक्षताकरि सिद्ध द्रष्टा । निर्वि-कार युक्त है । ताकी विकारवान्‌ताविषै हेतुके अभावतैं । यह भाव है ॥

दिक गृहके अवयवनके औ तिनके संघात (गृह) के स्वात्मा (स्वरूप)करि जन्म वृद्धि अपक्षय विनाश नाम आकृति अरु कार्यरूप जे धर्म हैं। तिनकी निरपेक्षतासैं लब्ध (प्राप्त किये)हैं सत्ता स्फुरण जिसनैं औ तिन स्तंभादि विषयनविषै द्रष्टा औ श्रोता औ मंता औ विज्ञाता है। तिसकी अर्थता तिन (स्तंभादिकन)की औ तिनके संघातकी देखीके। तैसैं प्राणादिक अवयवकी औ तिनके संघातकीबी तिनके स्वात्माकरि जन्म वृद्धि अपक्षय विनाश नाम आकृति अरु कार्यरूप धर्मोंकी निरपेक्षतासैं प्राप्त सत्ता स्फुरणवाले औ तिन (प्राणादिक) विषयनविषै द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाताकी अर्थता होनेकूं योग्य है। ऐसैं हम मानते हैं ॥ ॥ [१५९] ननु देवता होनेकरि चेतनावान्‌ताके हुये सम होनेतें गुणभाव (शेषभाव)का अनुपगम है? ऐसैं जो कहै। कहिये [१६०] प्राणकी विशिष्ट नामोंकरि आमंत्रणके दे-

---

१५९ ननु प्राणदेवताकी परार्थताका अनुमान अन्य व्याप्तिसैं विरुद्ध है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

१६० ननु प्राणदेवताकी चेतनताहीं कैसैं अंगीकार करी है? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥

खनेतैं चेतनावान्पना अंगीकार किया है [१६१]औ चेतनावान्ताके हुये सम होनेतैं परार्थताकी प्राप्ति अघटित है? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै [१६२]नहीं:—काहेतैं निरुपाधिक केवलकूं जनावनेकूं इच्छित होनेतैं। [१६३]जौतैं आत्माकूं क्रिया कारक अरु फलस्वरूपता जो है सो नाम रूप उपाधिसैं जनित है औ अविद्याकरि आरोपित है। तिस निमित्तवाला जो लोककूं क्रिया कारक अरु फलका अभिमानरूप संसार है। सो निरुपाधिक आत्मस्वरूपकी विद्याकरि निवर्त्त करनेकूं योग्य है। यातैं तिस स्वरूपके जनावनेकी इच्छाकरि उपनिषद्का आरंभ है ॥ "[१६४]ब्रह्म तेरेतांई कहता

---

१६१ तथापि प्रकृत अनुमानविषै अन्य व्याप्तिसैं विरोध कैसैं है? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—जो जिसकरि सम है। सो तिसका शेष नहीं होवै है। जैसैं दीपांतरकरि तुल्य दीपक तिसका शेष नहीं होवै है। इस व्याप्तिसैं विरोध होवैगा ॥

१६२ यह विरोध समाधान करनेकूं योग्य नहीं है। काहेतैं शेषशेषिभावकूं इहां अप्रतिपाद्य होनेतैं। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१६३ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

१६४ उपनिषद्का आरंभ निरुपाधिक स्वरूपकूं जनावने वास्ते है। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

हूं । औ इतनेकरि विदित नहीं होवैहै" ॥ ऐसैं उपक्रमकरिके । औ "अरे ! इतना निश्चयकरि अमृतपना है" ऐसैं उपसंहारतैं [१६५]औ इस (निरुपाधिक ब्रह्म)तैं अन्य (सोपाधिक ब्रह्म) अंतराल (मध्य)विषै कहनेकूं वांछित वा उक्त नहीं है । [१६६]तातैं "सम होनेतैं गुणभाव (शेषभाव)का अनुपगम (प्राप्तिका अभाव)है" इस प्रश्नका अनवसर है ॥ [१६७]जातैं विशेषवाले सोपाधिक वस्तुका संव्यवहारअर्थ गुणगुणीभाव है । विपरीत (निरुपाधिक)का नहीं ।

---

१६५ "दो प्रसिद्ध ब्रह्मके रूप हैं । मूर्त्त अरु अमूर्त्त" इत्यादि देखनेतैं । इस उपनिषद्विषै सोपाधिक ब्रह्मबी कहनेकूं वांछित है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—द्वित्ववादकूं कल्पित विषयवाला होनेतैं " नेति (नहीं ऐसैं) " निर्विशेष वस्तुके समर्पणतैं औ " यातैं अन्य आर्त्त है " इसरीतिकी उक्तितैं । इहां निरुपाधिकहीं ब्रह्म प्रतिपादन करनेकूं योग्य है ॥

१६६ शेषशेषिभावकी प्रतिपादन करनेकी अयोग्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

१६७ ननु तब शेषशेषिभाव तहां तहां किस अर्थ कहा है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सोपाधिक वस्तुका शेषशेषिभाव कहनेकूं वांछित है औ तहां तहां स्वामी अरु भृत्यके न्यायकरि विशेष (विलक्षणता)के संभवतैं तिन दोनूंकी समता असिद्ध है ॥

[168]जातैं निरुपाख्य (शेषशेषिभाव आदिक सकल विशेष शून्य) परमात्मा । सर्व (सारी) उपनिषद्विषै जनावनेकूं वांछित है । "सो यह नेति नेति" ऐसैं उपसंहारतैं । तातैं [169]इनै अविज्ञानमय आदित्यादि ब्रह्मोंतैं विलक्षण अन्य विज्ञानमय है । यह सिद्ध भया ॥ ॥ [170]सो यह अजातशत्रु ऐसैं संघाततैं व्यतिरिक्त आत्माके सद्भावकूं प्रतिपादन करिके गार्ग्य (बालाकि)कूं कहताभयाः—जिस कालविषै यह (विज्ञानमय पुरुष) [171]हस्तके मरोडनेकरि प्रतिबोध (जागरण)तैं पूर्व यह शयन जैसैं होवै तैसैं सुप्त होताभया । जो यह विज्ञानमय

---

१६८ औ तिसतैं विपरीत निरुपाधिक वस्तुका शेषशेषिभाव नहीं है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां निरुपाख्य शब्दका शेषशेषिभावआदिक संपूर्ण विशेषकरि शून्य । यह अर्थ है ॥

१६९ अब हस्तके मरोडनेके वाक्यके अर्थकूं संक्षेप करिके उपसंहार करै हैं ॥

१७० वृत्तकूं अनुवाद करिके अनंतरके ग्रंथकूं अवतरण देके व्याख्यान करै हैं ॥

१७१ " जहां (जिसकालविषै) " ऐसैं कथन किये कालकूं विशेषण देते हैं ॥

पुरुष है। यह तब कहांथा। ऐसें संबंध है ॥ जिसं[१७२]करि जानियेहै ऐसा जो अंतःकरण (बुद्धि)। सो विज्ञान कहियेहै। तिसमय (तिसप्राय) विज्ञानमय है ॥ ॥ ननु[१७३] फेर तिस प्रायपना (बुद्धिरूप विज्ञानका बहुलपना) क्या है? तहां कहियेहैः—तिसविषै[१७४] उपलभ्यपना (ज्ञानकी विषयतारूप) औ तिसकरि उपलभ्यपना औ[१७५] उपलब्धा (ज्ञाता)पना है ॥ ॥ ननु[१७६] फेर विज्ञानमय शब्दविषै जो "मयट्" प्रत्यय है तिसकूं

---

१७२ "विज्ञानमय" इस ठिकाने विज्ञान जो परब्रह्म। ताका विकार जीव है। तिस हेतुकरि विकाररूप अर्थविषै "मयट्" प्रत्यय है। ऐसें केईक कहते हैं। ताकूं निराकरण करते हैं ॥

१७३ ननु आत्माकूं अंतःकरणप्रायता (अंतःकरणकी बहुलता) नहीं कल्पना करियेहै। काहेतैं असंगरूप तिस (आत्मा)के तिस (अंतःकरण)के साथि असंबंधतैं? इसप्रकार प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥

१७४ असंगकेबी आविद्यक (अविद्या कल्पित) बुद्धि आदिकसैं संबंधकूं अंगीकार करिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

१७५ तिस (अंतःकरण) का साक्षी होनेतैंबी आत्माकूं तिस प्रायता है। ऐसैं कहैं[illegible]।

१७६ नियामकके अभ[illegible]कूं शंका करिके। सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

अनेक अर्थवान्‌ताके हुये प्रायरूप अर्थवान्‌ताहीं कैसैं निश्चय करियेहै? तहां कहियेहैः—"सो प्रसिद्ध यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय है। मनोमय है" इत्यादि प्रायरूप अर्थविषैहीं प्रयोगके देखनेतैं औ [177]परब्रह्मरूप विज्ञानकी विकारताकूं अप्रसिद्ध होनेतैं [178]औ "जो यह विज्ञानमय है" ऐसैं प्रसिद्धकीन्यांई अनुवादतैं औ [179]अवयव अरु

---

१७७ "पृथिवीमय" इत्यादिरूप एकहीं वाक्यविषै प्रायरूप अर्थताके उपलंभ (प्रतीति)तैं "विज्ञानमय" इस वाक्यविषैबी "मयट्" प्रत्ययका सोई अर्थ निश्चित है। ऐसैं कहा। अब परमात्मारूप विज्ञानके विकार जीवकूं श्रुति स्मृतिविषै अप्रसिद्ध होनेतैंबी प्रायरूप अर्थवान्‌ताहीं है। ऐसैं कहेहैं ॥

१७८ ननु अप्रसिद्धबी विज्ञानकी विकारता श्रुतिके वशतैं अंगीकार करी चाहीये? यह आशंका करिके कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—"जो यह विज्ञानमय है" इस वाक्यविषै विज्ञानमयके "यह" ऐसैं प्रसिद्धकी न्यांई अनुवादतैं अप्रसिद्ध विज्ञानकी विकारता सर्वनामश्रुतिनसैं विरुद्ध है ॥

१७९ ननु जीव ब्रह्मका अवयव है वा तिसके सदृश है। तिस अर्थवाला "मयट्" प्रत्यय होवैगा? यह आशंका करिके कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ब्रह्मके निरवयवताकी श्रुतितैं औ ताहीके जीवरूपसैं प्रवेशके श्रवणतैं प्रकृत वाक्यविषै "मयट्" प्रत्ययके अवयवआदिक अर्थके अयोगतैं। औ उक्त प्रत्ययकी निर्विषयता (निरर्थकता)के असंभवतैं प-

उपमारूप दोनूं अर्थनके इहां असंभवतैं परिशेषतैं प्रायरूप अर्थवान्ताहीं है । [१८०] तातैं संकल्पविकल्पादि स्वरूप जो अंतःकरण है । तिसमय (तिसकी बहुलतावाला) विज्ञानमय है । यह अर्थ है ॥ औ सो शरीररूप पुरीविषै शयन (निवास) करनेतैं पुरुष है ॥ [१८१] यह तब (सुषुप्तिकालविषै) कहांथा? यह प्रश्न है ॥ स्वभाव (स्वरूप)के जनावनेकी इच्छाकरि [१८२] प्रतिबोध (जागरण)तैं पूर्व क्रिया कारक औ फलतैं विपरीत स्वभाववाला आत्माथा । ऐसैं कार्यके अभावकरि दिखावनेकूं इच्छित है ॥ [१८३] जातैं प्रतिबोधतैं पूर्व कर्मआदिकका कार्य सुखादिक कछुबी नहीं ग्रहण करियेहै । तातैं कहिये [१८४] कर्मकरि अप्रयुक्त

रिशेषतैं ता (मयट् प्रत्यय)की प्रायरूप अर्थताहीं माननेकूं योग्य है ॥

१८० विज्ञानमय पदके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

१८१ "यत्र (जहां)" इत्यादिवाक्यकूं व्याख्यान करिके । अब वाक्यशेषकूं प्रगट करिके ताके तात्पर्यकूं कहेहैं ॥

१८२ स्वरूपके जनावने अर्थ प्रश्नकी प्रवृत्ति है । यह प्रकट करै हैं ॥

१८३ "कार्यके अभावकरि" ऐसैं कहे अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१८४ "तातैं" इस पदके अर्थकूं कहेहैं ॥

(अप्रेरित) होनेतैं [कार्यके अभावकरि दिखावनेकूं इच्छित] ॥ तैसा आत्माका स्वभावहीं निश्चय करियेहै । जिसे[१८५] स्वभावविषै होताभया (सुषुप्तिकालविषै था) औ[१८६] जिस स्वभावतैं प्रच्युत (प्रचलित) हुया संसारी स्वभाव (स्वरूप)तैं विलक्षण होवैहै । ईसे[१८७] अर्थके कहनेकी इच्छाकरि बुद्धि[१८८] (ज्ञान)के विशेषकरि उत्पादन अर्थ प्रतिभानरहित गार्ग्यकेप्रति अजातशत्रु "यह तब कहां था। औ कहांतैं यह (आगमन) जैसें होवै तैसें आवताभया ? ऐसें पूछताहै॥ ॥ यद्यपि यह[१८९] प्रश्नका युगल गार्ग्यकरिहीं पूछनेकूं

१८५ क्या तिस प्रकारका स्वभाव है ? तहां कहैहैं ॥

१८६ मूल श्रुतिगत द्वितीय प्रश्नके अर्थकूं प्रक्षेप करै हैं (भीतर डालते है) ॥

१८७ उक्त अर्थविषै दो प्रश्नोंकूं उत्थापन करै हैं ॥ इहां तैसा स्वभावहीं है । ऐसैं संबंध है ॥

१८८ " एतत् (यह) " ऐसें अधिकरण अरु अपादान ग्रहण करिये है । यातैं ता (गार्ग्य)के प्रति उभय क्यूं पूछता है ? तहां अपनी प्रतिज्ञाकूं निर्वाह करनेवास्ते अजातशत्रु पूछता है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

१८९ ननु शिष्य होनेतैं गार्ग्यकरिहीं पूछनेकूं योग्य है । सो जब अज्ञ होनेतैं नहीं पूछता है । तब राजाकूं तिसविषै उदासीन होनाहीं युक्त है ? तहां कहैहैं ॥

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तो-ऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्रा-

अर्थः—सो अजातशत्रु कहताभयाः—जिस (काल)विषै यह (पुरुष) यह (शयन) जैसें होवै तैसें सुप्त होताभया । जो यह विज्ञानमय पुरुष है । तब (तिस कालविषै)

योग्य था? तथापि गार्ग्यनें पूछया नहीं । यह जानिके अजातशत्रु उदासीन होता नहीं किंतु बोधन करनेकूं योग्यहीं है ऐसें प्रवर्त्त होवैहै । काहेतें:—"बोधन करूंगाहीं" ऐसें प्रतिज्ञात होनेतें ॥ ॥ [१९०] इसप्रकार बोधन कियाबी यह गार्ग्य प्रतिबोधतें पूर्व जहां यह आत्मा था औ जहांतें यह आगमन (आवताभया) है। तिन दोनूंकूं कहनेकूं वा पूछनेकूं नहीं जानताभया । मैं गार्ग्य नहीं जानताहूं ॥ १६ ॥

टीकाः—सो अजातशत्रु कहनेकूं वांछित

---

१९० "तदुह (तिस दोकूं)" इत्यादि वाक्यके भागकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां यह आगमन जैसें होवै तैसें । यह अर्थ है । औ तहां श्रुतिगत दोनूं क्रियापदोंका क्रमतें कहनेकूं वा पूछनेकूं इन दोनूं पदोंके साथि संबंध है ॥

णानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषो-ऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते । ता-

इन (वाक्आदिक) प्राणोंके विज्ञानकरि विज्ञानकूं लेके। जो यह हृदयके मध्य आ-काश है। तिसविषै सोवताहै ॥ तिन (वा-

अर्थके समर्पणअर्थ कहताभयाः—" जहां[१९१] यह (पुरुष) यह (शयन) जैसें होवै तैसें सुप्त होता-भया। जो यह विज्ञानमय पुरुष है। यह तब कहां था। कहांतें यह (आगमन) जैसें होवै तैसें आवता भया? इस प्रकार जो हम पूछते भये। सो हमोंकरि कथन करीता है तूं श्रवण कर! जहां यह (पुरुष) यह (शयन) जैसें होवै तैसें

१९१ कूटस्थ चिदेकरस यह आत्मा है। तिसविषै क्रिया कारक अरु फलका व्यवहार वस्तुतैं नहीं है। यह विवक्षित अर्थ है। ताके प्रकट करने अर्थ प्रस्तुत दो प्रश्नोंकूं अनुवाद करै हैं॥ इहां उपाधि जो अंतःकरण। ताका स्वभाव कहिये तिसका उपादान अज्ञान। तिसकरि जनित जो अंतःकरण-गत अभिव्यक्त चैतन्यका आभासरूप विशेष विज्ञान। तिस करणकरि। यह अर्थ है॥ औ वाक्आदिकनका अपने अपने विषयगत प्रतिनियत प्रकाश करनेरूप विज्ञानका सामर्थ्य है॥ ताकूं। यह अर्थ है॥

नि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति नाम ॥ तद्गृहीत एव प्राणो भवति । गृ-

---

क्‌आदिक विज्ञानों)कूं जब ग्रहण करताहै तबहीं पुरुष "सोवताहै" यह नाम होवेहै ॥ तहां सुषुप्तिकालविषे गृहीतहीं प्राण(घ्राण)

सुप्त होताभया । तब (तिस कालविषे) इन वाक्‌आदिक प्राणोंके अंतःकरणगत अभिव्यक्त विशेष विज्ञानकरि (उपाधिके स्वभावसें ज-नित विज्ञानकरि) वाक्‌आदिकनके स्वस्वविषय-गत सामर्थ्यवाले विज्ञानकूं ग्रहण करिके जो यह हृदयके मध्य[१९२] (हृदयविषे स्थित) आका-श है । जो आकाशशब्दकरि[१९३] परमात्मारूपहीं स्व आत्मा कहियेहै । तिस स्वाभाविक असांसा-रिक स्व आत्मारूप आकाशविषे शयन कर-

---

१९२ "जो यह भीतर" इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

१९३ आकाशशब्दकी भूताकाशरूप विषयवान्‌ताकूं आ-शंका करिके "अन्य अर्थवान्‌ता आदिकके व्यपदेशतैं आकाश है" इस न्यायकरि कहैहैं ॥

हीता वाग् गृहीतश्चक्षुर्गृहीतꣳ श्रोत्रं गृ-
हीतं मनः ॥ १७ ॥

होवैहै । गृहीत वाक् । गृहीत चक्षु । गृहीत
श्रोत्र ॥ गृहीत मन [होवैहै] ॥ १७ ॥

ताहै (रहताहै) केवल आकाशविषैहीं नहीं ।
काहेतें अन्य[१९४] (छांदोग्य) श्रुतिके सामर्थ्यतें ॥ "हे
सोम्य (प्रियदर्शन) ! तब सुषुप्तिकालविषै सत्
(ब्रह्म)के साथि संपन्न (एकताकूं प्राप्त) होवैहै"
इसरीतिसैं लिंगशरीररूप[१९५] उपाधिके संबंधके किये
विशेष आत्मस्वरूपकूं छोडिके अविशेष केवल
स्वाभाविक आत्माविषैहीं वर्त्तताहै । यह अ-
भिप्राय है ॥ ॥ ननु[१९६] जब शरीर अरु इंद्रियन-

१९४ सत्‌रूप ब्रह्मविषैहीं सुषुप्त पुरुषका शयन है । भूताकाशविषै तो नहीं होवै है । इस अर्थविषै छांदोग्यकी श्रुतिकूं कहैहैं ॥

१९५ इहां कैसा शयन विवक्षित है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां निद्राके अधिकारविषै स्वाभाविकपना जो है सो अविद्यामात्रकरि मिश्रितपना है । काहेतैं " संततिकूं संपादन करिके नहीं जानते हैं " इत्यादि श्रुतितैं ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

१९६ " तिनकूं जब " इत्यादि वाक्यकूं आकांक्षापूर्वक ग्रहण करै हैं ॥ इहांः—विज्ञान पदका तिस (विज्ञान)के

की अध्यक्षता (स्वामिता)कूं छोडताहै । तब यह (पुरुष) स्वात्माविषै वर्त्तताहै । इस नामकी प्रसिद्धि कैसी निश्चय करियेहै? यह कहै हैंः— तिन वाक्आदिक विज्ञानों (विज्ञानके साधनों) कूं जब (जिस कालविषै) ग्रहण करता है । तब यह पुरुष (इस पुरुषका) "सोवताहै" यह नाम प्रसिद्ध होवैहै । याका गौण[१९७]हीं नाम होवैहै । सो स्व[१९८]आत्माकूंहीं अपीति (अपिगच्छति) कहिये प्राप्त होवैहै । यातैं "स्वपिति (सोवता है)" ऐसैं कहियेहै ॥ सत्य[१९९] "स्वपिति" इस नामकी प्रसिद्धिकरि आत्माका संसार धर्मोंतैं विलक्षणरूप निश्चय करियेहै ॥ ॥ ननु इहां युक्ति नहीं है? यह आशंकाकरिके कहै हैंः—तिस

साधन । यह अर्थ है औ "पुरुष" यह जो प्रथमाविभक्ति है । सो षष्ठीविभक्तिरूप अर्थवाली है । यातैं आगे कहैंगे "इस पुरुषका" ऐसैं ॥

१९७ अश्वकर्ण आदिक नामतैं विशेषकूं कहैहैं ॥

१९८ गौणताकूं व्युत्पादन करै हैं ॥

१९९ नामके अर्थके व्यभिचारकूंबी देख्या होनेतैं ताके वशतैं निद्रामैं स्वरूपविषै अवस्थान नहीं होवै है ? या शंकाकूं अनुवाद करिके "तिसकरि ग्रहीतहीं" इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥

सुषुप्तिकालविषै गृहीत (ग्रहणकिया)हीं प्राण होवैहै ॥ इहां "प्राण" इस शब्दकरि घ्राणेंद्रिय कहियेहै । वाँक्[200] आदिक इंद्रियनके प्रकरणतैं ॥ जातैं वाक् आदिकके साथि संबंधके होते तिस उपाधिवाला होनेतैं इस (आत्मा)कूं संसारका धर्मी (आश्रय)पना देखीयेहै औ तब (सुषुप्ति अवस्थाविषै) तिस (आत्माके चैतन्याभासरूप हेतु)करि वाक्आदिक उपसंहारकूं प्राप्तहीं होवै हैं ॥ कैसैं[201] किः—गृहीता वाक् गृहीत चक्षु। गृहीत श्रोत्र। औ गृहीत मन होवैहै ॥ तातैं[202] वाक् आदिकनके उपसंहारकूं प्राप्त हुये क्रिया कारक अरु फल स्वरूपताके अभावतैं स्वात्मस्थ (स्वस्वरूपविषै स्थित)हीं आत्मा होवैहै । ऐसैं निश्चय करियेहै ॥ १७ ॥

---

२०० ननु फेर आत्माका सुषुप्ति अवस्थाविषै असंसारी स्वरूपमैं अवस्थान है । इस अर्थविषै कौंन युक्ति इहां कथनकरी होवै है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तब सुषुप्ति अवस्थाविषै तिस आत्माके चैतन्याभासरूप हेतुकरि ॥

२०१ सुषुप्तिविषै करणोंके उपसंहारकूं विवरण करै हैं ॥

२०२ तिस उपसंहारके फलकूं कथन करै हैं ॥

स यत्रैतत्स्वप्न्यया चरति । ते हास्य लोकास्तदुतेव महाराजो भवत्युत्येव म-

अर्थः—सो जब (जिसकालविषै) स्वप्न-वृत्तिकरि वर्त्तताहै [तब] वे प्रसिद्ध याके लोक (कर्मफल) हैं ॥ तहांबी महाराजकी

टीकाः—[२०३] नंनु दर्शन (प्रतीति)रूप स्वप्न अवस्थाविषै कार्य अरु करणोंके वियोगके हुयेबी इस (आत्मा)कूं संसारका धर्मीपना देखीये है। जैसें जागरितविषै सुखी दुःखी अरु बंधुनसैं वियुक्त हुया शोककूं करताहै अरु मोहकूं पावताहै ॥ [२०४] तातैं शोक अरु मोहरूप धर्मवालाहीं यह (आत्मा)है। याके शोक मोह आदिक औ सुख दुःख आदिक। कार्य अरु करणोंके संयोगसैं जनित भ्रांतिकरि आरोपित नहीं है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। [२०५] सो बनै

---

२०३ अन्वयव्यतिरेककरि वाक्‌आदिक उपाधिवाला आत्माका संसारीपना कहा। तहां व्यतिरेककी असिद्धिके तांई प्रतिवादी आशंका करै है ॥

२०४ व्यतिरेककी असिद्धिके हुये प्रतिवादी फलितकूं कहैहै ॥

२०५ स्वप्नकूं रज्जुसर्पकी न्यांई मिथ्या होनेकरि वस्तु

हाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति। स
यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे

न्यांई होवैहै। महाब्राह्मणकीन्यांईबी। उच्च
अरु अवच (नीच)कीन्यांई निर्गमन क-
रैहै॥ सो जैसें महाराज। जानपदोंकूं
(स्वदेशविषै होनेवाले भृत्यादिकनकूं) ग्र-

नहीं:—काहेतें मृषा होनेतें॥ [२०६]सो अकृत आत्मा
जिसकालविषै दर्शनरूप स्वप्नकी वृत्तिकरि
आचरताहै (वर्त्तताहै) तिस कालविषै वे
याके लोक कर्मके फल हैं॥॥ कौंन वे लोक
हैं? तहां कहैहैं:—तहांबी महाराजकीन्यांई
होवैहै॥ सो यह महाराजभावकीन्यांई याका
लोक है। जागरितकीन्यांई महाराजभावहीं
नहीं है॥ तैसें महाब्राह्मणकीन्यांईबी। देवता
आदिक उच्चकीन्यांई औ तिर्य्यक् आदिक अ-

धर्मताके अभावतें आत्माकूं संसारीपना नहीं है। इसरीतिसैं
सिद्धांती। उत्तरकूं कहैहैं॥

२०६ ताहीकूं उपपादन करते हुये आदिविषै "सो
जहां" इत्यादि अक्षरोंकूं योजना करै हैं॥

जनपदे यथाकामं परिवर्त्ततैवमेवैष ए-

हण करिके जनपद (देश)विषै यथाकाम (इच्छाके अनुसार) च्यारि ओरतैं वर्त्तता

वच (नीच)कीन्यांई मृषा[२०७] (मिथ्या)हीं गमन करैहै (वर्त्तताहै)॥ महाराज भावआदिक याके लोक हैं काहेतैं इवशब्दके प्रयोगतैं औ जाग्रत्विषै व्यभिचारके दर्शनतैं । तातैं[२०८] स्वप्नविषै बंधुनके वियोगआदिकसैं जनित शोक मोह आदिकसैं संबंधकूं पावताहीं नहीं ॥ ॥ ननु[२०९] जैसें जागरितविषै जाग्रत्कालसैं अव्यभिचारी लोक हैं। ऐसैं स्वप्नविषैबी वे याके महाराजभाव आदिक लोक । स्वप्नकालविषै होनेवाले औ स्वप्नकालसैं अव्यभिचारी आत्मा-

---

२०७ ननु अनंतर इहां स्वप्नका स्वभाव निर्देश करिये है। परंतु ताका मिथ्यापना नहीं कथन करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहांः—स्वप्नविषै देखे महाराजभावआदिकनका जाग्रत्विषै जो अनुवृत्तिकरि रहितपना है । सो व्यभिचार दर्शन है ॥

२०८ स्वप्नके मिथ्यापनैके हुये सिद्धअर्थकूं कहैहैं ॥

२०९ विवादके विषय जे लोक । वे मिथ्या नहीं हैं । तिस कालसैं अव्यभिचारी होनेतैं । जाग्रत्के लोककी न्यांई । इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

तत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्त्तते ॥ १८ ॥

है ॥ ॥ ऐसेंहीं यह (विज्ञानमय) यह (ग्रहण) जैसें होवै तैसें। प्राणोंकूं (इंद्रियनकूं) ग्रहण करिके स्वशरीरविषै यथाकाम च्यारी ओरतें वर्त्तता है ॥ १८ ॥

भूतहीं हैं। परंतु अविद्यासें आरोपित नहीं हैं ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै ॥ ॥ [210]तैहां सिद्धांती शंका करै हैंः—जाग्रत्के कार्य अरु करणोंकी स्वरूपता औ देवताकी स्वरूपता अविद्याकरि आरोपित है। परमार्थरूप नहीं। इस रीतिसें [illegible] विज्ञानमयरूप आत्माके दिखावनेकरि पूर्व दिखाया। [211]सो स्वप्नलोकका दृष्टांतरूप होनेकरि मृत पुरुषकीन्यांई उज्जीवनकूं पावता हुया कैसें प्रादुर्भावकूं पावैगा ॥ ॥

२१० साध्यकी विकलताकूं कहनेवास्ते सिद्धांती पाणिपेष (हाथके मरोडने)के वाक्यकरि उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

२११ जाग्रत्के लोकके मिथ्यापनैके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां प्रादुर्भावविषै जाग्रत्के लोकका जो कर्त्तापना है। सो प्रकरणसैं पठित है। ऐसैं देखनेकूं योग्य है ॥

[२१२] हे सिद्धांती! यह तुह्मारा कथन सत्य है। काहेतैं विज्ञानमयविषै व्यतिरिक्त कार्य करण अरु देवताके स्वरूपताका प्रदर्शन जो है सो अविद्यासैं आरोपित है। शुक्तिकादिविषै रजतभावके दर्शनकीन्यांई। यह व्यतिरिक्त आत्माके अंस्तित्वके प्रदर्शनके न्याय (अन्वय व्यतिरेक नामक युक्ति)करिहीं सिद्ध होवैहै। परंतु तिस (आत्मा)की शुद्धिकी तत्परताकरिहीं न्याय कहा नहीं? [२१३] इस प्रकार प्रतिवादीनैं कहा॥ तहां सिद्धांती कहैहैं:—जाग्रत्के कार्य करण अरु देवता स्वरूपताका दर्शनरूप दृष्टांत असत् हुयाबी फेर उद्भव करिये है। [२१४] जातैं सर्व न्याय

२१२ तहां पूर्ववादी दृष्टांतकूं साधताहै ॥ इहां अन्वय अरु व्यतिरेक नामक न्याय है औ देहद्वयका अरु आत्माका विवेकमात्र पूर्व कहा है॥

२१३ ननु प्रधानताकरि आत्माकी शुद्धि कही है। इस विभागकूं अंगीकार करिके। वस्तुतैं असत् हुयेबीदृष्टांतकूं सत् करिके तिसकरि स्वप्नकी सत्यताकूं आशंका करिके। ताके निराससैं स्वप्नवाक्यकरि आत्यंतिकी शुद्धि कहीये है। तैसैं जाग्रत्कूंबी तिस प्रकारकी मिथ्या होनेतैं आत्मा एकरस शुद्ध होवैगा? इस आशयवान् हुये कहैहैं॥

२१४ पाणिपेषके वाक्यविषै जाग्रत्के मिथ्यापनैकी उक्तिकरि अर्थतैं शुद्धि कही। इहांबी जब सोई कहियेहै तब

किंचित् विशेषकूं अपेक्षा करताहुया पुनरुक्ति-दोषवाला नहीं होवैहै ॥ [215] प्रथम स्वप्नविषै अनुभूत महाराजभावआदिक लोक आत्मभूत नहीं हैं । काहेतें आत्मातें अन्य जाग्रत्के प्रतिबिंबरूप लोकके दर्शनतें ॥ [216] महाराजहीं प्रथम भिन्न सुप्तप्रकृतिवाले हुये पर्यंक (शय्या)विषै सोवता हुया स्वप्नोंकूं देखता हुया उपसंहारकूं प्राप्त करणवाला होवैहै । फेर समीप प्राप्त प्रकृतिवाले महाराजकीन्यांई आत्मा (आप)कूं जागरितकीन्यांई यात्रातें आगतकीन्यांई औ भो-

---

पुनरुक्ति होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—जो कछु सामान्यतें पुनरुक्तिपना है सो सर्वत्र तुल्य है अरु अवांतर भेदतें अपुनरुक्तिपना है । सो प्रकृतविषैबी सम है । काहेतें पूर्व ग्रंथविषै शुद्धिरूप द्वारकूं आर्थिक (अर्थतें सिद्ध) होनेतें । इहां वाचनिक ([illegible] उक्त) होनेतें ॥

२१५ जाग्रत्के दृष्टांतकरि स्वप्नके सत्यताकी शंकाके संभवतें ताका समाधान कहनेकूं योग्य है ? इसरीतिसैं पूर्ववादीके मुखसैं कहिके । अब सिद्धांती समाधानकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विवादके विषय जे लोक । वे द्रष्टा आत्माके धर्म नहीं हैं । ताके दृश्य होनेतें । घटादिककी न्यांई ॥

२१६ किंवा:—स्वप्नदृष्ट पदार्थनकी जाग्रत्दृष्ट पदार्थतें अर्थांतरताकरि दृष्टिकूं मिथ्यापना है । ऐसैं कहैहैं ॥

गोंकूं भोगतेकीन्यांई देखताहै ॥ औ[217] तिस महाराजके पर्यंकविषै शयनतैं द्वितीय (अन्य) प्रकृतिकरि प्राप्त हुया विषय (देश)विषै पर्यटन करता हुया दिनमें लोकविषै प्रसिद्ध नहीं है। जाकूं यह सुप्तपुरुष देखताहै औ[218] उपसंहृत करणवालेकूं रूपादिमान् पदार्थका दर्शन नहीं संभवै है औ[219] देहविषै ताके तुल्य अन्य देहका संभव नहीं है। जातैं[220] देहविषै स्थितकूंहीं स्वप्नका दर्शन होवैहै ॥ ॥ ननु[221] पर्यंकविषै सोया पुरुष मार्गविषै प्रवृत्त भये आपकूं देखताहै? तहां श्रुति शरीरतैं बाहिर[222] स्वप्नोंकूं (स्वप्नके पदार्थनकूं) दे-

---

२१७ ननु तिन (स्वप्नदृष्टपदार्थन)की जाग्रत्विषै दृष्ट पदार्थतैं अर्थांतरता असिद्ध है? यह आशंका करिके कहेहैं ॥

२१८ औ प्रमाण सामग्रीके अभावतैं स्वप्नका मिथ्यापना है। ऐसैं कहेहैं ॥

२१९ औ योग्य देशके अभावतैं ता (स्वप्न)का मिथ्यापना है। ऐसैं कहेहैं ॥

२२० देहतैं बाहिरहीं स्वप्नदर्शनके अंगीकारतैं योग्य देशकी सिद्धि है? यह आशंका करिके कहेहैं ॥

२२१ याहीकूं साधनेकूं प्रतिवादीकी शंकाकूं उठावते हैं ॥

२२२ तहां "सो जैसैं महाराज" इत्यादि वाक्यकूं उत्तररूप होनेकरि प्रगट करिके सिद्धांती व्याख्यान करैहैं ॥

खता नहीं । यह कहैहैंः—सो महाराज जनपद (देश)विषै होनेवाले राजाके उपकरणभूत भृत्यनकूं औ अन्योंकूं ग्रहणकरिके अपने (आपकेहीं) जय आदिककरि संपादन किये देशविषै यथाकाम कहिये याकूं जो जो काम है तिस तिसकूं उल्लंघन न करिके इच्छातें जैसें च्यारी ओरतें वर्त्तताहै । यह अर्थ है ॥ ऐसैंहीं यह विज्ञानमय पुरुष । यह (ग्रहण) जैसें होवै तैसें प्राणोंकूं (इंद्रियनकूं) ग्रहण करिके कहिये जाग्रत्के स्थानोंतें उपसंहार करिके स्व (अपनेहीं) शरीर (देह)विषै बाहिर नहीं । यथाकाम (इच्छाके अनुसार) च्यारी ओरतें वर्त्तताहै [२२३] अर्थ यह जोः—काम कर्मकरि उद्भासित (प्रकाशित) पूर्व अनुभूत वस्तुनके सदृश

इहां यह अर्थ हैः—यथाकाम कहिये तिस तिसकूं न उल्लंघन करिके ॥ औ इहां "एतत् (यह)" ऐसा क्रियापदके ग्रहणका विशेषण है । याकाः—यह ग्रहण जैसैं होवै तैसैं । यह अर्थ है ॥

२२३ परिवर्त्तनकूंहीं वर्णन करै हैं ॥

वासनाओंकूं अनुभव करैहै ॥ [२२४] तातें स्वप्नविषै आत्मभूत होनेकरि मृषा अध्यारोपितहीं लोक अविद्यमान हुयेहीं सत्‌रूप भासते हैं । [२२५] तैसैं जाग्रत्‌विषैबी हैं । ऐसैं प्रतीति करनेकूं योग्य है ॥ [२२६] तातें विशुद्ध औ अक्रिया कारक फलस्वरूप विज्ञानमय है । यह सिद्ध भया। [२२७] जातें जाग्रत्‌विषै द्रष्टाके विषयभूत । क्रिया कारक फलस्वरूप औ कार्यकरणरूप लौकिक (लोक) देखीयेहैं । [२२८] तैसैं स्वप्नविषैबी देखीयेहै। [२२९] तातें दृश्यरूप स्वप्न अरु जागरितके लोकनतें अन्य यह द्रष्टा विज्ञामय वि[२३०]शुद्ध है ॥ १८ ॥

---

२२४ योग्यदेशके अभावके सिद्ध भये सिद्ध अर्थकूं दिखावै हैं ॥

२२५ स्वप्नके मिथ्यापनैके हुये ताकी दृष्टांतताकरि जडताआदिक हेतुसैं जागरितकाबी तैसैपना (मिथ्यापना) निश्चय करनेकूं शक्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

२२६ दोनूंके (जाग्रत् स्वप्नके) मिथ्यापनैके हुये प्रत्यगात्माकी विशुद्धि सिद्ध भयी । ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

२२७ "अक्रियाकारकफलात्मक" इस विशेषणकूं समर्थन करै हैं ॥

२२८ जागरितकूं दृष्टांत करिके दार्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥

२२९ द्रष्टा अरु दृश्यके अभाव हुये फलितकूं कहैहैं ॥

२३० अन्यताके फलकूं कथन करै हैं ॥

अथ यदा सुषुप्तो भवति । यदा न कस्यचन वेद ॥ हिता नाम नाड्यो द्वा-सप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभि-

---

अर्थः—अनंतर जब सुषुप्त (सुषुप्तिकूं प्राप्त) होवैहै । जब (जिस कालविषै) किसीबी वस्तुकूं नहीं जानताहै । हिता नामक बहत्तर हजार नाडीयां हृदयतैं पुरी-

---

टीका:—[२३१] ननु दर्शनवृत्तिरूप स्वप्नविषै वासना-ओंकें समूहकूं दृश्य होनेतैं तिसकी धर्मता नहीं है। यातैं विशुद्धता निश्चयकरी। आत्माका तहां (स्व-प्नविषै) "यथाकाम वर्त्तताहै" इसरीतिसैं कामके वशतैं परिवर्तन कहा। द्रष्टा अरु दृश्यका संबंध औ कामादिकसैं संबंध याका स्वाभाविक है। इसप्रकार अशुद्धताकी शंका करियेहै? [२३२] यातैं ताकी विशुद्धिअर्थ श्रुति कहैहैः—अनंतर जब

---

२३१ वृत्तके अनुवादपूर्वक उत्तरश्रुतिकरि निरास क-रने योग्य शंकाकूं कहैहैं ॥ इहां "तहां" ऐसैं स्वप्नकी उक्ति है औ कामादिकसैं संबंध चकारका अर्थ है ॥

२३२ निवर्त करने योग्य शंकाके सद्भावतैं निवर्त्तक अन्य श्रुतिकूं प्रतिज्ञा करै हैं ॥

प्रतिष्ठन्ते । ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते ॥ स यथा कुमारो वा महाराजो वा

तत् (शरीर) केप्रति च्यारी ओरतैं स्थित होवैहैं । तिन नाडीनकरि प्रत्यवसर्पण (व्यावर्त्तन) करिके पुरीतत् (शरीर) विषै सोवताहै ॥ सो जैसें कुमार वा महाराज

सुषुप्त (सुषुप्तिकूं प्राप्त) होवैहै कहिये जब स्वप्नवृत्तिकरि विचरताहै । तबबी यह विशुद्धहीं है । अनंतर (फेर) जब दर्शनवृत्तिरूप स्वप्नकूं छोडिके जिसैं[233] कालविषै सुष्ठप्रकारसैं सुप्त (स्वाभाविक संप्रसादकूं प्राप्त) होवैहै । तब निरंतर याकी शुद्धि सिद्ध होवैहै ॥ कहिये सलिल (जल) कीन्यांई अन्यके संबंधरूप कलुषताकूं छोडिके स्वस्वभावकरि प्रसन्नताकूं पावताहै ॥ कैब[234] सुषुप्त होवैहै? जब (जिसकालविषै) किसीबी वस्तुकूं वा किसीबी शब्दादिकके संबंधि अन्य

---

२३३ ननु स्वप्नविषैबी शुद्धि कही है । फेर सुषुप्तिके ग्रहणसैं क्या है ॥ इहां जब संप्रसादकूं प्राप्त होवै है । तब निरंतर या (आत्मा) की शुद्धि सिद्ध होवै है । यह शेष है ॥

२३४ तिस एक सुषुप्ति कालकूं प्रश्नपूर्वक प्रगट करै हैं ॥

महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥ १९ ॥

वा महाब्राह्मण आनंदकी अतिघ्नी (अतिशयकरि दुःखकूं हनन करनेहारी अवस्था) कूं पायके सोवताहै ॥ ऐसैंहीं यह (विज्ञानमय) यह (शयन) जैसें होवै तैसें सोवताहै ॥ १९ ॥

वस्तुकूं कछुबी नहीं जानताहै ॥ [२३५] पूर्व तो न्याय्य (अन्य वस्तुका ज्ञान योग्य) है औ सुप्तपुरुषविषे तौ विशेषज्ञानके अभावकूं विवक्षित होनेतैं। [२३६] ऐसें प्रथम विशेष विज्ञानके अभाव हुये सुषुप्त होवैहै। यह कहा ॥ फेर किस क्रमकरि सुषुप्त होवैहै? यह कहियेहैः—हिता नामवाली नाडीआं जो हैं। हितरूप फलकी प्राप्तिविषै निमित्त होनेतैं नाडीआं हिता कहियेहैं ॥ जे हि

---

२३५ विकलपकूं निषेध करै हैं ॥

२३६ वृत्तकूं अनुवाद करिके प्रश्नपूर्वक सुषुप्तिकी गतिके प्रकारकूं दिखावै है ॥

ता इसप्रकारके नामवाली नाडीआं देहके अन्न[237]-रसके विपरिणामभूत (विकाररूप) हैं औ[238] वे नाडीआं बहत्तर हजार (७२०००) हैं कहिये दो सहस्र अधिक सप्तति सहस्र हैं। वे नाडीयें बहत्तर हजार हृदयतैं[239] पुरीततकेतांई च्यारी ओरतैं स्थित होवैहैं ॥ कहिये पुंडरीक (कमल) के आकारवाले मांसके पिंडरूप हृदयतैं हृदयके परिवेष्टनकूं पुरीतत् कहतेहैं। तिसकरि काकयुक्त देवदत्तके गृहतकीन्यांई उपलक्षित शरीर इहां पुरीतत् शब्दकरि अभिप्रेत है । तिस पुरीततके-तांई च्यारीओरतैं स्थित होवैहैं । अर्थ यह जोः—संपूर्ण शरीरकेतांई व्याप्त हुयी अश्वत्थ (पिप्पल)के पर्णकी राजी (रेषा)नकीन्यांई बहि-र्मुख प्रवृत्त होवैहैं ॥ तहां[240] (शरीरविषै)बुद्धि जो

२३७ हितरूप फलकी प्राप्तिविषै निमित्तरूप होनेतैं नाडी-यां हिता कहिये हैं । तिन देहसैं संवंधवाली नाडीओंके अन्वय अरु व्यतिरेककरि अन्नरसविकारताकूं कहैहैं ॥

२३८ तिन (नाडीन)कीहीं मध्यम संख्याकूं कथन करै हैं ॥

२३९ औ तिन हृदयदेशसैं संबंधी नाडीनकी तिस (हृदय)तैं निकसीके देहविषै व्याप्तिकरि बहिर्मुखताकूं कहैहैं ॥

२४० "तिनकरि" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करनेकूं भूमिकाकूं करै हैं ॥

अंतःकरण । ताका हृदयस्थान है । तिस शरीरविषै इतर बाह्यकरण बुद्धिके तंत्र (आधीन) हैं ॥ तिसें[२४१] हेतुकरि बुद्धि जो है सो कर्मके वशतें श्रोत्रादिकनकूं तिन नाडीओंकरि मत्स्यजालकीन्यांई कर्णशष्कुली (कर्णगोलक)आदिक स्थानोंकेतांई प्रसारतीहै औ प्रसारीके अधिष्ठान होयके स्थित होवैहै कहिये जागरितकाल (भोगकाल)विषै अधिष्ठान (आश्रय) होयके स्थित होवैहै ॥ तौ[२४२] (बुद्धि)के तांई विज्ञानमय (जीव) अभिव्यक्त (बुद्धिकरि आविर्भूत) स्वात्मचैतन्यका आभासरूप होनेकरि व्याप्त होवैहै औ तिस (बुद्धि)के संकोच्चन कालविषै पीछे संकोचकूं पावताहै ॥ सो (संकोच) । इस विज्ञानमय (जीव)का स्वाप (निद्रा)है औ जाग्रत्के विक्षेपका अनुभव भोग है। जौतें[२४३] सो जलआदिकके

---

२४१ शरीरविषै करणोंकूं बुद्धितंत्रता (बुद्धिकी आधीनता)के हुये क्या होवै है ? सो कहैहैं ॥

२४२ तथापि जीवकूं क्या आया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२४३ बुद्धिके विकाशकूं अनुभव करता हुया आत्मा जागता है ऐसैं कहिये है औ ता (बुद्धि)के संकोचकूं अनुभव करता हुया सोवता है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

अनुसारी चंद्रआदिकके प्रतिबिंबकीन्यांई बुद्धि-उपाधिके अनुसारी है । [२४४]तातें जाग्रत्कूं विषय करनेवाली तिस बुद्धिके तिन नाडीओंकरि व्यावर्त्तनके पीछे व्यावर्त्तन करिके पुरीतत् (शरीर)विषै स्थित होवैहै । अर्थ यह जोः–[२४५]तैसें लोहपिंडकेतांई अविशेषकरि सम्यक् व्यापिके वर्त्तनेवाले अग्निकीन्यांई शरीरकेप्रति सम्यक् व्यापिके वर्त्तताहै ॥ [२४६]स्वाभाविकहीं स्वात्मा (स्व-स्वरूप) विषै वर्त्तमान हुयाबी कर्मके अनु-गत (अनुसारिणी) बुद्धिके अनुसार वर्त्तनेवाला होनेतें पुरीतत् (शरीर)विषै स्थित होवैहै । ऐसें कहियेहै ॥ [२४७]जातें सुषुप्तिकालविषै शरीरकेसाथि

२४४ बुद्धि अनुसारीताकूं स्मरण करिके "तिनोंकरि" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥

२४५ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहांः— देहकी कर्मताविषै औ आत्माकी कर्तृताविषै उक्त दोनूं दृ-ष्टांत हैं ॥

२४६ ननु हृदयाकाशरूप ब्रह्मविषै विज्ञानात्मा सोवता है। ऐसें कहिके । फेर पुरीतत् (शरीर)विषै शयनकूं कहनेवाले तुमकूं पूर्वापरका विरोध होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं॥

२४७ यह वचन औपचारिक (लक्षणाके बलसैं आरो-पित) है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अवस्था है । ऐसें प्रकृत सुषुप्ति कहिये है ॥

जीवका संबंध नहीं है । औ “तब (सुषुप्तिविषै) हृदयके सर्व शोककूं निश्चयकरि तिरगया होवैहै” ऐसैं यह उपनिषद् आगे कहैगी । [तातैं “शरीरविषै रहताहै” यह वचन औपचारिक है] ॥ ॥ सर्व संसारके दुःखतैंरहित यह (सुषुप्ति) अवस्था है । इस अर्थविषै दृष्टांतः—सो जैसें कुमार (अत्यंत बालक) । वा महाराज (अत्यंतवश्य सेनादि सप्त प्रकृतिवाला) । वा शास्त्रोक्त प्रकारसैं करनेवाला महाब्राह्मण (अत्यंत परिपक्व विद्या अरु विनयकरि संपन्न) । अतिशयकरि दुःखकूं हनन करनेवाली होनेतैं अतिघ्नी । ऐसी जो आनंदकी अहिघ्नी अवस्था (सुखावस्था) ताकूं पायके स्थित होवैहै ॥ औ [२४८] स्वभावविषै स्थित इन कुमारआदिकनकूं निरतिशय (सर्वसैं अधिक) सुख लोकविषै प्रसिद्ध है । [२४९] जातैं विकारकूं प्राप्त भये तिनका दुःखस्वभाव नहीं है ॥ तिस हेतुकरि तिनकी स्वाभा-

---

२४८ उक्त दृष्टांतनविषै विवक्षित अंशकूं दिखावैहैं ॥

२४९ ननु दुःखवी तिनकूं प्रासिद्ध होवै है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

विक जो अवस्था सो इहां दृष्टांतरूपताकरि ग्रहण करियेहै । प्रसिद्ध होनेतें औ तिनेंकी[250] स्वाप (सुषुप्ति)हीं अभिप्रेत नहीं । काहेतें स्वाप (सुषुप्ति)कूं दार्ष्टांतिकरूपताकरि विवक्षित होनेतें औ तिनोंकी औ हमारी सुषुप्तिविषै[251] विशेषके अभावतें ॥ जातें विशेषके होते दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिकका भेद होवैहै। तातें तिन (कुमारादिकन)-की सुषुप्ति दृष्टांत नहीं है ॥ जैसें यह दृष्टांत है। ऐसेंहीं यह विज्ञानमय (जीव) जो है सो यह (शयन) जैसें होवै तैसें सोवताहै ॥ इहां (श्रुतिविषै) "एतत् (यह)" शब्द जो है सो क्रियापदके विशेषण अर्थ है ॥ ऐसें[252] यह (विज्ञानमय) स्वाप (सुषुप्ति)कालविषै स्वाभाविकरूप स्वआत्माविषै सर्व संसारधर्मतें अतीत हुया वर्तताहै ॥ १९ ॥

२५० ननु कुमारआदिकनकी सुषुप्तिकाहीं दृष्टांत क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

२५१ कुमारआदिकनकी सुषुप्तिकूं दृष्टांतपना है औ हमारी सुषुप्तिकूं दार्ष्टांतिकपना है ? इस विभागकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

२५२ "यह तब कहां था" इस प्रश्नके उपपादन किये। उत्तरकूं उपसंहार करै हैं ॥

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मा-

अर्थः—सो जैसें ऊर्णनाभि तंतुकरि उच्च गमन करैहै । जैसें अग्नितें क्षुद्र विस्फुलिंग विविध उच्च गमन करैहैं ॥ ऐसैंहीं

टीकाः—"तब[253] यह कहां था" इस प्रश्नका प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) कहा औ[254] इस प्रश्नके निर्णयकरि विज्ञानमयकी स्वभावतें विशुद्धि औरु[255] असंसारिता कही ॥ अब[256] "कहांतें यह (आगमन) जैसें होवै तैसें आवताभया" इस प्रश्नके अपाकरण (दूरीकरण) अर्थ उत्तरग्रंथका आरंभ है ॥ ॥ ननु[257] जिस ग्रामविषे वा नगरविषे जो

२५३ "सो जैसें" इत्यादि वाक्यकी संगतिकूं कहनेवास्ते वृत्तकूं सम्यक् कीर्तन करै हैं ॥

२५४ ननु फेर श्रुतिगत आद्यप्रश्नके निर्णयकरि क्या फल होवैहै? तहां त्वंपदार्थकी शुद्धिरूप फल होवैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

२५५ शुद्धिद्वारा कथन किये ता (त्वंपदार्थ)के ब्रह्मभावकूंबी कहैहैं ॥

२५६ उत्तर ग्रंथके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

२५७ पूर्वग्रंथकरि उत्तर ग्रंथकी गतार्थताकूं प्रतिवादी शंका करै है ॥

दात्मनः सर्व्वे प्राणाः सर्व्वे लोकाः सर्व्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति॥ त-

इस आत्मातें सर्व प्राण। सर्व लोक। सर्व देव। सर्व भूत। विविध उच्च गमन करैहैं (उपजते हैं)॥ तिस (ब्रह्मरूप आत्मा)

होवैहै। सो अन्य ठिकाने गमन करताहुया तिसीहीं ग्रामतें वा नगरतें गमन करैहै। अ-न्यतें नहीं॥ [२५८] तैसें हुये "तब यह कहां था" इस प्रकारकाहीं प्रश्न होहू। जहां था तहांतैंहीं आगमन प्रसिद्ध होवैगा। अन्यतें नहीं॥ ॥ हे प्रतिवादिन्! "कहांतें यह आवताभया" यह प्रश्न। निरर्थक (व्यर्थ)हीं है। ऐसें तुजकरि [२५९] क्यों श्रुति उपालंभ (आक्षेप)की विषय करिये है?

२५८ ननु स्थितिकी अवधिकेही निर्धारित होनेतें गतिकी अवधिके निर्धार करनेकी इच्छाकरि प्रश्नविषै प्रतिवचन सा-वकाश है? ऐसी सिद्धांतीकी आशंका मनमैं ल्यायके। प्र-तिवादी कहैहै॥

२५९ अपौरुषेयी जो श्रुति। सो सर्व दोषोंकरि शून्य होनेतें अतिशय शंकाकी विषय करनेकूं योग्य नहीं है। इ-सरीतिसैं सिद्धांती। गूढ अभिसंधि (अभिप्राय) वाले हुये कहैहैं॥

स्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति । प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य प्रथम-मजातशत्रु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

की उपनिषत् है "सत्यका सत्य है" ऐसी ॥ प्राण प्रसिद्ध सत्य हैं । तिनका यह सत्य है ॥ २० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथम-मजातशत्रु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

तहां प्रतिवादी कहे है किः—ऐसें[२६०] नहीं ॥ तब[२६१] क्या कि ? मैं[२६२] द्वितीय प्रश्नके अन्य अर्थकूं श्रवण करनेकूं इच्छताहूं । यातें आनर्थक्य ("कुतः" शब्दकी अपादानरूप अर्थकी अयोग्यता)के

---

२६० मेरेकरि श्रुति आक्षेपकी विषय नहीं करिये है । निर्दोष होनेतें ? इसप्रकार पूर्ववादी कहैहै ॥

२६१ श्रुतिकी अनापेक्षताके हुये तेरा चोद्य (प्रश्न) निरवकाश होवैगा । ऐसैं सिद्धांती कहैहैं ॥

२६२ ता (स्वचोद्य)की शावकाशताकूं पूर्ववादी साधता है ॥

प्रति चोदना (आशंका) करताहूं ॥ ॥ [२६३] जब ऐसैं है तब "कुतः (कहांतैं)" इस पंचमीकी अपादान (आश्रय)रूप अर्थता नहीं ग्रहण करियेहै। जातैं अपादान (उपादान)रूप अर्थताके हुये पुनरुक्ततारूप दोष होवैहै । अन्य अर्थताके हुये नहीं ॥ ॥ [२६४] तब (तिस अपादानरूप अर्थताकरि पुनरुक्ततारूप अवस्थाविषै) "कहांतैं यह आवता भया। कहिये किस निमित्तवाला इहां आगमन है? ऐसैं निमित्तरूप अर्थवाला यह प्रश्न होहू ॥ ॥ [२६५] तहां एकदेशीकेप्रति प्रतिवादी । कहैहैः—निमित्तरूप अर्थताबी बनै नहीं । काहेतैं प्रतिवचन (प्रत्युत्तर)की विरूपता (विपरीतता)तैं॥ औ [२६६] अग्नितैं विस्फुलिंग आदिककीन्यांई आत्मातैं सर्व जगत्की उत्पत्ति । प्रतिवचनविषै सुनिये

२६३ पूर्ववादीके पंचमी विभक्तिके अपादानतैं अन्य अर्थकूं श्रवण करनेकूं इच्छते हुये । एकदेशी कहैहै ॥

२६४ अन्य अर्थता कैसैं है ? तहां कहैहै ॥ इहांः—तब शब्दका तिस अपादानरूप अर्थताकरि पुनरुक्ततारूप अवस्थाविषै । यह अर्थ है ॥

२६५ एकदेशीके प्रति पूर्ववादी दूषण देताहै ॥ इहां अपादानार्थतावत् यह अपि शब्दका अर्थ है ॥

२६६ ताहीकूं स्पष्ट करै है ॥ इहां चेतन औ अचेतनरूप सर्व जगत्की ऐसैं कहनेकूं च (औ) शब्द है ॥

है ॥ जातैं विस्फुलिंगोंके पलायन (अग्नितैं भागने)विषै अग्निनिमित्त नहीं है किंतु सो (अग्नि) अपादानहींहै ॥ तैसैं "इस आत्मातैं" इसवाक्यविषै परमात्मा विज्ञानमयरूप आत्माका अपादान होनेकरि सुनियेहै । तातैं प्रतिवचनविषै विलोमता (विपरीतता)के होनेतैं "कुतः (कहांतैं)" इसप्रश्नकी निमित्तरूप अर्थता वर्णन करनेकूं शक्य नहीं है ॥ ॥ [२६७]ननु अपादान पक्षविषैबी पुनरुक्ततारूप दोष स्थितहीं है? [२६८]अब सिद्धांती कहे हैंः–यह (पुनरुक्ततारूप) दोष नहीं है । काहेतैं दोनूं प्रश्नोंकरि आत्माविषै क्रियाकारक अरु फल स्वरूपताके निषेधकूं विवक्षित होनेतैं ॥ [२६९]जातैं इहां विद्या अरु अविद्याके विषय उपन्यास (कहनेकूं प्रारंभ) कियेहैं ॥ तिनमें

---

२६७ ननु तब अपादानरूप अर्थवाली पंचमी होहू ? यह आशंका करिके । पूर्ववादी पूर्व उक्तकूं स्मरण करावै है ॥

२६८ सर्व अविद्या अरु तत्कार्यतैं निर्मुक्त प्रत्यक्रूप अद्वयब्रह्म दोनूं प्रश्नोंके मिषकरि प्रतिपादन करनेकूं वांच्छित है । यातैं पुनरुक्ति नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती स्वाभिप्रायकूं प्रगट करै हैं ॥

२६९ ननु उक्त प्रकारका वस्तु दोनूं प्रश्नोंकरि विवक्षित है । यह ज्ञान काहेतैं भया ? यह आशंका करिके सो कहनेकूं तृतीय अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥

"आत्मा ऐसेंहीं उपासना करै। आत्माकूंहीं जाने। आत्मारूप लोककूंहीं उपासना करै" यह विद्याका विषयहै औ तैसें पांक्तकर्म अरु ताका फल नाम रूप कर्मस्वरूप अन्नोंका त्रय अविद्याका विषयहै ॥ तिनके मध्य अविद्याके विषयविषै कहनेकूं योग्य सर्व कहे ॥ विद्याका विषय जो केवल आत्मा उपन्यास किया है। सो निर्णय किया नहीं ॥ ॥ औ ता[२७०] (आत्मा)के निर्णय अर्थ "ब्रह्म तेरेतांई कहताहूं" ऐसें औ "जनावूंगा (विज्ञापन करूंगा)" ऐसें प्रारंभ कियाहै। यातें सो विद्याका विषयभूत ब्रह्म स्वभावतें जनावनेकूं योग्यहै औ[२७१] ताका स्वभाव (स्वरूप) क्रिया कारक अरु फलके भेदकरि शून्य अत्यंत विशुद्ध अरु अद्वैत है। ऐसें यह कहनेकूं इच्छित है ॥ यातें "तब यह कहांथा" औ "कहांतें यह आवताभया" इसरीतिके ताके अनुसारी दोनूं प्रश्न। श्रुतिकरि उत्थापन करियेहैं ॥ तहां[२७२] जहां

२७० ननु विद्याविषयके निर्णयकी कर्त्तव्यता इहां नहीं भासती है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां अन्यथा प्रक्रमका भंग होवैगा। यह भाव है ॥

२७१ ताका याथात्म्य (स्वभाव) क्या है? सो कहैहैं ॥

२७२ दोनूं प्रश्नोंका उक्त प्रकारके याथात्म्यके व्याख्यान-

(तिसविषै जिसवि[illegible]) होवैहै सो अधिकरणहै । जो होवैहै सो अधिकर्त्तव्यहै औ तिन अधिकरण अरु अधिकर्त्तव्यका भेद लोकविषै देख्याहै ॥ तैसैं जिसतैं आवताहै सो अपादान है । औ जो आवताहै सो कर्त्ता तिस (अपादान)तैं अन्य देख्याहै ॥ तैसैं आत्मा अन्य हुया किसीबी अन्यविषै था औ अन्य हुया किसीबी अन्यतैं आवताभया । किसीबी भिन्न साधनांतरकरि ॥ ऐसैं लोककीन्यांई प्राप्त जो बुद्धि (ताकी प्रवृत्ति) [७३]सो प्रतिवचनकरि निवर्त्त करनेकूं योग्यहै ॥ [२७४]यहँ आत्मा अन्यहुया अन्यविषै था नहीं वा अन्य हुया अन्यतैं आया नहीं वा आत्माविषै अन्य साधन नहीं है ॥ तब क्या कि:—स्वात्मा (स्वस्वरूप)विषैहीं था । काहेतैं "[२७५]अपने आत्माकूं प्रा-

---

विषै उपयोगीपना कैसैं है ? यह आशंका करिके तिन दोनूंके श्रौतअर्थकूं कहैहैं ॥

२७३ प्रश्नकी प्रवृत्तिकूं कहिके । अब प्रतिवचनकी प्रवृत्तिकूं कहैहैं ॥

२७४ प्रतिज्ञात दोनूं वचनोंके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

२७५ स्वात्माविषैहीं था । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां सुषुप्तिविषै स्वात्माकी व्यवस्थिति " अतः (याहीतैं) " शब्दका अर्थ है ॥

त होवैहै। हे सोम्य! तब (सुषुप्तिविषै) सत् (ब्रह्म)के साथि मिलित होवैहै। प्राज्ञरूप आत्माके साथि मिलित हुया परमात्माविषै स्थित होवैहै" इत्यादि श्रुतिनतैं। याहीतैं अन्य हुया अन्यतैं आवता नहीं ॥ सो[२७६] श्रुतिकरिहीं दिखाइयेहै। "इस आत्मातैं" ऐसैं। [२७७]काहेतैंः—आत्मातैं व्यतिरेककरि अन्य वस्तुके अभावतैं ॥ ॥ [२७८]ननु आत्मातैं व्यतिरिक्त प्राणआदिक अन्य वस्तुहै? यह कथन बनै नहींः—काहेतैं प्राण आदिककी तिसी (आत्मा)तैंहीं उत्पत्तितैं ॥ ॥ [२७९]ननु सो (आत्मातैं प्राणआदिककी. उत्पत्ति) किसप्र-

---

२७६ प्रबोध (जाग्रत्) दशाविषै आत्माकूंहीं आगमनकी अपादानता है। इस अर्थविषै प्रमाणरूपताकरि अनंतर श्रुतिकूं उठावते हैं ॥

२७७ स्थिति अरु आगतिका आत्मातैंहीं अवधिपना है। इस अर्थविषै युक्तिकूं कहैहैं ॥

२७८ अन्य वस्तुके अभावताकी असिद्धिकूं शंका करिके सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

२७९ क्रियावाले मृत्तिका आदिकतैं घटादिककी उत्पत्तिके देखनेतैं। ब्रह्मकूं अक्रिय होनेतैं तिसतैं प्राणादिककी उत्पत्ति नहीं संभवै है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

कारसैं है ? [२८०] तहां कहिये हैः—तिस (आत्मातैं प्राणादिककी उत्पत्ति)विषै दृष्टांतः—सो जैसैं लोकविषै ऊर्णनाभि कहिये भूताकीट (मकरी) जो है सो । एकहीं प्रसिद्ध हुया स्वात्मासैं अभिन्न तंतुकरि उद्गमन करैहै औ [२८१] ताके उद्गमनविषै आपतैं अतिरिक्त अन्य कारक नहीं है ॥ औ [२८२] जैसैं एकरूप एक अग्नितैं क्षुद्र (अल्प) विस्फुलिंग (अग्निके अवयव) विविध वा नाना उद्गमन करैहैं ॥ जैसैं ये दोनूं दृष्टांत । कारक भेदके अभाव हुयेबी प्रवृत्तिकूं औ प्रवृत्तितैं पूर्वस्वभावतैं एकताकूं दिखावतेहैं ॥ ऐसैंहीं इस आत्मातैं । अर्थ यह जो विज्ञानमयके प्रतिबोध (जाग्रत्) तैं पूर्व जो स्वरूप है तिसतैं । सर्व प्राण (वाक्आदिक) औ सर्व लोक (सर्व कर्मके फल) औ सर्व देव (प्राणोंके

---

२८० सृष्टिकी मायामयताकूं आश्रय करिके । सिद्धांती श्रुतिसैं परिहार करै हैं ॥

२८१ "स्वात्मा (स्वस्वरूप)सैं अप्रविभक्त तंतुकरि" ऐसैं कथन किये अर्थकूं अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्पष्ट करै हैं ॥

२८२ सहाय रहितकी कारणताविषै दृष्टांतकूं कहिके । कूटस्थके सद्भावविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

अरु लोकनके अधिष्ठाता अग्निआदिक) औ सर्व भूत (ब्रह्मादि स्तंबपर्य्यंत प्राणिनके समूह)। विशेषकरि उद्गमन करतेहैं (उपजतेहैं) ॥ "[२८३] सर्व ये आत्मातें" इस पाठविषे। उपाधिके संबंधसैं जनित प्रबोधकूं प्राप्त विशेष आत्मातें। इस अर्थविषे विशेषकरि उद्गमन करतेहैं ॥ [२८४] जिसैं आत्मातें स्थावर जंगमरूप यह जगत्। अग्नितें विस्फुलिंगकीन्यांई निरंतर उपजताहै औ जिसींहींविषे प्रलीन होवैहै औ स्थितिकालविषे जलमैं बुद्बुदकीन्यांई जिसरूप हुया वर्तताहै। तिस इस आत्मा (ब्रह्म)की उपनिषत् है ॥ उप (समीपकेतांई) निगमयति (प्राप्त करैहै)। इस अर्थका अभिधायक (वाचक) जो शब्द। सो "उपनिषत्" ऐसैं कहिये है ॥ [२८५] शास्त्रके प्रामाण्यतें। इस शब्दगत समीप

२८३ माध्यंदिनकी श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

२८४ "ताकी उपनिषत् है" इत्यादिरूप वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥

२८५ ननु प्रत्यग्भूत ब्रह्मके वाचक अन्य शब्दोंके होतेबी इस (उपनिषत्) शब्द विषयक आदरण क्यूं करिये है? तहां कहैहैं ॥

प्रापकता नामविशेष निश्चय करियेहै ॥ ॥ कौंन यह उपनिषत् है? तहां कहैहैंः–सत्यका सत्य है। ऐसैं साधिके (सिद्ध करिके) औ सर्व ठिकाने उपनिषत् जो है सो अलौकिक अर्थवाली होनेतैं दुर्विज्ञेय अर्थवाली है। यातैं ता (उक्त उपनिषत्)के अर्थकूं कहैहैः–प्राण प्रसिद्ध सत्य हैं। तिनका यह (परमात्मा) सत्य है। ऐसैं॥ [२८६] ईसीहीं वाक्यके व्याख्यानअर्थ पीछले दो ब्राह्मण होवैंगे [॥ २० ॥]

[२८७] प्रथम। उपनिषद्के व्याख्यानअर्थ पीछले दो ब्राह्मण होहू। परंतु "ताकी उपनिषत् है" ऐसैं कहा। तहां। क्या प्रकृत विज्ञानमयरूप औ पाणिपेषण (हस्तके मरोडने)करि ऊठ्या औ शब्दआदिकका भोक्ता जो संसारी आत्मा है। ताकी यह उपनिषत् है। अथवा किसीबी असंसारी आत्माकी यह उपनिषद् है॥ ॥ औ

---

२८६ ब्राह्मणरूप वाक्यका अर्थबी कैसैं निश्चय करनेकूं योग्य है? तहां कहैहैं॥

२८७ उक्त अर्थकूं अंगीकार करिके विशेषके अदर्शनकरि संशय युक्त हुया प्रतिवादी। शंका समाधानरूप विचारकूं प्रसंगविषै प्राप्त करै है॥

[२८८]यातें क्या प्रयोजन होवैगा? सो हम नहीं जानतेहैं ॥ [२८९]जब संसारीकी यह उपनिषत् है। तब संसारीहीं जाननेकूं योग्य है । [२९०]ताके विज्ञानतैंहीं सर्वकी प्राप्ति है । [२९१]सोई ब्रह्मशब्दका वाच्य है । [२९२]ताकी विद्याहीं ब्रह्मविद्या है। ऐसैं होवैगा॥ [२९३]औ जब असंसारीकी यह उपनिषत् है । तब ताकूं विषय करनेवाली विद्या ब्रह्मविद्या है। औ तिस ब्रह्मविज्ञानतें सर्वभावकी प्राप्ति होवैगी ।

---

२८८ “ संदिग्ध औ सप्रयोजन वस्तु विचारनेकूं योग्य है ” इस न्यायकरि संदेहकूं कहिके। अब विचारके प्रयोजक प्रयोजनकूं प्रतिवादी पूछता है ॥

२८९ तिस पक्षविषै क्या फल होवै है। ऐसैं पूछे हुये। प्रथम पक्षकूं अनुवाद करिके तिसविषै फलकूं कहेहै ॥

२९० ननु जाके विज्ञानतैं मुक्ति होवै है । ताहीकी ज्ञेयता है। जीवकी नहीं ? यह आशंका करिके कहेहै ॥

२९१ ननु ब्रह्मके विज्ञानतैंहीं सो (मुक्ति) होवैहै। संसारीके ज्ञानतैं नहीं ? यह आशंका करिके कहेहै ॥

२९२ ननु जाकी विद्या ब्रह्मविद्या कहियेहै । सोई ब्रह्म है। संसारी नहीं ? यह आशंका करिके कहेहै ॥ इहां प्रथम विकलपके फलकी समाप्तिविषै इति शब्द है ॥

२९३ अन्य पक्षकूं अनुवाद करिके तिसविषै फलकूं कहेहै॥

[२९४] सर्व यह शास्त्रके प्रामाण्यतैं सिद्ध होवैगा ॥ किंतु[२९५] इस पक्षविषै "आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै। आत्माकूंहीं 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसैं जाने" इ-सरीतिसैं परब्रह्मकी एकताकी प्रतिपादक श्रुतियां कोपकूं पावैंगी। औ[२९६] संसारीतैं अन्यके अभाव हुये उपदेशकी व्यर्थतातैं ॥ जौंतैं[२९७] ईसरीतिसैं[२९८]

---

२९४ ननु इसविषै कौंन नियामक है? यह आशंका क-रिके "ब्रह्महीं यह" इत्यादि शास्त्र है। ऐसैं कहैहै ॥

२९५ ब्रह्मकी उपनिषद् है। इस पक्षविषै जब शास्त्रकी प्रमाणताकरि सर्व समंजस होवै है। तब तैसैंहीं होहु। वि-चारसैं क्या प्रयोजन है? यह आशंका करिके। जीव ब्रह्मका भेद है वा अभेद है। ऐसैं विकल्प करिके। प्रथम पक्षविषै दोषकूं कहैहै ॥

२९६ अभेदपक्षकूं दूषण देता है ॥ इहां:—उपदेशकी व्यर्थतातैं अभेदपक्षका असंभव है। यह शेष है ॥

२९७ विशेषके अनुपलंभकूं संशयकी हेतुता है ताकूं अनुवाद करै है ॥

२९८ दोनूं पक्षोंविषै फलकी प्रतीतिकूं स्मरण करैहै ॥ इहां अन्वय व्यतिरेककी कुशलता पांडित्य है औ "यह" ऐसैं एकात्मताकी उक्ति है औ मोहकी महत्ता। विचारसैं उत्पन्न निर्णयविना उच्छेदसैं रहिततारूप है। ताका स्थान कहिये आलंबन (आश्रय) है औ किसीकरिबी नहीं कहा है प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) जिसका ऐसी जो एकात्मता सो क्या है? ऐसा जो प्रश्न। ताका विषयभूत है ॥ जातैं जिस

पंडितनकूंबी यह अनुक्त प्रत्युत्तरवाले प्रश्नकूं विषय करनेवाला महामोहका स्थान है । यातैं[299] यथाशक्तिकरि ब्रह्मविद्याके प्रतिपादक वाक्यन-विषै ब्रह्मजिज्ञासु पुरुषनकूं बुद्धिके उत्पादनअर्थ हम (पूर्वपक्षी) विचार करतेहैंः—प्रथम[300] असंसारी-पर (परमात्मा) नहीं है । काहेतैं पाणिके पेषणतैं प्रतिबोधित अरु अवस्थांतर विशिष्ट शब्दादिकके भोक्तातैं उत्पत्तिके श्रवणतैं औ[301] प्रशासिता अरु क्षुधारहित पर (परमात्मा) नहीं है । काहेतैं ? जातैं "ब्रह्मकूं विज्ञापन करूंगा" ऐसें प्रतिज्ञा क-रिके । सुप्तपुरुषकूं हस्तके मरोडनेकरि बोधनक-रिके । ताकूं शब्दआदिकके भोक्तापनैकरि वि-

---

किसकरि एकात्मता पूछनेकूं वा कहनेकूं शक्य नहीं होवै है । काहेतैं " जो (परमात्मा) श्रवणके अर्थबी बहुत पुरुष-नकरि लभ्य (प्राप्य) नहीं है " इत्यादि श्रुतितैं । यह अर्थ है॥

२९९ विचारके प्रयोजककूं कहिके । अब ताके कार्य वि-चारकूं उपसंहार करै है ॥

३०० प्रतिवादी । संशयादिककरि विचारकी कार्यता (क-र्त्तव्यता)कूं प्रगट करिके । अब पूर्वपक्ष करै है ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं जगत्कर्त्ता ईश्वर कहियेहै औ प्रकृतविषै सुषुप्ति विशिष्ट जीवतैं जगत्का जन्म कहियेहै । तातैं ईश्वर जीवतैं अतिरिक्त नहीं है ॥

३०१ ताहीकूं प्रपंचन करै है ॥

शिष्ट दिखायके । तिसीहींका स्वप्नरूप द्वारकरि सुषुप्तिनामवाले अवस्थांतरकूं तर्कसैं दिखायके । तिसीहीं सुषुप्ति अवस्थाकरि विशिष्टआत्मातैं अग्नितैं विस्फुलिंग अरु ऊर्णनाभिरूप दोनूं दृष्टांतनतैं "इसतैं" इत्यादिरूप ग्रंथकरि श्रुतिहीं उत्पत्तिकूं दिखावैहै ॥ [302] औ अन्य (जीवतैं भिन्न ईश्वर) जगत्की उत्पत्तिका कारण अंतरालविषै सुन्या नहींहै । [303] जातैं विज्ञानमयकाहीं प्रकरण है । [304] औ समानप्रकरणवाले श्रुत्यंतरविषै कौषीतकिनके आदित्यादि पुरुषनकूं प्रस्तुत करिके । सो (अजातशत्रु) कहताभया । हे बालाके! जो प्रसिद्ध इन (आदित्यादिक) पुरुषनका कर्त्ता है औ जाका यह कर्म है। सो निश्चयकरि जाननेकूं योग्य है । ऐसैं प्रबुद्ध (जागरणकूं प्राप्त भये) विज्ञानमयकीहीं जाननेकी योग्यताकूं दि-

---

३०२ ननु प्रकृत जीवके हुयेबी जगत्का कारणपना ईश्वरकूंहीं इहां सुन्या है ? यह आशंका करिके । कहैहै ॥

३०३ तहां प्रकरणके अविरोधविषै हेतुकूं कहैहै ॥

३०४ अन्य श्रुतिके वशतैंबी जीवहीं इहां जगत्का कर्त्ता है । ऐसैं कहैहै ॥ इहां अन्य श्रुतिकूं जो जीव विषयता है । सो जगत्वाचिताके अधिकरणके पूर्वपक्षके न्यायकरि देखनेकूं योग्य है ॥

खावैहैं । अन्य अर्थकी नहीं ॥ [305] तिसंप्रकार हुये "आत्माकेतो काम (भोग) अर्थ सर्व प्रिय होवैहै" ऐसें कहिके । जोई आत्मा प्रिय प्रसिद्ध है । तिसीहींकी दर्शन करनेकी योग्यता श्रवणकरनेकी योग्यता। मनन करनेकी योग्यता। अरु निदिध्यासन करनेकी योग्यताकूं दिखावैहै ॥ [306] तिसंप्रकार हुये विद्याके उपन्यास कालविषै "आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै । सो यह (स्वस्वरूप) प्रेय (प्रियतर) है। पुत्रतैं प्रेय है । वित्ततैं प्रेयहै । सो (ब्रह्म) आत्माकूंहीं जानताभया 'मैं ब्रह्महूं' ऐसें" इत्यादि वाक्यनका जीवतैं भिन्न परमात्माके अभाव हुये आनुलोम्य (अविपरीततारूप अनुक्रम) होवैगा औ जीवतैं भिन्न जानने योग्य परमात्माके अभावविषै "पुरुष आत्माकूं जब यह 'मैं हूं' ऐसैं जाने" यह उपनिषत् आगे कहैगी ॥ औ [307] सर्व वेदांतनविषै "मैं हूं" ऐसैं प्रत्यगात्माकी

---

३०५ वाक्यशेषके वशतैंवी जीवकूंहीं वेदितव्यता (जाननेकी योग्यता) है । सो वाक्योंके अन्वयके अधिकरणके पूर्वपक्षके न्यायकरि दिखावैहै ॥

३०६ जीवतैं अतिरिक्त जानने योग्य परमात्माके अभावविषै पूर्वोत्तर वाक्योंकी अनुकूलतारूप अन्य हेतुकूं कहैहै ॥

३०७ यातैं (इस कहनेके हेतुतैं)वी जीवकींहीं वेद्यता है । ऐसैं कहैहै ॥

वेद्यता (जाननेकी योग्यता)हीं दिखाईयेहै । शब्दादिककीन्यांई "यह ब्रह्म है" ऐसैं बाहिर वेद्यता नहीं दिखाईयेहै ॥ तैसैं[३०८] कौषीतनकेहीं "वाचाकूं विशेषकरि जाने नहीं किंतु वक्ताकूं जाने" इत्यादि वाक्यसैं वाक् आदिक करणोंकरि व्यवहारकरनेवाले कर्त्ताकीहीं जाननेकी योग्यताकूं दिखावैहै ॥ ॥ ननु[३०९] अवस्थांतरकरि विशिष्टताके हुये असंसारी (संसारीतैं भिन्नपरमात्मा) है? ऐसैं जो कहै। कहिये तौबी[३१०] (नुक्तयुक्तिके सद्भाव हुयेबी) जो जागरितविषै शब्दादिकका भोक्ता विज्ञानमय होवैहै। सोई सुषुप्तिनामक अवस्थांतरकेप्रति गमनके हुये अ-

---

३०८ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहै ॥ "सर्व जनोंकरि जाननेकूं योग्य है" इस ठिकाने जीवकी वेदितव्यता स्पष्ट नहीं है औ इहां तो स्पष्ट है। यह भेद है ॥

३०९ सुषुप्ति अवस्थावाले जीवतैं जगत्के जन्मकी श्रुतितैं औ ता (जीव)कीहीं वेद्यताकी दृष्टितैं जगत्का हेतु ईश्वर वेदांत वेद्य नहीं है। ऐसैं प्रतिवादीकरि कहे हुये सेश्वरवादी शंका करै है ॥

३१० शंकाकूंहीं सो विवरण करै है ॥ इहां:—अथापि (तौबी) इस शब्दका उक्तउपपत्तिके सद्भाव हुयेबी। यह अर्थ है ॥

संसारी परमात्मा ता (जीव)का नियामक अन्य होवैगा? इसप्रकार जो सिद्धांती कहै । [311] सो बनै नहीं:—काहेतैं अदृष्ट होनेतैं । जातैं इसप्रकारके धर्मवाला पदार्थ नास्तिकोंके सिद्धांततैं अन्य ठिकाने देख्या नहीं औ [312] जातैं लोकविषै गौ (बैल) जो है सो खडा हुया वा गमन करता हुया अगौ (अबैल) नहीं होवैहै । औ सोवता हुया अश्वादि अन्य जातिवाला नहीं होवैहै ॥ औ [313] न्यायतैं जो पदार्थ प्रमाणकरि जिस धर्मवाला निश्चित होवैहै । सो देश काल अरु अन्य अवस्थाविषैबी तिस धर्मवालाहीं होवैहै ॥ सो जब तिस धर्मकेतांई व्यभिचारकूं पावै । तब सर्व प्रमाणआदिक व्यवहार लुप्त होवैगा ॥ [314] तिस प्रकार हुये न्याय (युक्ति)के जा-

---

३११ अवस्थाके भेदतैं वस्तुका भेद नहीं होवै है । काहेतैं तिस प्रकारके अनुभवके अभावतैं औ तैसैं अनंगीकार किये तुह्मारे सिद्धांतका भंग होवैगा । इसप्रकार प्रतिवादी (निरीश्वरवादी) परिहार करै है ॥

३१२ अवस्था भेदतैं वस्तुभेदके अभावकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै है ॥

३१३ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहै ॥

३१४ जाग्रत् आदिक अवस्थाकरि विशिष्टकूंहीं सुषुप्ति

ननेहारे सांख्य अरु मीमांसकआदिक निरीश्वरवादी जे हैं वे असंसारी (ईश्वर)के अभावकूं सैकडो युक्तिनकरि प्रतिपादन करैहैं ॥ ॥ ननु[315] संसारीकूंबी (ईश्वरकीन्यांई) जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु लयरूप क्रियाका कर्त्तापना औ प्राण आदिकका कर्त्तापना विज्ञानके अभावतें अयुक्त है? ऐसें कहैं । कहिये जो महत्[316] प्रपंच (विस्तार)करि स्थापित शब्दादिकका भोक्ता सं-

---

अवस्थासैं विशिष्ट होनेकरि संसारी होनेतैं अन्य ईश्वर नहीं है । ऐसें कहिके । अब तिस (जीवतें अन्य ईश्वर)के अभावविषै वादीनकी संमतिकूं कहैहै ॥ इहां आदिशब्द जो है सो लोकायतादि समस्त निरीश्वरवादीनके सम्यक् ग्रहण अर्थ है औ "सैकडो युक्तिनकरि" या पदका । ता (ईश्वर)कूं देहीभावके हुये अस्मदादिकके तुल्य होनेतैं औ ता (देहीभाव)के अभाव हुये मुक्त पुरुषकी न्यांई जगत्के कर्त्तापनैके अयोगतैं जीवनकूंहीं अदृष्टद्वारा ता (जगत्)के कर्त्तापनैके संभवतैं किंचित्कर होवै है । इत्यादिक युक्तियोंकरि । यह अर्थ है ॥

३१५ ननु जीव जो है सो जगत्के जन्म आदिकका हेतु नहीं होवै है । काहेतैं तिसविषै असमर्थ होनेतैं । पाषाणकी न्यांई ॥ औ सो (असामर्थ्य) संसारी पनैतैं है ? इसरीतिसैं सिद्धांती शंका करै हैं ॥ इहां प्राणआदिकका कर्त्तापना अयुक्त है । यह शेष है ॥

३१६ संग्रहवाक्यकूं विवरण करै हैं ॥

सारी है। सोई अन्य (सुषुप्ति) अवस्थाकरि विशिष्ट हुया जगत्का इहां कर्त्ता है? इसप्रकार जो कहैं। सो असत् है:—काहेतें जातें संसारीकूं जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु लयरूप क्रियाका कर्त्ता होनेअर्थ विज्ञानशक्तिरूप साधनका अभाव। सर्व लोककूं प्रत्यक्ष है। सो अस्मदादिक संसारी मनसैंबी चिंतन करनेकूं अशक्य अरु पृथिवीआदिकके विन्यास (स्थापन) करि विशिष्ट जगत्कूं कैसें निर्माण करैगा! किसी प्रकारसैंबी नहीं॥ यातें यह अयुक्त है? इसप्रकार जो सिद्धांती कहैं। सो[३१७] बनै नहीं:—काहेतें शास्त्रके प्रमाणतें। जातें "ऐसैंहीं इस आत्मातें" यह शास्त्र। संसारीतें जगत्की उत्पत्तिआदिककूं दिखावैहै। तातें[३१८] सर्व श्रद्धा करनेकूं योग्यहै। एसरीतिका यह एक (निरीश्वरवादीका) पक्ष होवैहै॥ ॥ "जो[३१९] सर्वज्ञ सर्ववित्है।

३१७ अब प्रतिवादी। कालनाशके अतिक्रमकेमिषकरि दूषण देता है॥

३१८ अब प्रतिवादी। निरीश्वरवादकूं उपसंहार करैहै॥

३१९ अब सिद्धांती सेश्वरवादकूं उठावते हैं॥ इहां:—पृथिवी आदिकविषै अभिमानी तिन पुरुषनकूं उत्पादन करिके जो उल्लंघन करता भया। सो यह सर्व विशेषकरि शून्य

जो क्षुधातृषाकूं उल्लंघन करिके वर्त्तताहै। असंग [illegible]।न होता नहीं। इसीहीं अक्षरके प्रशासनविषै। जो सर्व भूतनविषै स्थित होयके अंतर्यामी अमृत अरु सम हुया तिन (पृथिवीआदिक)विषै अभिमानी पुरुषकूं उत्पादन करिके अतिक्रमण करताभया सोई यह महान् अज आत्माहै। यह नेताका विधरण सर्वका वशी सर्वका ईशान है। जो आत्मा अपहतपाप्मा (निष्पाप) विजर (जरारहित) अरु विमृत्यु (मरणरहित)है।सो तेजकूं स्रजताभया। आत्माहीं यह एकही आगे होताभया।बाह्य हुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं" इत्यादि सैकडो श्रुतिनतें औ "मैं सर्वका प्रभव हूं अरु मेरेतैं सर्व प्रवर्त्त होवैहै" इस स्मृतितें "इसरीतिसें श्रुति स्मृति अरु न्यायकरि असंसारी परमात्माहै औ सो जगत्‌का कारण है ॥ ॥ ननु[320] "ऐसैंहीं इस आ-

---

है। यह अर्थ है ॥ औ श्रुतियां अरु स्मृतियां पूर्व उदाहरणकरि कही हैं औ न्याय तोः—"विचित्र कार्य। विशिष्ट विज्ञानवाले कर्त्ता पूर्वक होवैहै।प्रासाद (अट्टालिका) आदिकविषै तैसैं उपलंभतैं" इत्यादि रूप है ॥

३२० प्रकरणकूं अनुसरीके जीवकूं प्राणआदिककी कारणता पूर्व प्रतिवादीने कहीथी। ताकूं स्मरण करावैहैं ॥

त्मातैं" इसरीतिकरि संसारीतैंहीं उत्पत्तिकूं दिखावैहै? ऐसैं कहाथा ॥ [३२१] सो बनै नहीं:—काहेतैं "जो यह अंतर हृदयविषै आकाश है" ऐसैं परमात्माकूं प्रकृत होनेतैं "इस आत्मातैं" इस श्रुतिकरि । परमात्माकाहीं ग्रहण युक्त है ॥ "[३२२] यैहै तब (सुषुप्तिकालविषै) कहांथा" इस प्रश्नका प्रत्युत्तररूप होनेकरि आकाशशब्दका वाच्य परात्मा (परमात्मा) कहा "जो यह हृदयके भीतर आकाशहै तिसविषै रहताहै । हे सोम्य! तब (सुषुप्तिविषै) सत् (ब्रह्म)के साथि संपन्न (एकरूप) होवैहै। दिनदिनाविषै जाती हुयी इस ब्रह्मरूप लोककूं नहीं जानतहैं । प्राज्ञरूप आत्माकेसाथि मिलित हुया परमात्माविषै संम्यक् स्थित होवैहै" इत्यादि श्रुतिनतैं आकाश शब्दका वाच्य परमात्माहै । ऐसैं निश्चय करियेहै औ "[३२३] इसविषै अल्प अंतराकाशहै" ऐसैं प्रसं-

---

३२१ यह जीवका प्रकरण नहीं है। इसरीतिसैं सेश्वरवादी परिहार करै है ॥

३२२ ननु प्रतिवचनरूप आकाशशब्दकूं परमात्माकूं विषय करनैपना असिद्ध है? यह आशंका करिके । कहैहै ॥

३२३ याहीतैंबी आकाश शब्दकूं परमात्माकूं विषय कर-

गविषे प्राप्तकरिके । तिसविषैहीं आत्मशब्दके प्रयोगतैं [324] प्रकृत (आकाश)हीं परमात्माहै। [325] तातैं "ऐसैंहीं इस आत्मातैं" इस श्रुतिकरि परमात्मातैंहीं सृष्टि (जगत्की उत्पत्ति) होवैहै । यह युक्तहै ॥ [326] औ संसारीकूं सृष्टि स्थिति अरु संहारके ज्ञान अरु सामर्थ्यके अभावकूं हम कहतेहैं [327] औ इहां "आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै । आत्माकूंहीं 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसैं जानै" इरीतिसैं ब्रह्मविद्या प्रस्तुत (प्रसंगविषे प्राप्तकरी) है औ

नेपना है । ऐसैं सेश्वरवादी कहैहै ॥ इहां "जो आत्मा अपहत पाप्मा है" यह आत्मशब्दका प्रयोग है ॥

३२४ प्रतिवचनविषै परमात्माकूं आकाश शब्दकी वाच्यताके हुये फलितकूं सेश्वरवादी कहैहै ॥

३२५ ता (परमात्मा)की प्रकृतताके हुये लब्ध अर्थकूं सेश्वरवादी कहैहै ॥

३२६ याहीतैंबी परमात्मातैंहीं प्राणादिककी सृष्टि होवै है । ऐसैं सोई कहैहै ॥ जो महत् प्रपंच (विस्तार) करि इत्यादि स्थलविषै यह शेष है ॥

३२७ ननु जगत्का कारण ब्रह्म ईश्वर है । सोई जीवका स्वरूप है । ताकी यह उपनिषत् है । इस सिद्धांतकूं आशंका करिके सोई दूषण देता है ॥ इहां तृतीय अध्याय । सप्तमीका अर्थ है ॥

[३२८] ब्रह्मकूं विषय क नेवाला ब्रह्मका विज्ञानहै । सो "[३२९] ब्रह्म तेरेतांई कहताहूं" औ "ब्रह्मकूं जनावूंगा" ऐसें आरंभ किया॥ [३३०] तहां अब असंसारि ब्रह्म जगत्का कारणहै। सो क्षुधाआदिकसें अतीत नित्यमुक्त नित्यबुद्ध नित्यशुद्ध स्वभाववालाहै औ तिसतें विपरीत संसारीहै॥ तातें "मैं ब्रह्महूं" ऐसें ग्रहण करै नहीं। [३३१] जातें परमदेव ईश्वरकूं निकृष्ट संसारी जो है सो आत्मभावकरि स्मरण करता हुया कैसें दोषका भागी नहीं होवैगा। दोषका भागी होवैगाहीं। तातें "मैं ब्रह्महूं" ऐसें जानना

---

३२८ फेर सो ब्रह्मविद्या कौंन है ? तहां सोई कहेहै ॥ इहां यह ब्रह्मवेत्तानके मध्य प्रसिद्ध है । यह शेष है ॥

३२९ चतुर्थ अध्यायविषै ब्रह्मविद्या प्रस्तुत करी है । ऐसें सोई (सेश्वरवादी) कहेहै ॥

३३० ननु ब्रह्मविद्या प्रस्तुतकरी है यह सत्य है । परंतु सो जीवविद्याबी होवै है काहेतें जीव ब्रह्मके अभेदतें ? यह आशंका करिके सोई कहेहै ॥ इहां:—"तहां" इस शब्दका ब्रह्मविद्याके प्रस्तुत हुये यह अर्थ है ॥ औ अबी नहीं ग्रहण करना। ऐसें संबंध है ॥ परस्पर विरुद्धताकी प्रतीतिरूप अवस्थाविषै यह अर्थ है। औ अन्योऽन्यविरुद्धता "तत्" शब्दका अर्थ है ॥

३३१ विपक्षविषै सोई दोषकूं कहेहै ॥

युक्त नहींहै ॥ [332]तातें पुष्प उदक अंजलि स्तुति नमस्कार बलिप्रदान स्वाध्याय अरु ध्यानयोग आदिककरि ईश्वरकूं आराधन करनेकूं इच्छे। आराधनसैं जानिके सर्वका नियंता ब्रह्म होवैहै फेर[333] (परंतु) संसारी जो है सो शीतभावकरि अग्निकीन्यांई अरु मूर्त्तिमान्भावकरि आकाशकीन्यांई असंसारि ब्रह्मकूं आत्मभावकरि चिंतन करै नहीं। औ [334]ब्रह्मके आत्मभावका प्रतिपादक शास्त्रबी अर्थवादरूप होवैगा। [335]ईसरीतिसैं सर्व तर्कशास्त्र लोक अरु न्यायकरि अविरोध होवैगा? इसप्रकार जो प्रतिवादी (सेश्वरवादी) कहै।[336]सो

३३२ ननु तब ईश्वरविषै नमस्कार कैसैं करना ? यह आशंका करिके स्वामीभावकरि करना । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां आदिपद जो है सो प्रदक्षिणा आदिकके संग्रह अर्थ है ॥

३३३ एकताके शास्त्रतैं ब्रह्मविषै आत्मबुद्धिहीं करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके सोई कहैहै ॥

३३४ ननु तब शास्त्रकी गति कौंन होवैगी ? तहां कहैहै ॥

३३५ ननु मुख्य अर्थताके संभव हुये अर्थवादता क्यूं कहताहै ? यह आशंका करिके सोई कहैहै ॥ इहां संसारिभाव अरु असंसारीभाव आदिककरि परस्पर विरुद्ध जीव ईश्वरकी शीत अरु उष्णकीन्यांई एकताका असंभवरूप न्याय है ॥

३३६ अब विज्ञानात्माकूं विषय करनेपना औ तटस्थ

बनै नहीं:—काहेतें मंत्र अरु ब्राह्मणके वादोंतें तिसी (परमात्मा)हींके प्रवेशके श्रवणतें ॥ "पुरनकूं करताभया" ऐसें प्रसंगविषै प्राप्त करिके [३३७] "पुरीनकेप्रति पुरुष च्यारीओरतें प्रवेश करताभया। रूप रूपके तांई प्रतिरूप होताभया। सो याका रूप स्पष्ट करने अर्थ है । धीर (परमात्मा) सर्व रूपोंकूं चिंतन करिके नामोंकूं करिके कथन करता हुया [३३८] जो स्थित होवैहै" ऐसें सर्व शाखाओंविषै सहस्रावधि जे मंत्रवाद हैं वे सृष्टिके कर्त्ता असंसारीकेहीं शरीरविषै प्रवेशकूं दिखावैहैं ॥ तैसें "ताकूं सृजिके ताहीकेप्रति पीछे प्रवेश करताभया। सो जो इसीहीं सीमाकूं विदारण करिके इसी द्वारकरि प्राप्त होता (प्रवेश करता) भया । सो यह देवता इन तीन देवताकूं । इस जीवस्वरूपकरि पीछे प्रवेश करिके । यह सर्व भूतनविषै गूढ आत्मा

ईश्वरकूं विषय करनेपना उपनिषद्का निवारण करते हुये सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

३३७ परमात्माकेहीं प्रवेशके वादी (सिद्धांती) । मंत्र अरु ब्राह्मणके वादनकूं उदाहरण करै हैं ॥

३३८ औ जो "मैं ब्रह्म हूं ऐसैं ग्रहण करना नहीं" इसप्रकार जो प्रतिवादीनैं कहा था । तहां कहैहैं ॥

प्रकाशता नहीं” इत्यादिक ब्राह्मणभागके वाद [बी परमात्माकेहीं शरीरविषै प्रवेशकूं दिखावै] हैं ॥ ॥ [३३९]सर्व श्रुतिनविषै ब्रह्ममें आत्मशब्दके प्रयोगतें औ आत्मशब्दकूं प्रत्यगात्माका अभिधायक (वाचक) होनेतें औ “यह (परमात्मा) सर्व भूतनका अंतरात्मा है” इस श्रुतितें परमातातें व्यतिरेककरि संसारीके अभावतें “एकहीं अद्वितीय है। ब्रह्महीं यह है। आत्माहीं यह है” इत्यादि श्रुतितें “अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं)” इसप्रकारसैंहीं धारण करनेकूं युक्तहीं है ॥ ॥ ननु जब इसरीतिसैं (एकतारूप) शास्त्रका अर्थ स्थित है। तब परमात्माकूं संसारीपना होवैगा ॥ [३४०]तिसैं प्रकार हुये शास्त्रकी व्यर्थता होवैगी औ ताकी [३४१]असंसारिताके हुये

---

३३९ शास्त्र उक्त एकताबी अनिष्टकी प्राप्तितें स्वीकार करनेकूं योग्य नहीं है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३४० परमात्माके संसारीभावविषै औ ताके असंसारीभावविषै शास्त्रकी व्यर्थतारूप फलितकूं कहैहै ॥

३४१ संसारीतें अनन्यरूप परमात्माकेबी असंसारीभावके हुये। संसारीभावकरि मान्याहुयाबी असंसारी है। या उपदेशकी व्यर्थता होवैगी । यातैं तिस (उपदेश) विनाहीं मुक्तिकी सिद्धि होवैगी। इस दोषांतरकूं कहैहै ॥

उपदेशकी व्यर्थतारूप स्पष्ट दोष प्राप्त होवैगा? [३४२]जबै प्रथम परमात्मा सर्व भूतनका अंतरात्मा है। तब सर्व शरीरनके संबंधसैं जनित दुःखनकूं अनुभव करैहै। ऐसैं स्पष्ट परमात्माकूं संसारीपना प्राप्त होवैगा ॥ तिस प्रकार हुये परमात्माके असंसारीभावकी प्रतिपादक श्रुतियां औ स्मृतियां औ सर्व न्याय (युक्तियां) कोपकूं पावैगी ॥ ॥ [३४३]अथवा परमात्मा किसी प्रकारसैंबी प्राण अरु शरीरनके संबंधसैं जन्य दुःखनसैं संबंधकूं पावता नहीं। ऐसैं प्रतिपादन करनेकूं शक्य होवैहै। तौबी परमात्माके साध्यरूप परिहार करनेयोग्यके अभावतें उपदेशकी व्यर्थतारूप दोष निवारण करनेकूं नहीं शक्य होवैहै ॥ ॥ [३४४]इहां केईक (सिद्धांतके एक-

---

३४२ तिनमैं आद्य दोषकूं वर्णन करै है॥ इहांः—"बाह्य हुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं" इत्यादिक श्रुतियां हैं। "जाकूं अहंकृतभाव नहीं है अरु जाकी बुद्धि लिप्त होती नहीं" इत्यादिक स्मृतियां हैं औ कूटस्थता अरु असंगता आदिक न्याय है ॥

३४३ द्वितीयपक्षविषै दोषके प्रसंगकूं संपादन करिके प्रगट करै है ॥

३४४ दोनूं दोषनविषै स्वयूथवाले (एकदेशी)के संबंधी समाधानकूं सिद्धांती उठावते हैं ॥

देशी) परिहारकूं कहतेहैंः—परमात्मा जो है। सो अपने रूपकरि साक्षात् भूतनविषै अनुप्रवेशकूं पाया नहीं। किंतु[345] विकारभावकूं प्राप्त हुया विज्ञानात्मभावकूं प्राप्त होताभया[346] औ सो विज्ञानात्मा परमात्मातें अन्य है अरु अनन्य है॥ जिसैं[347] हेतुकरि अन्य है। तिस हेतुकरि संसारीभावका संबंधी है औ जिस हेतुकरि अनन्य है तिस हेतुकरि "मैं ब्रह्म हूं" इस धारणाके योग्य है। इसरीतिसैं सर्व अविरुद्ध होवैगा॥ ॥ तहीं[348]

---

३४५ तब तिस कार्यविषै प्रविष्ट भये परमात्माकूं जीवपना कैसैं होवैगा? तहां कहेहैं॥

३४६ ननु जीवकूं ब्रह्मकी विकारताके हुयेबी तिसतैं भेदकरि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी बुद्धि नहीं होवैगी अरु अभेदके हुये ब्रह्मकूंबी संसारीभाव होवैगा? यह आशंका करिके। कहेहैं॥

३४७ तथापि शंकाके विषय हुये दोषका अभाव कैसैं होवैगा? तहां कहेहैं॥ इहां "ऐसैं" इस शब्दकरि भिन्नता अरु अभिन्नताका ग्रहण है॥

३४८ एकदेशीके मतकूं निराकरण करनेकूं विकल्प करैहैं॥ इहां ये गतियां कहिये इतने आगे कहनेके पक्ष संभवैहैं अन्य गति नहीं है। यह अर्थ है॥ जैसैं पृथिवीशब्दका वाच्य जो द्रव्य। सो अनेक अवयवनका समुदायरूप है। तैसैं भौतिकस्वरूप अनेक द्रव्योंका समुदायरूप सावयव परमात्मा है। ताका एक देश चैतन्यरूप है। ताका विकार

विज्ञानात्माके विकारपक्षविषै इतनी गतियां (इतने पक्ष) हैंः—पृथिवी द्रव्यकीन्यांई अनेक द्रव्योंका समुदायरूप सावयव परमात्माके एकदेशका विपरिणाम विज्ञानात्मा है। घटादिककी न्यांई ॥ ॥ अथवा पूर्व संस्थान (पूर्वलीस्थिति)-रूप अवस्थावाले परमात्माका एकदेश विक्रिया (परिणाम)कूं पावताहै। पुरुषके केश अरु भूमिकाके ऊषरआदिककीन्यांई ॥ अथवा सर्व (संपूर्ण)हीं परमात्मा परिणामकूं पावताहै क्षीरआदिककीन्यांई । ये तीन विकल्प (पक्ष) हैं ॥ ति-[३४९]नमैं समानजातिवाले अनेक द्रव्योंके समुदा-

---

जीव है । पृथिवीके एकदेशरूप मृत्तिकाका विकार घट शराव आदिक है । यह एक कल्प (पक्ष) है ॥ औ जैसैं भूमिका ऊषरादि देश वा पुरुषका नख केशादिक विकार है । तैसैं अवयववाले परमात्माका एकदेशरूप विकार जीव है । यह द्वितीय कल्प (पक्ष) है ॥ औ जैसैं क्षीर वा स्वर्ण सर्वात्मकरि दधि अरु रुचक (भूषण) आदिक रूपसैं परिणामकूं पावता है । तैसैं संपूर्णहीं परमात्मा जीवभावसैं परिणामकूं पावै है । यह अन्य विकल्प (तृतीय पक्ष) है ॥

३४९ तिनमैं प्रथम पक्षकूं अनुवाद करिके सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—नानाद्रव्योंका समाहाररूप परमात्मा है वा परस्परकी अपेक्षावाले वे द्रव्य परमात्मा है । ऐसैं जो कहै तो ताकी एकता नहीं होवैगी । जातैं ब-

यका कोईक द्रव्यविशेष विज्ञानात्मभावकूं जब पावताहै। तब समानजातिवाला होनेतें एकता उपचरित (आरोपित)हीं है। परंतु परमार्थतें नहीं। तिसैं[350]प्रकार हुये सिद्धांतका विरोध होवैगा ॥ ॥ [351]औ जब नित्य मिलित सिद्ध अवयवोंविषै अनुगत अवयवी जो परमात्मा। तिस अवस्थावाले ता (परमात्मा)का एकदेशरूप विज्ञानात्मा संसारीहै। तोबी सर्व अवयवोंविषै अनुगत होनेतें अवयवीकूंहीं अवयवगत दोष वा गुण होवैगा। ऐसें विज्ञानात्माके संसारीभावरूप दोषकरि परमात्माहीं संबंधकूं पावैगा।

हुतनकी मुख्य एकता नहीं होवैहै। काहेतें समुदायके अपर पर्यायरूप समाहारकूं समुदायीनतें भेद अरु अभेदकरि दुर्वाच्य होनेकरि कल्पित होनेतें। यह अर्थ है ॥

३५० तब ब्रह्मकी मुख्य एकता मति होहु ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—जातें ता (ब्रह्म)का नानापना किसीकूंबी संमत नहीं है ॥

३५१ द्वितीय पक्षकूं अनुवाद करिके निराकरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्वदाहीं अपृथक् स्थित अवयवरूप जीवनविषै अनुगत चेतन अवयवी परमात्मा जब होवै। तब जैसें प्रति अवयव मलके संसर्ग हुये देहकी मलिनता होवैहै। तैसें परमात्माकूं जीवगत दुःखोंकरि महत् दुःख होवैगा। यातें प्रथम कल्पनाकी न्यांई द्वितीय कल्पनाबी युक्त नहीं है ॥

इसप्रकारकी यहबी अनिष्ट कल्पना होवैगी॥ ॥ [३५२] औ क्षीरकीन्यांई सर्व (सारेपरमात्मा)के परिणाम पक्षविषै सर्व श्रुति अरु स्मृतिनका कोप होवैगा [३५३] औ सो अनिष्ट है॥ [३५४] "निष्क्रिय शांत दिव्य अमूर्त पुरुषहै। सो बाहिर भीतर अजन्माहै। आकाश-कीन्यांई सर्वगत औ नित्यहै। सोई यह महान् अजआत्मा अमर अजर अमृतहै ॥ कदाचित् जन्मता नहीं वा मरता नहीं। यह अव्यक्तहै" इत्यादि श्रुति स्मृति अरु न्यायतें विरुद्ध ये (उक्त-प्रकारके) सर्व पक्षहैं ॥ ॥ किंवा [३५५] अचल (अ-क्रिय) परमात्माके एकदेशरूप पक्षविषै विज्ञाना-त्माकूं कर्मफलकीन्यांई देश (स्वर्गादिक)विषै सं-

---

३५२ तृतीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहांः—" जन्मता नहीं वा मरता नहीं विपश्चित्" इत्यादिक श्रुतियां हैं ॥ औ "कदाचित् जन्मता नहीं वा मरता नहीं" इत्यादिक स्मृतियां हैं ॥

३५३ श्रुतिआदिकके कोपकी इष्टताकूं आशंका करिके। वैदिकके प्रति कहैहैं ॥

३५४ श्रुति स्मृतिकूं विवेचन करते हुये तीन पक्षविषै साधारण दूषणकूं करै हैं ॥ इहां कूटस्थ अरु निरवयवके संपूर्ण अरु एकदेशकरि परिणामका असंभवरूप न्याय है ॥

३५५ जीवकूं परमात्माकी एकदेशताविषै अन्य दोषकूं कहैहैं ॥

सरण (गति)का असंभव होवैगा ॥ [356]वा परमात्माकूं संसारीपना होवैगा । ऐसैं कहा ॥ ॥ [357]अग्निके विस्फुलिंगकीन्यांई परमात्मासैं स्फुटित (फूट्या) जो परमात्माका एकदेश (अवयव)रूप विज्ञानात्मा (जीव)। सो संसरता (गमन करता) है? ऐसैं जो कहै । [358]तथापि परमात्माकूं अवयव-

३५६ एकदेशके एकदेशीसैं व्यतिरेककरि अभावतैं जीवकी स्वर्गआदिकविषै गतिका असंभव होवैगा ऐसैं कहा । अन्यथा परमात्माकीबी गति होवैगी । जातैं पटके अवयवनके चलते हुये पट नहीं चालता है ऐसैं नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां जब प्रथम परमात्मा इत्यादि स्थलविषै कहा है। यह शेष है ॥

३५७ जीवकूं संसारीभावके हुये परमात्माकूं सो नहीं है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

३५८ अब सिद्धांती परमात्माके निरवयवताकी श्रुतितैं अवयवनकी स्फुटता (फूटने)के असंभवकूं मानते हुये दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जहां परमात्माका अवयव फूटता है तहां ताकूं क्षत प्राप्त होवैहै । औ तिनके अवयवनके संसरणके हुये परमात्माकूं प्रदेशांतरविषै अवयवनके समूहके हुये उपचय (वढना) होवैगा । तैसेंहि हुये परमात्माके अवयव जहांतैं निकस जाते हैं । तहां छिद्रभाकी प्राप्ति होवैगी औ जहां वे (अवयव) जाते हैं तहां उपचय (वढना) होवैगा । यातैं " अकाय अव्रण अस्थूल अनणु अह्रस्व " इत्यादि श्रुतिवाक्यका विरोध होवैगा ॥

नके फूटनेकरि क्षत कहिये व्रण (फोट)की प्राप्ति होवैगी औ तिन (अवयवन)के संसरण (गमन) के हुये परमात्माकी प्रदेशांतर (अन्यदेश)विषै अवयवनके समूहके हुये उपचय (वृद्धि) होवैगा औ अच्छिद्रभावकी प्राप्ति होवैगी औ अव्रण वाक्यका विरोध होवैगा ॥ [३५९] किंवा आत्माके अवयवभूत विज्ञानात्माके संसरणके हुये परमात्माकरि शून्य प्रदेशके अभावतें अवयवांतरके नाश करने अरु वृद्धिकरनेकरि हृदयशूलसें दुःखप्राप्तिकीन्यांई परमात्माकूं दुःखीभावकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ [३६०] अग्निके विस्फुलिंग आदिक दृष्टांतनकी श्रुतितें दोष नहींहै? ऐसें जो कहै। [३६१] सो बनै नहीं:—काहेतें श्रुतिकूं ज्ञापक (सिद्ध अरु

---

३५९ परमात्माका एकदेश विज्ञानात्मा (जीव) है। या पक्षविषै ता (परमात्मा)कूं दुर्वार दुःखीपनाबी प्राप्त होवैगा। इसरीतिके दोषांतरकूं सिद्धांती कहैहैं ॥

३६० मृत्तिका लोह विस्फुलिंगरूप दृष्टांतकी श्रुतिके वशतें परमात्माके अवयव जीव सिद्ध होवैहैं। यातें जीवनकूं परमात्माके एकदेशभावविषै उक्त जो दोष। सो प्रगट होता नहीं। काहेतें युक्तिकी अपेक्षाकरि श्रुतिकूं बलवान् होनेतें? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

३६१ शास्त्रका अर्थ युक्तिविरुद्ध नहीं सिद्ध होवैहै। इसरीतिसें सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

अज्ञात अर्थकी बोधक) होनेतें ॥ [३६२] शास्त्र जो है सो पदार्थनकूं अन्यथा करनेकूं प्रवृत्त नहीं होवैहै। [३६३] किंतु यथाभूत अज्ञात पदार्थनके विज्ञापनविषै प्रवृत्त होवैहै॥ ॥ [३६४] ननु इस कथनतें क्या होवैहै? [३६५] इसे कथनतें जो होवैहै। सो श्रवण करः—[३६६] यथाभूत (जिसप्रकारके) मूर्त्त अरु अमूर्त्तआदिक पदार्थरूप धर्म। लोकविषै प्रसिद्धहैं। तिन (लोक

---

३६२ "नञ्" शब्दके अर्थकूं वर्णन करै हैं॥

३६३ हेतु भागकूं आकांक्षापूर्वक विभाग करै हैं॥ इहां "अज्ञात वस्तुनके" ऐसें जो कहा। सो स्मृति आदिककी व्यावृत्ति अर्थ है॥

३६४ शास्त्र अज्ञातका ज्ञापक होहु। तथापि परमात्माकी सावयवता नहीं है। इस अर्थविषै क्या आया? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है॥

३६५ शास्त्रके उक्त प्रकारके स्वभावके हुये जो परमात्माका निरवयवपना फलता है। सो मुजकरि कथन किया हुया एकाग्र हुये तुजकरि सुननेकूं योग्य है। ऐसें सिद्धांती कहैहैं॥

३६६ तहां प्रथम लोकके अविरोधकरि शास्त्रकी प्रवृत्तिकूं दिखावै हैं॥ इहां आदिपदकरि भाव अभाव आदिक ग्रहण करिये है। पदार्थनविषैहीं भोक्ताकी परतंत्रतातें धर्मशब्द है। तिन लोक प्रसिद्ध पदार्थरूप दृष्टांतनके उपन्यासकरि यह अर्थ है औ ताका अविरोधि कहिये लोक प्रसिद्ध अर्थका अविरोधि औ वस्तुअंतर कहिये निरवयवादि दार्ष्टांतिक॥

प्रसिद्ध पदार्थरूप) दृष्टांतनके ग्रहण (उपन्यास) करि तिन (लोकप्रसिद्ध अर्थन)सैं अविरोधिहीं अन्य वस्तुकूं जनावनेकूं शास्त्र प्रवृत्त होवैहै। [३६७] लौकिक वस्तुसैं विरोधके जनावने अर्थ लौकिक दृष्टांतकूंहीं ग्रहण करता नहीं। [३६८] ग्रहण किया (उपन्यास किया)बी दृष्टांत व्यर्थ होवैगा। काहेतैं दार्ष्टांतिककी असंगतितैं॥ [३६९] जातैं अग्नि शीत है वा आदित्य तपता नहीं। ऐसैं दृष्टांतनके शतकरि बी प्रतिपादन करनेकूं शक्य नहींहै। काहेतैं प्रमाणांतरकरि वस्तुकूं अन्यथा अधिगत (और प्रकारसैं निश्चित) होनेतैं॥ [३७०] औ प्रमाण जो है सो अन्यप्रमाणके साथि विरोधकूं पावता नहीं।

---

३६७ ताका अविरोधीहीं। इस एवकारके व्यावर्त्य (निषेध्य)कूं कहैहैं॥

३६८ विपक्षविषे दोषकूं कहैहैं॥

३६९ सामान्यकरि उक्त अर्थकूं दृष्टांतविशेषकी निविष्टताकरि स्पष्ट करै हैं॥ इहां अग्निका उष्णपना औ आदित्यका तापकपना "अन्यथा" ऐसैं कहियेहै॥

३७० ननु लौकिक प्रमाण जो है। सो लौकिक पदार्थसैं अविरुद्धहीं स्वार्थकूं समर्पण करै है॥ वैदिक फेर अपौरुषेय जो वाक्य। सो तिस (लौकिक पदार्थ)सैं अविरुद्धबी स्वार्थकूं प्रमाज्ञानका विषय करैगा। अलौकिक विषयवाला होनेतैं? यह शंका भयी। यातैं कहैहैं॥

जातैं प्रमाणांत के अविषय (अज्ञातवस्तु)कूंहीं प्रमाणांतर ज्ञापन करैहै औ[३७१] लौकिक पदपदार्थके आश्रय करनेके व्यतिरेकसैं (विना) आगमकरि अज्ञात वस्तुअंतर जनावनेकूं शक्य नहींहै। [३७२]तातैं प्रसिद्ध न्याय (लौकिक दृष्टांत)कूं अनुसरनेवाले आगमप्रमाणकरि परमात्माके सावयवभावकरि अंशअंशीभावकी कल्पना। परमार्थतैं प्रतिपादन करनेकूं शक्य नहींहै॥ ॥ [३७३]ननु "क्षुद्र विस्फुलिंग" औ "मेराहीं अंश" ऐसैं

---

३७१ ननु श्रुतिकूं अज्ञातकी ज्ञापकताके हुये लोककी अपेक्षासैं रहित होनेतैं तिस (लोक)सैं विरोधके हुयेबी कौंन हानि है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"लोककरि प्राप्त सामर्थ्यवाला शब्द। वेदविषैबी बोधक होवैहै" इस न्यायतैं तिस (लोक)की अपेक्षासैंरहित श्रुति। अज्ञातवस्तुकूं जनावनेकूं परिपूर्ण नहीं है॥

३७२ शास्त्रकूं लोक अनुसारीताके सिद्ध भये फलितकूं कहैहैं॥ इहां प्रसिद्ध न्याय कहिये लौकिक दृष्टांत है। जातैं नित्य आकाशकी सावयवता नहीं है औ परमात्माबी नित्य अंगीकार किया है। ताकी सावयवताकरि अंशांशीभावकी कल्पना वस्तुतैं नहीं संभवैहै। लोक विरोधतैं यह अर्थ है॥

३७३ ननु जीवकूं परमात्माके अंशभावके अनंगीकार किये हुये श्रुति स्मृतिकी गति कहनेकूं योग्य है? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है॥

सुनियेहै औ स्मरण करियेहै? ऐसें जो कहै। [३७४] सो बनै नहीं:—काहेतें तिन श्रुति अरु स्मृतिकूं एकताके ज्ञानरूप अर्थके परायण होनेतें॥ जातें अग्निका विस्फुलिंग अग्निहीं है। ऐसें लोकविषे एकताके ज्ञानके योग्य देख्या है। [३७५] तिसप्रकार हुये अंश जो है सो अंशीकेसाथि एकताके ज्ञानके योग्य होवैहै॥ [३७६] तहां ऐसें हुये विज्ञानात्माके परमात्माके विकारभाव अरु अंशभावके वाचक जे शब्द हैं। [३७७] वे उपक्रम अरु उपसंहारकरि परमात्माकेसाथि जीवकी एकताके ज्ञानके कथन करनेकी इच्छावाले हैं॥ [३७८] जातें सर्व उपनिषदनविषे पूर्व एकताकूं प्रतिज्ञाकरिके दृष्टांतों-

---

३७४ अब सिद्धांती तिन (श्रुतिस्मृति)की गतिकूं कहैहैं॥

३७५ विस्फुलिंगविषै दिखाये न्यायकूं सर्वत्र अंशमात्रविषै अतिदेश करै हैं॥

३७६ दृष्टांतके उक्त प्रकारकी नीतिकरि स्थित भये दार्ष्टांतिककूं कहैहैं॥ परमात्माकेसाथि जीवकी एकताकूं विषय करनेवाले प्रत्ययकूं आधान करनेकूं इच्छते हैं। ऐसें जे शब्द। वे तिस प्रकारके कहैहैं॥

३७७ तिन शब्दनकी एकताके ज्ञानके अवतारकी हेतुताविषै अन्य हेतुकूं संक्षेपसैं कहैहैं॥

३७८ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं॥

करि अरु हेतुनकरि परमात्माका विकार अरु अंश आदिक भाव। जगत्कूं प्रतिपादन करिके। फेर एकताकूं उपसंहार करैहै ॥ [३७९] सो जैसैं इहांहीं (इसीहीं उपनिषद्विषे) प्रथम "यह सर्व जो यह आत्माहै" ऐसैं प्रतिज्ञा करिके उत्पत्ति स्थिति अरु लयके हेतु अरु दृष्टांतनकरि विकार विकारीभावआदिक एकताके ज्ञानके हेतुनकूं प्रतिपादन करिके "यह आत्मा अनंतर अबाह्य ब्रह्महै" ऐसैं उपसंहार करैगी ॥ [३८०] तातैं उपक्रम अरु उपसंहारकरि यह अर्थ निश्चय करियेहै ॥ यातैं परमात्माकेसाथि जीवकी एकताके ज्ञानकी दृढताअर्थ उत्पत्ति स्थिति अरु लयके प्रतिपादक वाक्य हैं औ [३८१] अन्यथा। वाक्यभेदके प्रसंगतैं ॥ [३८२] सर्व उपनिषदनविषे विज्ञानात्माका

---

३७९ उक्त अर्थकूं उदाहरण निष्ठताकरि विभाग करैहैं ॥ इधर "इहां" इस शब्दकरि प्रकृत उपनिषत्का कथन है औ आदिशब्दकरि अंशांशीभाव आदिक ग्रहण करियेहै ॥

३८० विवरण किये संग्रहण वाक्यकूं उपसंहार करैहैं ॥

३८१ तिन (वाक्यन)की स्वार्थ निष्ठताविषै दोषकूं कहते हुये एकताके ज्ञानरूप अर्थवान्ताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

३८२ एकवाक्यताके संभव हुये वाक्यका भेद नहीं अंगीकार करिये है। इस न्यायकरि उक्त अर्थकूं प्रपंचन करै हैं ॥

परमात्माकेसाथि एकताका प्रत्यय विधान करियेहै । इसरीतिसैं सर्व उपनिषद्वादीनकी अविप्रतिपत्ति (अविवाद) है औ सो विधान । एकवाक्यके योग हुये संभवैहै अरु उत्पत्तिआदिकके वाक्यनकी वाक्यांतरताकी कल्पनाविषै प्रमाण नहीं है औ[383] फलांतर कल्पना करनेकूं योग्य होवैहै । [384]तातैं उत्पत्तिआदिककी श्रुतियां आत्माकी एकताके प्रतिपादनपरहैं॥ ॥ औ[385] ईहां (इस उक्त अर्थविषै) संप्रदायके वेत्ता (द्रविडाचार्य) आख्यायिकाकूं कहतेहैंः—[386]कोईक त्याग

३८३ किंचः—तिन (वाक्यन)की स्वार्थनिष्ठताके हुये श्रुत फलके अभावतैं फलांतर कल्पनेकूं योग्य है औ एकताके ज्ञानकी विषयताकरि ताके ज्ञानमैं निराकांक्ष तिनविषै कल्पना युक्त नहीं है । काहेतैं दृष्टके होते अदृष्टकी कल्पनाके अनवकाशतैं ऐसैं कहेहैं ॥

३८४ उत्पत्ति आदिककी श्रुतिनकी स्वार्थनिष्ठताके असंभव हुये फलितकूं उपसंहार करै हैं ॥

३८५ "तत्वमसि" आदिक वाक्य ऐक्यपर है अरु ताका शेष (उपकारक) सृष्टि आदिकका वाक्य है । ऐसैं कहे हुये अर्थविषै द्रविडाचार्यकी संमतिकूं कहेहैं ॥

३८६ तहां दृष्टांतरूप आख्यायिकाकूं रचते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातमात्रविषै पूर्व अवस्थामैंहीं "राजा हूं" इस अभिमानके आविर्भावतैं औ तिनोंकरि ताके परित्याग-

निमित्तके अनिश्चयका विषय राजपुत्र था। सो जातमात्रहीं मातापितादिकरि परित्यक्त हुया व्याधके गृहविषै सम्यक् वृद्धिकूं पावताभया। सो इस (राजा)के वंशभावकूं नजानता हुया व्याधजातिके प्रत्ययवाला हुया व्याधजातिके कर्मोंकूंहीं अनुवर्तन करताहै। "मैं राजा हूं" इस अभिमानपूर्वक राजजातिके कर्मोंकूं अनुवर्तन करता नहीं। [३८७] जब फेर कोईक परम कारुणिक राजपुत्रकी राजलक्ष्मीकी प्राप्तिकी योग्यताकूं जानता हुया इस (राजा)की पुत्रताकूं बोधन करैहै:—[३८८] "तूं व्याध नहींहैं' इस राजाका पुत्र हैं। [३८९] किसी प्रकारसैंबी व्याधके गृहकेप्रति

विषै निमित्त विशेषकी अनिश्चितताके द्योतनअर्थ इहां किल (प्रसिद्ध) ऐसैं कहा। औ व्याधजातिका ज्ञान अरु ताका किया "मैं व्याध हूं" ऐसा अभिमान जिसकूं है सो तिस अभिमानके किये मांस विक्रयण आदिक व्याधजातिके कर्मोंके तांई अनुवर्तता है औ "मैं राजा हूं" इस अभिमानपूर्वक तिस जातिके किये प्रजापालन आदिक कर्मोंके तांई अनुवर्तता नहीं ॥

३८७ अज्ञान औ ताके कार्यकूं कहिके। अब ज्ञान औ ताके फलकूं दिखावै हैं ॥

३८८ बोधनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावैहैं ॥

३८९ तब शबर (व्याध)के गृहविषै प्रवेश कैसैं भया?

अनुप्रवेशकूं पायाहैं" ऐसैं ॥ तब सो (राजकुमार) ऐसैं बोधित हुया व्याधजातिके प्रत्यय अरु कर्मोंकूं त्याग करिके। "मैं राजा हूं" ऐसैं आपके पिता अरु पितामहकी पदवीकेतांईं अनुवर्तन करैहै ॥ ॥ [३९०] तैसैं प्रसिद्ध यह (जीवात्मा) परमात्मातैं अग्नितैं विस्फुलिंगआदिककीन्यांईं तिसजातिवालाहीं कहिये तिसस्वभाववाला (वस्तुतैं परमात्मा)हीं हुया विभक्त (परमात्मातैं भिन्न) होयके इस (अपरोक्ष अनुभवगम्य) देहेंद्रियादिरूप वनविषै प्रविष्ट संसारी हुया देहेंद्रियादि संसारके धर्मकेप्रति "मैं देहेंद्रियादिकका संघातहूं। कृशहूं। स्थूलहूं। सुखीहूं। दुः-

---

तहां कहैहैं ॥ इहां "मैं राजा हूं" इस अभिमानपूर्वक आपके पिता अरु पितामहकी पदवीकूं अनुसारी हुया वर्तता है। ऐसैं संबंध है ॥

३९० दार्ष्टांतिकरूप आख्यायिकाकूं कहैहैं ॥ इहां जीवके परमात्मातैं विभागविषै अज्ञान औ ताका कार्यरूप निमित्त प्रसिद्ध है। ऐसैं द्योतन करनेकूं " किल (प्रसिद्ध) " ऐसैं कहा औ तिस जातिवाला कहिये तिस स्वभाववाला। अर्थ यह जो वस्तुतैं परमात्माहीं हुया औ इधर इहां:—(इसविषै) ऐसैं अपरोक्ष अनुभव गम्यताकी उक्ति है औ गहन कहिये गंभीर वन ॥

खीहूं" ऐसें आपके[३९१] परमात्मभावकूं न जानता हुया अनुवर्तन करैहै ॥ तूं[३९२] इस स्वरूपवाला नहींहैं । किंतु असंसारी परब्रह्महीं हैं ऐसें आचार्यकरि प्रतिबोधित हुया तीन एषणाकी अनुवृत्तिकूं छोडीके "मैं ब्रह्महींहूं" ऐसें जानताहै ॥ ईहां[३९३] राजपुत्रकूं राजप्रत्ययकीन्यांई अधिकारीकूं ब्रह्मप्रत्यय दृढ होवैहै ॥ विस्फुलिंगकीन्यांईहीं तूं परब्रह्मतें भ्रष्ट भयाहैं । ऐसें कथन कीये हुये विस्फुलिंगकी[३९४] अग्नितें भ्रंशतें पूर्व अग्निकेसाथि एकताके देखनेतें । तातें एकताके ज्ञानकी दृढताअर्थ सुवर्णमणि लोह अरु अग्निके विस्फुलिंगरूप दृष्टांतहैं । उत्पत्तिआदिक

३९१ संसार धर्मके अनुवर्तनविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३९२ उक्त अविद्या तत्कार्यकी विरोधिनी ब्रह्मात्मविद्याकूं प्राप्त करै हैं ॥

३९३ राजपुत्रकूं "मैं राजा हूं" इस प्रत्ययकी न्यांई । वाक्यतैंहीं अधिकारीविषै "मैं ब्रह्म हूं" यह प्रत्यय जब होवैहै । तब विस्फुलिंगादि दृष्टांतकी श्रुतिकरि क्या है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

३९४ तथापि ब्रह्मके प्रत्ययकी दृढता कैसें होवैहै । तहां कहैहैं ॥ इहां दृष्टांतनविषै एकताके दर्शनके हुये मैं "तातैं" ऐसें स्मरण किया है ॥

भेदके प्रतिपादन परायण नहींहैं ॥ औ "एकप्रकारसैं देखनेकूं योग्य है" ऐसैं सैंधवघनकीन्यांई[३९५] प्रज्ञप्तिरूप एकरस निरंतरताके निश्चयतैं [३९६]औ जब ब्रह्मकी चित्रपटकीन्यांई अरु वृक्ष समुद्रादिककीन्यांई उत्पत्तिआदिक अनेक धर्मोंकरि विचित्रता ग्रहण करावनेकूं वांच्छित होवै। तब "सैंधवघनकीन्यांई एकरस अनंतर अबाह्य है" ऐसैं श्रुति। उपसंहार नहीं करती औ "एकप्रकारसैंहीं देखनेकूं योग्य है" ऐसैं नहीं कहती औ "जो इस (अनानाभूत ब्रह्म)विषै नानाकीन्यांई देखताहै" ऐसैं भेदकी निंदाके वचनकूं नहीं कहती ॥ जातैं कहतीभयी । [३९७]तातैं

---

३९५ उत्पत्ति आदिकके भेदविषै शास्त्रका तात्पर्य नहीं है। इस अर्थविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां चकार जो है। सो "अवधारणतैं" इस पदकूं अनुकर्षण करै है ॥

३९६ संक्षेपकरि उक्त अर्थकूं वर्णन करैहैं ॥ इहां निंदाका वचन नहीं कहताभया। ऐसैं संबंध है ॥

३९७ एकत्वके अवधारणके फलकूं कहैहैं ॥ इहां:—एककी भेदसहितताकूं निवारण करनेकूं "एकरूप" ऐसा विशेषण है औ आदिशब्दकरि प्रवेश अरु नियमन ग्रहण करियेहै। औ "ताके प्रत्ययके करने अर्थ नहीं" इस ठिकाने तत्शब्दकरि उत्पत्तिआदिकका भेद कहनेकूं वांच्छित है ॥

एकरूप एकताके ज्ञानकी दृढता अर्थहीं सर्व वेदांतनविषै उत्पत्ति स्थिति अरु लयआदिककी कल्पनाहै। तिन (उत्पत्तिआदिक)के ज्ञानके करने अर्थ नहीं ॥ [३९८] औ "निरवयव असंसारी परमात्माका संसारी। एकदेश है" यह कल्पना श्रेष्ठ नहीं है। काहेतें परमात्माकूं स्वतः देशरहित होनेतैं ॥ [३९९] अदेश (देशरहित) परमात्माके एकदेशके संसारीभावकी कल्पनाके हुये परमात्माहीं संसारीहै। ऐसैं कल्पित होवैगा॥ औ [४००] जब अन्य उपाधिका किया एकदेश परमात्माका होवैहै। घट अरु करकआदिकके आकाशकीन्यांई? [४०१] तब तिस (ब्रह्म)विषै विवेकिनकूं

३९८ किंवाः—परमात्माका एकदेश विज्ञानात्मा है। इस ठिकाने ताका एकदेश स्वाभाविक है वा औपाधिक है? ऐसैं विकल्प करिके प्रथमपक्षकूं दूषण देते हैं ॥

३९९ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

४०० द्वितीय पक्षकूं उठावते हैं ॥

४०१ एकदेशकी औपाधिकताके पक्षविषै परमात्माविषै विवेकवाले अरु ताके अखंडताकी बुद्धिकूं भजनेवाले पुरुषनकूं ताका एकदेश वस्तुतैं पृथक् होयके व्यवहारका विषय है। ऐसी बुद्धि नहीं उपजती है। काहेतैं औपाधिककूं स्फटिकके लोहित (रक्तरंग)कीन्यांई मिथ्या होनेतैं। ऐसैं उत्तरकूं कहैहैं ॥

परमात्माका एक देश पृथक् व्यवहारका भज-नेवालाहै । ऐसी बुद्धि नहीं उत्पन्न होवैहै ॥ ॥ ननु[४०२] अविवेकी पुरुषनकूं औ विवेकी पुरुषनकूं उ-पचरित (आरोपित) बुद्धि देखी है? ऐसें जो कहै । सो[४०३] बनै नहीं:—काहेतें अविवेकी पुरुषनकूं मिथ्याबुद्धिवाले (भ्रांत) होनेतें औ विवेकी[४०४] पु-रुषनकूं संव्यवहारमात्र (कथनप्रतीतिमात्र)के

---

४०२ ननु जीवविषै मैं कर्त्ता हूं । मैं भोक्ता हूं । ऐसी परिच्छिन्न बुद्धि सर्वकूं उपलभ्यमान होवैहै औ सो (बुद्धि)ता (जीव)कूं वस्तुतें अपरिच्छिन्न ब्रह्ममात्र होनेतें मंचेके पुकारनेकी बुद्धिकीन्यांई उपचरित (कथनमात्र) है । तातें दोनूंकूं (अविवेकी अरु विवेकीनकूं) उक्त आत्म-बुद्धिके देखनेतें परमात्माकी एकदेशता जीवकूं दुर्वार है ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी प्रश्नकूं करैहै ॥

४०३ तहां अविवेकिनकूं उक्तप्रकारकी बुद्धि उपचरित नहीं होवैहै । काहेतें न तिसविषै तिसकी बुद्धि होनेकरि अविद्यारूप होनेतें । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

४०४ तथापि विवेकीनकूं इसप्रकारकी बुद्धि उपचरित होवैहै ? ऐसें जो कहै । तहां सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिनका संव्यवहार जो अभिज्ञा (प्रतीति) अरु अभिवदन (कथन) स्वरूप है । तितने मात्रका (व्यवहार-मात्रका) आलंबन (आभासभूत अर्थ) ताकूं विषय करने-वाली होनेतें तिनकी बुद्धिकूंबी मिथ्या बुद्धिरूप होनेतें उ-पचरितभावकी असिद्धि है ॥

आलंबन (आभास)रूप अर्थ (विषय)वाले हो-
नेतैं ॥ [405] जैसैं कृष्ण औ रक्त आकाशहै । ऐसैं अ-
विवेकीनकीन्यांई विवेकीनकूंबी कदाचित् आ-
काशकी कृष्णता औ रक्तता संव्यवहारमात्रके
आलंबनरूप अर्थभावकूं प्राप्त होवैहै औ परमा-
र्थतैं आकाश कृष्ण वा रक्त होनेकूं योग्य नहींहै ॥
[406] यातैं पंडितनकरि ब्रह्मस्वरूपके निश्चयविषै ब्र-
ह्मके अंशअंशीभाव अरु एकदेश एकदेशीभाव
अरु विकार विकारीभावकी कल्पना करनेकूं
योग्य नहीं है । [407] सर्व उपनिषदनकूं सर्व क-

---

४०५ विवेकीनकूं औ अविवेकीनकूं आत्माविषै परिच्छिन्न-बुद्धि प्रतीत होवैहै । इतनेकरि ताकी वस्तुतैं ब्रह्मकी अंशता आदिक नहीं सिद्ध होवैहै । यह दृष्टांतकरि साधते हैं ॥ इहां अविवेकीनकीन्यांई । यह "अपि" शब्दका अर्थ है ॥

४०६ ब्रह्मविषै वस्तुतैं अंशआदिककी कल्पना करने योग्य नहीं है । ऐसैं दार्ष्टांतिककूं उपसंहार करै हैं ॥ इहांः— अंश अंशीका विशदीकरण (स्पष्ट करने)रूप एकदेश एक-देशी । ऐसा शब्द है ॥

४०७ अतः (यातैं) शब्दकरि ग्रहण किये हेतुकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां सर्व कल्पनाओंका अपनयनहीं अर्थ है । सो साररूप होनेकरि अभीष्ट है उपनिषदनकूं तिसके परायण होनेतैं तिस एक (केवल उपनिषद्)करि समधिगम्य (स-म्यक् जानने योग्य) ब्रह्मविषै कदाचित्बी कल्पना नहीं है । यह अर्थ है ॥

ल्पनाके निवारणरूप अर्थमय सारविषै तत्पर होनेतैं ॥ [408] यातैं सर्व कल्पनाकूं छोडीके आकाशकीन्यांई निर्विशेषता निश्चयकरनेकूं योग्यहै "आकाशवत् सर्वगत है औ नित्य है। बाह्यहुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं" इत्यादि सैंकडो श्रुतिनतैं ॥ उष्णस्वरूप अग्निविषै शीतरूप एक देशकीन्यांई। वा प्रकाशस्वरूप सूर्यविषै तमरूप एकदेशकीन्यांई। [409] आत्माकूं ब्रह्मतैं विलक्षण कल्पना करै नहीं। काहेतैं सर्व उपनिषदनकूं सर्व कल्पनाके निवारणरूप अर्थमय सारपर होनेतैं ॥ [410] तातैं संसार धर्मरहित आत्माविषै नाम रूप उपाधिमय निमित्तवालेहीं सर्व व्यवहार हैं ॥ काहेतैं "[411] रूपरूपकेतांई प्रति-

---

४०८ उपनिषदनकूं निर्विकल्पक वस्तुकी तत्परताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

४०९ ब्रह्मकी निर्विशेषताके हुयेबी ताके एकदेशरूप आत्माकी सविशेषता क्यूं नहीं होवैगी? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४१० ननु आत्मा जब निर्विशेष है तब तिसविषै तीन प्रकारका व्यवहार कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४११ आत्माविषै सर्व व्यवहार नाम रूप उपाधिका किया है। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

करियेहै! इसरीतिसैं अद्वैतहीं तत्व है ॥ ॥[417] कर्मकांडकी प्रमाणताके विरोधके परिहार अर्थ [विज्ञानात्माका भेद कल्पना करियेहै] ऐसैं एक (द्वैतवादी) कहतेहैं ॥ [418] जातैं कर्मके प्रतिपादक वाक्य जे हैं वे अनेक क्रिया कारक फल भोक्ता अरु कर्त्तारूप आश्रय (विषय)वालेहैं ॥ [419] विज्ञानात्माके भेदके अभाव हुये निश्चयकरि असंसारी परमात्माकीहीं एकताके हुये पुरुष इष्ट फलवाली क्रियाविषै कैसैं प्रवर्त्त होवैंगे वा अनिष्ट फलवाली क्रियातैं कैसैं निवर्त्त होवैंगे ॥ [420] वा किस बद्ध पुरुषके मोक्ष अर्थ उपनिषत् आ-

---

४१७ किस अर्थ इस प्रश्नकूं मानते हुये द्वैतवादीनके मतकूं उठावते हैं ॥

४१८ वेदांतनकूं ऐक्यपरताके हुयेबी ताकी प्रमाणताके विरोधका प्रसंग कैसैं होवैहै? तहां कहैहै ॥

४१९ तथापि विरोधका अवकाश होवैगा? यह आशंका करिके कहैहै ॥

४२० केवलाद्वैतपक्षविषै कर्मकांडके विरोधकूं कहिके। तहांहीं (केवलाद्वैत पक्षविषैहीं) ज्ञानकांडके विरोधकूं कहैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—परमात्माकूं नित्यमुक्त होनेतैं औ आपतैं वा परतैं बद्ध अन्यके अभावतैं शिष्यका अभाव है। तैसैं हुये अधिकारीके अभावतैं उपनिषद्के आरंभकी असिद्धि होवैगी ॥

रंभ करियेगी ॥ किंवा[421] परमात्माकी एकताके वादीके पक्षविषै परमात्माकी एकताका उपदेश कैसैं होवैगा । वा तिस उपदेशके ग्रहणका फल कैसैं होवैगा ॥ जातैं[422] बद्धपुरुषके बंधके नाश अर्थ उपदेश होवैहै । तिस (बद्ध)के अभाव हुये उपनिषद्रूप शास्त्र निर्विषय (अधिकाररहित) होवैगा ॥ जब[423] ऐसैं है । तब उपनिषद्वादीके

---

४२१ कर्मकांडकी औ अन्य (ज्ञान) कांडकी प्रमाणताकी अनुपपत्ति जो है सो विज्ञानात्माआदिकके भेदकूं कल्पना करै है । ऐसैं उभय अर्थापत्ति कही । तिनमैं द्वितीय अर्थापत्तिकूं प्रपंचन करै है ॥

४२२ ननु फेर उपदेशकी अनुपपत्ति कौंन है ? तहां कहैहै ॥ इहां ताके अभाव हुये इस ठिकाने तत् शब्द जो है सो बद्धपुरुषकूं अधिकार करैहै औ निर्विषय कहिये निरधिकार ॥

४२३ किंवाः—यद्यपि दो अर्थापत्ति उक्तप्रकारकरि ऊठती है । तब भेदकूं दुर्निरूप होनेतैं कर्मकांड प्रमाण कैसैं है । इसप्रकार जो ब्रह्मवादीकरि कर्मवादी चोदना (शंका)-का विषयकरियेहै । सो ब्रह्मवादका कर्मवादकरि तुल्य है ॥ काहेतैं ब्रह्मवादविषैबी शिष्य अरु शासिता (शिक्षक) आदिकके भेदके अभाव हुये उपनिषदनकी प्रमाणता कैसैं होवैगी आक्षेप करनेकूं सुकर होनेतैं । औ जो उपनिषदनका प्रतीयमान शिष्य अरु शासिताआदिकके भेदकूं आश्रय करिके प्रमाणपना है । ऐसा परिहार है । सो कर्मकांडकूंबी

पक्षका कर्मकांडवादीके पक्षसैं चोद्य (प्रश्न) अरु परिहार (समाधान)का समान पंथ (मार्ग) है ॥ जिसैं[४२४] कारणकरि भेदके अभाव हुये कर्मकांड जो है सो निरालंब (निर्विषय) आपकेतांई प्रमाणताके प्रति पावता नहीं। तैसैं उपनिषत्बी हैं। यातैं प्रश्नकी समतातैं परिहारकीबी समता है॥ जब[४२५] ऐसैं है तब जिसकी प्रमाणताके हुये स्वार्थका विघात नहींहै तिस कर्मकांडकीहीं प्रमाणता होहू। उपनिषदनकी[४२६] प्रमणाताकी कल्पनाविषै तो स्वार्थका विघात होवैहै। यातैं

समान है। काहेतैं तहां (कर्मकांडविषै)बी प्रातीतक भेदकूं लेके प्रमाणताकूं सुघटित होनेतैं औ भेदप्रतीतिकी भ्रांति नहीं है बाधके अभावतैं। इस अभिप्रायकरिके प्रतिवादी कहैहै ॥

४२४ चोद्यकी समताकूं विवरण करैहै ॥ इहां ऐसैं चोद्यकी समतातैं परिहारकीबी समता है। यह शेष है ॥

४२५ ननु कर्मकांड भेदपर है। ब्रह्मकांड अभेदपर भासता है। तिन दोनूंमैंसैं एक वस्तु निर्विकल्प संभवै है। यातैं दोनूंमैंसैं एककी अप्रमाणता है? यातैं कहैहै ॥

४२६ उपनिषदनकूंबी स्वार्थकी अविघातकता तुल्य है? यह आशंका करिके कहैहै ॥ इहां स्वार्थ कहिये शब्दकी शक्तिवृत्तिके वशतैं प्रतीयमान सृष्टिआदिकका भेद ॥

तिनकी प्रमाणता मति होहू ॥ [427]जातैं कर्मकांड जो है सो प्रमाण हुया अप्रमाण होनेकूं योग्य नहीं है । [428]जैसैं प्रदीप जो है सो प्रकाश करने योग्य वस्तुकूं प्रकाश करैहै औ नहीं करैहै । ऐसैं ॥ व्याघातरूप दोषके होनेतैं ॥ औ [429]प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके प्रतिषेधतैं॥ उपनिषत् जे हैं वे ब्रह्मकी एकताकूं प्रतिपादन करती हुयी केवल स्वार्थके विघातकूं औ कर्मकांडकी प्रमाणताके विघातकूं नहीं करैहैं किंतु प्रत्यक्षआदिक निश्चित भेदज्ञानरूप अर्थवाले प्रमाणोंके साथि

---

४२७ औ जो कहिये हैः—कर्मकांडकी व्यावहारिक प्रमाणता है तात्विक नहीं औ तात्विक तो अन्य कांड (ज्ञानकांड)की है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहै ॥

४२८ जोई प्रमाणकी व्यावहारिकता है । सोई ताकी तात्विकता है । जातैं प्रमाण जो है । सो तत्वकूं जनावता नहीं । ऐसैं नहीं होवैहै । काहेतैं मेरी माता वंध्या है । या वाक्यकी न्यांईं । वचनके व्याघाततैं । इस अभिप्राय करिके दृष्टांतकूं कहैहै ॥ इहां स्वार्थके अभिघाततैं औ कर्मकांडके विरोधतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है । ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करनेकूं इति शब्द है ॥

४२९ उपनिषदनकी अप्रमाणताविषै अन्य हेतुकूं कहैहै ॥ इहां प्रत्यक्ष आदिक निश्चितभेदकी प्रतिपत्तिरूप अर्थवाले जे प्रमाण हैं तिनोंकरि । ऐसैं विग्रह है ॥

विरोधकूं पावैहैं । तातें उपनिषदनकी अप्रमाण-
ताहीं है । [४३०] वाँ अन्य अर्थवान्ता होहू । परंतु ब्र-
ह्मकी एकताके ज्ञानरूप अर्थवान्ता नहीं है ?
[४३१] तहां सिद्धांती कहैहैं:—यह शंका बनै नहीं । काहे-
तें याके उत्तरकूं हमोंकरि पूर्व कथन किया होनेतें ॥
[४३२] जातें प्रमाणकी प्रमाणता वा अप्रमाणता जो है
सो प्रमाज्ञानके उत्पादन अरु अनुत्पादनरूप
निमित्तवाली है ॥ [४३३] जँबै अन्यथा (ओरप्रकारसैं)
होवै तब स्तंभआदिककूं प्रमाणताके प्रसंगतें
[मर्यादका भंग होवैगा] ॥ ॥ [४३४] ननु यातें शब्दआ-
दिक प्रमेयविषै क्या सिद्ध भया ? [४३५] जँबै प्रथम

---

४३० ननु अध्ययनविधिकरि प्राप्त तिन उपनिषदनकी अप्रमाणता कहांतें होवैगी ? यह आशंका करिके प्रतिवादी । कहैहै ॥

४३१ अब सिद्धांती सिद्धांतकूं कहैहैं ॥

४३२ ताहीकूं स्पष्ट करनेकूं सामान्य न्यायकूं कहैहैं ॥

४३३ स्वार्थविषै प्रमाकी उत्पादकताके अभाव हुयेबी प्र-माणताकूं इच्छनेवालेके प्रति कहैहैं ॥

४३४ उक्त प्रकारके प्रयोजनका किया प्रमाणपना है वा अप्रमाणपना है । इस पक्षविषै क्या फलित होवैहै । ऐसैं प्रतिवादी पूछता है ॥

४३५ तहां उपनिषद जे हैं वे क्या स्वार्थकूं बोधन करै

उपनिषद् जे हैं । वे ब्रह्मकी एकताके ज्ञानरूप प्रमाणकूं करैहैं तब कैसैं अप्रमाण होवैगी ॥ "नहीं करैहैं"[४३६] इसप्रकार जो कहै । तो जैसैं "अग्नि शीत है" ऐसैं । सो तूं इसप्रकार कहता हुया कहनेकूं योग्य हैः—उपनिषद्की प्रमाणताके प्रतिषेधरूप अर्थवाला तेरा वाक्य । उपनिषद्की प्रमाणताके निषेधकूं क्या नहीं करैहै । वा अग्नि रूपके प्रकाशकूं नहीं करैहै ॥ अथवा करैहै ॥ जब[४३७] करैहै तब प्रतिषेधरूप अर्थवाला तेरा वचन प्रमाण होहू औ अग्निरूपका प्रकाशक होवैगा ॥ औ[४३८] प्रतिषेधक तेरे वाक्यकी प्रमाणताके हुये उपनिषदनकी प्रमाणता

हैं वा नहीं ? ऐसैं विकल्प करिके आद्यपक्षकूं अनुवाद करिके सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

४३६ द्वितीय पक्षकूं उठायके निराकरण करै हैं ॥

४३७ जैसैं अग्नि शीतकूं नहीं करै है । तैसैं उपनिषद्बी ब्रह्मकी एकताविषै प्रमाणकूं नहीं करै हैं । ऐसैं कहनेवालेके प्रति प्रतिबंधरूप ग्रह युक्त नहीं है । अनुभवके विरोधतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४३८ ननु तब स्वार्थविषै प्रमाका जनक होनेतैं वाक्यकी प्रमाणता होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

होवैगी हीं। ईहां[439] तुम कहो कौंन परिहार है? ॥॥ ननु[440] इहां प्रत्यक्षतैं मेरे वाक्यविषे उपनिषदनकी प्रमाणताके प्रतिषेधरूप अर्थका निश्चय होवैहै औ अग्निविषै रूपके प्रकाश करनेके निश्चयका प्रमापक है? तब तेरा प्रद्वेष ब्रह्मकी एकताके ज्ञानविषै है। प्रत्यक्ष प्रमाकूं करनेवाली प्रतीयमान उपनिषदनाविषै प्रतिषेधके[441] असंभवतैं औ शोकमोहआदिककी[442] निवृत्तिरूप प्रत्यक्षफल ब्र-

---

४३९ उपनिषदनकी अप्रमाणताके हुये तुह्मारे वाक्यकी अप्रमाणता होवैगी औ ताकी (तेरे वाक्यकी) प्रमाणताके हुये तो उपनिषदनकी प्रमाणता दुर्वार है। ऐसैं समताके प्राप्त हुये व्यवस्था करनेवाला कहनेकूं योग्य है ॥

४४० उक्त अर्थकूंहीं शंका समाधानकरि स्पष्ट करैहैं ॥

४४१ प्रतिषेधकूं अंगीकार करिके उक्त प्रकारकी उपनिषद् कही। उपलंभ (प्रतीति)के हुये ता (निषेध)कूं निरवकाश होनेतैं निषेधकी अनुपपत्ति है। ऐसैं कहैहैं ॥

४४२ उपनिषदनतैं उत्पन्न बुद्धिकूं विफल होनेतैं तिनकी अप्रमाणता है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:— एकताकी प्रतिपत्ति प्रथम आपातकरि उपजतीहै औ सो विचारकूं योजना करिके मननादिद्वारा दृढ होवैहै। सो फेर अशेष शोकआदिककूं दूरी करैहै। ऐसैं परंपराकरि जनित फल होवैहै। इसरीतिसैं देखनेकूं योग्य है ॥

ह्मकी एकताके निश्चयकी परंपरासैं जनित है। ऐसैं हम कहतेहैं ॥ [४४३] तातैं याके उत्तरकूं हमौं-करि पूर्व कथन किया होनेतैं उपनिषद्के प्रति अप्रमाणताकी शंका तावत् नहीं है ॥ ॥ [४४४] औ जो पूर्व कहाथा किः—स्वार्थके विघातकी करनेहारी होनेतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है? ऐसैं ॥ [४४५] सोबी बनै नहीं:—काहेतैं तिन (उपनिषदन)के अर्थके निश्चयके बाधक [प्रमाणांतर]के अभावतैं ॥ [४४६] जातैं उपनिषदनतैं ब्रह्म एकहीं अद्वितीय है औ नहीं है। ऐसा निश्चय नहीं है ॥

---

४४३ स्वार्थविषै प्रमाकी जनक होनेतैं उपनिषदनकी प्रमाणता है। ऐसैं उक्त अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

४४४ प्रामाण्यके हेतुके सद्भावतैं उपनिषदनके प्रामाण्यकूं प्रतिपादन करिके परोक्त (प्रतिवादीकरि उक्त) तिनके अप्रामाण्यकूं अनुवाद करै हैं ॥

४४५ तिन (उपनिषदन)कूं स्वार्थकी विघातकता कैसैं है:—क्या तिनतैं ब्रह्म एकहीं अद्वितीय है औ नहीं है। ऐसी प्रतिपत्ति उत्पन्न होवैहै। किंवा केईक उपनिषद् ब्रह्मके एकताकी प्रतिपत्तिकूं करै हैं औ अन्य उपनिषद् तहां प्रतिषेधकूं करै हैं? ऐसैं विकल्प करिके। आद्य विकल्पकूं दूषण देते हैं ॥

४४६ ताहीकूं प्रपंचन करै हैं ॥

जैसें अग्नि उष्ण है औ शीत है । इस वाक्यतें विरुद्ध दोनूं अर्थनका निश्चयही होवैहै औ अंगीकार[४४७] करिके हम यह कहतेहैं । वाक्यकी[४४८] प्रमाणताके समयविषे यह न्याय नहीं है । जो[४४९] एक वाक्यकूं अनेक अर्थवानता होवै । औ एक वाक्यकी अनेक अर्थताके हुये स्वार्थ होवैगा औ तिस (स्वार्थ)के विघातका कर्त्ता विरुद्ध अन्य अर्थ होवैगा ।[४५०] औ यह वाक्यरूप प्रमाणोंका एक वाक्य । विरुद्ध अरु अविरुद्धरूप अनेक अर्थकूं प्रतिपादन करैहै । यह समय नहीं है । किंतु [४५१]अर्थकी एकतातें एकवाक्यता है औ[४५२] कोईबी

---

४४७ एकवाक्यकी अनेकार्थताकूं अंगीकार करिके वै धर्म्य उदाहरण युक्त है । ऐसें कहैहैं ॥

४४८ ताके अंगीकारकी वादताविषे हेतुकूं कहैहैं ॥

४४९ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करै हैं ॥

४५० ननु एकवाक्यकी अनेकार्थता होहु ? तहां नहीं ऐसें कहैहैं ॥

४५१ तब तिनका समय (सिद्धांत) क्या है ? तहां कहैहैं ॥ सो प्रथम तंत्रविषे कहा है:—" अर्थकी एकतातें जब एकवाक्य साकांक्ष (आकांक्षासहित) होवै तब विभागविषे होवैहै " ऐसें ॥

४५२ द्वितीय विकल्पकूं दूषण देते हैं ॥

उपनिषदनके वाक्य ब्रह्मकी एकताके प्रतिषेधकूं करते नहीं [४५३] औ जो "अग्नि उष्ण है औ शीत है" यह लौकिक वाक्य है । तिसविषै एकवाक्यता नहीं है । काहेतें तिस वाक्यके एकदेशकूं प्रमाणांतरके विषयका अनुवादी होनेतें कहिये [४५४] "अग्नि शीत है" ऐसा यह एक वाक्य है "अग्नि उष्ण है" यह तो प्रमाणांतरके अनुभवका स्मारक है । परंतु आप अर्थका अवबोधक नहीं । [४५५] यातें या (द्वितीयवाक्य)की "अग्नि शीत है" इसप्रकारके इस वाक्यके साथि एकवाक्यता नहीं है । काहेतें [४५६] या (द्वितीयवाक्य)कूं प्रमाणांतरके अनुभवके स्मरण करावनेकरिहीं उपक्षीण (कृतार्थ) होनेतें ॥ [४५७] औ जो विरुद्ध अर्थका

---

४५३ ननु एकवाक्यकी अनेकार्थता लोकविषै देखी है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५४ "ताके एकदेशकूं" इत्यादि वाक्यकूं विवरण करै हैं ॥

४५५ अनुवादक अरु बोधक इन दोनूं भागनकी एकवाक्यताके अभावरूप फलितकूं कहैहैं ॥

४५६ उक्त हेतु अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

४५७ ननु शिशिर ऋतुका शीत अग्नि है । इस अर्थका

प्रतिपादक यह वाक्य है ऐसैं मानीता है। सो शीत अरु उष्ण इन दो पदोंके साथि अग्निपदके सामानाधिकरण्यकरि प्रयोगरूप निमित्तवाली भ्रांति है। परंतु लौकिकरूप वा वैदिकरूप एक वाक्यकूं अनेक अर्थवान्ता नहीं है ॥ [458] औ जो पूर्व कहाथा किः—कर्मकांडकी प्रमाणताके विघातका करनेवाला उपनिषद्का वाक्य है? ऐसैं। सो बनै नहींः—काहेतैं अन्य अर्थके होनेतैं ॥ जातैं ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादनपर जे उपनिषद् हैं वे इष्टअर्थकी प्राप्तिविषै साधनके उपदेशकूं वा तिस (इष्टअर्थके प्रापक साधन)विषै पुरुषके नियोग (प्रेरणा)कूं निवारण नहीं करैहैं । अनेक अर्थवान्ताके असंभवतैंहीं ॥ [459] औ कर्मकांडके वाक्य-

बोधकहीं जब वाक्य होवै । तब तिसविषै लोककूं विरुद्ध अर्थकी बुद्धि कैसैं होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५८ स्वार्थकी विघातक होनेतैं उपनिषदनकी अप्रमाणता है । इस पक्षकूं निराकरण करिके । अब चोद्यांतरकूं (अन्य शंकाकूं) अनुवाद करिके निराकरण करै हैं ॥ इहां तिसविषै । ऐसैं इष्टार्थके प्रापक साधनकी युक्ति है ॥

४५९ ननु उपनिषद् वाक्य ब्रह्मकी एकताकूं साक्षात् प्रतिपादन करताहुया अर्थात् कर्मकांडकी प्रमाणताका वि-

नके स्वार्थविषै प्रमा (यथार्थज्ञान) नहीं उपजे है ऐसैं नहीं ॥ [460] ॥ ननु असाधारण स्वार्थविषै वाक्य प्रमाकूं उपजावताहै? तो अन्य (प्रमाणांतर)के साथि विरोध कहांतैं होवैगा । प्रमाणोंकूं स्वगोचर (अपनेविषय)विषै शूर होनेतैं ॥ [461] ॥ ननु ब्रह्मकी एकता (अद्वैतता)के हुये कर्मकांडके वाक्यकूं निर्विषय होनेतैं तिसकरि प्रमा नहीं उपजे है? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो [462] बनै नहीं:—काहेतैं प्रमाकूं प्रत्यक्षरूप होनेतैं [तु-

घातक है? ऐसैं जो कहै । तहां तिसकी अप्रमाणता अनुत्पत्तिरूप है वा विपर्यासरूप है । ऐसैं विकल्प करिके । आद्यपक्षकूं अनुवाद करिके । दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विदित पद अरु ताके अर्थकी संगतिवाले वाक्यार्थ । न्यायके वेत्ताकूं तिनके अर्थोंविषै प्रमाकी उत्पत्तिके देखनेतैं ॥

४६० स्वार्थविषै प्रमाकूं उत्पन्न करता हुयाबी वाक्य प्रमाणांतरके विरोधतैं अप्रामाण्य होवैहै? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां प्रमाणोंकूं अपने विषयविषै शूरवीर होनेतैं । यह अर्थ है ॥

४६१ ननु विवादका विषय जो वाक्य । सो प्रमाका उत्पादक नहीं है । प्रमाणकरि हरण किये विषयवाला होनेतैं । अनुष्णाग्नि वाक्यकी न्यांई? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

४६२ प्रत्यक्षके विरोधतैं अनुमान अनवकाश (अवकाशरहित) है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहै ॥

जकरि उक्त अनुमानसैं ताका बाध बनै नहीं]॥ जो ऐसैं होवै तो " दर्श अरु पूर्णमासकरि स्वर्गकी कामनावाला यजे । ब्राह्मण हनन करनेकूं योग्य नहींहै" इत्यादि वाक्यनतैं प्रत्यक्ष प्रमा उपजतीहै । सो नहीं होवैगी॥ जो उपनिषद् जे हैं वे ब्रह्मकी एकताकूं आगे बोधन करैंगी। ऐसा अनुमान होवै औ अनुमान जो है सो प्रत्यक्षसैं विरोधके हुये प्रमाणताकूं पावता नहीं । [तो बाधित होवै । जातैं यह अनुमान नहीं किंतु प्रत्यक्षज्ञान है] तातैं "प्रमाहीं नहीं उपजती है" यह तुजकरि असतूहीं गायन करियेहै ॥ ॥ किंवा[४६३]:—यथाप्राप्तहीं । अविद्याकरि प्रत्युपस्थापित (आरोपित) । क्रिया कारक अरु फलके आश्रय करनेकरि इष्टकी प्राप्ति अरु अनिष्टकी निवृत्तिके उपायकी समानताविषै प्रवृत्त औ ताके

---

४६३ औ इस कहनेके प्रकारतैंबी कर्मकांडकी अप्रमाणता नहीं है । ऐसैं कहते हुये द्वितीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहां:—यथाप्राप्त । याहीका व्याख्यान अविद्या प्रत्युपस्थापित है ॥ इहां यह भाव है:—साध्य अरु साधनके संबंधके बोधक कर्मकांडका विपर्य्यास नहीं होवैहै । काहेतैं मिथ्यार्थताके हुयेबी ताकी अर्थक्रियाकारि ताके सामर्थ्यके अनपहारतैं प्रमाणताकी उपपत्तितैं ॥

विशेषकूं न जाननेवाले पुरुषकूं सो कहती हुयी श्रुति । लोकप्रसिद्ध क्रिया कारक अरु फलके भेदकी सत्यताकूं वा असत्यताकूं नहीं कहतीहै औ इष्ट अरु अनिष्ट फलकी प्राप्ति अरु परिहारके उपायविषै निवारण करती नहीं । काहेतें विधिपर होनेतें ॥ [464] जैसें काम्यकर्मोंविषै प्रवृत्त भई जो श्रुति । सो कामोंकी मिथ्याज्ञानकरि उत्पत्तिमान्‌ताके होतेबी यथाप्राप्त कामोंकूंहीं उत्पादन करनेवाले साधनोंकूंहीं विधान करैहै। परंतु कामोंकी मिथ्याज्ञानकरि उत्पत्तिमान्‌तातैं अनर्थरूपता है । ऐसें नही विधान करैहै ॥ ऐसें नित्य अग्निहोत्रादि शास्त्रबी। मिथ्याज्ञानतें उत्पत्तिवाले यथाप्राप्त (अविद्यारचित)हीं क्रिया कारकके भेदकूं लेके इष्टविशेषकी प्राप्तिरूप वा अनिष्टविशेषकी निवृत्तिरूप किसीबी प्रयोजनकूं देखता हुया अग्निहोत्रादि कर्मोंकूं विधान करैहै । परंतु अविद्याके गोचर असत्‌ वस्तुकूं विषय करनेवाला [क्रिया अरु कारकका भेद-

---

४६४ ननु कर्मकांडकूं मिथ्याऽर्थताके हुये मिथ्याज्ञानके जनक होनेतैं अनर्थनिष्ठताकरि अप्रवर्त्तक होनेतैं अप्रामाण्य होवैगा ? यातैं कहैहैं ॥

रूप साधन] है। ऐसें जानिके नहीं प्रवृत्त होवैहै ऐसें नहीं। किंतु प्रवृत्त होवैहीं [465] है। जैसें काम्यकर्मोंविषे ॥ [466] औ अविद्यावाले पुरुष नहीं प्रवृत्त होवैंगे ऐसें नहीं किंतु प्रवृत्त होवैंगेहीं। काहेतें दृष्ट (प्रत्यक्ष) होनेतें। जैसें कामीपुरुष हैं ॥ ॥ [467] ननु विद्यावालोंकूंहीं कर्मका अधिकार है? ऐसें जो प्रतिवादी कहै [468]। सो बनै नहीं:—काहेतें ब्रह्मकी एकताकी विद्याके हुये क-

---

४६५ ननु विमत (विवादका विषय) कर्मकांड अप्रमाण है। मिथ्या अर्थवाला होनेतें। विप्रलंभकके वाक्यकी न्यांई ? यह आशंका करिके। व्यभिचारकूं कहैहैं ॥

४६६ अग्निहोत्रादिक काम्यकर्मोंविषै मिथ्याज्ञानसें जनित मिथ्याभूत कामकूं लेके शास्त्र प्रवृत्तिकी न्यांई। नित्य कर्मोंविषैबी असत् (मिथ्या)हीं साधनकूं लेके शास्त्र। प्रवृत्त होहु। तथापि बुद्धिमान् पुरुष नहीं प्रवृत्त होवैंगे। काहेतें वेदांतनतें तिनके मिथ्यापनैके निश्चयतें ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४६७ अविद्यावाले पुरुषनकी कर्मोंविषै प्रवृत्तिकूं प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥

४६८ द्रव्य देवता आदिकका ज्ञान कर्मविषै प्रवर्त्तक है वा ब्रह्मकी एकताका ज्ञान कर्मविषै प्रवर्त्तक है ? ऐसें विकल्प करिके। सिद्धांती। आद्य विकलपकूं अंगीकार करिके द्वितीयकूं दूषण देते हैं ॥

र्माधिकारके विरोधकूं कथन किया होनेतें ॥ [४६९] ईसं-करि (कर्मकांडकी अज्ञानीके प्रति समर्पकताके उपपादनकरि) ब्रह्मसें एकताके हुये निर्विषय होनेतें उपदेशकरि ताके ग्रहणके फलके अभावसें दोषका परिहार कहा ऐसें जाननेकूं योग्य है । औ [४७०] पुरुषकी इच्छा अरु रागआदिककी विचित्रतातें [प्रवृत्ति निवृत्ति होवैहैं शास्त्रतें नहीं] ॥ [४७१] जातें पुरुषनकी इच्छा अनेकहैं औ राग आदिक दोष विचित्र हैं । तातें बाह्यविषयविषै राग आदिककरि अपहत चित्तवाले पुरुषनकूं शास्त्र । विषयनतें निवर्तकरनेकूं शक्त (समर्थ) नहीं है

४६९ कर्मकांडकी प्रमाणताके असंभवकूं निराकरण करिके द्वितीय अर्थापत्तिकूं अतिदेशकरि निराकरण करैहैं ॥ इहां इसकरि । याका कर्मकांडकी अज्ञानीके प्रति समर्पकताके उपपादनकरि । यह अर्थ है ॥

४७० ननु कर्मकांड संबंधकूं बोधन करता हुया प्रवृत्ति आदिकके पर है । यातैं रागादिकके वशतैं ताके अयोगतैं शास्त्रीय प्रवृत्ति आदिकके विषयरूप द्वैतकी सत्यता होवैगी । अन्यथा ताकी विषयताका असंभव होवैगा । ऐसैं और अर्थापत्ति प्रमाण आया ? यह शंका भयी । तहां कहैहैं ॥ इहां:—प्रवृत्ति अरु निवृत्ति । शास्त्रके वशतैं नहीं होवैहै । यह शेष है ॥

४७१ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

औ स्वभावतैं बाह्यविषयनविषै विरक्त चित्तवाले पुरुषनकूं विषयनविषै प्रवर्त्त करनेकूंबी शक्त नहीं है । किंतु शास्त्रतैं इतनाहीं होवैहैः—यह इष्टका साधन है । यह अनिष्टका साधन है । ऐसैं साध्य साधनके संबंधविशेषका आविर्भाव होवैहै । अंधकारविषै रूपादिज्ञानकेतांई प्रदीपादिककीन्यांई ॥ परंतु शास्त्र जो है सो भृत्योंकीन्यांई बलतैं निवर्त्त करता वा योजना (प्रेरणा) करता नहीं ॥ [४७२] जातैं रागआदिकके गौरवतैं शास्त्रकूंबी उल्लंघनकरिके वर्त्तनेवाले पुरुष देखीयेहैं । [४७३] तातैं पुरुषनकी गतिकी विचित्रताकूं अपेक्षाकरिके साध्य अरु साधनके संबंधविशेषनकूं अनेकप्रकारसैं शास्त्र उपदेश करैहै ॥ तहां (संबंधविशेषके उपदेशके हुये) पुरुष आपहीं यथारुचि (अपनि अपनि रुचिके अनुसार) साधनविशेषनविषै प्रवर्त्त होवैहै ।

---

४७२ शास्त्रकूं अकर (अकारक) होनेतैं प्रवृत्तकता आदिकके अभावकूं कहिके । तहांहीं अन्य युक्तिकूं कहैहैं ॥

४७३ तब शास्त्रका क्या कृत्य है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां " तहां " इस पदका । संबंधविशेषके उपदेशके हुये । यह अर्थ है ॥

शास्त्र तो सूर्य अरु प्रदीपआदिककीन्यांई उदासीनहीं रहैहै[४७४] ॥ तैसैं (रागादिककी विचित्रताके अनुसारकरि) किसीबी पुरुषकूं परमपुरुषार्थबी अपुरुषार्थकीन्यांईभासता है।[४७५] जाकूं जैसा अवभासहै सो तैसे रूपवाले पुरुषार्थकूं देखताहै[४७६] औ तिसके अनुसारी साधनोंकूं ग्रहण करनेकूं इच्छताहै ॥ तिसप्रकार[४७७] अर्थवादबी हैः—"तीन प्रकारके प्रजापतिके संतान प्र-

---

४७४ यथारुचि पुरुषनकी प्रवृत्ति जब होवैहै । तब परम पुरुषार्थरूप कैवल्यकूं उपदेश करिके सम्यक्ज्ञानकी सिद्धि अर्थ। ताके उपाय श्रवणादिकविषै बुद्धिपूर्वकारी पुरुषनकी संन्यासपूर्वक प्रवृत्ति उचित है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां रागादिककी विचित्रताके अनुसारकरि । यह अर्थ है ॥ सो शास्त्रांतरविषै कहा हैः—" शून्यबी वृंदावनविषै स्रगालभाव होहु " इत्यादि ॥

४७५ तब पुरुषार्थके विवेककी सिद्धि कैसें होवैगी ? तहां कहैहैं ॥

४७६ पुरुषार्थ दर्शनके कार्यकूं कहैहैं ॥

४७७ स्वाभिप्रायके अनुसारकरि पुरुषनकूं पुरुषार्थका निश्चय होवैहै । इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं प्रजापतिकरि उक्त तीन दकारविषै देव आदिक स्वाभिप्रायकरि दमआदिक तीन अर्थकूं ग्रहण करते भये । तैसैं स्वाभिप्रायके वशतैंहीं पुरुषनकूं पुरुषार्थका निश्चय होवैहै । यह अर्थवादतैं जान्या ॥

सारीहैं वे प्रतिशरीरभिन्न अनुमानसैं जानी-येहैं। तहां ब्रह्मसैं एकताके कहनेवाले वादी-नकूं अनुमान प्रमाणका विरोधबी होवैगा ॥ औ तिसैं[४८५]प्रकार हुये आगमके विरोधकूंबी कहतेहैंः— "ग्रामकी कामनावाला यजन करै। पशु अरु स्वर्गकी कामनावाला यजन करै" इत्यादि वा-क्यनतैं ग्राम पशु अरु स्वर्गआदिककी काम-नावाले औ तिनके साधन आदिकके अनुष्ठानके कर्त्ता भिन्न निश्चय करियेहैं ॥ ॥ इहां हम अ-द्वैतवादीनकरि कहियेहैः—वे [४८६]कुतर्कोंकरि दूषित अंतःकरणवाले औ आगमके अर्थसैं विच्छिन्न संप्रदायवाली बुद्धिवाले ब्राह्मणआदिक वर्णों-विषै अपसद (अधम)। अनुकंपा करनेकूं योग्य हैं। [४८७]कैसैं किः—[४८८]श्रोत्रादि द्वारवाले प्रत्यक्षतैं उ-पलभ्यमान शब्दादिकोंके साथि ब्रह्मकी एक-

---

४८५ तहांहीं प्रमाणांतरके विरोधकूं कहैहैं ॥

४८६ तीन प्रमाणके विरोधतैं ब्रह्मकी एकता नहीं है। ऐसैं प्राप्तभयेके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥ इहांः—ऐसैं दूषण देनेवालेकरि तिनके। यह शेष है ॥

४८७ द्वैतग्राही प्रमाणसैं विरुद्ध है। ऐसैं कहनेवालेनकी शोच्यता कैसैं है। इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

४८८ तहां ब्रह्मकी एकताविषै प्रत्यक्षके विरोधकूं सि-

ता विरोधकूं पावतीहै । ऐसैं कहने हारे । पूछनेकूं योग्य हैंः—क्या शब्दादिकनके भेदकरि आकांक्षकी एकता विरोधकूं पावती है ? जो [४८९] कहै विरोधकूं पावती नहीं । तब ब्रह्मकी एकताविषै प्रत्यक्षका विरोध नहीं होवेगा ॥ [४९०] ॥ औ जो कहाथा किः—प्रतिशरीर शब्दआदिककी उपलब्धिके कर्त्ता औ धर्म अरु अधर्मके कर्त्ता भिन्न अनुमानसैं जानियेहैं । तिसप्रकार हुये ब्रह्मकी एकताविषै अनुमानका विरोध होवैगा ॥ [४९१] ॥ ऐसैं भिन्न । किनोंकरि । अ-

---

द्धांती परिहार करै हैं ॥ इहांः—तिस प्रकारताके हुये ताकी एकताके अंगीकारका विरोध होवैगा । यह शेष है ॥

४८९ जैसैं सर्वभूतस्थ एक आकाश है। इहां शब्दादिकके भेदका ग्राही प्रत्यक्षका विरोध नहीं है । तैसैं एक ब्रह्म है । इहांबी ता (प्रत्यक्ष)का विरोध नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहांः—ताकूं कल्पितभेदकूं विषय करनेवाला होनेतैं । यह भाव है ॥

४९० परोक्त अनुमानके विरोधकूं सिद्धांती । अनुवाद करै हैं ॥

४९१ जो चेष्टा है सो प्रयत्नवान्के पूर्विक है । इतनेकरि आत्माका भेद नहीं होवैहै । काहेतैं स्वप्रयत्नपूर्वक ताकेबी संभवतैं । अनुपलब्धके विरोध हुये तो अनुमानकेहीं अनुत्थानतैं स्वदेहचेष्टाकी स्वप्रयत्नपूर्वकताकी न्यांई परदेहविषै

नुमानसैं जानियेहैं। ऐसैं पूछनेकूं योग्य हैं ॥ [४९२] जो कहैंगे सर्व हम अनुमान कूशलोंकरि अनुमानसैं जानियेहैं। ऐसैं ॥ [४९३] तबै कौंन तुम अनुमान कुशल हो। इस प्रकार पूछे हुये तुह्मारा क्या उत्तर होवैगा ॥ ॥ [४९४] ननु शरीर इंद्रिय मन अरु आत्माविषे प्रत्येक अनुमानकी कुशलताके

चेष्टाकूं ता (परदेह) की यत्नपूर्वकताके हुये आदिविषैहीं स्वपरका भेद सिद्ध होवै औ सो अध्यक्ष (प्रत्यक्षप्रमाण) तैं बनै नहीं। काहेतैं परपुरुषकूं अनध्यक्ष (अप्रत्यक्ष) होनेतैं औ अनुमानतैं सिद्ध होवै नहीं काहेतैं अन्योन्याश्रयतैं। इस आशयवान् हुये सिद्धांती कहैहैं ॥

४९२ अब दोषांतरके कथन करनेकी इच्छाकरि प्रतिवादीकी शंकाकूं करावै हैं ॥

४९३ अस्मत् शब्दके अर्थकूं सिद्धांती पूछते हैं॥ इहां यह भाव हैः—सो स्थूलदेह है वा करणोंका समूह है वा देहद्वयतैं अन्य है ? ये तीन पक्ष हैं। तिनमैं पहिले दो पक्ष बनैं नहीं काहेतैं तिन दोनूंकूं अचेतन होनेतैं अनुमातापनैके अयोगतैं औ तृतीय पक्षबी बनै नहीं। काहेतैं ताकूं अविकारी होनेतैं। यह भाव है ॥

४९४ किं (क्या) शब्दकी प्रश्नार्थताकूं मानिके पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—आत्मा देहादि बहु साधनोंकरि विशिष्ट हुया अनुमाता है। काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं। ऐसैं विशिष्ट आत्माके किये अनुमानतैं प्रतिदेह आत्माके भेदकी बुद्धि होवैहै ॥

प्रत्याख्यान (निराकरण) हुये शरीर इंद्रिय अरु मनरूप साधनवाले आत्मा। अवयवके प्रति अ-नुमान कुशल हैं। काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं? इसप्रकार जो तुम (तार्किक) कहो। तहां हम सिद्धांती कहैहैं:–[४९५] जब ऐसैं होवै। तब अनुमानकी कुशलताके हुये तु-मकूं अनेकताका प्रसंग होवैगा। [४९६] जातैं अनेक कारकोंकरि साध्य क्रियाहै। ऐसैं तुह्मोंकरिहीं

---

४९५ विशिष्ट आत्माके अनुमानके कर्त्तापनैविषै क्रिया ओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं। यह हेतु जब कहा तब तुजकूं एक एक देहादिककीबी अनेकता होवैगी। इस-रीतिसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

४९६ ताहीकूं विवरण करै हैं ॥ इहां यह भाव है:— आत्माके औ देहादिकरूप अनुमानके कारकोंके मध्य प्र-त्येक अवांतर क्रिया है। वन्हिआदिकविषै तैसैं देखनेतैं। तिसप्रकार हुये आत्माकी अवांतर क्रिया क्या अनेक कारकों-करि साध्य है किंवा नहीं? आद्यपक्षविषैबी आत्मातैं अति-रिक्त अनेक कारकोंकरि साध्य है किंवा तिस (आत्मा)तैं अनतिरिक्त तिस (अनेक कारकों)करि साध्य है। तिनमैं आद्य पक्ष बनै नहीं। काहेतैं अनवस्था दोषतैं। द्वितीय प-क्षविषै तो आत्माकूं अनेकताकी प्राप्तितैं निरात्मता होवैगी औ अवांतर क्रिया अनेक कारकोंकरि साध्य नहीं है ऐसैं नहीं। काहेतैं प्रधानकी क्रियाविषैबी तिसप्रकारताके प्रसं-गतैं। इस कथनकरि देहादिकविषैबी कारकता निषेध करी ॥

अंगीकार किया है॥ औ तहां अनुमान जो क्रिया है सो शरीर इंद्रिय अरु मनोमय आत्माके साधनरूप कारकोंकरि आत्माकी करी हुयी निर्वाह करियेहै। ऐसैं यह प्रतिज्ञा किया है॥ तहां हम अनुमानविषै कुशल हैं। इस रीतिसैं कहनेवाले तुम तार्किकोंकरि शरीर इंद्रिय मन अरु आत्मा प्रत्येक हम हैं एक नहीं। ऐसैं अंगीकार किया होवैगा। अहो पुच्छ अरु शृंगसैं रहित तार्किकरूप बलीवर्दोंनें अनुमान कुशलता दिखाई!! [४९७]जौंतैं जो आत्माकूंहीं नहीं जानताहै। सो मूढ तिसगत भेद वा अभेदकूं कैसैं जानेगा। [४९८]तहां क्या अनुमान करैगा। [४९९]वा किस लिंगकरि अनुमान होवैगा। [५००]जौंतैं आत्माके

४९७ औ जोः—आत्मा आत्मप्रतियोगिक भेदवाला है। वस्तु होनेतैं घटकी न्यांई? यह अनुमान है। तहां आत्मा प्रतिपन्न (ज्ञात) है वा अप्रतिपन्न (अज्ञात) है? तिनमैं द्वितीय पक्षके प्रति कहेहैं॥

४९८ प्रतिपन्नताके पक्षविषैबी भेदकरि ताकी प्रतिपत्ति है वा अभेदकरि? उभय प्रकारसैंबी अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होवैहै। ऐसैं कहेहैं॥

४९९ याहीतैंबी आत्मभेदके अनुमानका अनुत्थान है। ऐसैं कहेहैं॥

५०० "किस [लिंग]करि" इहां जो किं शब्द है। ताके आक्षेपरूप अर्थकूं स्पष्ट करै हैं॥

स्वतः भेदका प्रतिपादक कछुबी लिंग नहीं है। जिस लिंगकरि आत्माके भेदकूं साधे ॥ तार्किक जे हैं वे जिनं[५०१] लिंगोंकूं आत्मभेदके साधनअर्थ नामरूपवाले उपन्यास करैहैं। वे नामरूपगत आत्माके उपाधिहींहैं। आकाशके उपाधिरूप घट करक (लघुघट) अपवारक (जरोंखा वा खिडकी) अरु भूछिद्रकीन्यांई ॥ जैंबे[५०२] आकाशके भेदके लिंगकूं देखताहै। तब सो आत्माकेबी भेदके लिंगकूं पावैगा ॥ जाँतैं[५०३] आत्माके परमात्मातैंबी विशेषकूं अंगीकार करनेहारे सैंकडो तार्किकोंकरिबी आत्माके भेदका लिंग दिखावनेकूं नहीं शक्य होवैहै। स्वतः[५०४] तो दूरतैं निराकरण कियाहीं है। आत्माकूं अविषय हो-

---

५०१ ननु जन्मादिकके प्रति नियमादि लिंगके वशतैं आत्माका भेद होवैगा? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

५०२ आत्माके सजातीय भेदविषै लिंगके अभावकूं दृष्टांतकरि साधते हैं ॥

५०३ किंचः—आत्माका भेद औपाधिक तेरेकारि साधियेहै। वा स्वाभाविक? तिनमैं आद्यपक्ष बनै नहीं। सिद्ध साध्यके होनेतैं। इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

५०४ द्वितीयपक्ष बनैनहीं। ऐसैं कहैहैं ॥

नेतैं ॥ [५०५] जो जो परब्रह्मविषै आत्मधर्मताकरि अंगीकार करैहैं । तिस तिसकी नामरूपात्मकताके अंगीकारतैं औ नामरूपतैं आत्माकी अन्यताके अंगीकारतैं "[५०६] आकाश जो है सो प्रसिद्ध नामरूपके निर्वाहका कर्त्ता है । वे (नामरूप) जिसके मध्य हैं सो ब्रह्म है" इस श्रुतितैं औ "नामरूपकूं प्रगट करूं" ऐसैं [५०७] जांतैं उत्पत्ति अरु प्रलय स्वरूप नामरूप हैं औ तिनतैं विलक्षण ब्रह्म है । [५०८] यांतैं प्रत्यगभिन्न ब्रह्मकूं अनुमानकाहीं अविषय होनेतैं ब्रह्मकी एकताविषै अनुमानका विरोध कहांतैं होवैगा ॥ [५०९] ईसंकरि (औ-

---

५०५ ननु आत्मा द्रव्यत्वरूप जातितैं अतिरिक्त अपर जातिवाला है । अश्रावण विशेष गुणवाला होनेतैं । घटकी न्यांई । इस अनुमानांतरकूं आशंका करिके अन्यतर (दोनूंमैंसैं एक)की असिद्धिकूं दिखावैहैं ॥

५०६ तिन दोनूंतैं आत्माकी अन्यताके अंगीकारविषै प्रमाणकूं उपन्यास करै हैं ॥

५०७ तहांहीं उपपत्तिकूं कहैहैं ॥

५०८ अनुमानके अविरोधकूं उपसंहार करै हैं ॥

५०९ आगमके विरोधकूं उक्त न्यायके अतिदेशकरि निराकरण करै हैं ॥ इहां " इस कथनकरि " । या शब्दका औपाधिक भेदकी आश्रयतासैं व्यवहारकी उपपन्नताके दर्शनकरि । यह अर्थ है ॥

पाधिक भेदकी आश्रयतासैं व्यवहारकी सिद्धिके दिखावनेकरि) आगमका विरोध दूरी किया ॥ ॥

[५१०] औ जो पूर्व कहाथा किः—ब्रह्मकी एकताके हुये जिसकेअर्थ उपदेश करियेहै औ जिसकूं उपदेशके ग्रहणका फल होवैहै। तिन दोनूंके अभावतैं एकताके उपदेशकी व्यर्थता होवैगी ऐसैं? [५११] सो बी बनै नहीं:—काहेतैं क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं कौंन चोद्य (प्रश्न)होवैहै ॥ [५१२] ऐंके

५१० प्रत्यक्ष अनुमान अरु आगमकरि अद्वैतके अविरोधके हुयेबी । अर्थापत्तिकरि विरोध होवैगा ? ऐसैं जो कहै । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—उपदेश जिसके अर्थ करिये है औ जाकूं उपदेशका किया फल होवै है । तिन दोनूंकी ब्रह्मसैं एकताके हुये उपदेशकी व्यर्थता होवैगी । यह प्रतिवादीकी उक्तिके अनुवादका अर्थ है ॥

५११ क्या क्रियाओंकूं अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं तेरेकरि ऐसैं प्रश्न करियेहै । किंवा ब्रह्मकूं नित्यमुक्त होनेतैं ? ऐसैं विकल्प करिके । आद्य पक्षकूं दूषण देतेहैं ॥ इहां यह भाव है:—तिन (क्रियाओं)की अनेक कारकोंकरि साध्यताकूं निषिद्ध होनेतैं ॥

५१२ जब ब्रह्मकी नित्यमुक्तताके अभिप्रायसैं उपदेशके व्यर्थताकी शंका करियेहै । तहां नित्यमुक्त ब्रह्मके ज्ञात हुये उपदेशकी व्यर्थता शंका करियेहै वा अज्ञात हुये ? ऐसैं विकल्प करिके । आद्यपक्षकूं अंगीकार करैहैं ॥

निरुपाधिक ब्रह्मविषै उपदेश नहीं है। उपदेष्टा नहीं है औ उपदेशके ग्रहणका फल नहीं है। तातैं उपनिषदनकी व्यर्थता होवैगी। यह हमौं-करि अंगीकार कियाहीं है ॥ ॥ [५१३]औ जब अ-नेक कारकोंके विषयरूप उपदेशकी व्यर्थताका प्रश्न करियेहै? [५१४]सो बनै नहीं:—काहेतैं स्वतः अंगीकारके हुये आत्मवादीनके विरोधतैं। [५१५]तातैं (प्रमाण विरोधके अभावतैं) तार्किकरूप चाट (आर्य्योंकी मर्य्यादाके भेदक) अरु भट (मिथ्याभाषी किंकर)नके राजाओंकरि प्रवेश करनेके अयोग्य औ अल्पबुद्धिमानोंकरि अगम्य औ शास्त्र अरु गुरुके प्रसादसैं रहित पुरुषन

५१३ द्वितीय पक्षकूं उठावतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— उपदेश प्रथम अनेक कारकोंका साध्य होनेकरि विषय है। ताकी व्यर्थता है। ताकूं अज्ञात नित्यमुक्त ब्रह्मविषै जब शंका करिये है ॥

५१४ सर्व आत्मवादीनकरि उपदेशकूं ज्ञान अर्थ इष्ट हो-नेतैं ताके विरोधतैं अज्ञात ब्रह्मविषै ता (उपदेश)की व्यर्थ-ताका प्रश्न अघटित है। ऐसैं कहैहैं ॥

५१५ ननु अद्वैतविषै अन्य विरोधके अभावहुयेबी ता-र्किकोंके सिद्धांतका विरोध है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां प्रमाणोंके विरोधका अभाव "तत् (तातैं)" शब्दका अर्थ है। औ आर्योंकी मर्यादाकूं भेदनकरनेहारे चाट कहि-

करिबी अगम्य अभय दुर्ग (किल्ला) यह (ब्रह्मात्माका एकत्व) है । काहेतैं "तिसे[५१६] मदामदरूप देवकूं मुजतैं अन्य कौंन जाननेकूं योग्यहै । देवोंनैंबी इहां पूर्व संशय कियाहै । यह मति तर्कसैं पावने योग्य नहीं है" औ देवताआदिकनके वरप्रसादकरि लभ्यताकी श्रुति अरु स्मृतिके वादोंतैं शास्त्र आदिकके प्रसादसैं रहित पुरुषनकरि अलभ्य यह तत्व है । यह निश्चित है ॥ औ[५१७] "सो (ब्रह्म) चलताहै । सो नहीं चलताहै । सो दूरविषैहै । तैसैं समीपविषै है" इत्यादि विरुद्ध धर्मकरि युक्तताके प्रकाशक मंत्रके वर्णोंतैं औ गीताविषै "मेरेविषै सर्व भूत-

---

येहैं औ मिथ्याभाषण करनेहारे सेवक (किंकर) तो भट कहियेहैं । तिन सर्वके राजा तार्किक हैं । तिनोंकरि अप्रवेश्य (अनाक्रमणीय) यह ब्रह्मात्माकी एकताहै ॥

५१६ शास्त्र आदिकके प्रसादतैं शून्य पुरुषनकरि याकी अगम्यताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—देव आदिकके वर प्रसादकरि लभ्य है । इस अर्थविषै श्रुतिस्मृतिके वाद हैं औ तिन शास्त्रआदिकके प्रसादसैं हीन पुरुषनकरि अलभ्यतत्व है । यह निश्चित है ॥

५१७ शास्त्र आदिकके प्रसादवाले पुरुषनकूंहीं तत्व सुगम है । इस अर्थविषै श्रुति स्मृति उक्त अन्यलिंगकूं दिखावैहैं ॥

हैं" इत्यादि कहा है। [518] तातें परब्रह्मसें व्यतिरेक करि संसारी नाम अन्य वस्तु अंतर नहीं है । [519] तातें हमोंकरि सुष्ठु (सम्यक्) जैसें होवै तैसें कहियेहैः—"ब्रह्महीं यह (जगत्) आगे होताभया। सो आत्माकूंहीं जानताभया 'मैं ब्रह्महूं' ऐसें। इसतें अन्य द्रष्टा नहीं है। इस (ब्रह्म)तें अन्य श्रोता नहीं है" इत्यादि सैंकडो श्रुतिनतें॥ [520] तातें परब्रह्मकाहीं "सत्यका सत्य" नाम परम उपनिषत् है ॥ २० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य प्रथममजातशत्रु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

---

५१८ अद्वैतब्रह्मविषै सर्व प्रकारके विरोधके अभावहुये फलितकूं कहैहैं ॥

५१९ संसारीकी ब्रह्मतें अन्य अर्थताके अभावविषै श्रुतिनकी अनुकूलताकूं दिखावै हैं ॥

५२० अद्वैतके श्रुतिकरि सिद्ध हुये विचारकरि सिद्ध अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्द्वितीयाध्यायगत प्रथम ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

योे ह वै शिशुꣳ साधानꣳ सप्रत्या-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

अर्थः—जो साधान सप्रत्याधान सस्थूण

अथ बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—"ब्रह्मकूं[५२१] विज्ञापन करूंगा" ऐसें प्रस्तुत (प्रकृत) है । तहां जिसतैं जगत् जन्म्या

अथ द्वितीयाध्यायगतद्वितीयब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

५२१ पूर्व उत्तर ग्रंथकी संगतीकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ब्रह्म तेरेतांई कहताहूं । ऐसैं प्रक्रम करिके । निश्चयकरि तेरेतांई विज्ञापन करूंगा । ऐसैं प्रतिज्ञा करिके जगत्के जन्म आदिक जिसतैं होवेहैं । सो अद्वितीय ब्रह्म है । ऐसैं व्याख्यान किया ॥

धानꣳ सस्थूणꣳ सदामं वेद। सप्त ह द्वि-
षतो भ्रातृव्यानवरुणाद्धि॥ अयं वाव शि-

सदाम शिशुकूं निश्चयकरि जानताहै [सो]
प्रसिद्ध सप्त द्वेषके कर्त्ता भतीजोंकूं नाश
करैहै ॥ ॥ यह प्रसिद्ध शिशु है जो यह म-

है। जिसमय है औ जिसविषै लीन होवैहै। सो
एक ब्रह्म है। ऐसैं विज्ञापन किया ॥ फेर[522] किस
स्वरूपवाला सो जगत् उपजताहै औ लीन होता
है? पंच[523]भूतात्मक ॥ औ भूत[524] नामरूपात्मक हैं।
[525]नामरूप सत्य हैं। ऐसैंबी निश्चयकरि कहा।
तिसैं[526] पंचभूतात्मक सत्यका सत्य ब्रह्म है। फेर[527]
पंचभूत सत्य कैसैं हैं। यातैं मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मण

---

५२२ जन्मआदिकके विषय जगत्के स्वरूपकूं पूछताहै ॥

५२३ विप्रतिपत्तिके निरास अर्थ ताके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

५२४ ननु तब नामरूप कर्मात्मक जगत् है। यह कैसैं कहा है? तहां कहैहैं ॥

५२५ तहां गमककूं कहैहैं ॥

५२६ ननु भूतनकी सत्यताके हुये ब्रह्मकी सत्यताके वचनकी युक्ति कैसैं होवैगी? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

५२७ सो सत्यहै। इस अवधारणतैं बाधहोने योग्य भूतनविषै सत्यताकी असिद्धि होवैगी? ऐसैं शंका करिके। सिद्धांती समाधान करै हैं ॥

शुर्योऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेवा-

ध्यम (शरीरके मध्यवर्ती) प्राण (लिं-
गात्मा) है। ताका यह (शरीर)हीं आ-
है॥ [५२८]मूर्त्त अरु अमूर्त्त भूतस्वरूप होनेतैं कार्य करण-
स्वरूपभूत प्राणबी सत्य हैं। तिनं[५२९] कार्य करण स्व-
रूप भूतनके स्वरूपके निर्धार करनेकी इच्छाकरि
दो ब्राह्मण आरंभ करियेहैं। [५३०]सोई उपनिषद्की
व्याख्या है। [५३१]जातैं कार्य अरु करणके स्वरूपके

---

५२८ सत् औ त्यत्। दोनूं मिलिके सत्य शब्द सिद्ध होवैहै। इस व्युत्पत्तिकरि भूत जब सत्य शब्दके वाच्य कहनेकूं वांछित होवैंगे। तब कार्यकारणके संघातकी औ प्राणोंकी सत्यता कैसैं कहीहै? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—कार्यकारणोंकूं उक्तपंचभूतरूप होनेतैं औ तदात्मकभूत सत्यहैं ऐसैं अंगीकारतैं कार्यकारणोंकी सत्यता है औ प्राणबी तदात्मक (पंचभूत स्वरूप)हैं। यातैं सत्य शब्दके वाच्य होवैहैं। इस रीतिसैं "प्राण प्रसिद्ध सत्यहैं" ऐसैं जो कहा है। सो अविरुद्ध है॥

५२९ ऐसैं पातनिकाकूं करिके। अब उत्तर ब्राह्मण दोके विषयकूं कहैहैं॥

५३० ननु यह कथन। उपनिषद्के व्याख्यान अर्थ ब्राह्मणद्वय है। इस उक्तितैं विरुद्ध है? यह आशंका करिके कहैहैं॥

५३१ कार्यकारणात्मक भूतनके स्वरूपकी निर्धारणाहीं उपनिषद्की व्याख्या है। इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं॥

ऽऽधानमिदं प्रत्याधानं। प्राणः स्थूणाऽन्नं दाम ॥ १ ॥

धान है। यह (शिर) प्रत्याध्यान है। प्राण (बल) स्थूणा (खूंटा) है। अन्न दाम (रस्सी) है ॥ १ ॥

निश्चयद्वारा सत्यका सत्य ब्रह्म निश्चय करियेहै ॥ [यातैं] ईहां[532] कहाहैः—"प्राण प्रसिद्ध सत्यहैं। तिनका यह सत्यहै" ऐसें ॥ ॥ तहां कौंन प्राण हैं? अरु कितनी वा कौंनसी प्राणकूं विषय करनेहारी उपनिषद् हैं? इसरीतिसैं ब्रह्मकी उपनिषद्के प्रसंगसैं करणोंके स्वरूपकूं निश्चय करैहैं। मार्गविषे[533] प्राप्त कूप अरु आरामआदिकके निश्चयकीन्यांई ॥ जो[534] निश्चयकरि साधान

५३२ ब्राह्मण द्वयकूं ऐसैं अवतार देके। इस शिशु ब्राह्मणकी अवांतर संगतिकूं कहैहैं ॥ इहां यह शेष हैः—उपनिषद् कौन हैं वा कितनी हैं यह उपसंख्या करनेकूं योग्य है। इस आकांक्षाके हुये ॥

५३३ ननु ब्रह्म जब अवधारण करनेकूं इष्ट है। तब सोई अवधारण करनेकूं योग्य है। मध्यमैं करणोंका स्वरूप क्यूं अवधारण करिये है? तहां कहैहैं ॥

५३४ ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहिके। अब ताके अक्षरनकूं योजना करै हैं ॥

सप्रत्याधान सस्थूण अरु सदाम शिशुकूं जानताहै। ताकूं यह फल होवैहै ॥ ॥ सो क्याकिः— सप्तसंख्यावाले द्वेषके कर्त्ता भतीजोंकूं विनाश करैहै ॥ [535] जौतैं भतीजे दो प्रकारके होवैहैं। द्वेषके कर्त्ता औ अद्वेषके कर्त्ता। तिनके मध्य द्वेषके कर्त्ता जे भतीजेहैं। तिन द्वेषी भतीजनकूं विनाश करैहै ॥ [536] सात जे शिरगत प्राण (इंद्रिय) रूप [537] विषयनकी उपलब्धिके द्वारहैं। [538] तिनतैं प्रभववाले जे विषयनविषै राग हैं। वे सहज होनेतैं भतीजेहैं ॥ [539] जौतैं वे याकी स्वात्माविषै स्थित दृष्टिकूं विषयनकूं ग्रहणकरनेहारी करैहैं। तिस हेतुकरि वे द्वेषके कर्त्ता भतीजेहैं। [540] प्रत्यगात्माके ई-

---

५३५ विशेषणके अर्थ। भतीजेकूं भेदन करैहैं ॥

५३६ फेर इहां कौन भतीजे कहनेकूं वांछित होवैहैं? तहां कहैहैं ॥

५३७ श्रोत्रादिकनका सत्यपना कैसैं है? तहां द्वारभेदतैं है। ऐसैं कहैहैं ॥

५३८ तिनका भतीजेपना कैसैं है? यह आशंका करिके। विषयनकी अभिलाषाद्वारा है। ऐसैं कहैहैं ॥

५३९ तथापि तिनकूं द्वेष्टापना कैसैं है? यातैं कहैहैं ॥

५४० औ इंद्रिय। विषयनकूं विषयकरनेहारी दृष्टिकूं करते हुयेहीं आत्मविषयक दृष्टिकूंबी करैंगे। तातैं तिनकूं उक्तप्रकारका भतीजेपना (भ्रातृजपना) नहीं है? तहां कहैहैं ॥

क्षण (अवलोकन) के करनेहारे होनेतैं ॥[541]सो कठ-वल्ली उपनिषद्‌विषैबी कहा हैः—“स्वयंभू (परमात्मा) इंद्रियनकूं बहिर्मुख हिंसा करताभया। तातैं [पुरुष] बाह्य देखता है। अंतरात्माकूं नहीं” इत्यादि ॥ [542]तैहां जो शिशुआदिकनकूं जानताहै कहिये तिनके स्वभावकूं निश्चय करताहै। सो इन भतीजोंकूं विनाश करैहै ॥ ॥ अब फलके श्रवणकरि अभिमुख भये तिस (शिष्य)केतांई कहैहैः—यह प्रसिद्ध शिशु है ॥ ॥ कौंन यह शिशु है? तहां कहैहैः—जो यह मध्यम प्राण है कहिये शरीरके मध्य जो प्राण लिंगस्वरूप है औ जो पांच प्रकासैं शरीरके प्रति आविष्ट (आवेशकूं प्राप्त) भया है । अरु हे बडा! शुक्लवस्त्र-वाला! सोम! राजन्! ऐसैं पूर्व कहा है औ जिसविषै वाक् अरु मनआदिक करण । विषक्त (संलग्न) हैं ॥ [543]सैमर्थ अश्वके च्यारी पादबंधन-

---

५४१ इंद्रियां विषयनविषै तत्पर हुये तहांहीं दृष्टिकी कारणहैं । प्रत्यगात्माविषै नहीं। इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

५४२ फलितकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहांः—उक्त विशेषणवाले भतीजोंके सिद्धहुये यह अर्थ है ॥

५४३ प्राणविषै वाक् आदिकनकी प्रविभक्तताविषै हेतुकूं

के कीलनके दृष्टांततैं ॥ सो यह (प्राण) शिशु-कीन्यांईं विषयनविषै इतर करणोंकीन्यांईं अ-पटु होनेतैं शिशु है ॥ ॥ साधान (आधानस-हित)कूं ऐसैं कहा । फेर तिस वत्सस्थानीय क-रणस्वरूप शिशुका आधान (अधिष्ठान) क्या है? तहां कहैहैंः—ताका यहहीं शरीर आधा-न है। सो कार्यात्मक है ॥ (धारण करियेहै इसविषै सो आधान कहियेहै) । यातैं तिसैं[५४४] प्राणरूप शिशुका यह शरीर अधिष्ठान है। जातैं[५४५] इस (शरीर)विषै करण अधिष्ठित (आश्रित) हुये प्ररब्धात्मक उपलब्धिके द्वार होवैहैं । प्रा-णमात्रविषै विषक्त (संसक्त) हुये [उपलब्धि-के द्वार] नहीं होवैहैं ॥ तिसैं[५४६] प्रकार जातैं अ-

---

कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं जातिवाला हय (अश्व)। च्यारी पादबंधनके कीलनकूंबी पर्याय (क्रम)करि उखा-डिके उत्क्रमण करता है । तैसैं प्राण । वाक् आदिकनकूं [शरीरदेशतैं उखाडिके उत्क्रमण करै है] इस दृष्टांततैं वाक् आदिक प्राणविषै विषक्त (संलग्न) सिद्ध होवैहैं ॥

५४४ शरीरका प्राणके प्रति आधानपना साधतेहैं ॥

५४५ शरीरके अधिष्ठानपनेकूं स्पष्ट करै हैं ॥

५४६ प्राणमात्रविषै विषक्त हैं तोबी उपलब्धिके द्वार नहीं होवैहैं । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

जातशत्रुनैं पूर्व दिखाया हैः—"करणोंके उप-संहारकूं प्राप्त हुये विज्ञानमय नहीं उपलभ्यमान होवैहै । शरीरदेशविषे[५४७] करणोंके व्यूढ (स्थित) हुये तो विज्ञानमय (जीवात्मा) उपलभ्यमान (प्रतीयमान) हुया देखियेहै" औ[५४८] सो हस्तके मरोडनेकरि प्रतिबोधनसैं दिखाया ॥ ॥ यह प्रत्याधान शिर है। सो प्रदेशों[५४९] (अंग) विशेषणविषै जिस तिसके प्रति धारण करियेहै । यातें प्रत्याधान है ॥ ॥ प्राण (बल) स्थूणा (खंभ) है ॥ अन्न अरु पानकरि जनित शक्ति। प्राण । बलं[५५०] । ये परस्पर पर्याय हैं ॥ जातें बल-

---

५४७ देहरूप अधिष्ठानवाले प्राणविषै संलग्न वे (इंद्रियां) उपलब्धिके द्वार होवैहैं । इस अर्थविषै अनुभवकूं अनुकूल करै हैं ॥

५४८ तहांहीं अजातशत्रुब्राह्मणके संवादकूं दिखावैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—शरीरके आश्रित प्राणविषै वाक्आदिकनके संलग्न हुये उपलब्धाकी उपलभ्यमानता होवै है ॥

५४९ शिरके प्रत्याधानपनैकूं व्युत्पादन करै हैं ॥

५५० बलके पर्याय प्राणके स्थूणा (स्तंभ)पनैकूं समर्थन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—यह मरनेवाला आत्मा (पुरुष) जिसकालविषै देहकूं अबलभावकेतांई प्राप्तकरिके संमोहकी

रूप आश्रयवाला प्राण इस शरीरविषै रहताहै [तातैं] सो जहां (जिसकालविषै) यह आत्मा (मरनेवाला पुरुष) देहकूं निर्बलभावकेतांई प्राप्त करिके संमोहकूं प्राप्त हुयेकी न्यांई प्राप्त होवैहै। तब शरीरतैं उत्क्रमण करैहै। ऐसैं आगे देखनेतैं ॥ [५५१] जैसैं वत्स स्थूणारूप आश्रयवाला होवैहै। [५५२] ऐसैं शरीरका पक्षपाती वायुरूप प्राण स्थूणा है। ऐसैं केईक (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) कहतेहैं ॥ अन्न दाम (रस्सी) है ॥ [५५३] जौतैं भुक्त अन्न

न्यांई प्राप्त होवैहै। तब उत्क्रमण करैहै (शरीरतैं निकसता है)। ऐसैं षष्ठविषै देखनेतैं ॥

५५१ इस देहविषै बलरूप आश्रयवाला प्राण है। इस अर्थविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

५५२ अब वेदांतके एकदेशी भर्तृप्रपंचके पक्षकूं दिखावेहैं ॥ जातैं कहाहैः—प्राण यह उच्छ्वास अरु निश्वासरूप कर्मवाला शारीर (शरीरमध्यवर्त्ती) अरु शरीरका पक्षपाती वायु ग्रहण करिये है। इस स्थूणाविषै शिशुरूप प्राण करणोंका देवता लिंगशरीरका पक्षपाती ग्रहण करियेहै ॥

५५३ सो देवरूप प्राण इस बाह्यप्राणविषै बांध्या है। ऐसैं सो व्याख्यान करनेकूं भूमिकाकूं करै हैं ॥ इहां त्वक् रुधिर मांस मेद मज्जा अस्थि अरु शुक्ररूप सप्त धातुनतैं भया जो देह। सो सप्त धातुक कहियेहै ॥

तीन प्रकारसैं परिणामकूं पावताहै ॥ जो स्थूल परिणामहै । सो ये दो रूप होयके इस (पृथिवी) के तांई विलय होवैहैं । मूत्र औ पुरीष (विष्ठा) ॥ जो मध्यम रसरूप सार है सो लोहित (रुधिर) आदिक क्रमकरि स्वकार्य सप्त धातुके शरीरकूं बढावताहै । जातैं स्वकारणरूप अन्नके आगमहुये शरीर बढता है । अन्नमय होनेतैं । विपर्ययके हुये अपक्षय (पतन) कूं पावताहै औ जो अणिष्ठ (सूक्ष्म) रस अमृतरूप औ अर्कप्रभाववाला ऐसैं कहियेहै । सो नाभिके ऊपर हृदयदेशके प्रति आयके । हृदयतैं प्रसृत बहत्तर हजार नाडीनविषै अनुप्रवेश करिके । जो सो करणोंका संघातरूप शिशुसंज्ञक लिंगहै । ताके शरीर (स्वरूप)विषै स्थूणानामक बलकूं उपजावता हुया स्थितिका कारण है ॥ तिस[554]करि अन्न दोनूंओरतैं पाशकीन्यांई । (दामकीन्यांई) प्राण अरु शरीरका निर्बंधनरूप होवैहै ॥ १ ॥

---

५५४ तथापि अन्नकूं दामपना कैसैं है ? सो कहैहैं ॥

तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते । त-
द्या इमा अक्षन् लोहिन्यो राजयस्ता-

अर्थः—तिसके तांई ये सप्त अक्षितियां उपस्थित होवैहैं । तहां जे ये (प्रसिद्ध) अ-क्षिविषै लोहित (रक्त) राजियां (रेखा)

टीकाः—अब[555] चक्षुरूप प्रत्याध्यानविषै ऊढ (स्थित) तिसीहीं शिशुकी केईक उपनिषद् क-हियेहैंः—ता (शिशु) केतांई ये सप्त अक्षि-तियां उपस्थित होवैहैं ॥ कहिये शरीरविषै अन्नरूप बंधनवाले चक्षुविषै ऊढ तिस करण-स्वरूप प्राणकेप्रति ये वक्ष्यमाण सप्त संख्यावा-लियां अक्षितिकी हेतु होनेतैं अक्षितियां उप-स्थित होवैहैं ॥ ॥ यद्यपि[556] मंत्रकरणविषै उपपूर्व

---

५५५ "जो प्रसिद्ध शिशुकूं" इत्यादि वाक्यविषै सूत्रित शिशुआदिक पदार्थनकूं व्याख्यान करिके । अनंतरके वाक्य-रचनाके तात्पर्यकूं दिखावतेहुये उत्तर वाक्यकूं लेके व्या-ख्यान करै हैं ॥

५५६ ननु जहां मंत्रकरि उपस्थान करियेहै तहांहीं उ-पपद है पूर्व जिसके ऐसे तिष्ठति धातुका आत्मनेपद हो-वैहै ॥ सो पाणिनीय शास्त्रविषै कहा हैः—"उपतैं मंत्रक-रणविषै" ऐसैं औ आदित्यके प्रति गायत्रीकरि उपस्थान

भिरेनꣳ रुद्रोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षन्नाप-
स्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तया-
ऽऽदित्यो यत् कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेने-

हैं । तिनकरि या (मध्यम प्राण)केतांई
रुद्र अनुगत होवैहै ॥ औ जे अक्षिविषे
आपहैं । तिनकरि पर्जन्य [अनुगत होवैहै]
॥ जो कनीनकाहै । तिसकरि आदित्य [अ-
नुगत होवैहै] ॥ जो कृष्ण है । तिस (द्वार)

तिष्ठति धातु आत्मनेपदी होवैहै ॥ इहांबी सप्त
देवताके नामरूप मंत्रस्थानीय करण तिष्ठति
धातुके हैं । यातें इहांबी आत्मनेपद विरुद्ध नहीं

करैहै ऐसें देखीयेहै । इहां मंत्रकरि किंचित् नहीं करियेहै
किंतु प्राणकूं अन्नके अक्षयका हेतु होनेतें सप्त अक्षितियां ।
ऐसें उपनिषद् कहनेकूं वांछित होवैहैं ? तहां कहैहैं ॥
इहां:—मंत्रकरि किसीबी अनुष्ठानके करणके विवक्षित हुये
उपपूर्व तिष्ठति धातु यद्यपि आत्मनेपदी होवैहै । तथापि
इहां सप्तरुद्रआदिक देवताके नाम मंत्रकी न्यांई अवस्थित
हैं । तिनोंकरि करणरूप उपासनाके अनुष्ठान इहां करियेहैं ।
यातैं उपपूर्व तिष्ठति धातुका आत्मनेपद अविरुद्ध है । ऐसें
योजना है औ लोहित (रक्त) रेखाओंकरि रुद्रकी प्राणके
प्रति अनुगतिके अनंतर । यह अथ शब्दका अर्थ है ॥

न्द्रोऽधरयैनं वर्तन्या पृथिव्यन्वयत्ता।
करि अग्नि [अनुगत होवैहै] ॥ जो शुक्लहै।
तिसकरि इंद्र [अनुगत होवैहै] ॥ नीचेकी
पमणीकरि याके तांई पृथिवी अनुगत हो-
है ॥ ॥ कौंन वे अक्षितियां हैं ? तहां कहियेहैः—
तहां जो ये प्रसिद्ध अक्षि (नेत्र) विषै लो-
हित (रक्त) रेखाहैं। द्वारभूत तिन (रेखाओं)
करि इस मध्यम प्राणके तांई रुद्र अनुगत
होवैहै ॥ अनंतर जे अक्षि (नेत्र) विषै धूम
आदिकके संजोगकरि आविर्भूत आप हैं। ति-
न द्वारभूत आपों (जलों) करि देवतास्वरूप
पर्जन्य अनुगत होवैहै। अर्थ यह जो उपस्थित-
होवैहै ॥ औ सो प्राणोंका अन्नभूत अक्षिति
पर्जन्य (मेघ)के वर्षते हुये प्राण आनंदी हो-
वैहैं" इस अन्य श्रुतितैं ॥ जो कनीनका (दृक्
शक्ति) है तिस कनीनकारूप द्वारकरि आदि-
त्य मध्यम प्राणके प्रति उपस्थित होवैहै ॥ च-

५५७ पर्जन्य (मेघ)की अन्नद्वारा प्राणके अक्षयके हे-
तुताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

द्यौरुत्तरया ॥ नास्यान्नं क्षीयते । य एवं वेद ॥ २ ॥

वैहै ॥ उत्तरा (ऊपरकी पमणी) करि स्वर्गलोक [अनुगत होवैहै] ॥ याका अन्न क्षीण नहीं होवैहै । जो ऐसें जानताहै ॥ २ ॥

क्षुविषे जो कृष्ण है । तिसकरि याके प्रति अग्नि उपस्थित होवैहै । चक्षुविषे जो शुक्ल है तिसकरि इंद्र उपस्थित होवैहै ॥ नीचेके पक्ष्म (पमणी)करि याके तांई पृथिवी अनुगत होवैहै । अधरताकी समानतातें ॥ द्यौः (स्वर्गलोक) ऊपरकी पक्ष्म (पमणी)करि स्थित होवैहै । ऊर्द्धताकी समानतातें ॥ ये सर्व५५८ प्राणके अन्नभूत अक्षितियां निरंतर उपस्थित होवैहैं ॥ ५५९ इसें प्रकारसें जो जानताहै । ताकूं यह फल होवै हैः—याका अन्न क्षयकूं पावता नहीं । जो ऐसें जानता है ॥ २ ॥

---

५५८ फेर इन सर्वकूं प्राणके प्रति अक्षितिपना कैसें सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

५५९ अब उपासनाके फलकूं कहैहैं ॥

तदेष श्लोको भवति । अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् । तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीरे

अर्थः—तिस (अर्थ)विषै यह श्लोक (मंत्र) होवैहै:—नीचे छिद्रवाला अरु ऊपरसैं गोल चमस (यज्ञपात्रविशेष) है । तिसविषै विश्वरूप (नानारूप) यश स्थित होवैहै । ताके तीरविषै (किनारे) सप्त ऋषि

टीकाः—तिस इस अर्थविषै यह श्लोक (मंत्र) होवैहै:—अर्वाग्बिलश्चमसः (नीचे छिद्रवाला चमस) । इत्यादि ॥ ॥ [५६०] तहां श्रुति मंत्रके अर्थकूं कथन करैहै:—नीचे बिल (छिद्र)

---

५६० रुद्रादि शब्दनकूं देवतारूप विषयवाले होनेतैं मंत्रकूंबी तद्विषयता (देवतारूप विषयवान्ता) होवैगी ? यह आशंका करिके । चक्षुविषै रुद्रादिकके गणकूं उक्त होनेतैं इंद्रियके साथि संबंधतैं ताकी करणग्रामरूपताकी प्रतीतितैं तिस (करणग्राम)कूं विषय करनेवाला श्लोक (मंत्र) है । प्रसिद्ध देवताकूं विषय करनेवाला नहीं है । इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥ इहां मंत्रका व्याख्यानकी अपेक्षावान्पना जो है सो "तहां" ऐसैं कहिये है ॥

वागष्टमी ब्रह्मणा सम्विदानेति । अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपमिति ॥ प्राणा वै

रहतेहैं । वाक् ब्रह्माकेसाथि संवादकूं करतीहुयी अष्टमी होवैहै । ऐसें नीचे छिद्रवाला अरु ऊंचेसें गोल चमस है इति । यह सो शिर है । यहहीं नीचेसें छिद्रवाला अरु ऊपरसें गोल चमस है ॥ तिसविषै विश्वरूप यश स्थित है इति ॥ प्राणरूप

वाला चमस (चमसके आकारवाला शिर) ऊर्ध्वबुध्न (ऊपरगोल) है ॥ कौंन फेर यह नीचे छिद्रवाला अरु ऊपरसें गोल चमस (यज्ञपात्रविशेष·) है? यह सो शिर है। जातें सो (शिर) नीले छिद्रवाला औ ऊपरसें गोल चमस (सोमवल्लिके रसके पान करनेके पात्र)के आकारवाला है ॥ ॥ [५६१] यहै नीचे छिद्रवाला कैसें है ?

५६१ शिरकूं चमसका आकारवान्‌पना अस्पष्ट है ? ऐसें आशंका करिके । समाधान करै है ॥

यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्या-ऽऽसत ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा

प्रसिद्ध यश विश्वरूप हुया स्थित है ॥ प्रा-णोंकूं यह कहैहैः—ताके तीरविषै सप्त ऋषि रहतेहैं । ऐसें ॥ प्राण प्रसिद्ध ऋषि हैं ।

मुखकूं बिल (छिद्र) रूप होनेतें है औ शिरकूं गोल आकारवाला होनेतें सो ऊपर गोलवाला है ॥ तिसविषै विश्वरूप यश निहित है इ-ति ॥ कहिये जैसें चमस (यज्ञपात्रविशेष)विषै सोम (सोमवल्लिका रस) स्थित होवैहै । ऐसें तिस शिरविषै विश्वरूप (नानारूप) यश नि-हित (स्थित) होवैहै ॥ फेर सो यश क्या है ? प्राण जे हैं वे प्रसिद्ध विश्वरूप यश हैं ॥ प्राण जे श्रोत्रादिक इंद्रिय औ तिनविषै सप्त प्रकारसें प्रसृतभये वायु। तिनकूं यह वेदका मंत्र यश ऐसें कहताहै । शब्दादिकके ज्ञानके हेतु होनेतें तिस (शिररूप चमस)के तीरविषै सप्त ऋषि रहतेहैं। परिस्पंदात्मक (स्फुरण-स्वरूप) हैं वेही ऋषि हैं ॥ यह मंत्र। प्राणोंकूं

ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा सम्विदानेति वाग्घ्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ॥ ३ ॥

प्राणोंकूं यह कहैहै । वाक् ब्रह्माकेसाथि संवादकूं करतीहुयी अष्टमी होवैहै । ऐसैं वाक् अष्टमी ब्रह्माकेसाथि संवादकूं करैहै ॥ ३ ॥

यह कहता है ॥ ब्रह्म[५६२] (शब्दराशि)करि संवाद करती हुयी वाक् । अष्टमी होवैहै ॥ तिसैं[५६३]-विषै हेतुकूं कहैहैः—वाक्हीं अष्टमी । ब्रह्म (शब्दराशि)करि संवादकूं करैहै ॥ ३ ॥

---

५६२ वाक् अष्टमी है ऐसैं कहा । औ ताकूं सप्तमता करि उक्त होनेतैं एक (वाक्)कूं दोपना (अष्टमपना तथा सप्तमपना) बनै नहीं ? यह आशंका करिके कहैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—शब्दका जो राशि (समूह) सो ब्रह्म कहियेहै । तिससैं संवाद जो संसर्ग । ताके तांई गमन करती हुयी (शब्दराशिकूं उच्चारती हुयी) वाक् । अष्टमी होवैहै ॥

५६३ तथापि सप्तमपनेकूं छोडीके अष्टमपना कैसैं कहा है ? तहां कहैहैं ॥ वक्ता अरु अत्तापनैके भेदकरि वाक् दोप्रकारकी इष्ट है । तिनमैं वक्तापनैकरि अष्टमी है औ अत्ता (भक्षक)पनैकरि सप्तमी है । ऐसैं अविरोध है औ रसना तो

इमावेव गोतमभ द्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी। अयमेव विश्वामित्रोऽयं जम-

---

अर्थः—ये (दो कर्ण)हीं गोतम भरद्वाज हैं। यह (दक्षिण)हीं गोतम है। यह (उत्तर) भरद्वाज है ॥ ये (दो चक्षु)हीं विश्वामित्र जमदग्नि हैं। यह (दक्षिण)हीं विश्वामित्र है। यह (उत्तर) जमदग्नि है ॥ ये (दो

टीकाः—फेर तिस चमसके तीरविषै कौनसे ऋषि रहतेहैं ? येहीं दो कर्ण गौतम अरु भरद्वाज हैं। यहहीं गोतम है। यह भरद्वाज है। दक्षिण औ उत्तर वा विपर्ययकरि हैं ॥ ॥ तैसैं दोनूं चक्षुनकूं उपदेश करताहुया कहता भयाः—येहीं (दो चक्षु) विश्वामित्र अरु जमदग्नि हैं। दक्षिण विश्वामित्र है। उत्तर जमद-

---

उपलब्धिकी हेतु है। यह भाव है ॥ वा विपर्ययकरि है। यह अर्थ पूर्वकीन्याांई है। ऐसैं कहिये है। इहां अत्रि सप्तम है। ऐसैं संबंध है औ अदनक्रियाके योगतैं यह अत्रिभावविषै हेतु है ॥

दग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमेव व-
सिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्य-
न्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति स-

नासिकाके पुट) वसिष्ठ कश्यप हैं । यह
(दक्षिण)हीं वसिष्ठ है । यह (उत्तरपुट)
कश्यप है ॥ वाक्हीं अत्रि है ॥ वाक्करि
जातैं अन्न भक्षण करियेहै [तातैं] अत्ति
प्रसिद्ध नाम यह है । जो अत्रि है । ऐसैं ॥

ग्नि है । वा विपर्ययकरि हैं ॥ दोनूं नासिकाके छि-
द्रनकूं उपदेश करता हुया कहता भयाः—द-
क्षिणपुट वसिष्ठ होवैहै । उत्तर कश्यप है ।
वा पूर्ववत्हैं ॥ ॥ वाक्हीं अत्रि है । अदन (भ-
क्षणरूप) क्रियाके योगतैं। सो सप्तम है। [५६४]जातैं
वाक्करि अन्न अदन करियेहै । [५६५]तातैं वाक्का
अत्ति यह नाम प्रसिद्ध है। अत्ता (भक्षक)
होनेतैं अत्रि ऐसा नाम है । [५६६]जो अत्ति हीं हुयी

५६४ हेतुकूं साधते हैं ॥

५६५ साध्य अर्थकूं निगमन करै हैं ॥

५६६ तब अत्रि यह कैसैं व्यपदेश करिये है ? यातैं क-

र्व्वस्यात्ता भवति । सर्व्वमस्यान्नं भवति । य एवं वेद ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं-शिशु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥२॥

सर्वका अत्ता (भक्षक) होवैहै । सर्व याका अन्न होवैहै । जो ऐसैं जानताहै ॥ ४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

परोक्षकरि अत्रि कहियेहै । सर्व इस अन्नके समुदायरूप प्राणका अत्रि निर्वचनके विज्ञानतैं अत्ता होवैहै । कहिये [५६७] अत्ताहीं होवैहै । परलोकविषे अन्यकरि फेर प्राप्त नहीं होवैहै ॥ यह कथन किया होवैहैः—सर्व याका अन्न होवैहै ।

हैहैं ॥ इहांः—प्राणका जो अन्नका समूह है । तिस इस सर्वका अत्ता होवैहै । अत्ति निर्वचनके विज्ञानतैं ऐसैं संबंध है ॥

५६७ "सर्व याका" इत्यादिरूप वाक्यकूं अर्थके कथनपूर्वक प्रगट करैहैं ॥

[५६८] जो ऐसैं इस उक्त प्रकारके प्राणके स्वभावकूं जानताहै । सो ऐसैं मध्यमप्राणरूप होयके आधानगत भोक्ताहीं होवैहै । अर्थ यह जोः— भोज्य । भोक्तातैं निवृत्त नहीं होवैहै ॥ ४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिका
यां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयं शिशु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ २ ॥

---

५६८ केवल अत्रिशब्दके निर्वचनका किया यह विज्ञानका फल नहीं । किंतु प्राणके स्वभावके ज्ञानका किया है । ऐसैं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्द्वितीयाध्यायगतद्वितीय-
ब्राह्मणस्य टिप्पणिका समाप्ता ॥ २ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे । मूर्त्तञ्चैवामू-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं:—मूर्त्तहीं

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

टीकाः—तहां[५६९] (अजातशत्रु ब्राह्मणके अवसानविषे) "प्राण प्रसिद्ध सत्य है" ऐसें कहा ॥ औ जे प्राणोंकी उपनिषद् हैं वे ब्रह्मकी उपनि-

---

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायगत-तृतीयब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

५६९ संबंधकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्तन करै हैं ॥ इहां अजातशत्रुब्राह्मणका अंत "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है औ उपनिषद कहिये रुद्रादिकके नाम हैं ॥

र्त्तञ्च। मर्त्यञ्चामृतञ्च। स्थितञ्च यच्च सच्च-
त्यच्च ॥ १ ॥

अरु अमूर्त्तहीं ॥ औ मर्त्य अरु अमृत।
स्थित अरु यत् (अस्थित)। सत् (अप-
रोक्ष) अरु त्यत् (परोक्ष) है ॥ १ ॥

षद्के प्रसंगकरि व्याख्यानकरी। "ये तेरे प्राण
हैं" ऐसैं ॥ ॥ वे[५७०] (प्राण) किस स्वरूपवाले हैं
वा तिन (प्राणों)की सत्यता कैसैं है। यहबी
कहनेकूं योग्य है? यह शंकाभयी। यातैं कार्य-
कारणस्वरूप पंचभूतरूप सत्योंके स्वरूपके अ-
वधारण (निश्चय) अर्थ। यह (तृतीय) ब्राह्मण
आरंभ करियेहै ॥ जो[५७१] "नेति नेति ऐसैं" उपा-
धिविशेषके अपनय (निवारण)रूप द्वारकरि

---

५७० उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

५७१ ब्रह्मकूं निर्धारण करनेकूं योग्य होनेतैं इहां भूत-
नका सत्व (सत्पना)क्यूं निर्धार करिये है? तहां कहैहैं ॥
इहां उपाधिभूत तिनभूतनके स्वरूपके निश्चयअर्थ यह ब्रा-
ह्मण है। ऐसैं संबंध है औ "सत्यका सत्य है" इस वाक्य-
विषै षष्ठ्यंत सत्यशब्दका वाच्य हेय है अरु प्रथमांत सत्य-
शब्दका वाच्य आदेय है। तिन दोनूंके मध्य आद्यके स्वरू-
पके कथनअर्थ पूर्वला वाक्य है। अरु ताके अनंतर जो

ब्रह्मका सत्व निर्धार करनेकूं इच्छित है ॥ [५७२]तैंहां दो रूपवाला । [५७३]पंचभूतजनित कार्यकरणसैं संबंधवाला । मूर्त्त अरु अमूर्त्त नामवाला मर्त्य अरु अमृत स्वभाववाला । औ तज्जनित वासनारूप । सर्वज्ञ । सर्वशक्तिमान् सोपाख्य (शब्द अरु प्रत्ययका विषय) औ क्रिया कारक अरु फलस्वरूप । सर्व व्यवहारोंका विषय है । [५७४]सोई ब्रह्म। सर्व उपाधि भेदतैं रहित । सम्यक् ज्ञानका विषय। अज। अजर । अमृत । अभय । वाक् अरु मनकाबी अविषय। अद्वैतरूप होनेतैं "नेति नेति" ऐसैं निर्देश करियेहै ॥ [५७५]तैंहां जिनके निषेधद्वारा "नेति नेति" ऐसैं ब्रह्म निर्देशकरियेहै । वे ये दोईहीं ब्रह्म (परमात्मा)के रूप हैं । अविद्याकरि आरोपित जिन दोनूंकरि

वाक्य है सो ब्राह्मणकी समाप्तिपर्यंत आदेयके निरूपण अर्थ है । यह समुदायका अर्थ है ॥

५७२ सविशेषहीं ब्रह्म है । निर्विशेष नहीं । ऐसैं केईक कहते हैं । तिनकूं निराकरण करनेकूं ब्रह्मका विभाग करैहैं ॥

५७३ " दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं " इत्यादि श्रुतितैं सोपाधिक ब्रह्मके रूपकूं विवरण करै हैं ॥

५७४ निरुपाधिक ब्रह्मके रूपकूं दिखावैहैं ॥

५७५ ऐसैं भूमिकाकूं रचिके अब अक्षरोंकूं व्याख्यान करैहैं॥

अरूप परब्रह्म निरूपण करियेहै। [यातैं वे दो रूप कहियेहैं] ॥ ॥ कौंनसे वे दो रूप हैं? मूर्त्तहीं। तैसैं अमूर्त्तहीं है। यह अर्थ है॥ अंतर्भा[५७६]वित स्वात्माविषै विशेषण मूर्त्त अरु अमूर्त्त दोईहीं निश्चय करियेहैं[५७७] ॥ ॥ फेर वे मूर्त्त अरु अमूर्त्तविषै अंतर्भावित विशेषण कौंन हैं? तहां कहियेहैंः—मर्त्य (मरणधर्मी) अरु अमृत (तिसतैं विपरीत)। स्थित (परिच्छिन्न गतिपूर्वक जो स्थास्नु है) अरु यत् जो जाताहै यातैं यत् व्यापि अपरिच्छिन्न होवैहै ऐसा स्थिततैं विपरीत। सच्च (सत्) कहिये अन्योंतैं विशेष्यमाण असाधारण धर्मरूप विशेषवाला अरु त्यच्च (तिसतैं वि-

---

५७६ ननु विवक्षित ब्रह्मके दोरूप जब निश्चित होवैं। तब मर्त्यताआदिक वक्ष्यमाण विशेषण। अवधारण (निश्चय)-के विरोधतैं अयुक्त होवैंगे? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

५७७ मूर्त्त अरु अमूर्त्तके मध्य अंतर्भावित जे स्वात्माविषै विशेषण हैं। तिनकूं आकांक्षाद्वारा दिखावै हैं ॥ जो गतिपूर्वक स्थास्नु (स्थिर) है सो परिच्छिन्न स्थित है। ऐसैं योजना है औ विशेष्यमाणता कहिये प्रत्यक्षकरि उपलभ्यमानता। औ इहां "तहां" ऐसी सप्तमी निर्धारण अर्थ है। अर्थ यह जो तहां प्रत्येक मूर्त्त अमूर्त्तके चतुष्टय विशेषणताके हुये ॥

तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षा-
च्चैतन्मर्त्यमेतत् स्थितमेतत्सत्तस्यैत-

अर्थः—सो यह मूर्त्त है। जो यह वायुतें अरु अंतरिक्षतें अन्य (पृथिवीआदि भूत-त्रय) है। यह मर्त्य है। यह स्थित है। यह

परीत) त्यत् ऐसाहीं सर्वदा परोक्ष कथनके यो-ग्य है ॥ १ ॥

टीकाः—तहां चतुष्टय विशेणकरि विशिष्ट मूर्त्त तथा अमूर्त्त है ॥ ॥ तिनमैं मूर्त्तके विशेषण कौंनहैं औ इतर (अमूर्त्तके विशेषण) कौंन हैं ? यह कहियेहैं:—सो यह मूर्त्त है कहिये मूर्च्छित अवयववाला (परस्परविषै अनुप्रविष्ट अवयववा-ला) घन (संहत) है। यह अर्थहै ॥ ॥ सो क्याहै? जो अन्यत् (न्यारा) है ॥ किसतें अन्यत् है ? वायुतें अरु अंतरिक्ष (आकाश) तें। इन दोनूं भूतनतें अन्यहै । परिशेषतें पृथिवीआ-दिक तीनिभूत। यह मर्त्य[५७८]है कहिये जो यह

५७८ ननु स्थितभावके हुये मर्त्यपना कैसें है ? तहां कहैहैं ॥

स्य मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्त्यस्यैतस्य स्थित-
स्यैतस्य सत एष रसो य एष तपति।
सतो ह्येष रसः ॥ २ ॥

सत् है। तिस इस मूर्त्तका । इस मर्त्यका।
इस स्थितका। इस सत्का। यह रस है।
जो यह तपता है । जातें सत्का यह रस
है ॥ २ ॥

मूर्त्त नामवाला भूतत्रय है। यह मर्त्य (मरण
धर्मी) है ॥ ॥ काहेतें ? जातें यह स्थित (परि-
च्छिन्न) है कहिये अर्थांतरके साथि सम्यक्[५७९] प्र-
युज्यमान हुया विरोधकूं पावताहै ॥ जैसें घट।
स्तंभ अरु भित्ति आदिककरि। तैसें मूर्त्त जो है
सो स्थित (परिच्छिन्न) हुया अर्थांतरका संबंधी
होवैहै। तातें अर्थांतरके विरोधतें मर्त्य यह सत्।
विशेष्यमाण असाधारण धर्मवाला है। तातैंहीं
परिच्छिन्न है। परिच्छिन्न होनेतें मर्त्य है। यातें

५७९ ताहीकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥ इहां यातें मर्त्य
होनेतें मूर्त्त है। यह शेष है औ मूर्त्तभाव अरु मर्त्यभावके
परस्परहेतु हेतुमद्भावकूं जनावनेकूं "वा" शब्द है ॥

मूर्त्त है ॥ वा मूर्त्त होनेतैं मर्त्य है। मर्त्य होनेतैं स्थित है । स्थित होनेतैं सत् है । यातैं [५८०]अंन्यो ऽन्य अव्यभिचारतैं च्यारीधर्मौंका यथाइच्छा विशेषणविशेष्यभाव औ हेतु हेतुमद्भाव दिखावनेकूं योग्यहै ॥ [५८१]सर्वथाबी तो तीनिभूत। चतुष्टयविशेषणकरि विशिष्ट मर्त्य है । सो ब्रह्मका रूप है ॥ ॥ [५८२]तैंहीं च्यारीनके मध्य एक विशेषणके ग्रहण किये हुये इतर विशेषण गृहीतहीं होवैहैं । ऐसैं कहैहैः–तिस इस मूर्त्तका। इस स्थितका इस सत्का । अर्थ यह जोः–चतुष्टय विशेषणवाले भूतत्रयका । यह रस है। अर्थ यह जो सार है ॥ [५८३]जौंतैं तीनि भूतनका सारिष्ट (अतिशय साररूप) सविता (सूर्य) है । [५८४]ईसैं (सू-

---

५८० फेर च्यारी धर्मौंविषै विशेषण विशेष्यभाव औ हेतुहेतुमद्भाव कैसैं निश्चय करनेकूं योग्य है ? तहां कहैहैं ॥

५८१ रूप अरु रूपीभावकेबी व्यवस्थाके अभावकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

५८२ तिस इसका यह रस है । ऐसैं कहनेके योग्य हुये "मूर्त्तका" इत्यादि वाक्यकरि क्यूं विशेषण चतुष्टयका अनुवाद करियेहै ? तहां कहैहैं ॥

५८३ सारताकूं साधते हैं ॥

५८४ तहां प्रतिज्ञाकूं अनुवादकरिके हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां

र्यरूप) सारवाले तीनि भूत हैं। जातैं ये तीनि विभज्यमान रूपवाले विशेषण होवैहैं। [५८४]औ आधि-दैविक कार्यका यह रूप है। जो सविताहै। जो यह मंडल तपताहै। [५८५]सत्[५८६]रूप भूतत्रयका जातैं यह रसहै ऐसैं ग्रहण करियेहै। [५८७]जातैं मूर्तरूप यह सविता तपताहै [५८८]औ सारिष्ठ है। [५८९]औ जो आधिदैविक करणमंडलके अभ्यंतर है ताकूं हम कहतेहैं ॥ २ ॥

यह अर्थ है:—इस सूर्यमंडलकरि किये विभज्यमान (असंकीर्ण) शुक्ल कृष्ण लोहित ये रूप हैं विशेषण जिनके ऐसैं पृथिवी जल अरु तेजरूप तीन भूत हैं। तातैं तीन भूतनके कार्यके मध्य सूर्यमंडलकी प्रधानता है ॥

५८५ "जो यह तपता है" याके अर्थकूं कहेहैं ॥

५८६ हेतुवाक्यकूं लेके ताके तात्पर्यकूं कहेहैं ॥ इहां मंडलहीं एतत् (यह) शब्दका अर्थ है ॥

५८७ मंडलके ग्रहणविषै हेतुकूं कहेहैं ॥ इहां मूर्त्तके ग्रहणकूं उपलक्षण होनेतैं च्यारीका जो अन्वय है सो हेतुताके अर्थ है ॥

५८८ यातैंबी मंडलात्मा सूर्य सो तीन भूतोंके कार्यनके मध्य प्रधान होवैहै। कार्यकारणकी एकरूपताकूं स्वाभाविक होनेतैं। ऐसैं कहेहैं ॥

५८९ ननु मंडल जब आधिदैविक कार्य है। तब फेर तिस प्रकारका करण क्या है? यह शंका भयी। यातैं सो कहेहैं ॥

अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृत-मेतद्यदेतत्त्यं। तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्या-

अर्थः—अब अमूर्त्तः—वायु अरु अंतरिक्ष है॥ यह (भूतद्वय) अमृत है। यह यत् (अ-स्थित) है। यह त्यत् है॥ तिस इस अ-

टीकाः—[590]अब अमूर्त्त कहियेहैः—वायु औ अंतरिक्ष (आकाश) रूप जो परिशेषित भूत-द्वय है यह अमूर्त्त है। अमूर्त्त होनेतें अस्थित (अपरिच्छिन्न) है। यातें किसीकेबी साथि अ-विरुद्ध्यमान है। अमृत अमरणधर्मी यह है। औ यह यत् है कहिये स्थिततें विपरीत व्यापिप-रिच्छिन्न है॥ जातें यह अन्योंतें अप्रविभज्यमान विशेषवाला है। यातें त्य (त्यत्) ऐसें परोक्ष कथ-नके योग्यहीं है। [591]पूर्वकीन्यांई॥ तिस इस अमूर्त्त-

५९० आधिदैविक मूर्त्तकूं कहिके। तिस प्रकारकेहीं अमू-र्त्तकूं प्रतीकके ग्रहणपूर्वक स्पष्ट करै हैं॥ इहां अमूर्त्त जो है सो उभयतारूप हेतुताकरि संबंधकूं पावता है औ अपरि-च्छिन्नपना जो है सो अविरोधविषै हेतु है॥

५९१ अमूर्त्ततआदिकनका परस्पर विशेषणविशेष्य-

मृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्त्यस्य ह्येष रस इत्यधिदैवतम् ॥ ३ ॥

मूर्त्तका । इस अमृतका । इस यत्का । इस त्यत्का यह रस है । जो यह इस मंडल-विषै पुरुष है । जातें त्यत्का यह रस है । यह अधिदैवत है ॥ ३ ॥

का । इस अमृतका । इस यत् (गमनशील) का । इस त्यत् (परोक्ष)का कहिये च्या-रीविशेषणवाले अमूर्त्तकाहीं यह रस है ॥ ॥ कौंन यह रसहै ? जो यह इस मंडलवि-षै करणात्मक[५९२] हिरण्यगर्भ प्राणरूप पुरुष ऐसें कहियेहै । जो सो यह अमूर्त्तरूप भूतद्व-यका पूर्वकीन्यांई[५९३] रस (सारिष्ट) है ॥

भाव औ हेतु हेतुमद्भाव इच्छाके अनुसार देखनेकूं योग्य है । ऐसें कहैहैं ॥ इहां पुनरुक्तिबी पूर्वकीन्यांई है ॥

५९२ " जो यह " इत्यादि प्रतीकका ग्रहण है । ताका व्याख्यान करणात्मक इत्यादि है ॥

५९३ जैसैं भूतत्रयका मंडल सारिष्ट कहा है । ताकी न्यांई है । ऐसैं कहैहैं ॥

[५९४] येहैं पुरुषरूप सारवाला अरु अमूर्त्तरूप भूतद्वय। हिरण्यगर्भसंबंधी लिंगके आरंभअर्थहींहै । तिस अव्याकृततैं भूतद्वयकी अभिव्यक्ति है। तादर्थ्यतैं तिसका सार भूतद्वय है ॥ [५९५] जातैं त्यत्का यह रस है । जातैं जो मंडलविषै स्थित पुरुष मंडलकीन्यांई नहीं ग्रहण करियेहै । औ भूतद्वयका सार है । तातैं मंडलविषै स्थित पुरुषका औ भूतद्वयका साधर्म्य (समानधर्मवान्पना) है ॥ [५९६] तातैं त्यत्का यह रस है । ऐसैं प्रसिद्धिकी न्यांई हेतुका ग्रहण युक्त है ॥ ॥ [५९७] केईक (भर्तृ-

---

५९४ सारिष्टपनैकूं अनुवाद करिके हेतुकूं कहेहैं ॥ इहां भूतत्रयके उपसर्जनरूप औ आपहीं प्रधान भूतद्वयकूं तिस अर्थ होनेतैं याका । हिरण्यगर्भके आरंभ अर्थ होनेतैं । यह अर्थ है ॥ औ भूतद्वय जो है सो भूतत्रयका उपसर्जन रूप है । यह शेष है ॥

५९५ हेतुकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां पुरुषशब्दतैं ऊपर स (सो) शब्द देखनेकूं योग्य है ॥

५९६ अमूर्त्त होनेतैं इस विशेषणचतुष्टयकरि विशिष्टताका असाधर्म्य (अतुल्यपना) है ताके फलकूं कहेहैं ॥

५९७ स्वमतकूं कहिके । अब भर्तृप्रपंचके मतकूं कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—" त्यत्काहीं " इत्यादि वाक्यविषै रसशब्दकरि भूतद्वयका कारण कहाहै औ सो चेतनतैं अन्य नहींहै औ जीव नहीं है तिस प्रकारके असामर्थ्यतैं औ पर-

प्रपंचके अनुसारी):—रस कहिये कारण जो हि-रण्यगर्भका विज्ञानात्मा चेतन है । ऐसें कहते हैं । औ तहां[५९८] (भर्तृप्रपंचके पक्षविषै) प्रसिद्ध हि-रण्यगर्भके विज्ञानात्माका कर्म । वायु अरु अंतरि-क्षका प्रयोक्ताहै ॥ सो[५९९] कर्म । वायु अरु अंतरिक्षका आधार (तिसरूपसें परिणत) हुया अन्य (तीन) भूतनका प्रयोक्ता होवैहै । तिस स्वकर्मकरि वायु

मात्माबी नहीं है कूटस्थ होनेतें । तातें चेतन । सूत्ररूप क्षे-त्रका जाननेवाला तैसा है ॥ यह अर्थ है ॥

५९८ सोबी भूतद्वयका कारण कैसें है ? यातें कहैहैं ॥ इहां परकीयपक्ष "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है औ सो क-र्मका असाधारण अघटित है। या अभिप्रायकरिके किल (प्र-सिद्ध) ऐसें कहा ॥ जैसें कहते हैं:—"जोई इस मंडलविषै विज्ञानात्मा है यह निश्चयकरि अविद्या कर्म अरु पूर्वप्रज्ञा-करि युक्त हुया विज्ञानात्मापनैकूं पावता है । सो यह कर्म-विज्ञानात्माका रूप है । सो वायु अरु अंतरिक्षका प्रयोक्ता होवैहै" ॥

५९९ ननु हिरण्यगर्भके देहकूं पंचभूतस्वरूप होनेतें भू-तद्वयकी उत्पत्तिके हुयेबी इतर (तीन) भूतनकी उत्पत्ति-विना कहासें याकूं भोग सिद्ध होवैहै ? यातें कहैहैं ॥ इहां वायु अरु अंतरिक्षका आधार । याका । तिसरूपसें परिणा-मकूं पाया । यह अर्थ है ॥ औ वायु अंतरिक्षका । इहां तीन भूतनके उपसर्जनरूप इनका । यह शेष है ॥ इहां प्रयोक्ता कहिये हिरण्यगर्भका विज्ञानात्मा है ॥

अरु अंतरिक्षका प्रयोक्ता है । यातैं तिनका रस (कारण) कहियेहै इति ॥ ॥[६००] सो बनै नहीं:—काहेतैं मूर्तरसके साथि अमूर्त्तरसकी अतुल्यतातैं ।[६०१] मूर्त्तरूप भूतत्रयका तो रस । भूतत्रयके समान जातिवाला मूर्त्तरूपहीं मंडल देख्या है । चेतन नहीं ॥ तैसैं अमूर्त्तरूप दोनूं भूतनकाबी तिसके समान जातिवालेहीं अमूर्त्तरसकरि होनेकूं युक्त है । वाक्यकी प्रवृत्तिकूं तुल्य होनेतैं ॥[६०२] जैसैंहीं चतुष्टय धर्मवाले मूर्त्त अरु अमूर्त्त विभागकरियेहैं ।[६०३] तैसैं रस अरु रसवाले मूर्त्त अरु

---

६०० निराकरण करै हैं ॥

६०१ मूर्त्तरसके साथि उक्तप्रकारके अमूर्त्तरसकी अतुल्यता कैसैं है ? यह आशंका करिके । कहै हैं ॥ अमूर्त्तरसकी चेतनताके हुये दोनूं रसनका विजातिपना होवैगा । यह भाव है ॥

६०२ दोनूं रसनका विजातिपना होहु ? तहां सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां:—मूर्त्त मर्त्य स्थित अरु सत् । यह मूर्त्तके धर्मोंका चतुष्टय है औ अमूर्त्त अमृत व्यापि अरु त्यत् । यह अमूर्त्तका विभजन है कहिये असंकीर्णताकरि प्रदर्शन है ॥

६०३ जैसैं रसवाले मूर्त्त अरु अमूर्त्तकी तुल्यता कही । तैसैं रस अरु रसवालेबी तिन (मूर्त्त अमूर्त्त)का तुल्य प्रकारकरिहीं प्रदर्शन उचित है । परंतु अमूर्त्तरस चेतन है

अमूर्त्तकाबी तुल्यहीं न्यायकरि विभाग युक्त है औ अर्धमरण नहीं ॥ [६०४] ॥ ननु मूर्त्तरसविषैबी मंडलका अधिपति चेतन विवक्षित होवैहै? ऐसैं जो तूं प्रतिवादी कहै। [६०५] तो यह तेरेकरि अति अल्प कहियेहै। काहेतैं सर्व ठिकानेतो मूर्त्त अरु अमूर्त्तकूं ब्रह्मरूपकरि विवक्षित होनेतैं ॥ ॥ [६०६] ननु पुरुषशब्द। अचेतनविषै अघटित है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। [६०७] सो बनै नहीं:—काहेतैं पक्ष अरु पुच्छआदिककरि विशिष्टहीं लिं-

---

औ मूर्त्तरस तो अचेतन है। इस रीतिका विभाग युक्त नहीं है। काहेतैं अर्द्धजरतीय (अर्द्धमरण)कूं अप्रामाणिक होनेतैं। ऐसैं कहैहैं ॥

६०४ अर्द्धवैशस (अर्द्धमरण)कूं परिहार करनेकूं प्रतिवादी। शंका करै है ॥

६०५ अमूर्त्तरसकी न्यांई मूर्त्त शब्दकरिबी मंडलभावकूं प्राप्त भये ब्रह्मचेतनकाहीं ग्रहण है? इस पक्षकूं सिद्धांती। दूषण देतेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मंडलकूं चेतनकी कार्यताकरि चेतनताके हुये सर्वकूं ता (चेतन)की कार्यताकरि तन्मात्र होनेतैं दोनूं रसनकूं चेतनता होवैगी। यातैं विशेषणनकी व्यर्थता होवैगी ॥

६०६ ननु मंडलके आधारकी चेतनता पुरुषशब्दके वशातैं माननेकूं योग्य है? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६०७ अब सिद्धांती। अनुपपत्तिकूं परिहार करैहैं ॥

अथाध्यात्ममिदमेव मूर्त्तं यदन्य-

अर्थः—अब अध्यात्म [कहिये] हैः—

गकूं पुरुषशब्दके देखनेतें ॥ ऐसें प्रविभक्त हुये प्रजाकूं उपजावनेकूं हम समर्थ नहीं होतेहैं ऐसें आलोचन करिके इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुष करतेहैं ॥ "वे इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुष करते भये" इत्यादिकविषै औ अन्नरसमयादिक श्रुत्यंतरविषै पुरुषशब्दके प्रयोगतें ॥ यह अधिदैवत है ॥ ऐसें कहा जो उपसंहार । सो अध्यात्म—विभागके कथन अर्थ है ॥ ३ ॥

टीकाः—अबअध्यात्मरूप मूर्त्त अरु अमू-

---

६०८ ताहीकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विभक्त हुये हम व्यवहारकूं उपजावनेकूं समर्थ नहीं होवैहैं । ऐसें आलोचनकरिके त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण वाक् अरु मनरूप इन सप्तपुरुषनकूं एकपुरुषरूप संघातमय लिंगकूं करैं । ऐसें निश्चयकरिके । ये प्राण । उक्त सप्तपुरुषनकूं लिंगात्मारूप एकपुरुषकूं करते भये ॥ इहां आदिशब्दकरि लौकिक दर्शनकाबी ग्रहण करियेहै औ श्रुत्यंतरोंविषै कहिये तैत्तिरीय श्रुतिविषै पुरुषशब्दका प्रयोगः—"सो प्रसिद्ध यह पुरुष अन्नरसमय है" इत्यादि रूप है ॥

६०९ परकीय व्याख्यानकूं निषेध करिके । प्रकृत श्रुतिके व्याख्यानकूं अनुवर्तन करै हैं ॥

त्प्राणाच्च यश्चाऽयमन्तरात्मन्नाकाश ए-
तन्मर्त्यमेतात्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मू-

यहहीं मूर्त्त है । जो प्राणतें अन्य है औ
जो यह अंतरात्माविषे आकाश है । यह
मर्त्य है । यह स्थित है । यह सत् है ॥

र्त्तका विभाग कहियेहै ॥ क्या सो मूर्त्त है? यह-
हीं है ॥ क्या यह है? जो प्राणतें औ वायुतें अ-
न्यहै औ जो यह अंतरात्माके भीतर आकाश
है औ जो शरीरविषे स्थित प्राण है । इन दो-
नूंकूं वर्जना करिके जो अन्य शरीरका आरंभ-
क भूतत्रयहै। यह मर्त्य है । इत्यादि अन्य पूर्व
करि समान है॥ इस सत्का हीं यह रस है ।
जो चक्षु है। ऐसें आध्यात्मिक[६१०] शरीरारंभक
कार्यका यह रस (सार) है। जातें तिस सार-
करि सारवाला यह समस्त शरीर है ॥ जैसें अ-
धिदैवत आदित्यमंडलकरि औ प्रथमता[६११]करि

---

६१० चक्षुके रसभावकूं प्रतिज्ञापूर्वक प्रकट करैहैं ॥

६११ चक्षुकी सारताविषे शरीरके अवयवनविषे प्रथम-
तारूप अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

र्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष रसः ॥ ४ ॥

तिस इस मूर्त्तका । इस मर्त्यका । इस स्थितका । इस सत्का । यह रस है । जो चक्षु है । जातें सत्का यह रस है ॥ ४ ॥

है । [ऐसें] दो[६१२] चक्षुहीं प्रथम संभवते हैं ॥ ऐसें[६१३] तेजोमय अग्निरूप रस निवर्त्त होताभया । इस लिंगतें तैजसहीं[६१४] चक्षुहै । इसे[६१५] सारवाला आ-

---

६१२ तिसविषै प्रमाणकूं कहे हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः— जायमान जंतुके दो चक्षुहीं प्रथम (प्रधान) उपजते हैं । वारंवारहीं सेचनकीये रेतके दो चक्षुहीं प्रथम उपजते हैं । यह ब्राह्मण है ॥

६१३ चक्षुकी सारताविषै अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहांः— शरीरमात्रका अविशेषकरि निष्पादक अरु तहां (शरीरविषै) सर्वत्र सन्निहित हुयाबी तेज विशेषकरि चक्षुविषै स्थित है । काहेतें “ आदित्य चक्षुरूप होयके अक्षिनविषै प्रवेश करताभया ” इस श्रुतितें । यातें तेजःशब्दके पर्यायरूप रसशब्दकी चक्षुविषै प्रवृत्ति अविरुद्ध है । यह भाव है ॥

६१४ या (कहनेके हेतु)तैंबी तेजःशब्दका पर्याय रसशब्द चक्षुविषै संभवैहै । ऐसें कहैहैं ॥

६१५ प्रतिज्ञारूप अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

अथामूर्त्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरा-
त्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं । त-

अर्थः—अब अमूर्त्त [कहिये] हैः—प्राण
है औ जो यह अंतरात्माविषै आकाश है॥
यह अमृत है। यह यत् (अस्थित) है।

ध्यात्मिक भूतत्रय है । जातें सत्[६१६]काहीं यह रस
है। ऐसैं मूर्त्तभावकी सारताविषै हेतुका अर्थ
है ॥ ४ ॥

टीकाः—अब अमूर्त्त कहियेहैः—जो परिशे-
षित भूतद्वयहै । औ प्राणहै औ जो यह अं-
तरात्माविषै आकाशहै यह अमूर्त्त है ॥ अन्य
पूर्वकीन्यांई है ॥ इस त्यत्का यह रस (सार)
है। जो यह द[६१७]क्षिण अक्षिविषै पुरुषहै ॥ इहां

६१६ हेतुकूं अवतार देके ताके अर्थकूं कहेहैं ॥ इहांः—
चक्षुकूं मूर्त्तरूप होनेतैं मूर्त्तरूप तीनभूतनका कार्यपना युक्त
है औ साधर्म्यतैं अरु देहके अवयवनविषै प्रधान होनेतैं ता
(चक्षु)की आध्यात्मिक भूतत्रयके सारताकी सिद्धि है ।
यह अर्थ है ॥

६१७ ननु विशेष उक्ति कहांतैं है? यह आशंका क-
रिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—शास्त्रकूं वा तिस

स्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्त्यस्य ह्येष रसः ॥ ५ ॥

यह त्यत् है ॥ तिस इस अमूर्त्तका । इस अमृतका । इस यत्का । इस त्यत्का। यह रस है । जो यह दक्षिण अक्षिविषै पुरुष है । जातैं त्यत्का यह रस है ॥५॥

"दक्षिण अक्षिविषै" ऐसा विशेषग्रहण शास्त्र-करि प्रत्यक्ष होनेतैं है ॥ [६१८] जातैं लिंगकी दक्षिण अक्षिविषै जो विशेषकरि अधिष्ठानताहै । सो शास्त्रकूं प्रत्यक्षहै । काहेतैं सर्व श्रुतिनविषै तैसैं प्रयोगके देखनेतैं। [६१९] त्यत्काहीं यह रस है । यह पूर्वकीन्यांई जानिलेना ॥ विशेषकरि अग्रहणतैं अमूर्त्तभावकी सारताविषै हेतुका अर्थ होहू ॥५॥

(शास्त्र) करि दक्षिण अक्षिविषै विशेष (विलक्षणता)कूं प्रत्यक्ष होनेतैं ॥

६१८ द्वितीय व्याख्यानकूं आश्रय करिके । हेतुके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

६१९ हेतुकूं अनुवादकरिके ताके अर्थकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं पूर्व चक्षुविषै मूर्त्तआदिकके चतुष्टयकी दृष्टिकरि तिस प्रकारके भूतत्रयकी सारता कही । तैसैं

तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं । यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं। य-

अर्थः—तिसीहीं इस पुरुषका रूप है। जसैं माहारजन (हरिद्राकरि रक्त) वस्त्र है। जैसैं श्वेतआविक (ऊर्णादि वस्त्र) है।

टीकाः—[620]ब्रह्मके उपाधिभूत मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप सत्यशब्दके वाच्य अध्यात्म अरु अधिदैवतका कार्य अरु करणके विभागकरि विभाग व्याख्यान किया ॥ अब तिस इस पुरुषरूप करणात्मक लिंगके रूपकूं कहतेहैं। सो कैसा है किः—वासनामय [621]मूर्त्त अमूर्त्तकी वासनाकरि अरु विज्ञानमयके

इहांबी लिंगात्माविषै अमूर्त्तता आदिक चतुष्टयके विशेषकरि अग्रहणतें अमूर्त्तता आदिकके साथि साधर्म्यतें तिस प्रकारके भूतद्वयकी सारता है औ ताकूं शरीरविषै प्रधान होनेतें ताके सारताकी सिद्धि है ॥

६२० "तिसहीं" इत्यादि वृत्तांतके कथनपूर्वक संबंधकूं कहैहैं ॥ इहां विभाग नाम विशेष है। तिस अधिदैवरूप प्रकृत इस अध्यात्मके सन्निहित अमूर्त्त रसभूत अंतःकरणकूंहीं रागादि वासना है। ऐसैं कहनेकूं "तिसीहींका" इत्यादिरूप वाक्य है ॥

६२१ यह रूप लिंगकूं कैसैं प्राप्त भया है? यह शंका

थेन्द्रगोपो यथाऽग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं। यथा सकृद्विद्युत्तं सकृद्विद्युत्तेव ह वा

जैसैं इंद्रगोप(वर्षाकालमैं उत्पन्न रक्त लघुजंतुविशेष) है। जैसैं अग्निकी ज्वाला है। जैसैं पुंडरीक (शुक्लकमल) है। जैसैं सकृत्विद्युत्त (बीजलीका चमत्कार) है ॥ सकृत्वि-

संयोगकरि जनित (बुद्धिरूप) । पट अरु भित्ति-विषै चित्रकीन्यांई। विचित्र।[622] मांया[623] इंद्रजाल अरु मृगतृष्णिकाकी उपमावाला औ सर्व[624] व्यामोहका आस्पद है । जेहीं[625] एतावत् मात्रहीं आत्मा

भयी। यातैं सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मूर्त्त अमूर्त्तकी वासनाकरि औ विज्ञानमयके संयोगकरि जनित बुद्धिका रूप है ॥

६२२ ननु यह आत्माका रूप नहीं है । काहेतैं एक-रस ता (आत्मा)कूं अनेकरूपताके असंभवतैं ? यह शंका-भयी । यातैं ता वासनामय रूपकूं विशेषण देते हैं ॥

६२३ ताके वास्तवताकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥ इहां विचित्रताकूं अनुसरिके अनेक उदाहरण हैं ॥

६२४ अंतःकरणकूंहीं जब रागादि वासना होवै। तब पुरुष -तन्मय कैसैं देखियेहै ? तहां कहैहैं ॥

६२५ ताहीकूं व्याख्यान करते हुये क्षणिकविज्ञानवादी-नकी भ्रांतिकूं कहैहैं ॥ इहांः—बुद्धिमात्रहीं अहंवृत्तिकरि

अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदे-
शो नेति नेति । न ह्येतस्मादिति नेत्य-

द्युत्तकीन्यांईहीं याकी श्री (ख्याति) हो-
वैहै । जो ऐसें जानताहै ॥ अनंतर यातें
नेति नेति ऐसा आदेश (ब्रह्मका निर्देश)

है। ऐसें विज्ञानवादीरूप वैनाशिक । भ्रांत होते
हैं औ वासनारूप [६२६] इसीहींकूं पटके रूपकी न्यांई
आत्मारूप द्रव्यका गुणहै । ऐसें नैयायिक
औ वैशेषिक प्राप्त भयेहैं ॥ यहँ [६२७] आत्माकेअर्थ
है । पुरुषार्थरूप [६२८] हेतुकरि ॥ औ त्रिगुण स्वतंत्र

विशिष्ट । स्वरसकरि भंगुर । रागादि मलकरि कलुषित हुया आत्मा है । अन्य स्थायी वा क्षणिक नहीं । ऐसें जिसविषै वे (क्षणिकविज्ञानवादी) भ्रांत हैं। ताके रूपकूं हम कहतेहैं । ऐसें संबंध है ॥

६२६ तार्किकोंकीबी बौद्धनकीन्यांई भ्रांतिकूं उद्भव करै हैं ॥ इहां:—अंतःकरणहीं अहंबुद्धिकरि ग्राह्य अरु रागादि धर्मवाला हुया आत्मा है । ताका वासनामय रूप पटके शुक्लभावकीन्यांई गुण है औ सो संसार है। ऐसें जहां (जिस अंतःकरणविषै) तार्किक भ्रांतहैं । ताके रूपकूं हम कहते हैं । यह पूर्ववत् (संबंध) है ॥

६२७ अब सांख्यवादीनकी भ्रांतिकूं कहैहैं ॥

६२८ किस प्रकारकरि अंतःकरण आत्माके अर्थ अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥

न्यत्परमस्त्यथ नामधेयꣳ सत्यस्य सत्यमिति । प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

है ॥ जातें ऐसें नहीं ऐसें नहीं इसतें अन्य पर (श्रेष्ठ) [निर्देश] नहीं है । यातें सत्यका सत्य है ऐसा नामधेय है । प्राणहीं सत्य हैं तिनका यह सत्य है ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र भाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं-मूर्त्तामूर्त्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

---

[६२९] प्रधानरूप आश्रयवाला प्रवृत्त होवैहै । ऐसें सांख्य-

६२९ याकूं त्रिगुणता आदिक कैसें सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां:—अंत:करणहीं आत्मा नहीं किंतु तिसतें अन्य सर्वगत सर्व विक्रियाकरि शून्य स्वप्रकाश आत्मा है । ताके भोग मोक्षकी अनुसारिताकरि प्रधानात्मक अंत:करण है । सो सधर्मक हुया प्रवर्त्तक होवैहै । ऐसें जिसविषै कपिलके अनुसारी भ्रमते हैं । ताके रूपकूं हम कहते हैं । ऐसें संबंध है ॥

वादी कहतेहैं औ उपनिषद्के[630] सिद्धांतकूं मान-
नेवालेबी केईक प्रक्रियाकूं रचतेहैं:—मूर्त्त[631] अमू-
र्त्तका राशि एक है। परमा[illegible] राशि[632] उत्तम
है। तिनं[633] दोनूंतें अन्य यह मध्यम प्रसिद्ध तृ-
तीय। कर्त्ता भोक्तारूप अजातशत्रुकरि प्रति-
बोधित विज्ञानमयके साथि विद्या कर्म अरु पूर्व
[illegible]के समुदायके प्रयोक्ता[634] (उत्पादक) कर्मका
राशि है औ प्रयोज्य पूर्वोक्त मूर्त्त अमूर्त्त भूत-

---

६३० जहां (जिस अंत:करणविषै) विद्वानोंकूं विचित्र भ्रांति है। सो अंत:करण "ताहीके" इस वाक्यविषै क-हियेहै। आत्मा नहीं। इस स्वपक्षकूं कहिके। अब भर्तृ-प्रपंचके पक्षकूं उठावते हैं॥

६३१ किस प्रकारकी प्रक्रिया है? ऐसैं कहेहुये। तीन राशिकी कल्पनाकूं कहते हुये आदिविषै अधम राशिकूं दिखावे हैं॥

६३२ उत्कृष्ट राशिकूं कहैहैं॥

६३३ अन्यराशि (मध्यमराशि)कूं कहैहैं॥

६३४ वे ये तीन वस्तु। मूर्त्त अमूर्त्तके अरु माहारजन (हरिद्राकरि रक्तवस्त्रकी न्यांई) आदिकरूप आत्मतत्व है। इस परोक्तिकूं आश्रयकरिके। तीन राशिकी कल्पनाकूं क-हिके। अब मध्यम अरु अधम राशिनके मध्य विशेषकूं क-हैहैं॥ इहां उत्पादकका नाम प्रयोक्ता है औ कर्मका जो ग्रहण है सो विद्या अरु प्रज्ञाका उपलक्षण है॥

नका राशि औ[६३५] साधन है । इति ॥ औ[६३६] तहां (राशित्रयके कल्पित हुये) तार्किकोंके साथि संधिकूं करतेहैंः—औ लिंग[६३७]का आश्रय यह कर्म राशि है । ऐसैं कहिके फेर तिस (उक्ति)करि सांख्यभावके भयतैं भयकूं पावते हुये वैशेषिकके चित्तकूंबी अनुसरतेहैंः—सर्व क[६३८]र्मराशि पुष्पके आश्रय जो गंध है । सो पुष्पतैं वियोगके हुयेबी पुट (पुडीया) अरु तैलके आश्रय जैसैं होवैहै ॥ तैसैं लिंगतैं वियोगके हुयेबी प[६३९]रमात्मा-

---

६३५ साधन जो ज्ञान अरु कर्मका कारणरूप कार्य अरु कारणका समुदाय है । सोबी प्रयोज्य (कार्यविषै योजना करनेकूं योग्य) है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां इतिशब्द जो है सो तीनराशिनके कल्पनाकी समाप्ति अर्थ है ॥

६३६ परकीय अन्य कल्पनाकूं कहैहैं ॥ इहां "तहां" कहिये तीन राशिनके कल्पित हुये ॥

६३७ संधिके करनेकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ सांख्यके भयतैं डरते हुये वैशेषिकनके चित्त (कल्पनारूप विचार)कूं अनुसरते हैं । ऐसैं संबंध है ॥

६३८ तिनके चित्तका अनुसरण कैसैं है? ताकूं उपपादन करै हैं ॥

६३९ निर्गुण आत्माकूं कर्मराशि कैसैं आश्रय करै है? यह आशंकाकरिके । कहैहैं ॥ इहांः—अन्यतैं । इस पदका कार्यकरणात्मक भूतराशितैं । यह अर्थ है ॥

के एक देशकूं आश्रय करैहै ॥ सो परमात्माका एक देश । प्रसिद्ध अन्यतें (कार्य करणात्मक भूतराशितें) प्राप्त गुणरूप कर्मकरि सगुण होवैहै ॥ निर्गुण हुयाबी[६४०] कर्त्ता भोक्ता विज्ञानात्मा। बंधनकूं पावताहै औ मुक्त होवैहै । ऐसैं वैशेषिकके चित्तकूंबी अनुसरतेहैं ॥ औ[६४१] सो कर्मराशि । भूतराशितें आगंतुक हुया स्वतः निर्गुणहीं हैं । परमात्माका एक देश होनेतें ॥ ॥ स्वतः[६४२] उ-

---

६४० जब भूतराशिविषै स्थित कर्म आदिक तिसद्वारा आत्माविषै आवताहै । तब सो (आत्मा) कर्त्ताभाव आदिक संसारकूं अनुभव करै है । ऐसैं कहेहैं ॥

६४१ ननु स्वतः (स्वरूपकरि) ताकूं कर्म आदिकके साथि संबंधवान् होनेकरि संसारीपना होवैहै ? इसप्रकार जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहेहैं ॥ इहां निर्गुणहीं विज्ञानात्मा है । यह शेष है ॥

६४२ सांख्यनके चित्तके अनुसारअर्थहीं परवादीनकी अन्य प्रक्रियाकूं कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—स्वाभाविकीबी अविद्या परमात्मातैंहीं अभिव्यक्त (आविर्भूत) हुयी ताके एकदेशके प्रति विकारकूं पायके तिसीहीं अंतःकरण नामक एकदेशविषै स्थित होवै है । ऐसैं कहते हुये अनात्माका धर्म अविद्या है । ऐसैं कहिके सांख्योंके चित्तकूंबी अनुसरते हैं ॥

त्पन्न भयी अविद्या अनागंतुक हुयीबी [६४३] ऊषरकी न्यांईं अनात्माका धर्म है। ऐसी इस कल्पना-करि सांख्योंके चित्तकूं अनुसरिके वर्त्ततेहैं ॥ [६४४] सर्व यह तार्किकोंके साथि समंजसभावकी क-ल्पनाकरि रमणीय देखतेहैं। [६४५] उपनिषद्के सि-द्धांतकूं औ सर्व न्यायके विरोधकूं नहीं दे-खतेहैं ॥ [६४६] ॥ कैसैंकि ? [६४७] तहां प्रथम परमात्माकी

---

६४३ ननु अविद्या जब परमात्मातैं उपजी है। तब परमा-त्माकूंहीं आश्रय करैगी । ताके एकदेशकूं नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं पृथिवीतैं उपज्याबी ऊषरदेश ताके एकदेशकूं आश्रय करै हैं। ऐसैं अविद्या परमा-त्मातैं उपजी हुयीबी ताके एकदेशकूं आश्रय करैहै ॥

६४४ अब सिद्धांती तिस इस (भर्तृप्रपंचके पक्ष)कूंहीं दूषण देनेकूं उपक्रम करैहैं ॥ इहांः—तार्किकोंके साथि संधिकरण आदिक इस सर्वकूं आश्रय करिके समंजसताकरि पूर्व उक्त कल्पनाओंकी आपातकरि रमणीयताकूं अनुभव करै हैं। यह अर्थ है ॥

६४५ उक्त कल्पनाओंकी श्रुति अरु न्यायकी अनुसारि-ताके अभावतैं त्याज्यताकूं सूचन करै हैं ॥ इहां दो कर्म जो हैं सो प्रत्येक क्रियापदके साथि संबंधकूं पावते हैं औ नका-रका दोनूंविषै अन्वय है ॥

६४६ ननु उक्त प्रकारकी कल्पनाओंकूं आपातरमणी-यताकरि श्रुति अरु न्यायतैं बाह्यपना कैसैं है ? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

६४७ पूर्व कहाथा जोः—परमात्माका एक देश विक्षा-

सावयवताविषै संसारत्व सव्रणत्व कर्मफल देश-संसरणकी अनुपपत्ति (असंभव)आदिक (श्रुति स्मृतिके विरोधरूप) दोष। पूर्व उक्तहीं हैं औ निर्त्य[६४८] भेदके हुये विज्ञानात्माकी परमात्माके साथि एकताका असंभव होवैगा ॥ ॥ ननु[६४९] लिंगहीं है? ऐसैं जो कहै। तो परमात्माके उपचरित (कल्पित) देशभावकरि कल्पित होवैगा। घट करक भूछिद्रके आकाशआदिककी न्यांईं ॥ तैसैं[६५०] लिंगतैं वियोगके हुयेबी परमात्मा-

---

नात्मा है। ऐसैं। तहां तिस (परमात्मा)का एक देशपना वास्तव है वा अवास्तव है। प्रथमपक्षविषै सो (एक देश) परमात्मातैं अभिन्न है वा भिन्न है? ऐसैं विकल्प करिके। आद्यपक्षके प्रति दूषण देते हैं ॥ इहां आदिशब्दकरि श्रुति स्मृतिका विरोध ग्रहण करिये है ॥

६४८ द्वितीय विकल्पके प्रति कहैहैं ॥ इहां:—भेद अरु अभेदकी विरुद्ध होनेतैं अनुपपत्ति है। सो चकारका अर्थ है ॥

६४९ लिंग उपाधिवाला आत्मा परमात्माका अंश है? इसप्रकारका विकल्पांतर शंका करिये है ॥

६५० लिंग उपाधिकरि कल्पित जो परमात्माका अंश। सो जीवात्मा है। ऐसैं कहे हुये। सुषुप्ति आदिकविषै लिंगके ध्वंस हुये वासना अनात्माविषै होवैगी। काहेतैं लिंगके अभाव हुये ताके आधीन जीवके अभावतैं औ तिसतैं ताके वियोगके हुयेबी लिंगविषै स्थितवासना जीवविषै स्थित होवैहै। यह प्रक्रिया अघटित है। ऐसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

रूप देशका आश्रयण (आश्रय करना) होवैगा ॥ औ वा[illegible]नारूप [६५१]अविद्योंका स्वतः (परमात्मातैं) उत्थान होवैहै। ऊपरकी न्यांई । इत्यादि कल्पना अघटितहीं है ॥[६५२] औ वास्य (वासना करने योग्य) देशसैं व्यतिरेककरि वासनाका अन्य वस्तुविषै संचरण मनसैंबी कल्पना करनेकूं श-

---

६५१ औ जो परमात्मातैं अविद्याका उत्थान होवैहै। ऐसैं कहा। ताकूं निराकरण करैहैं ॥ इहां आदिपदकरि अविद्याकी अनात्मधर्मता ग्रहण करियेहै ॥ इहां यह भाव हैः—परमात्मातैं अविद्याकी उत्पत्तिके हुये तिसी (परमात्मा)हीकूं संसार होवैगा । काहेतैं तिन (अविद्या अरु संसार दोनूं)कूं एक अधिकरणवाले होनेतैं औ यातैं अविद्याके होते मुक्ति नहीं होवैगी औ तिस (अविद्या)के नष्ट हुये ता (अविद्या)की सिद्धिके कारण (परमात्मा)के स्थित हुये कार्यके अत्यंतनाश (बाध)के अयोगतैं। कार्यरूप अविद्याके नाश हुये ताके कारणका पराभव नहीं है । तिसप्रकार हुये मोक्ष होनेवालेके अभावतैं मोक्षकी असिद्धि होवैगी औ अविद्या जो है सो अनात्माका धर्म नहीं है। काहेतैं विद्याकूंबी तद्धर्मता (अनात्मधर्मता)के प्रसंगतैं । तिन (विद्या अविद्या दोनूं)कूं एक आश्रयवाली होनेतैं ॥

६५२ औ जो लिंगके निवर्त्त हुये तद्गतवासना आत्माविषै रहै है । ऐसैं जो कहा था । तहां कहैहैं ॥ इहां पुटकादिकविषै तो पुष्प आदिकनके अवयवनकीहीं अनुवृत्ति है । यह भाव है ॥

क्य नहीं है ॥[६५३] औ "काम संकल्प विचिकित्सा । हृदयविषैही रूपोंकूं । ध्यान करते हुयेकी न्यांई लीला करते हुयेकीन्यांई । जे याके हृदयविषै आश्रित काम हैं । तब हृदयगत सर्व शोकोंकूं तिरगया होवैहै" इत्यादिक श्रुतियां । इस अर्थविषे गमन नहीं करैहैं औ[६५४] इनैं श्रुतिनके श्रुतअर्थतें अन्यअर्थकी कल्पना युक्त नहीं है । काहेतें इन श्रुतिनकूं आत्माके परब्रह्मभावके उपपादनरूप अर्थके परायण होनेतें [६५५] औ सर्व उपनिषदनके एतावन्मात्र अर्थविषे

---

६५३ यातैंबी वासनाकूं जीवकी आश्रयता असंगत है । ऐसैं कहैहैं ॥

६५४ ननु जीवरूप समवायिकारणविषै मनके संयोगरूप असमवायिकारणतैं काम आदिकनकी उत्पत्ति होवैहै । ऐसैं उदाहरणकरी श्रुतिनविषै विवक्षित होवै है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दृश्यमान संसारकूं औपाधिक कहिके । जीवके ब्रह्मभावके उपपादनविषै श्रुतिनका तात्पर्यहै । सो उपक्रम अरु उपसंहारकी एकरूपता आदिक षट् लिंगनतैं जानियेहै । तातैं अर्थांतरकी कल्पना बनै नहीं ॥

६५५ यातैंबी उक्त प्रकारकी श्रुतिनके अर्थांतरकी कल्पना बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्व उपनिषदनका एकरस अर्थविषै पर्यवसान । फलवान्‌ता आदिक

उपक्षय (कृतार्थता)के होनेतैं ॥ [६५६] तातैं श्रुतिअर्थकी कल्पनाविषै अकुशल सर्वहीं। उपनिषदनके अर्थकूं अन्यथा करतेहैं ॥ [६५७] तथापि जब वेदार्थ होवै तब यथाइच्छा होहू। यामैं मेरा द्वेष नहीं है औ [६५८] दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं ऐसैं तीन राशिकी प्रातितैं समंजस नहीं है ॥ [६५९] जब तो मूर्त्त अमूर्त्त औ तज्जनित वासना [मिलिके] मूर्त्त अमूर्त्त दो रूप हैं औ ब्रह्म तृतीय रूपि है औ अन्य चतुर्थ अंतराल (मध्य)विषै नहीं होवै । तब

लिंगनतैं जानिये है। तातैं उक्त श्रुतिनके अर्थांतरकी कल्पना कैसैं होवै ॥

६५६ ननु उपनिषदनके एकतातैं प्रतिपाद्य अर्थांतरकूंबी व्याख्यानके कर्त्ता वर्णन करै हैं। तातैं अर्थांतरकी कल्पनाका असंभव कैसैं है? यातैं कहैहैं ॥ इहां सर्व उपनिषदनका एकतापरताका प्रतिभास। तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है ॥

६५७ ननु अन्यवादीओंकरि कथनकीयाबी वेदार्थ होवैहीं है। यह क्या द्वेषतैंहीं त्याग करियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—अर्थांतरकूं वेदार्थता नहीं है। काहेतैं तहां तात्पर्यविषै लिंग (उपक्रमादिक)के अभावतैं ॥

६५८ लिंग (लिंगशरीर)के वियोगके हुयेबी पुरुषविषै वासना रहती हैं। इस पक्षकूं निराकरण करिके। अब तीन राशिकी कल्पनाकूं निराकरण करै हैं ॥

६५९ ननु सिद्धांतविषैबी वाव शब्द आदिककी समंजसता कैसैं होवै है? तहां कहैहैं ॥

"दोईहीं ब्रह्मके रूप हैं। यह अवधारण अनुकूल होवै॥ [६६०]अन्यथा ब्रह्मके एकदेशरूप विज्ञानात्माके दो रूप हैं। ऐसें कल्पना करनेयोग्य है। वा परमात्माके विज्ञानात्मारूप द्वारकरि दो रूप हैं। औ [६६१]तब दो रूप नहीं। ऐसा द्विवचन असमंजस होवैगा॥ "रूपाणि" (रूप)। ऐसें वासनाओंकरि सहित बहुवचन युक्ततर होवैगा॥ औ दो मूर्त्त अरु अमूर्त्त है औ वासना तृतीय है इति॥ ॥ [६६२]अब मूर्त्त अरु अमूर्त्तहीं दो परमात्माके रूप हैं औ वासना विज्ञानात्मा (जीवात्मा)का रूप है? इसप्रकार जो कहै। सो बनै नहीं:—काहेतैं [६६३]तब विज्ञा-

---

६६० तीन राशिके पक्षविषै जीवका रूपके मध्य अंतर्भावके हुये निषेध्य कोटिविषै निवेश होवैगा औ रूपीके मध्य अंतर्भावके हुये। श्रुति। शिक्षा करनेकूं योग्य है? यह शंका भयी। तहां कहैहैं॥

६६१ ऐसें श्रुतिकी शिक्षा होहु? तहां कहैहैं॥ इहां तदा (तब) शब्दका रूपीके मध्य जीवके अंतर्भावकी कल्पनाके हुये। यह अर्थ है॥

६६२ विषय भेदकरि उपक्रमके विरोधकूं प्रतिवादी शंका करै है॥

६६३ इसरीतिसैं व्यवस्थाके हुये जीवद्वारा विक्रियमाण परमात्माके मूर्त्त अमूर्त्त दोरूप हैं। यह उक्ति अयुक्त हो-

नात्मारूप द्वारकरि विक्रियमाण परमात्माकूं इसप्रकारकी यह वचनकी युक्ति व्यर्थ होवैगी। वासनाकेबी विज्ञानात्मारूप द्वारकूं अविशिष्ट होनेतैं औ [६६४] वस्तु जो है औ वस्तु अंतररूप द्वारकरि विक्रियाकूं पावताहै। ऐसैं मुख्यावृत्तिकरि [६६५] कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है औ विज्ञानात्मा परमात्मातैं वस्तु अंतर नहीं है। ऐसैं कल्पना किये हुये सिद्धांतके त्यागतैं॥ [६६६] तातैं वेदार्थविषै मूढ पुरुषनकी स्वचित्तसैं प्रभाववाली इत्यादि

वैगी। काहेतैं वासना अरु कर्म आदिककेबी तिराद्वारा ताके संबंधके अविशेषतैं। इसरीतिसैं सिद्धांती दूषण देते हैं॥

६६४ विज्ञानात्माद्वारा परमात्माकी विक्रियमाणता (विकारिता)कूं अंगीकार करिके जो कहा। सोई नहीं है। ऐसैं कहैहैं॥ इहां तिसप्रकारके वस्तुकी औ अन्यथा (और) प्रकारके वस्तुकी विक्रियाकूं दुःखकरि प्रतिपादन करनेकूं अयोग्य होनेतैं। यह अर्थ है॥

६६५ किंवाः—जीवकी ब्रह्मतैं वस्तुअंतरता आत्यंतिक है। वा अनात्यंतिक है? तिनमैं आद्य पक्ष बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं॥ इहां द्वितीय पक्ष बनै नहीं। काहेतैं भेदाभेदके निरासतैं। ऐसैं देखनेकूं योग्य है॥

६६६ परपक्षके दूषणकूं उपसंहार करै हैं॥ इहां इत्यादि कल्पना कहिये तीनराशि औ जीवकूं कामादिककी आश्रयता इत्यादिक॥

कल्पना अक्षर बाह्य है । [६६७]जातैं अक्षरोंतैं बाह्य वेदार्थ वा वेदार्थविषै उपकारी अर्थ नहीं होवै है । काहेतैं वेदकूं [६६८]प्रामाण्यकेप्रति निरपेक्ष होनेतैं । [६६९]तातैं तीन राशिकी कल्पना असमंजस है ॥ ॥ "[६७०]जो यह दक्षिण अक्षिविषै पुरुष है" ऐसैं अध्यात्मविषै लिंगात्मा प्रस्तुत किया । औ अधिदैवविषै "जो यह इस मंडलविषै पुरुष है" ऐसैं ताके ऐसैं प्रकृतके उपादानतैं सोईहीं ग्रहण करियेहै । जो यह अमूर्त्तरूप त्यत्का रस है । परंतु विज्ञानमय नहीं ॥ ॥ [६७१]ननु विज्ञानमयकेहीं ये रूप काहेतैं नहीं होवैहैं । काहेतैं विज्ञानमय जो है । याकूंबी प्रकृत होनेतैं । औ तिसका ।

---

६६७ अक्षरबाह्यताविषै फलितकूं कहैहैं ॥

६६८ वेदके अर्थविषै उपकारिताके अभावविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६६९ वेदार्थता आदिकके अभाव हुये सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

६७० " तिसीहीं इस पुरुषका " इस वाक्यविषै परकीय (मतांतरकी) प्रक्रियाकूं निषेध करिके । अब स्वमतविषै तत् शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

६७१ प्रकृत होनेतैं लिंगात्मकके ग्रहण हुये जीवकेबी पाणिपेष वाक्यविषै तिस भावतैं तिसी (जीव)हींका इहां तत् शब्दकरि ग्रहण होवैगा ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

ऐसैं प्रकृतके उपादान (ग्रहण)तें ? ऐसैं[६७२] कहना बनै नहीं:—काहेतैं विज्ञानमयकूं अरूपि होनेकरि विज्ञापन करनेकूं इष्ट होनेतैं । जब[६७३] निश्चयकरि तिसीहीं विज्ञानमयके ये माहारजन (हरिद्राकरि रक्तवस्त्र)आदिक रूप होवैं। तब तिसीहींका "नेति नेति" इस अनाख्येयरूपताकरि आदेश नहीं होवैगा ॥ ॥ ननु[६७४] अन्यकाहीं यह आदेश होवैगा। विज्ञानमयका तो नहीं? इसप्रकार प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं:—काहेतैं षष्ठ (चतुर्थ)के अंतविषै उपसंहारतैं । "अरे (मैत्रेयि)! विज्ञाताकूं किसकरि जानैं" ऐसैं विज्ञानमयकूं प्रस्तुत करिके "सो यह नेति नेति" ऐसैं तिसीहींका

---

६७२ प्रकृतपनेके हुयेबी ता (जीव)कूं निर्विशेष ब्रह्मरूपताकरि जनावनेकूं इष्ट होनेतैं वासनामय संसाररूप वास्तवतैं युक्त नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती। परिहार करैहैं॥

६७३ यातैंबी जीवकी वासना निरूपित नहीं है किंतु चित्तकी है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां निषेध्य कोटिविषै प्रवेशतैं । यह भाव है ॥

६७४ यह जीवका आदेश नहीं है किंतु तटस्थ (जीवतैं भिन्न) ब्रह्मका है ? ऐसैं शंका करिके । ताकूं दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—षष्ठ (चतुर्थ)के अवसानविषै "अरे विज्ञाताकूं किसकरि जानैं" ऐसैं आत्माकूं उपक्रम करिके

आदेश है। तटस्थका नहीं औ[६७५] "विज्ञापन करूंगा" ऐसी प्रतिज्ञाकूं अर्थवान् होनेतैं ॥ औ[६७६] जब विज्ञानमयकूंहीं सम्यक् व्यवहार करनेके अयोग्य अरु निषिद्ध सर्व उपाधिरूप विषयवाला आत्मस्वरूप जनावनेकूं इष्ट होवै। तातैं (तब) यह प्रतिज्ञा अर्थवती होवै। जिस[६७७]करि यह ज्ञापित हुया आत्माकूंहीं "मैं ब्रह्महूं" ऐसें जानताहै अरु[६७८] शास्त्रनिष्ठाकूं प्राप्त होवैहै। किसीतैंबी भयकूं पावता नहीं इति ॥ औ[६७९] फेर अन्य विज्ञानमय है अरु अन्य "नेति नेति" ऐसें व्युपदेश करियेहै। तब "अन्य यह ब्रह्म है। अन्य मैं हूं" ऐसें विपर्यय ग्रहण किया होवैगा।[६८०] आत्माकूंहीं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसें नहीं जानैगा ॥[६८१] तातैं तिस

"सो यह नेति नेति आत्मा है" ऐसें आत्मशब्दतैं तिसीहींका आदेश है। तटस्थ ब्रह्मका नहीं ॥

६७५ यातैंबी प्रत्यगर्थकाहीं यह आदेश है। ऐसैं कहैहैं ॥

६७६ ताहीकूं समर्थन करै हैं ॥

६७७ इस प्रतिज्ञाकूं अर्थवान्पना कैसैं है? सो कहैहैं ॥

६७८ ज्ञानके फलकूं कथन करै हैं ॥

६७९ अन्वयद्वारा उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा साधतेहैं ॥

६८० विपर्ययके ग्रहण किये हुये ब्रह्मकंडिकाके विरोधकूं दिखावै हैं ॥

६८१ तत् शब्दकरि जीव ग्रहणके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥

प्रसिद्ध इस लिंगपुरुषकेहीं ये रूप हैं ॥ औ सत्यके[६८२] सत्यरूप कहनेयोग्य परमात्मस्वरूपविषै निरवशेष (निरपेक्ष) सत्य कहनेकूं योग्य है औ सत्यके विशेषरूप वासना हैं । तिनके ये रूप कहियेहैं इस लिंगस्वरूप पुरुषके ये रूप हैं ॥ कौंनसे वे रूप हैं? तहां कहियेहैंः—जैसें लोकविषै महारजन जो हरिद्रा । तिसकरि रक्त जो वस्त्र । सो माहारजन है । ऐसें चित्तका स्त्रीआदिक विषयनकेसाथि संयोगकेहुये तादृशवासनारूप रंजनाकार उपजताहै ॥ जिसकरि[६८३] यह पुरुष । वस्त्रादिककीन्यांई रक्त (रंगित) ऐसें कहियेहै । औ जैसें लोकविषै पांडुआविक(शुक्ल ऊर्णादिवस्त्र) होवैहै औ जैसें यह (ऊर्णवस्त्र) च्यारीओरतें पांडुर होवैहै । तैसें अन्यवासनारूप

---

६८२ ननु लिंगके जब ये रूप हैं । तब क्यूं उपन्यास करिये हैं । परमात्मस्वरूपकूंहीं कहनेकूं योग्य होनेतें ? यातें कहैहैं ॥

६८३ इंद्रगोपके उपमानकरि कौसुंभ (कुसुंभके रंग)कूं गत (प्राप्त) होनेतें महारजन कहिये हरिद्रा । ऐसें व्याख्यान किया । तहां लोकप्रसिद्धिकूं दिखावैहैं ॥ इहां "ऊर्णादि" यह आदिपद जो है । सो कंबल आदिकके ग्रहण अर्थ है ॥

होवैहै ॥ औ जैसैं लोकविषै इंद्रगोप (वर्षाकालमैं होनेवाला जंतुविशेष) अत्यंत रक्त होवैहै । ऐसैं याका वासनारूप होवैहै ॥ [684] कैहींक विषयविशेषकी अपेक्षाकरि औ कहींक पुरुषके चित्तवृत्तिकी अपेक्षाकरि रागका तारतम्य (अधिक न्यूनपना) होवैहै ॥ औ जैसैं लोकविषै अग्निकी ज्वाला भास्वर (प्रकाशमान) होवैहै । तैसैं कहींक किसीकी वासनाका रूप होवैहै ॥ औ जैसैं पुंडरीक (शुक्लकमल) होवैहै ताकीन्यांईंबी किसीकी वासनाका रूप होवैहै ॥ औ जैसैं सकृत्विद्युत्त कहिये सकृत्विद्योतन (बीजली) सर्वओरतैं प्रकाशक होवैहै। ऐसैं ज्ञानरूप प्रकाशके वृद्धिकी अपेक्षाकरि किसीकी वासनाका रूप उपजताहै ॥ [685] इनका आदि अंत वा मध्य। संख्या। देश काल वा निमित्तनहीं निश्चय क-

---

६८४ मनविषै वासनाकी विचित्रतामैं क्या कारण है ? यह शंका भयी । तहां सो कहैहैं ॥ इहां चित्तवृत्ति शब्दकरि सत्व आदिक गुणोंका परिणाम विवक्षित है ॥

६८५ परिमित दृष्टांतनके कथनकरि वासनाओंकाबी परिमितपना है । काहेतैं दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिककूं सम होनेतैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

रियेहै। वासनाओंकूं असंख्येय होनेतें औ वासनाके हेतुनकूं अनंत होनेतें ॥ तिसे[६८६]प्रकार आगे षष्ठ(४ अध्यायके ४ ब्राह्मण)विषै यह उपनिषद् कहैगी "इदंमय । अदोमय" इत्यादि ॥ [६८७]तातें जैसें माहारजन वस्त्रहै। इत्यादिक दृष्टांत। स्वरूप संख्याके निश्चयअर्थ नहीं हैं किंतु प्रकारके दिखावने अर्थ हैं । [६८८]ईसै प्रकारकेहीं वासनाके रूप हैं ऐसें ॥ ॥ औ जो[६८९] अंतविषै सकृत्‌विद्योतनकीन्यांई । ऐसें वासनाका रूप कथन किया । सो अव्याकृततें प्रादुर्भावकूं पावनेवाले हि[६९०]रण्यगर्भकी । विद्युत्‌कीन्यांई एकवारहीं वस्तुनके समुदायकी व्यक्ति होवैहै । याकी न्याई ताकी वासनाका रूप

---

६८६ तहां वाक्य शेषकूं कथन करै हैं ॥

६८७ वासनाओंकी अनंततातें तिसके परिमितके प्रदर्शनविषै परिमित दृष्टांतके ग्रहणके अतात्पर्यके हुये । कहां तात्पर्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६८८ प्रकारके प्रदर्शनकूंहीं आकारकरि दिखावै हैं ॥

६८९ फलवती अंत्यवासना आदिककरि विशिष्ट सूत्रकी उपासनाकूं ताके उत्कर्षके कथनपूर्वक कथन करै हैं ॥ इहां सर्व वस्तुसमूहकी व्यक्ति होवैहै । यह शेष है ॥

६९० तदीय (तिसीका) ऐसें कहा। याकी प्रगटताके कारणकूं कहैहैं ॥

है ॥ [६९१] जैसैं हिरण्यगर्भका है । ऐसैं तिस उक्त-प्रकारके वासनाके रूपवान्पनैकूं जो जानता-है । सकृतविद्युत्कीन्यांईहीं (ऐसैंहीं) या-की श्री (ख्याति) होवैहै । यह अर्थ है ॥ ॥ [६९२] इसे रीतिसैं निरवशेष सत्यके स्वरूपकूं कहिके । जिस तिसकूं [६९३] सत्यका सत्य हम कहतेभये । तिस-हीं ब्रह्मके स्वरूपके अवधारणअर्थ यह आरंभ करियेहैः—अथ (सत्यस्वरूपके निर्देशके अनं-तर) जातें जो सत्यका सत्य है । सोई अवशेष रहताहै । यातें (तातें) [सत्यके सत्य स्वरूपकूं हम निर्देशकरे हैंः—] आदेश कहिये ब्रह्मका निर्दे-श है ॥ ॥ कौंन फेर यह निर्देश है? तहां कहि-येहैः—नेति नेति (ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं) इस प्रका-रका निर्देश है ॥ ॥ [६९४] ननु इन "नेति । नेति" ऐसैं दो

---

६९१ ताहीकूं स्पष्ट करे हैं ॥

६९२ वृत्तकूं अनुवाद करिके अनंतरके ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥ इहां तिसीहीं ब्रह्मका । ऐसैं संबंध है ॥

६९३ किसतैं अनंतर । ऐसैं कहे हुये ताकूं दिखावते हुये । अपेक्षित अतः (यातें) शब्दके तांई पूरण करते हुये व्या-ख्यान करे हैं ॥

६९४ उक्त प्रकारके आदेशके अभावविषै पर्यवसायी प-नैकूं मानता हुया प्रतिवादी । शंका करे है ॥

शब्दोंकरि कैसैं सत्यका सत्य निर्देश करनेकूं वांछित है? तहां[६९५] कहियेहैः—सर्व उपाधिरूप विशेषनके निषेधकरि निर्देश करनेकूं इच्छित है ॥ जिसविषै[६९६] कोईबी विशेष नहीं है ॥ नाम वा रूप वा कर्म वा भेद वा जाति वा गुण । तिसैं[६९७] द्वाराहीं शब्दकी प्रवृत्ति होवैहै औ[६९८] इनोंके मध्यमैंसैं कोईबी विशेष (विलक्षणता) ब्रह्मविषै नहीं है । यातैं [ब्रह्म] "यह सो है" ऐसैं निर्देश करनेकूं शक्य नहीं होवैहै[६९९] ॥ गौ (बैल) यह च-

६९५ निरवधि (अवधिरहित) निषेधकी असिद्धितैं ताका अवधि होनेकरि सत्यका सत्य ब्रह्म निर्देश करनेकूं इष्ट है । ऐसैं सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

६९६ ब्रह्मके विधिमुखकरि निर्देशके संभव हुये सो (ब्रह्म) निषेधमुखकरि क्यूं निर्देश करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां सो (ब्रह्म) विधिमुखकरि निर्देश करनेकूं अशक्य है । यह शेष है ॥

६९७ नाम रूपादिकके अभाव हुयेबी ब्रह्मविषै शब्दकी प्रवृत्तिकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

६९८ जाति आदिकनके मध्य । अन्यतम (एक)के ब्रह्मविषैबी संभवतैं तिसद्वारा तिसविषै शब्दकी प्रवृत्ति होवैगी? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

६९९ उक्त अर्थकी विधर्मताकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां तैसैं जाति आदिकके अभावतैं ब्रह्मविषै शब्दकी प्रवृत्ति नहीं है । यह शेष है ॥

लताहै । शुक्ल है । शृंगवाला है । यह जैसैं लोकविषै निर्देश करियेहै । तैसैं [जातिआदिकके अभावतें ब्रह्मविषै शब्दकी प्रवृत्ति नहीं है] [७००]अध्यारोपित नाम रूप कर्मरूप द्वारकरि ब्रह्म "विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है । विज्ञान घनहीं ब्रह्मात्माहै" इत्यादि शब्दोंकरि निर्देश करिये है ॥ [७०१]जब फेर निरस्त सर्व उपाधिरूप विशेषवाला स्वरूपहीं निर्देश करनेकूं इच्छित होवैहै। तब किसीबी प्रकारकरि निर्देश करनेकूं योग्य (शक्य) नहीं होवैहै । [७०२]तब यहहीं अभ्युपाय

---

७०० ननु तब कहींक विधिमुखकरि ब्रह्म कैसैं उपदेश करियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"विज्ञान आनंद रूप ब्रह्म है" । इत्यादि वाक्यनविषै शबल (मायाविशिष्ट ब्रह्म)मैं गृहीत शक्तिवाले शब्दनकरि ब्रह्म लखियेहै (लक्षणासैं जानीये है) ॥

७०१ ननु लक्षणाकूं उपेक्षा करिके साक्षात्हीं ब्रह्म क्यूं नहीं कहियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—निर्देश करनेकूं कहिये लक्षणाकूं छोडिके साक्षात्हीं कहनेकूं । शक्य नहीं होवैहै । काहेतें तहां (साक्षात् कथनविषै) शब्द प्रवृत्तिके निमित्त जाति आदिकनकूं अवश्य उक्त होनेतें ॥

७०२ विधिमुखकरि निर्देशके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—प्राप्त भया है निर्देश जिस विशेषका ताके प्रतिषेधरूप मुखकरि ॥

(प्रकार) हैः—जोबी प्राप्त निर्देशके प्रतिषेधरूप द्वारकरि । अर्थ यह जो जिस विशेषका निर्देश प्राप्त होवै ताके प्रतिषेधद्वारा "नेति नेति" ऐसैं निर्देश है । औ यँहै[७०३] नकारोंका द्वय जो है सो वीप्साकरि व्याप्ति (सर्व विषयनके संग्रह) अर्थ है कहिये जो[७०४] जो प्राप्त होवै सो सो निषेध करियेहै । तिसैं[७०५] प्रकार हुये सत्यविषे निर्देशकरी जो ब्रह्मकी शंका है । सो परिहार करी होवैहै ॥ अन्यथा[७०६] जातैं नकारद्वयकरि प्रकृतद्वयके प्र-

---

७०३ ननु ऐसैं ब्रह्म। जब निर्देश करनेकूं इच्छित है। तब एकहीं नकारकरि बहुत है । द्वितीय नकारनैं क्या किया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७०४ वीप्सा (दोवार कथन) करिके व्याप्ति जो सर्व विषयनका संग्रह । ताके अर्थ दो नकार हैं । ऐसैं कथन कीये अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७०५ विषयताकरि प्राप्त सर्वके निषेधकरि। ब्रह्म है । ऐसैं कहे हुये अविषय प्रत्यगात्मा ब्रह्म है । ऐसैं एकताविषै शास्त्रके पर्यवसानतैं आकांक्षारहित ब्रह्म श्रोताकूं सिद्ध होवै है । ऐसैं कहैहैं ॥

७०६ इति शब्दकूं प्रकृत अर्थका स्मारक होनेतैं प्रकृत मूर्त्त अमूर्त्त आदिकतैं ब्रह्मकी अन्यताविषै नकारका पर्यवसान क्यूं नहीं अंगीकार करिये है ? तहां कहैहैं ॥

तिषेध हुये प्रकृत प्रतिषिद्धद्वयतैं जो अन्य । सो ब्रह्म होवैगा । सो निर्देश किया नहीं ॥ किस प्रकारका तो प्रसिद्ध है। इस प्रकारकी शंका निवृत्त नहीं होवैहै। तिसैं[७०७] प्रकार हुये। सो निर्देश अनर्थक (व्यर्थ) होवैगा। पुरुषकी विविदिषा (जिज्ञासा)-का अनिवर्त्तक होनेतैं ॥ औ[७०८] ब्रह्मकूं जनावूंगा । यह वाक्य । अपरिसमाप्तिके अर्थ होवैगा ॥ औ[७०९] जब सर्व उपाधिनके निराकरणरूप द्वारकरि सर्व दिशा आदिककी जिज्ञासा निवृत्त करी होवै। तब सैंधवघनकीन्यांई एकरस प्रज्ञानघन अनंतर अ-बाह्य सत्यका सत्य ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं सर्व ओरतैं जिज्ञासा निवृत्त होवैहै। आत्माविषैहीं अवस्थ-

---

७०७ आशंकाकी निवृत्तिके अभावविषै दोषकूं कहैहैं ॥

७०८ औ अनर्थक (व्यर्थ) होवैगा । ऐसैं चकार (औ-कार) करि मिलित दोषांतरकूं कहैहैं ॥

७०९ उक्त अर्थकूं अन्वयद्वारा समर्थन करैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना है:—सर्व उपाधिनके निषेधकरि तहां तहां विषयके ज्ञानकी इच्छा जब निवर्त्त होवैहै। तब उक्त प्रकारका प्रत्यक्रूप ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं निश्चयकरिके आकांक्षा सर्व ओरतैं निवर्त्त-होवैहै । तिसकरि निर्देशकी सार्थकता होवैहै औ जब उक्त-रीतिकरि ब्रह्मरूपआत्माविषैहीं प्रज्ञा (बुद्धि) अवस्थित होवैहै। तब प्रतिज्ञावाक्यबी परिसमाप्तिके अर्थ होवैगा ॥

त प्रज्ञा होवैहै ॥ [७१०] तातैं वीप्साकेअर्थ नेति नेति । ऐसा नकारद्वय है ॥ ॥ [७११] ननु महत् प्रयत्नकरि परिक ˙ (कमर)के बंधकूं करिके । ब्रह्मनिर्देश करनेकूं क्या युक्तहीं है ? बाढ (सो सत्य है) ॥ काहेतैंकिः—जातैं "नेति नेति" इसतैं इति इतिकरि व्याप्त होनेयोग्य प्रकार । नकार द्वयके विषय निर्देश करियेहैं । [७१२] जैसैं ग्रामग्राम रमणीय है । यातैं अन्यपर निर्देशन नहींहै ।

---

७१० वीप्साके पक्षकूं उपसंहार करै हैं ॥

७११ आदेशकी प्रक्रमकी अननुसारिताकूं आशंका करिके । अनंतर वाक्यकरि परिहार करै हैं ॥ इहां " नहीं " ऐसैं प्रतीकका ग्रहण है औ "जातैं" इस "हि" शब्दके अर्थका "तातैं" इस शब्दके साथि संबंध है औ व्याप्तव्य (संग्राह्य) कहिये विषय करने योग्य जे प्रकार । वे दो नकारनके विषय हुये "नेत्येतस्मात् (नहीं है ऐसें इसतैं)" कहिये इस भागकरि निर्देश करियेहैं । ऐसैं योजना है ॥

७१२ दो इतिशब्दोंकरि व्याप्तके सर्व प्रकारके संग्रहविषै दृष्टांतकूं कहेहैं ॥ इहांः—" ग्राम ग्राम रमणीय है " ऐसैं कहे हुये राज्यविशिष्ट रमणीय सर्व ग्रामोंके संग्रहकीन्यांई । प्रकृतविषैबी दो इतिशब्दोंकरि विषयभूत सर्व प्रकारोंके संग्रहके हुये दो नकारोंकरि तिनका निषेध है । यह अर्थ है औ उक्त प्रकारके निषेधरूप निर्देशतैं अन्य निर्देश जातैं ब्रह्मतैं पर नहीं है । तातैं । ऐसैं उपसंहार है ॥

तातें ब्रह्मका यहहीं निर्देशहै ॥ जो[713] कहाहैः—ता (ब्रह्म)की उपनिषत् है । सत्यका सत्य है । इस प्रकारकरि सत्यका सत्य सो पर ब्रह्म है । यातें ब्रह्मका उक्त नामधेय (नामहीं) युक्त है ॥ क्या सो? सत्यका सत्य है ॥ प्राण प्रसिद्ध सत्य हैं । तिनका यह (परमात्मा) सत्य है। इति ॥ ६ ॥

इति श्रीमद् बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य तृतीयं मूर्त्तामूर्त्तब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

---

७१३ "अथ (अब)" इत्यादि वाक्यकूं प्रकृतके उपसंहारपनैकरि व्याख्यान करैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् द्वितीयाध्यायगत तृतीयब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—याज्ञवल्क्य। अरे मैत्रेयि! मैं इस

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद् भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीकाः—"[७१४]आत्मा[७१५] ऐसैंहीं उपासना करना। सो-

अथ द्वितीयाध्यायगत चतुर्थब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

७१४ संबंधके कहनेकी इच्छाकरि वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं॥

७१५ आत्मतत्त्वहीं क्यूं ज्ञातव्य है? तहां कहैहैं ॥ इहां ऐसैं सूत्रित विद्याकूं विषय करनेहारे वाक्यका व्याख्यानहीं विषय है। तिसविषै विद्यारूप साधन है अरु साध्य मुक्ति है। ऐसैं संबंध है ॥

द्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि । हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवणीति ॥ १ ॥

स्थानतैं ऊर्ध्व जानेवालाहूं । यातैं तेरी अनुमतिकूं प्रार्थना करूंहूं औ तेरे इस कात्यायनीसैं अंत (विभाग)कूं करूं। ऐसैं कहताभया ॥ १ ॥

ई इस सर्वविषे पदनीय आत्मतत्व है । जातैं पुत्रादिकतैं[७१६] प्रेय है" ऐसैं उपन्यस्त वाक्यके व्याख्यानविषे संबंध अरु प्रयोजन कथन किये "सो आत्माकूं हीं जानताभया।मैं ब्रह्महूं ऐसैं तातैं सो सर्व होताभया"[७१७] ईस प्रकार प्रत्यगात्मा। ब्रह्मविद्याका विषय है। यह उपन्यास किया ॥ औ[७१८] अविद्या-

---

७१६ औ मुक्ति फल है । यह "आत्माकूं" इत्यादि वाक्यकरि दिखायी है । ऐसैं कहैहैं ॥

७१७ उक्त विद्याकी विषयताकूं निगमन करै हैं ॥

७१८ उक्त अर्थांतरकूं स्मरण करावै हैं ॥ इहांः—"अन्य यह" इहांसैं आरंभ करिके औ "तीन यह" इत्यादि वाक्यकरि संसाररूप अविद्याका विषय उपसंहार किया । ऐसैं संबंध है ॥

का विषय "अन्य यहहै अन्य मैं हूं । ऐसैं । सो नहीं जानताहै" इहांसैं आरंभ करिके । चौ[७१९]तुर्वर्ण्यके प्रविभागआदिक निमित्तवाले पांक्त कर्मके साध्य साधनरूप । बीजांकुरकीन्यांई[७२०] व्याकृत अरु अव्याकृत स्वभाववाला । नामरूपात्मक संसार है । सो "तीनहीं यह नाँ[७२१]म रूप अरु कर्म हैं" ऐसैं उपसंहार कियाहै ॥ तिनमैं शाँ[७२२]स्त्रीय उत्कर्षरूप ब्रह्मलोकपर्यंत है औ अँ[७२३]धोभावरूप स्थावरपर्यंत अशास्त्रीय है । सो "दोप्रकारके हीं" इत्यादि वाक्यकरि पूर्वहीं दिखाया ॥ इँ[७२४]सैं अ-

---

७१९ संसारकूंहीं विशेषण देते हैं ॥ याका यह अर्थ हैः—चातुर्वर्ण्य (च्यारी आश्रम) ऐसा प्रविभाग आदिक है निमित्त जिस पांक्तकर्मका । ताके साध्यसाधनस्वरूप ॥

७२० ता (संसार)के अनादिभावकूं दिखावै हैं ॥

७२१ ताहीकूं तीन प्रकारका संक्षेपसैं कहैहैं ॥

७२२ औ सो (संसार) उत्कर्ष अरु अपकर्षकरि दो प्रकारसैं भेदकूं पावता है । तिनमैं आद्यकूं उदाहरण करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं उत्कृष्ट संसार । शास्त्रीय ज्ञानकरि लभ्य है ॥

७२३ द्वितीयकूं कथन करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—निकृष्ट संसार । स्वाभाविक (लौकिक) ज्ञान अरु कर्मकरि साध्य है॥

७२४ ननु अविद्याका विषय क्यूं व्याख्यान किया । जातैं सो पुरुषकूं उपयोगी नहीं होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

विद्याके विषयतैं विरक्त इस पुरुषका प्रत्यगात्माकूं विषय करनेवाली ब्रह्मविद्याविषै अधिकार है। सो कैसैं होवै। यातैं तृतीय (प्रथम) अध्यायविषै समस्त अविद्याका विषय उपसंहार किया ॥ [७२५]चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायविषै तो ब्रह्मविद्याके विषय प्रत्यगात्माकूं "ब्रह्म तेरेताईं कहूंगा" ऐसैं औ "ब्रह्मकूं जनावूंगा" ऐसैं प्रस्तुत करिके। सो ब्रह्म। एक अद्वय सर्व विशेष शून्य। क्रियाकारक फल स्वभाव सत्य शब्दके वाच्य अशेषभूत अरु धर्मोंके प्रतिषेधरूप द्वारकरि "नेति नेति" ऐसैं विज्ञापन किया ॥ [७२६]इसै ब्रह्मविद्याका अंग होनेकरि संन्यास विधान किया है। [७२७]जाया पुत्र वित्त आदिरूप पांक्त कर्मस्वरूप अविद्याका विषय जातैं

इहां यह अर्थ हैः—प्रत्यगात्माहीं विषय है । तिसविषै जो "ब्रह्म है" ऐसी विद्या है । तिसविषै ॥

७२५ तृतीय (प्रथम) अध्यायकूं अनुवाद करिके । अब चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायके अर्थकूं कथन करै हैं ॥

७२६ ऐसैं वृत्तकूं अनुवाद करिके । उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहेहैं ॥

७२७ ननु संन्यास क्यूं विधान करियेहै । कर्मसैंहीं विद्याके लाभतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहांः—अविद्याका विषयहीं विषय है जिसका। ऐसैं विग्रह है । तातैं संन्यास विधान किया है । ऐसैं पूर्वके पदसैं संबंध है ॥

आत्मप्राप्तिका साधन नहीं है। जातें [७२८]अन्य साधन अन्यफलसाधनके अर्थ प्रयुज्यमान हुया प्रतिकूल होवैहै । [७२९]जातें धावन वा गमन क्षुधा तृषाकी निवृत्ति अर्थ साधन नहीं है ॥ औ जातें [७३०]मनुष्यलोक पित्रलोक अरु देवलोककी साधनताकरि पुत्रादि साधन सुने हैं। आत्मप्राप्तिकी साधनताकरि नहीं। विशेषित होनेतें (विशेषितताकी उक्तिद्वारा स्पष्ट किया है। यातें) ॥ [७३१]औ ब्रह्मवेत्ताकूं विहित नहीं हैं । काहेतें "इतनाहीं काम

७२८ ननु प्रकृत कर्म। अविद्याका विषय है । तोवी तदर्थताकरि अनुष्ठीयमान हुया। क्या आत्मज्ञानके प्रति नहीं प्राप्त करै है ? तहां कहैहैं ॥

७२९ ताहीकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥

७३० ननु पांक्त कर्मकी अन्यकी साधनताहीं कैसैं जानी है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां " सो यह मनुष्यलोक पुत्रकरिहीं जीतनेकूं योग्य है । कर्मकरि पितृलोक । विद्याकरि देवलोक " ऐसैं विशेषितपना सुन्याहीं है । सो विशेषितपनेकी उक्तिद्वारा स्पष्ट किया । यह चकारकरि प्रकाशित करिये है ॥

७३१ ननु ब्रह्मविद्या । अपने फलाविषै विहित कर्मकूं अपेक्षा करैहै । श्रौत (श्रुतिप्रतिपादित) साधनरूप होनेतें । दर्शआदिककीन्यांई ॥ तिस प्रकार हुये । ज्ञान कर्मकेसमुच्चयतें कर्मोंके संन्यासकी सिद्धि नहीं होवैगी ? यातें कहैहैं ॥

है" ऐसें तिनकी काम्यताके श्रवणतें ॥ औ[732] ब्रह्म-वेत्ताकूं आप्तकाम होनेतें । आप्तकाम (आप्तका-म) कूं कामके असंभवतें । औ "जिनें[733] हमारा यह आत्मा यह लोक है" इस श्रुतितें ॥ ॥
[734]केईक (समुच्चयवादी) तो ब्रह्मवेत्ताकाबी एष-णासें संबंधकूं वर्णन करैहैं ॥ तिनोंनें बृहदार-ण्यक सुन्या नहीं है। [735]पुत्रादिकनकी एषणाओंकी अविद्वान्की विषयता सुनी है। काहेतें ता (अ-ज्ञानी)के प्रकरणविषै तिनके उपदेशतें । औ "प्रजाकरि हम क्या करैंगे" इहांसें आरंभ क-

७३२ कर्मोंकी काम्यरूपताके हुयेबी ब्रह्मवेत्ताकूं वे (कर्म) क्यूं नहीं होवैंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७३३ या (कहनेके हेतु)तैंबी ता (ब्रह्मवेत्ता)कूं पुत्रादि साधनका असंभव है । ऐसें कहैहैं ॥

७३४ समुच्चय पक्षकूं अनुवाद करिके विरोधकरि दूषण देते हैं ॥

७३५ श्रुतिके विरोधकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां:—अवि-द्वान्की विषयता सुनी है । काहेतें ताके प्रकरणविषै तिनके उपदेशतें । यह शेष है औ " प्रजाकरि हम क्या करैंगे " इहांसें आरंभ करिके " जिन हमारा यह आत्मा यह लोक है " ऐसें विद्याके विषयविषै श्रुति है । ऐसें योजना है। औ यह विभाग। श्रुतिनें किया है। सो तिन समुच्चयवादीयोनैं नहीं सुन्या है । ऐसें संबंध है ॥

रिके "जिन हमारा यह आत्मा यह लोक है" यह विद्याके विषयविषै श्रुति[illegible] किया विभाग [७३६] तिनोंनैं नहीं सुन्या है औ सर्व क्रिया कारक अरु फलके [illegible]रूप विद्याके होते कार्यकी सहित अविद्याकी अनुत्पत्तिरूप विरोध तिनोंनैं [७३७] जान्या नहीं है औ व्यासवाक्य (स्मृतिवाक्य) तिनोंनैं सुन्या नहीं है ॥ [७३८] विद्या अरु अविद्यारूप कर्म अरु विद्याके स्वरूपका प्रतिकूल वर्त्तन (निवर्त्त्य निवर्त्तकभाव)रूप विरोध है ॥ [७३९] औ जो यह वेदवचन है:- "तूं कर्मकूं कर औ त्यागदे । विद्याकरि किस गतिकूं जातेहैं औ कर्मकरि किस गतिकूं जातेहैं । यह हीं मैं सुननेकूं इच्छताहूं । सो आप मेरे तांईं कहो ?

---

७३६ केवल श्रुतिके विरोधतैंहीं समुच्चयकी असिद्धि नहीं है किंतु युक्तिके विरोधतैंबी है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अवधारण (निश्चय) रूप अर्थवाला दूसरा चकार नकारके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

७३७ स्मृतिके विरोधतैंबी समुच्चयकी असिद्धि है । ऐसैं कहैहैं ॥

७३८ तहां प्रथम पूर्व उक्त युक्तिके विरोधकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां प्रतिकूल वर्त्तन कहिये निवर्त्त्यनिवर्त्तकभाव है ॥

७३९ अब स्मृतिके विरोधकूं स्पष्ट करैहैं ॥

ये (ज्ञान अरु कर्म) परस्पर विरुद्धताविषै व-र्त्तेहैं। प्रतिकूलतैं" इस रीतिसैं शिष्यकरि पूछे हुये। भगवान् व्यासके प्रतिवचनका "जंतु कर्मकरि बाधकूं पावताहै औ विद्याकरि मुक्त होवैहै। तातैं पारके दर्शी जे यति हैं। वे कर्मकूं नहीं करैहैं" इससैं आदिलेके विरोध दिखाया है ॥ [741]तातैं साधनांतरकरि सहित ब्रह्मविद्या पुरुषार्थका साधन नहीं है। [742]सर्वके विरोधतैं किंतु साधन निरपेक्ष (अन्य साधनकी अपेक्षासैं

---

७४० प्रसिद्ध वेदवचनः—"तूं कर्मकूं कर" ऐसा जो यह अज्ञानीके प्रति प्रतीत होवै है औ विवेकीके प्रति "त्याग कर" ऐसा वचन है। तहां "किस गतिकूं" इत्यादि रूप शिष्यका व्यासके प्रति प्रश्न है। ताके बीजकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विद्या अरु कर्मनामक दो उपाय परस्पर वि-रुद्धताविषै वर्त्तते हैं। काहेतैं साभिमानता अरु निरभिमानता आदिकके पुरस्कारकरि प्रतिकूल होनेतैं समुच्चयके असंभवतैं उक्त प्रकारके प्रश्नकी सावकाशता है ॥ इहां "इस प्रकार पूछे हुये भगवान् व्यासके" यह शेष है औ ज्ञानकर्मके समुच्चयका विरोध है। ऐसैं कहनेकूं योग्य है ॥

७४१ समुच्चयके असंभवकूं उपसंहार करै हैं ॥

७४२ ननु तब ब्रह्मविद्या पुरुषार्थका साधन कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां "सर्वके विरोधतैं" इस पदका सर्व क्रिया कारक अरु फलके भेदस्वरूप द्वैतरूप इंद्रजालके ब्रह्म-विद्याके साथि विरोधतैं। यह अर्थ है ॥

रहित) ब्रह्मविद्याहीं पुरुषार्थका साधन है। [७४३] यातैं सर्व साधनोंका संन्यास (त्याग) रूप पारिव्राज्य (संन्यासाश्रम) अंग (ज्ञानका साधन) होनेकरि विधान करिये है "[७४४] इतैनाहीं अमृतभावका साधन है" ऐसैं अवधारणतैं औ [७४५] षष्ठे (चतुर्थअध्याय)की समाप्तिविषे "कर्मी हुया याज्ञवल्क्य संन्यासकूं करताभया" इस लिंगतैं [७४६] कर्मके साधनोंकरि रहित मैत्रेयीकेअर्थ अमृतभावकी

७४३ अकेली ब्रह्मविद्या मुक्तिकी हेतु है। ऐसैं स्थित हुये। फलितकूं कहैहैं ॥

७४४ संन्यासकूं श्रवणादिककी पुष्कलतारूप दृष्ट फलद्वारकरि विद्याके परिपाकका अंगभाव है । सो केवल श्रुति आदिकके वशतैं नहीं जानीये है । किंतु श्रुतिउक्त फलरूप लिंगतैंबी जानीये है। ऐसैं कहैहैं ॥

७४५ तहांहीं अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह (षष्ठ अध्यायकी समाप्तिविषे ऐसा पद जो है सो) दोनूं ओरतैं संबंधकूं पावता है ॥ जब कर्मसहित ज्ञान। मुक्तिका हेतु होवै। तब कर्मी हुये याज्ञवल्क्यका संन्यास क्यूं कहियेहै। तातैं ता (कर्म) का त्याग ता (ज्ञान)का अंग होनेकारि विधान किया है। यह अर्थ है ॥

७४६ तहांहीं अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— मैत्रेयी त्यक्तकर्मवाले भर्त्ताके हुये। आप कर्म करनेकूं योग्य नहीं होवै है। काहेतैं प्रतिरूप द्वारविना भार्याकूं ताके अनधिकारतैं। तिसप्रकार हुये कर्मरहित मैत्रेयीकेताईं मुक्ति-

साधन होनेकरि ब्रह्मविद्याके उपदेशतैं औ वि-[७४७]त्तकी निंदाके वचनतैं ॥ [७४८]जब अमृतभावका साधन कर्म होवै। तब वित्तकरि साध्य पांक्त कर्म है। ऐसैं ता (वित्त)की निंदाका वचनअ-निष्ट होवैगा ॥ [७४९]जब तो परित्याग करनेकूं वांछित कर्म होवै। तातैं (तब) ताके (कर्मके) साधन (वित्त)की निंदा युक्त होवैगी। औ "ब्रह्म (ब्राह्मणजाति)ता (अब्रह्मवेत्ता)कूं परास्त करैहै। क्षत्र (क्षत्रियजाति) ताकूं परास्त (तिरस्कृत) करैहै" इत्यादिरूप [७५०]कर्मके अधिकारके नि-

---

विषै साधन होनेकरि विद्याके उपदेशतैं कर्मका त्याग ताका अंग है। यातैं ताका अंग होनेकरि कहा है ॥

७४७ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— तिस (धन)करि मैं क्या करूंगी । ऐसैं निंदा करियेहै । यातैंबी तिस (धन)करि साध्य कर्म । ज्ञानका सहायक होनेकरि मुक्तिविषै उपकार नहीं करै है ॥

७४८ ताहीकूं विवरण करै हैं ॥ इहां ताकी निंदाका वचन । इस ठिकाने तत् शब्दकरि वित्त कहिये है ॥

७४९ वा तुह्मारे पक्षविषै निंदाका वचन किसप्रकार होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

७५० मैं ब्राह्मण हूं। मैं क्षत्रिय हूं। इस कर्म अनुष्ठानके निमित्त अभिमानकी निंदाकरि सर्व यह आत्माहीं है। इस प्रत्ययविषै श्रुतिके तात्पर्यके देखनेतैं विद्याका अंग होनेकरि संन्यास विधान किया है। ऐसैं कहैहैं ॥

मित्त वर्णाश्रमादिकके प्रत्ययके उपमर्दतें [बी कर्मका संन्यास विधान किया है]॥ [751]जातें ब्रह्म क्षत्र आदिकके स्वरूपके प्रत्ययके उपमर्दके हुये ब्राह्मणकरि यह कर्त्तव्य है । क्षत्रियकरि यह कर्त्तव्य है । ऐसें विषयके अभावतें विधि जो है सो आत्मा (स्वरूप)कूं पावता नहीं । [752]जिसीहीं पुरुषका ब्रह्म क्षत्रिय आदिकके स्वरूपकूं विषय करनेवाला प्रत्यय उपमर्दित होवैहै। ताके प्रत्ययके संन्यासतें ताके कार्य कर्मोंका औ कर्मोंके साधनोंका संन्यास अर्थतें प्राप्त भया है । [753]तातें आत्मज्ञानका अंग होनेकरि संन्यासके विधानकी इच्छा-

---

७५१ ननु विधिके जागते हुये कर्मका अनुष्ठान अपहरण करनेकूं अशक्य है ? यातैं कहैहैं ॥

७५२ ननु वर्ण आश्रमके अभिमानवालेकूं संन्यासबी अंगीकार करिये है । सो (संन्यास) ता (वर्णाश्रमाभिमान) के अभाव हुये कैसें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां औ अर्थतें प्राप्त । यह औ शब्द (चकार) अवधारणके अर्थ है ॥ प्रयोजकके ज्ञानवालेकूं विधिउक्त संन्यासके अंगीकारतें अविरोध है । यह भाव है ॥

७५३ ननु संन्यासकूं आत्मज्ञानकी अंगता जब श्रुति स्मृति अरु न्यायकरि सिद्ध है । तब यह आख्यायिका किस अर्थ रचियेहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—विधिविषै अपेक्षित अर्थवादकी सिद्धि अर्थ आख्यायिका है ॥

सैंहीं यह आख्यायिका आरंभ करियेहै। अरे मैत्रेयि ! ऐसैं याज्ञवल्क्य कहताभया कहिये याज्ञवल्क्य नाम ऋषि। मैत्रेयीनामक अपनीभार्याकेतांई आमंत्रण करताभयाः—अरे [मैत्रेयि] ! [७५४] मैं इस (गृहस्थभावरूप) स्थान (आश्रम)-तैं ऊर्ध्व (संन्यास नामक आश्रमांतर)केतांई गमन करनेकूं इच्छताहूं । [७५५] यातैं तेरी अनुमति (संमति)कूं प्रार्थना करूंहूं ॥ [७५६] किंवा और अन्य तेरा इस द्वितीय भार्यारूप कात्यायनीसैं अंत (विच्छेद)कूं करूंहूं कहिये मुजसैं संबंधवाली तुम दोनूंका [७५७] पतिद्वारा जो संसंध होताभया । ता संबंधके विच्छेदकूं करूंहूं ।

---

७५४ भार्याकूं आमंत्रण करिके क्या करते भये ? सो कहैहैं ॥ इहां " वै " शब्द निश्चय अर्थ है औ अन्य आश्रमके तांई जानेवालाहीं मैं हूं । ऐसैं संबंध है ॥

७५५ उक्त प्रकारकी इच्छाके अनंतर भार्याके कर्त्तव्यकूं दिखावै हैं ॥ इहां भार्या आदिकके होते संन्यासकूं ताकी आज्ञापूर्वक होनेके नियमतैं । यह भाव है ॥

७५६ अन्य कर्त्तव्यकूं कथन करै हैं ॥

७५७ हम दो भार्याओंका विच्छेद स्वाभाविक है । तिसविषै क्या कर्त्तव्य है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

सा होवाच मैत्रेयी । यन्नु म इयम्भगोः सर्व्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति ॥ नेति होवाच

अर्थः—सो मैत्रेयी कहती भईः—हे भगवन् ! जबकि मेरेकूं यह सर्व पृथिवी वित्तकरि पूर्ण होवै । तिसकरि क्या अमृता हो-

---

अर्थ यह जो द्रव्यके विभागकूं करिके (वित्त करि तुमकूं विभाग करिके) गमन करूंगा ॥१॥

टीकाः—ऐसें उक्त सो मैत्रेयी। [७५९] कहती भयीः—हे भगवन् ! जब नु [इहां नु यह वितर्कके विषैहै] मेरेकूं सर्व (सागरकरि वेष्टित)औ वित्त (धन)करि पूर्ण यह पृथिवी होवै [तब बी मैं] तिसकरि किस प्रकारसें अमृता (मरण

---

७५८ तुमारेकूं संन्यस्त हुये आपहीं हम दोनूंका विच्छेद होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां वित्तविषै स्त्रीकी स्वतंत्रता नहीं है । यह भाव है ॥

७५९ मैत्रेयी मोक्षकूंहीं अपेक्षा करती हुयी भर्त्ताकेप्रति आपकी अनुकूलताकूं दिखावैहै ॥ इहां कर्मसाध्यकी गृह अरु प्रासाद आदिककी न्यांई नित्यताकी अनुपपत्ति आक्षेपका निदान (कारण) है ॥

याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥

ऊंगी ! ऐसें ॥ ॥ तहां याज्ञवल्क्य नहीं ऐसें कहतेभये:—जैसेंहीं लोकविषै उपकरण (साधन) वालोंका जीवन होवैहै। तैसेंहीं तेरा जीवित होवैगा। वित्तकरि अमृतभाव-की तो आशा नहीं है इति ॥ २ ॥

रहित) होवूंगी ! किसीप्रकासें बी नहीं ॥ ऐसें "कथं" शब्द । आक्षेपार्थ है वा प्रश्नार्थ है ॥ तिसं[760] (पृथिवीविषै पूर्ण वित्तकरि साध्य) अग्नि-होत्रादि कर्मकरि क्या मैं अमृता होवूंगी? [ऐसें व्यवहितके साथि संबंध है] ऐसें ॥ ॥ तब[761] ताके

७६० कथं (कैसें) शब्दकी प्रश्नार्थताके पक्षविषै वाक्यकूं जोडते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"कैसें तिसकरि" इस ठिकाने कैसें शब्दकरि तिसकरि मैं क्या करूंगी इस अर्थविषै क्या शब्दकूं लेके वाक्यकूं जोडती है । काहेतैं वित्तकरि साध्य कर्मकूं अमृतभावकी साधनतामात्रकी असिद्धिविषै तिस प्र-कारके प्रश्नकूं निरवकाश होनेतैं ॥

७६१ भार्याके हृदयका जाननेवाला मुनिबी संतुष्ट हुया आक्षेपके तांई औ प्रश्नके तांई प्रत्युत्तर कहैहैं । ऐसें कहैहैं ॥

सा होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता

अर्थः—सो मैत्रेयी कहतीभई:—जिसक-

प्रति याज्ञवल्क्य नहीं ऐसैं कहतेभये ॥ ॥ "किस प्रकारसैं" ऐसा जब आक्षेपके अर्थ है। तब नहीं ऐसैं अनुमोदनकूं याज्ञवल्क्य कहते भये ॥ औ "किस प्रकारसैं" ऐसा जब प्रश्न है। तब प्रतिवचनके अर्थ। अमृता नहीं होवैगी। ऐसैं याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ ॥ तबे[७६२] क्या किः—जैसैंहीं लोकविषै उपकरणवाले (साधनवाले पुरुषन)का जीवित सुखके उपायरूप भोगकरि संपन्न है। तैसैंहीं तेरा जीवित होवैगा। परंतु वित्त (वित्तकरि साध्य कर्म) करि मनसैं बी अमृतभावकी आशा नहीं है ॥ २ ॥

टीकाः—ऐसैं[७६३] उक्त सो मैत्रेयी। याज्ञवल्क्यके

७६२ वित्तकरि मेरेकूं अमृतभावके अभाव हुये सो अकिंचित्कर अदेय है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७६३ वित्तके अमृतभावके साधनके अभावकूं जानिके। तिसविषै आस्थाकूं त्यागिके मुक्तिके साधनहीं आत्मज्ञानकूं आपके अर्थ देनेकूं पतिकेप्रति प्रेरणा करती हुयी कहैहै ॥

स्या किमहं तेन कुर्य्यां। यदेव भगवा-
न्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥ ३ ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे

रि मैं अमृता नहीं होऊं। तिसकरि मैं क्या
करों । जोई भगवान् (आप) [अमृतभा-
वका साधन] जानतेहो सोई मेरे अर्थ कहो
ऐसें ॥ ३ ॥ ॐ

अर्थः—सो याज्ञवल्क्य। प्रि॥ २ ॥री तूं इ-

प्रति कहतीभयीः—जब ऐसैं है तब जिसकरि
मैं अमृता नहीं होवूं । तिस वित्तकरि मैं
क्या करूंगी ! भगवान् (आप) जाहीकूं केवल
अमृतभावका साधन जानतेहो । तिसीहीं अ-
मृतभावके साधनकूं मेरेतांईं कहो । ऐसें ॥३॥
७६४

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहता भया कहिये

---

७६४ भार्याकूं अपेक्षित मोक्षके उपायकूं कहनेकूं इच्छते
हुये। आदिविषै ता (भार्या)कूं स्तुतिकी विषय करै हैं॥ इहां
वित्तकरि साध्य कर्म है । तिस अमृतभावके साधनके शं-
कित हुये मैं तिसकरि क्या करूंगी । ऐसैं भार्याकरिबी ताके
निषेधके किये हुये यह अर्थ है औ स्वाभिप्राय । कर्म मु-

नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व । व्याख्यास्यामि ते । व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥ ४ ॥

ष्ट हैं ऐसैं) कृपा करिके कहेहैः—अरे (मैत्रेयि) ! [तूं] हमारी प्रिया हैं । प्रियभाषण करेहैं । आ बैठ । तेरे अर्थ व्याख्यान करूंगा । व्याख्यानके करनेवाले मेरे वाक्यनकूं अर्थतैं निश्चयकरिके ध्यावनेकूं इच्छ । ऐसैं ॥ ४ ॥

ऐसैं (उक्तप्रकारसैं) वित्तकरि साध्य अमृतभावके साधनके निषेध किये हुये । याज्ञवल्क्य । स्व अभिप्रायकी संपत्तिके हुये तुष्ट (प्रसन्न) हुया कहताभया ॥ याज्ञवल्क्य उवाचः—[इहां "बत" ऐसैं कृपा करिके कहे हैं] अरे मैत्रेयि ! तूं हमारी पूर्व बी प्रिया (इष्ट) सती (पतिव्रता) हैं । अबी प्रिय (चित्तके अनुकूल वचन)कूंहीं बोलती हैं । आ बैठ ! जो तेरा इष्ट अमृतभा-

क्तिका हेतु नहीं । यह है । ताकी भार्याद्वाराबी संपत्तिके हुये । यह अर्थ है ॥

स होवाच । न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहताभयाः—प्रसिद्धहीं अरे (मैत्रेयि)! पतिके काम अर्थ पति प्रिय नहीं होवैहै। आत्माके तो

वका साधन आत्मज्ञान है । ताकूं व्याख्यान करूंगा (कथन करूंगा) ॥ तूं मुज व्याख्यान करनेवालेके वाक्यनकूं तो निदिध्यासन कर कहिये अर्थतें निश्चयकरि ध्यान करनेकूं इच्छ । ऐसैं ॥ ४ ॥

टीकाः—अमृतभावके साधन वैराग्यकूं उपदेश करनेकूं इच्छता हुया सो याज्ञवल्क्य कहता भयाः—तिनके संन्यास (त्याग) अर्थ जायो-[७६५]

---

७६५ ननु अमृतभावका साधन जब आत्मज्ञान विवक्षित होवै । तब "अरे ! आत्माहीं देखनेकूं योग्य है" इत्यादि कहनेकूं योग्य है । "अरे! पतिके काम अर्थ पति प्रिय नहीं है" इत्यादि वाक्य क्यूं कहा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां जायादिकनका आत्माके अर्थ होनेकरि प्रियपना है औ आत्माका अनौपाधिक प्रियताकरि परमानंदता है । ऐसैं कहते भये । यह शेष है ॥

पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्या-

---

कामअर्थ पति प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! जायाके कामअर्थ जाया प्रिया नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ जाया प्रिया होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! पुत्रोंके काम अर्थ

पति पुत्रादिकनतैं विरागकूं उत्पादन करैहैंः—नवै[७६६] (नहीं) इहांसैं ॥ [इहां "वै"[७६७] शब्द। प्रसिद्धके स्मरणअर्थ है] अरे मैत्रेयि ! सो लोकविषै प्रसिद्धहीं है । जो पति (भर्त्ता)के काम (प्रयोजन)अर्थ जायाकूं पति प्रिय नहीं होवैहै । तब क्या किः—आत्माके तो काम (प्रयोजन) अर्थहीं भार्याकूं पति प्रिय होवैहै ॥ तैसें अरे मैत्रेयि ! प्रसिद्धहीं जायाकेअर्थ (जायाके

---

७६६ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

७६७ तिस निपातकरि क्या स्मरणकरियेहै ? सो कहैहैं ॥

त्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।
न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भ-
वत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति।
न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं

पुत्र प्रिय नहीं होवैहैं। आत्माके तो काम
अर्थ पुत्र प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे!
वित्तके काम अर्थ वित्त प्रिय नहीं होवैहै।
आत्माके तो काम अर्थ वित्त प्रिय होवैहै ॥ ॥
प्रसिद्ध अरे! ब्रह्म (ब्राह्मणजाति)के काम

काम अर्थ)। जाया प्रिय नहीं होवैहै० इससैं
आदिलेके अन्य समान है ॥ अरे! प्रसिद्धहीं
पुत्रोंके कामअर्थ पुत्र प्रिय नहीं होवैहैं०
अरे! प्रसिद्धहीं वित्तके कामअर्थ वित्त प्रिय
नहीं होवैहै० ॥ अरे! प्रसिद्धहीं ब्रह्म (ब्रा-
ह्मणजाति)के कामअर्थ ब्रह्म (ब्राह्मणजा-
ति) प्रिय नहीं होवैहै० ॥ अरे! प्रसिद्धहीं
क्षत्र (क्षत्रियजाति)के काम अर्थ क्षत्र प्रिय
नहीं होवैहै० ॥ अरे! प्रसिद्धहीं लोकोंके काम

भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भ-
वति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं
प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं
भवति । न वा अरे लोकानां कामाय

अर्थ ब्रह्म प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो
काम अर्थ ब्रह्म प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध
अरे ! क्षत्र (क्षत्रियजाति)के काम अर्थ क्षत्र
प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ
क्षत्र प्रिय होवैहै ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! लोकन

अर्थ लोक (स्वर्गादिक) प्रिय नहीं होवै-
हैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं देवनके कामअर्थ
देव प्रिय नहीं होवैहैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं
भूतनके कामअर्थ भूत प्रिय नहीं होवै-
हैं० ॥ अरे ! प्रसिद्धहीं सर्वके कामअर्थ
सर्व प्रिय नहीं होवैहै० ॥ पूर्व[७६८] पूर्व जैसें समी-

७६८ उक्त प्रकारके क्रमविषै नियामककूं कहैहैं ॥ इहां जो जो आसन्न (समीप प्राप्त) प्रीतिका साधन है । तिस तिसकूं अतिक्रमण न करिके । तिस विषयविषै पूर्व पूर्व वचन है । ऐसैं योजना है ॥

लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति। न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति। न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि

(स्वर्गादिकन)के काम अर्थ लोक प्रिय नहीं होवैहैं। आत्माके तो काम अर्थ लोक प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे! देवनके काम अर्थ देव प्रिय नहीं होवैहैं। आत्माके तो काम अर्थ देव प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे! भूतन (पृथिवी आदिकन)के काम अर्थ

पके प्रीति साधनकेविषै वचन है। तहां[७६९] तहां वैराग्यकूं इष्टतर (प्रियतर) होनेतैं[७७०] औ सर्व पदका ग्रह-

७६९ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

७७० "अरे! सर्वके काम अर्थ सर्व प्रिय नहीं है" ऐसैं कहना अयुक्त है काहेतैं पति आदिकनकूं उक्त होनेतैं अंशकरि पुनरुक्तिके प्रसंगतैं? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उक्तकी न्यांई अनुक्तोंकाबी ग्रहण कर्त्तव्य है। औ सर्व पदार्थ विशेषकरि ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं हैं। तिसकरि सामान्यके अर्थ "सर्व" पद है ॥

भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्व्वस्य कामाय सर्व्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु काकाय सर्व्वं प्रियं भवति ॥ आत्मा वा

भूत प्रिय नहीं होवैहैं । आत्माके तो काम अर्थ भूत प्रिय होवैहैं ॥ ॥ प्रसिद्ध अरे ! सर्वके काम अर्थ सर्व प्रिय नहीं होवैहै । आत्माके तो काम अर्थ सर्व प्रिय होवैहै ॥ ॥ [तातैं] अरे (मैत्रेयि)! आत्माहीं देख-

ण उक्तकी न्यांई अनुक्तके ग्रहण अर्थ है ॥ तातैं[७७१] लोकप्रसिद्ध यह हैः—आत्माहीं प्रिय है अन्य नहीं । "सो[७७२] यह पुत्रतैं प्रेय है" ऐसैं उपन्यास किया है । तिसका यह वृत्तिस्थानीय प्रपंचन किया ॥ [७७३]तातैं आत्माकी प्रीतिका साधन होनेतैं

७७१ सर्व पर्यायोंविषै सिद्ध अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

७७२ ननु तृतीय(प्रथम)विषै आत्माका प्रियपना कहा । सोई जब इहांबी कहियेहै तब पुनरुक्ति होवैगी? तहां कहैहैं ॥

७७३ अब उपन्यास अरु विवरणकरि आत्माविषैहीं प्रीति है । यह अयुक्त है । काहेतैं पुत्रादिकविषैबी ता (प्रीति)के देखनेतैं ? यातैं कहैहैं ॥

अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳ सर्वं विदितम् ॥ ५ ॥

नेकूं योग्य है। सुननेकूं योग्य है। मनन करनेकूं योग्य है। निदिध्यासन करनेकूं योग्य है॥ ॥ अरे मैत्रेयि! आत्माकेहीं दर्शनकरि श्रवणकरि मननकरि विज्ञान (निदिध्यासन) करि यह सर्व विदित होवैहै ॥ ५ ॥

अन्य ठिकाने गौणी प्रीति है। आत्माविषै हीं मुख्य प्रीति है ॥ [७७४]तातैं अरे (मैत्रेयि)! आत्माहीं द्रष्टव्य (दर्शनके योग्य) है कहिये दर्शनका विषय आपादन करनेकूं योग्य है। [७७५]पूर्व आचार्यतैं औ आगमतैं श्रोतव्य (श्रवणके योग्य)

---

७७४ आत्माकी निरतिशय प्रीतिकी विषयताकरि परमानंदरूपताकूं कहिके। अब उत्तर वाक्यकूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

७७५ फेर यह दर्शन कैसैं उपजता है? तहां कहैहैं ॥

है। पीछे तर्क (युक्ति) तैं मंतव्य (मननकरनेकूं योग्य) है। तातैं (तदनंतर) निदिध्यासितव्य (निश्चयकरि ध्यावने योग्य) है ॥ [७७६] ऐसैं जातैं क्रियमाण श्रवण मनन औ निदिध्यासनरूप साधनोंकरि यह (आत्मा) दृष्ट होवैहै ॥ [७७७] जब एकताके प्रति ये (श्रवणादिक) प्राप्त होवैहैं। तब ब्रह्मकी एकतारूप विषयवाला सम्यक्ज्ञान प्रसिद्ध होवैहै। अन्यथा (श्रवण मा-

---

७७६ श्रवणादिकनके मध्य अन्यतमकरि आत्मलाभतैं सर्वका अध्ययन क्यूं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

७७७ विधिकी अनुसारिता "एव" शब्दका अर्थ है। काहेतैं श्रुतपनैके अविशेषतैं औ विकल्प हेतुके अभावतैं सर्वकरिहीं जब आत्मज्ञान उपजता होवै तब तिस (श्रवणादिक) कूं आग्नेय आदिककीन्यांई समप्रधानता प्राप्त होवैगी? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—श्रवणकूं प्रमाणका विचाररूप होनेकरि प्रधान होनेतैं अंगीपना है औ मनन निदिध्यासनकूं तो ताके कार्यविषै प्रतिबंधके प्रध्वंसी होनेतैं अंगपना है। ऐसैं अंगअंगीभावकरि जब श्रवणादिक वारंवार तिनके अनुष्ठानकरि समुच्चित होवैं। तब सामग्रीकी पुष्कलताकरि फलरूप शिरवाला तत्वज्ञान सिद्ध होवैहै। औ मननादिकके अभाव हुये श्रवणमात्रकरि सो (तत्वज्ञान) नहीं उपजताहै। काहेतैं मननआदिककरि प्रतिबंधके अप्रध्वंसके हुये वाक्यकूं फलवाले ज्ञानकी जनकताके अयोगतैं ॥

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म

अर्थः—ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) ताकूं प-

त्रकरि) नहीं ॥ जो ब्रह्म[778] क्षत्रादि । कर्मका निमित्त है । सोई वर्णाश्रमादिरूप आत्माविषे अविद्यासैं आरोपणके प्रत्ययका विषय औ क्रिया कारक अरु फलात्मक अविद्याकरि[779] आरोपित प्रत्यय (ज्ञान)का विषय है । रज्जुविषे[780] सर्पके प्रत्ययकीन्यांई ताके उपमर्द (बाध)अर्थ कहैहैं:—अरे मैत्रेयि! आत्माके निश्चयकरि देखे हुये। सुने हुये। मनन किये हुये। विज्ञात हुये। यह सर्व विदित होवैहै ॥ ५ ॥

टीकाः—ननु[781] अन्यके विदित हुये अन्य कैसैं

---

७७८ परामर्षवाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां कर्मका निमित्त ब्रह्म क्षत्र आदिक है । सोई वर्ण आश्रम अवस्थारूप हुया आत्माविषै अविद्याकरि आरोपित प्रत्ययरूप जो मिथ्याज्ञान । ताका विषय होनेकरि स्थित है अरु क्रिया आदिक स्वरूप है । ताके उपमर्दन अर्थ कहैहैं ॥ ऐसैं संबंध है ॥

७७९ अविद्याकरि आरोपित प्रत्यक्षका विषय है । ऐसैं जो कहा । याहीकूं व्याख्यान करै हैं ॥

७८० अविद्याजनित प्रत्ययकी विषयताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

७८१ आत्माके विदित हुये सर्व विदित होवै है । ऐसैं उक्त अर्थके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करै है ॥

वेद । क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद । लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽ-त्मनो लोकान्वेद । देवास्तं परादुर्योऽन्य-

राकरण (तिरस्कार) करैहै । जो आत्मा-तैं अन्य ठिकाने ब्रह्मकूं जानताहै ॥ क्षत्र (क्षत्रियजाति)ताकूं पराकरण करैहै । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने क्षत्रकूं जानताहै ॥ लोक ताकूं पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने लोकनकूं जानताहै ॥ देव ति-

विदित होवैहै ? यँहे[782] दोष नहीं हैः—जातें आत्मातैं व्यतिरेककरि अन्य कछुबी नहीं है । जँब[783] है । तब सो विदित नहीं होवैगा । परंतु अन्य नहीं है । किंतु सर्व आत्माहीं है । तातैं आत्माके विदित हुये सर्व विदित होवैहै ॥ ॥ फेर[784] आत्माहीं सर्व कैसें है ? यह सुनावैहैंः—ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) ता

---

७८२ द्वष्टिके विरोधकूं सिद्धांती । निराकरण करै हैं ॥

७८३ आत्माके ज्ञात हुये सर्व ज्ञातहीं होवै है । काहेतैं तिसतैं अन्य अर्थके अभावतैं । ऐसें उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७८४ आकांक्षापूर्वक उत्तर वाक्यकूं उदाहरण करिके व्या-ख्यान करै हैं ॥

त्राऽऽत्मनो देवान्वेद । भूतानि तं परादु-
र्योऽन्यत्राऽऽत्मनो भूतानि वेद । सर्व्वं तं
परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्व्वं वेदेदं ब्र-

सकूं पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं अन्य
ठिकाने देवनकूं जानताहै ॥ भूत तिसकूं
पराकरण करैहैं । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने
भूतनकूं जानताहै ॥ सर्व तिसकूं पराकरण
करैहै । जो आत्मातैं अन्य ठिकाने सर्वकूं

पुरुषकूं धिक्कार (तिरस्कार) करैहै ॥ किसकूं[७८५]
किः—जो आत्मातैं अन्य ठिकाने कहिये आ-
त्मस्वरूपतैं व्यतिरेककरि ब्रह्म (ब्राह्मणजाति)
कूं जानताहै कहिये यह ब्राह्मणजाति आ-
त्माहीं नहीं होवैहै । ऐसैं ताकूं जो जानताहै ।
तिसकूं सो ब्राह्मणजाति "[७८६]अनात्मस्वरूपकरि
मोकूं देखताहै" यह जानिके तिरस्कार करैहै ।

७८५ पुरुषकूं विशेषतैं जाननेकूं प्रश्नकूं उपन्यास करिके प्रतीककूं ग्रहण करिके व्याख्यान करै हैं ॥

७८६ पराकरणविषै पुरुषके अपराधीपनैकूं दिखावैहैं ॥

ह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदꣳ सर्व्वं यदयमात्मा ॥ ६ ॥

जानताहै ॥ यह ब्रह्म है । यह क्षत्र है । ये लोक हैं । ये देव हैं । ये भूत हैं । यह सर्व है । जो यह आत्मा है ॥ ६ ॥

[७८७] जातैं परमात्मा सर्वका आत्मा है ॥ तैसैं क्षत्र (क्षत्रियजाति) ॥ तैसैं लोक । देव । भूत । सर्व यह ब्रह्म है । ऐसैं जितने इहां प्रक्रांत हैं औ जे अनुक्रांत हैं । सर्व आत्माहीं है ॥ जो यह आत्मा द्रष्टव्य है । श्रोतव्य है । ऐसैं प्रकृत है। जिसँ[७८८] आत्मातैं जन्मताहै । आत्माविषैहीं लीन होवैहै । औ स्थितिकालविषै आत्ममय है । आत्मव्यतिरेककरि अग्रहणतैं आत्माहीं सर्व है ॥६॥

---

७८७ परमात्मातैं अतिरेककरि ब्राह्मणजातिके तांई दृश्यमानोंके मध्यवी स्वस्वरूपकरि देखता हुया कैसैं अपराधी होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह ब्रह्म है । ऐसैं उत्तर वाक्यका अनुवाद है । ताका व्याख्यान । जे अनुक्रांत है इत्यादि है ॥

७८८ आत्माहीं सर्व है। यह प्रतिपादन करै हैं ॥ इहांः— स्थितिकालविषै स्थित होवैहै। तातैं आत्माहीं सर्व है। तिसतैं व्यतिरेककरि अग्रहणतैं । ऐसैं योजना है ॥

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याँश्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभे-

---

अर्थः—सो जैसैं हन्यमान (ताड्यमान) दुंदुभिके बाह्यशब्दनकूं ग्रहण करने अर्थ नहीं शक्त होवैहै। दुंदुभिके तो वा दुंदु-

---

टीकाः—फेर[789] अब यह सर्व आत्माहीं है ऐसैं किसप्रकार ग्रहण करनेकूं (जाननेकूं) शक्य होवैहै? चिन्मात्रके[790] अनुगमतैं सर्वत्र चितृस्वरूपताहीं है। ऐसैं जानियेहै॥ तहां[791] (सर्वत्र चेतनतैं व्यतिरेककरि असद्भावविषै) दृष्टांत कहियेहैः—जाके[792] स्वरूपतैं व्यतिरेककरि जिसका अग्रहण है। तिसकी तदात्मता (तिसरूपता)

---

७८९ ननु स्थिति अवस्थाविषै सर्वकी आत्ममात्रता जाननेकूं अशक्य है। ज्ञापकके अभावतैं? इसप्रकार प्रतिवादी। आक्षेप करै है॥

७९० घट स्फुरता है इत्यादि प्रत्ययकूं आश्रय करिके। सिद्धांती। परिहार करै हैं॥

७९१ "सो जैसैं दुंदुभिके" इत्यादि वाक्यकूं अवतार देते हैं॥ इहांः—सर्वत्र चेतनतैं अतिरेककरि असद्भाव है। यह "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है॥

७९२ दृष्टांतविषै विवक्षित अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं॥

स्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥

भिके आघात (ताडन)के ग्रहणकरि शब्द गृहीत होवैहै ॥ ७ ॥

हीं लोकविषे देखी है । सो[७९३] जैसें । कहिये सो यह दृष्टांत है:—लोकविषै जैसें दंडआदिककरि ताड्यमान दुंदुभि (भेरीआदिक)के बाह्य शब्दोंकूं (बहिर्भूत शब्दविशेषनकूं) कहिये दुंदुभिके[७९४] शब्दकी समानतातैं बाहिर निकसे दुंदुभिके शब्दविशेषनकूं ग्रहण करनेकूं पुरुष शक्त नहीं होवैहै । परंतु[७९५] दुंदुभिके ग्रहणकरि शब्दोंके सामान्यविशेषभावसें । दुंदुभिके शब्द

---

७९३ दुंदुभिके दृष्टांतकूं लेके ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करै हैं ॥

७९४ शब्दविशेषनकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

७९५ ननु तब दुंदुभिके शब्दविशेषनका ग्रहण कैसैं होवै है ? सो कहैहैं ॥ इहां दुंदुभिके । इस शब्दका दुंदुभि शब्दके सामान्यके । यह अर्थ है ॥

ये हैं। ऐसैं शब्दविशेष गृहीत होवैहै। काहेतैं दुंदुभिके शब्दके सामान्य व्यतिरेककरि तिन [७९६] (शब्दविशेषन)के वा दुंदुभिके आघात (ताडन)के अभावतैं [इहां दुंदुभिका आहनन (ताडन) आघात कहियेहै] दुंदभिके आघातकरि विशिष्ट शब्दसामान्यके ग्रहणकरि [७९७] तद्गत विशेष गृहीत होवैहैं [७९८]। परंतु वेहीं भेदकूं पायके ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं होवैहैं। विशेषरूपकरि तिनके अभावतैं ॥ [७९९] ॥ तैसैं प्रज्ञान व्यतिरेककरि स्वप्न अरु जागरितविषै कोई बी वस्तु विशेष नहीं ग्रहण करियेहै। तातैं विज्ञान व्यतिरेककरि तिनका अभाव युक्त है ॥ ७ ॥

---

७९६ उक्त अर्थविषै "दुंदुभिके आघात (ताडन)के" इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥

७९७ "वा" शब्दके अर्थकूं कहेहैं ॥

७९८ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकरूप द्वारकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७९९ विवक्षित दार्ष्टांतिककूं कहैहैं ॥ इहां:—तहांहीं वस्तुविशेषके ग्रहणकी संभावनाकूं अभिप्रायकी विषय करिके स्वप्न जागरितविषै ऐसैं कहा। औ तैसैंशब्दका दुंदुभिके दृष्टांतकी न्यांई। यह अर्थ है ॥ औ "शंखके तो ग्रहणकरि" इत्यादि वाक्य। आदि शब्दका अर्थ है ॥

स यथा शङ्खस्यध्यायमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बा-

अर्थः—सो जैसें शब्दकरि पूर्यमाण शंखके बाह्य शब्दनकूं ग्रहण अर्थ नहीं शक्त होवैहै । शंखके तो वा शंखके ध्वनिके ग्रहणकरि शब्द गृहीत होवैहै ॥ ८ ॥

अर्थः—सो जैसें वाद्यमान वीणाके बाह्य-

टीकाः—तैसें (दुंदुभिके दृष्टांतकीन्यांई) सो जैसें बजाये हुये (शब्दकरि संयोज्यमान) कहिये आपूर्यमाण शंखके बाह्य शब्दोंकूं ग्रहण करनेकूं शक्त नहीं होवैहै । इत्यादि पूर्व[८००]कीन्यांई है ॥ ८ ॥

टीकाः—तैसें (दो दृष्टांतनकीन्यांई) वाद्यमा-

---

८०० "दुंदुभिके तो ग्रहणकरि" इत्यादि वाक्यकूं दृष्टांतरूप करै हैं ॥ इहां तथा शब्दकरि दृष्टांतद्वयका ग्रहण है॥

ह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥

शब्दनकूं ग्रहण अर्थ नहीं शक्त होवैहै। वीणाके तो वा वीणावादके ग्रहणकरि शब्द गृहीत होवैहै ॥ ९ ॥

वीणाके० ॥ इहां (जगत्विषै वा श्रुतिविषै) [८०१]अनेक दृष्टांतनका ग्रहण। समानभाव अरु बहुभावके ज्ञापनअर्थ है ॥ जातैं [८०२]अनेक विलक्षण चेतन अचेतनरूप सामान्य विशेष हैं। तिन[८०३]का परंपरागतिकरि जैसैं एक महासामान्यविषै अंतर्भाव है । तैसैं प्रज्ञानघनविषै

८०१ ननु एकहीं दृष्टांतकरि विवक्षित अर्थकी सिद्धिके हुये। अनेक दृष्टांतनका ग्रहण क्यूं है ? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इधर "इहां" इस शब्दकरि जगत् वा श्रुति कहिये है ॥

८०२ सामान्यके बहुत्वकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

८०३ तिन (सामान्यों)के स्वसामान्यविषै अंतर्भावके हुयेबी ब्रह्मविषै पर्यवसान काहेतैं होवैगा ? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां कैसैं इस शब्दतैं पूर्व। तैसैं ऐसा अध्याहार किया चाहीये औ ऐसैं श्रुति मानतीहै। यह शेष है ॥

सर्वे जगत् अंतभार्वकूं पावताहै । कैसैं नाम (प्रसिद्ध) प्रकर्षकरि दिखावनेकूं योग्य है। ऐसैं श्रुति मानतीहै ॥ जैसैं दुंदुभि[८०४] । शंख अरु वीणाके शब्दके सामान्य अरु विशेषनकी शब्दताविषै [एकता] है । ऐसैं[८०५] स्थितिकालविषै प्रथम सामान्य विशेषके अव्यातिरेकतैं ब्रह्मकी एकता जाननेकूं शक्य है । ऐसैं[८०६] उत्पत्तिकालविषै अरु उत्पत्तितैं पूर्व ब्रह्महीं है । ऐसैं जाननेकूं शक्य होवैहै ॥ ९ ॥

---

८०४ विवादका विषय जो जगत् । सो आत्मातैं अतिरेकि (भिन्न) नहीं है । काहेतैं तिसतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण होनेतैं । जो जिसतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण है । सो तिसतैं अतिरेकि नहीं होवैहै । जैसैं दुंदुभि आदिकके शब्द । तिनके सामान्यतैं अतिरेककरि अगृह्यमाण हुये तिसतैं अतिरेककरि नहीं हैं । इस अनुमानकूं कहनेकूं इच्छते हुये कहैहैं ॥ तिनका जैसैं शब्दत्वविषै अंतर्भाव है । तैसैं प्रज्ञानघनविषै सर्व जगत् अंतर्भावकूं पावताहै । यह शेष है ॥

८०५ तीन दृष्टांतनकूं आश्रय करिके । निष्कर्षरूप अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

८०६ " सो जैसैं आर्द्र (गीले) इंधनोंकरि प्रदीप्त अग्नितैं " इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ स्थितिकालकी न्यांई । यह " एवं (ऐसैं) " शब्दका अर्थ है ॥

स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजु-

अर्थः—सो जैसें अभ्याहित आर्द्र इंधनोंकरि प्रदीप्त अग्नितें प्रथक् धूम निकसते हैं। ऐसेंहीं अरे! महत्भूत इस (परमात्मा)का निःश्वासित यह ऋग्वेद। य-

टीकाः—जैसें विस्फुलिंग धूम अंगार अरु ज्वालाके अविभागतें पूर्व अग्नि हीं है। ऐसें अग्निकी एकता होवैहै ॥ इसरीतिसें (स्थितिकालकीन्यांई) नामरूपकरि विक्रियमाण जगत्। उत्पत्तितें पूर्व प्रज्ञानघनहीं है। ऐसें ग्रहण करनेकूं युक्त है। यँहँ[८०७] कहियेहैः—सो जैसें[८०८] अभ्याहित ऐसा जो आर्द्र (गीले) इंधनों-

८०७ तहां वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां महत् कहिये अनवच्छिन्नका औ भूत कहिये परमार्थका यह इन दो शब्दनका अर्थ है ॥

८०८ निःश्वसितकी न्यांई। ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां "अरे मैत्रेयि! तिसतैं उत्पन्न भया है"। ऐसैं संबंध है ॥

वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पु-
राणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्य-

जुर्वेद । सामवेद अथर्वांगिरस । इतिहास ।
पुराण । विद्या । उपनिषद् । श्लोक । सूत्र ।

करि वृद्धिकूं पाया अग्नि । तिसतें पृथक् (ना-
ना प्रकारके) धूम (धूम अरु विस्फुलिंगादिक)
विशेषकरि निर्गमन करैहैं [इहां नाना प्रका-
रके धूमका ग्रहण । विस्फुलिंगादिकके दिखा-
वने अर्थ है] ॥ ऐसें (जैसें यह दृष्टांत है । तै-
सैं) अरे मैत्रेयि ! प्रसिद्ध इस महत् (अनव-
च्छिन्न) भूत (परमार्थ) प्रकृत परमात्माका
निःश्वसित (निःश्वासकीन्यांई निःश्वासरू-
प) यह होता भया ॥ जैसें अप्रयत्नकरिहीं पु-
रुषका निःश्वास होवैहै । ऐसैंहीं अरे मैत्रेयि !
तिसतें होता भया ॥ ॥ क्या सो निःश्वासकी

---

८०९ ताहीकूं आकांक्षापूर्वक स्पष्ट करैहैं ॥ इहां इति-
हास यह ब्राह्मणहीं है । ऐसैं संबंध है औ संवाद आदिक ।
इहां आदिपदकरि प्राणके संवाद आदिकका ग्रहण है औ
" असत्हीं यह आगे होता भया " इस आदि शब्दकरि

नुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैता-
नि सर्व्वाणि निःश्वसितानि ॥ १० ॥

अनुव्याख्यान । व्याख्यान । हैं ॥ इसी-
हींके ये सर्व निःश्वसित हैं ॥ १० ॥

न्यांई तिसतें होता भया ? तहां कहियेहैः—जो
ऋग्वेद । यजुर्वेद । सामवेद । अथर्वांगि-
गिरस । यह चतुर्विध मंत्रोंका समूह है ॥ इति-
हास । यह उर्वशी अरु पुरूरवाका संवाद आ-
दिक । "उर्वशी नामक इहां अप्सराथी" । इ-
त्यादि ब्राह्मणहीं है ॥ औ पुराण कहिये "अस-

"असत्हीं यह आगे होताभया" यह ग्रहण करियेहै औ देव-
जनविद्या कहिये नृत्य गीतादि शास्त्र । "वेद सो यह है" ।
अर्थ यह जो वेदतें बाहीर नहीं होवैहै । इत्यादिक विद्या
है । ऐसैं संबंध है । इहां आदिशब्द । शिल्पशास्त्रके संग्रह
अर्थ है औ "प्रिय है ऐसैं याकूं उपासना करै" इत्यादिक
उपनिषद् हैं । इस ठिकाने आदिशब्द "सत्यका सत्य है"
या उपनिषद्के संग्रह अर्थ है औ "ताके ये श्लोक होवैं हैं"
इत्यादिक श्लोक (मंत्र) हैं ॥ इहां आदिशब्दकरि "सोबी
यह श्लोक होवै है । असत्हीं सो होवैहै" इत्यादि ग्रहण
करिये है औ इत्यादिक सूत्र हैं । इहां आदिपद "औ जो
अन्य देवताकूं उपासताहै । ब्रह्मवित् पर (ब्रह्म)कूं पावता
है" इत्यादि ग्रहण करनेकूं है ॥

तूहीं यह आगे होता भया" इत्यादि है औ वि-द्या कहिये देवजनविद्या (नृत्यगीतादि शास्त्र)। " वेद सो यह " इत्यादि ॥ उपनिषद् कहिये "प्रिय ऐसैं याकूं उपासना करै" इत्यादिक ॥ श्लोक कहिये ब्राह्मणतैं प्रभववाले मंत्र । "वे ये श्लोक हैं"। इत्यादिक ॥ सूत्र कहिये वस्तुके सं-ग्रहरूप वाक्य । वेदविषै जैसैं "आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै " इत्यादिक ॥ अनुव्याख्यान कहिये मंत्रोंके विवरण ॥ व्याख्यान कहिये अ-र्थवाद ॥ अर्थवा[810] वस्तुके संग्रहरूप वाक्योंके विचारणरूप अनुव्याख्यान हैं । जैसैं चतुर्था-ध्यायविषै "आत्मा ऐसैंहीं उपासना करै" इस वाक्यका है । वा जैसैं "अन्य यह है अन्य मैं हूं ऐसैं [जो जानता है] सो जानता नहीं । जैसैं पशु है । ऐसैं[811] सो देवनका है " इस वाक्यक है । यहहीं अध्यायका शेष है ॥ औ मंत्रोंके वि-

८१० अर्थवादनविषै व्याख्यान पदकी प्रवृत्तिमैं हेतुके अभावकूं शंका करिके पक्षांतरकूं कहैहैं ॥

८११ इतिहास आदिक शब्दनके व्याख्यानकूं उपसंहार करै हैं ॥ ब्राह्मण जो है सो इतिहास आदिक पदोंकरि जा-ननेकूं योग्य है । यह शेष है ॥

वरणरूप व्याख्यान हैं । ऐसैं अष्टविधब्राह्मण है ॥ [८१२] ईसैं रीतिसैं मंत्र अरु ब्राह्मणकाहीं ग्रहण है ॥ औ [८१३] नियंतरचनावाले विद्यमानहीं वेदकी अभिव्यक्ति (आविर्भाव) होवैहै । पुरुषके निःश्वासकीन्यांई अरु पुरुषकी बुद्धिके प्रयत्नपूर्वक नहीं है । यातैं स्वार्थविषै प्रमाणकी अपे-

---

८१२ ननु ऋक् आदिक शब्दनके औ इतिहास आदिक शब्दनके प्रसिद्ध अर्थके त्यागविषै कौंन हेतु है? यह आशंका करिके । निःश्वसित।श्रुति इतिहास आदिक शब्दनके प्रसिद्ध अर्थके त्यागविषै हेतु है । परिशेष तो अन्य ठिकाने है । या अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

८१३ ननु प्रथमकांडविषै वेदकी नित्यताकरि प्रमाणता स्थापित करी है । ता (वेद)की अनित्यताके हुये ता (प्रमाणता)की हानि होवैगी ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—न इत्यादिक वेदविषै विशेष करियेहै । "कल्पांतविषै तब तिन वेदनकूं" इत्यादि वाक्यतैं वेदका नियतरचनावान्पना जानियेहै औ "आदि अंततैं रहितनकूं" इत्यादि वाक्यतैं ताकी सनातनता निश्चय करिये है औ कृतक (कृतिसाध्य) होनेतैं ताकी अप्रमाणता नहीं है । प्रत्यक्षआदिकविषै व्यभिचारतैं औ पौरुषेय होनेतैं अनपेक्ष हेतुके अभावतैं ताकी अप्रमाणता नहीं है । काहेतैं बुद्धिपूर्वक प्रणीतताके अभावकारि ता (प्रमाणता)कीं सिद्धितैं औ उन्मत्तवाक्यका सादृश्य नहीं है । अबाधित अर्थवाला होनेतैं ॥

क्षासैं रहितहीं है ॥ [८१४] तातैं जो तिस (वेद)नैं कहा है सो तैसैंहीं आपके ज्ञानरूप वा कर्मरूप श्रेयकूं इच्छनेवाले पुरुषनकरि प्रतीति करनेकूं योग्य है इति ॥ जातैं नाम [८१५] प्रकाशके वशहीं रूपकी विक्रिया अवस्था है औ [८१६] जातैं परमात्माकी उपाधिभूत व्याक्रियमाण अरु जलके फेनकीन्यांई तत्वतैं अन्यभावकरि अनिर्वचनीय नाम रूपकूं हीं सर्व अवस्थाविषै (व्यक्त अव्यक्त अवस्थाविषै) संसारपना है ॥ [८१७] यातैं नामकीहीं निःश्वासरूपता कही । [८१८] ताके

८१४ वेदकी प्रमाणताके सिद्ध भये । फलितकूं कहैहैं ॥

८१५ ननु नाम प्रपंचकी सृष्टिहीं इहां उपदेश करी । रूप प्रपंचकी सृष्टि नहीं औ सो उपदेश करनेकूं योग्य है । काहेतैं अन्यथा सृष्टिकी पूर्तिके असंभवतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ यद्यपि नामके आधीन रूपकी सृष्टि है । यातैं नामसृष्टिके कथनकरि रूपसृष्टि अर्थात् कही । तथापि सर्व संसारकी सृष्टि नहीं कही ॥

८१६ नामरूपकूंहीं संसारताके हुये तिन दोनूंकी सृष्टितैं पूर्व संसार नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां सर्व अवस्थाविषै याका । व्यक्त अरु अव्यक्त अवस्थाविषै । यह अर्थ है ॥

८१७ नाम प्रपंचकीहीं इहां उपपादनकरी सर्गोक्तिकूं उपसंहार करै हैं ॥

८१८ अतः (यातैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

स यथा सर्व्वासामपाᳬ समुद्र एका-

अर्थः—सो जैसें सर्व जलोंका समुद्र ए-

कथनकरिहीं इतर (रूप)की निःश्वासरूप-ताकी सिद्धितें ॥ अथवा[819] सर्व द्वैतके समूहकूं अ-विद्याकी विषयता कही "ब्रह्म ताकूं तिरस्कार करैहै । यह सर्व जो यह आत्मा है" ऐसें । तिस करि वेदकी अप्रमाणता आशंका करियेहै । तिसें[820] आशंकाकी निवृत्ति अर्थ यह कहाः—पुरु-षकी निःश्वासकी न्यांई अप्रयत्नकरि उत्थित होनेतें प्रमाण वेद है । जैसें अन्य ग्रंथ है । ऐ-सा नहीं ॥ १० ॥

टीकाः—किंवा[821] अन्य (और) है । कहिये के-

८१९ निःश्वसित श्रुतिकूं औरप्रकारसैं अवतार देतेहैं ॥

८२० मिथ्यापनेके हुयेबी प्रतिबिंबकीन्यांई प्रमाणताके संभवतैं औ उन्मत्त आदिकके वाक्योंकूं मिथ्याज्ञानके आ-धीन प्रयत्नसैं जन्य होनेकरि अप्रमाण होनेतैं औ वेदकूं ताके अभावतैं विषयके अव्यभिचारतैं अप्रमाणता नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहांः—अन्य ग्रंथ कहिये बुद्ध आदिककरि प्रणीत " स्वर्गकी कामनावाला चैत्य (प्रतिमा वा चैतन्य)कूं वंदना करै " इत्यादिक है । सो जैसैं [पुरुषके प्रयत्नकरि उत्थित होनेतैं अप्रमाणरूप है । तैसैं] ॥

८२१ " सर्व जलनका " इत्यादि समनंतर ग्रंथकूं उ-ठावते हैं ॥

यनमेवꣳ सर्व्वेषाꣳ स्पर्शानां त्वगेकाय-
नमेवꣳ सर्व्वेषाꣳ गन्धानां नासिके एका-
यनमेवꣳ सर्व्वेषांꣳ रसानां जिह्वैकायन-
मेवꣳ सर्व्वेषाꣳ रूपाणाञ्चक्षुरेकायन-

कायन है (एकालयाधार है)। ऐसैं सर्व
स्पर्शोंका त्वक् एकायन है। ऐसैं सर्व गंधों-
का दो नासिका एकायन है। ऐसैं सर्व रसों-
का जिव्हा एकायन है। ऐसैं सर्व रूपोंका

---

[८२२]र्वलैं स्थिति अरु उत्पत्तिकालविषै हीं प्रज्ञान-
घनतैं व्यतिरेककरि अभावतैं जगत्का ब्रह्म-
भाव नहीं है । किंतु प्रलयकालविषैबी जैसैं
[८२३]जलके बुद्बुद अरु फेन आदिकनका जलतैं व्य-
तिरेककरि अभाव है । ऐसैं प्रज्ञानतैं व्यति-
रेककरि तिसके कार्य अरु तिसीविषैहीं ली-
यमान (लीनभये) नाम रूप अरु कर्मका अ-

---

८२२ ताहीकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां:—औ प्रलयकाल-
विषै प्रज्ञानतैं व्यतिरेककरि अभावतैं जगत्का ब्रह्मभाव है।
ऐसैं संबंध है ॥

८२३ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करै हैं ॥

मेवꣳसर्व्वेषाꣳशब्दानाꣳश्रोत्रमेकायन-मेवꣳ सर्व्वेषाꣳ संकल्पानां मन एकाय-नमेवꣳ सर्व्वासां विद्यानाꣳ हृदयमे

चक्षु एकायन है। ऐसैं सर्व शब्दनका श्रो-त्र एकायन है। ऐसैं सर्व संकल्पोंका मन एकायन है। ऐसैं सर्व विद्याओंका हृदय

भाव है ॥ ⁽⁸²⁴⁾तातैं एकहीं प्रज्ञानघन एकरस ब्र-ह्म प्रतीति करनेकूं योग्य है। ऐसैं है। ⁽⁸²⁵⁾यांतैं क-हे हैंः—प्रलयके दिखावने अर्थ दृष्टांत है। सो ऐसैं दृष्टांत हैः—जैसैं (जिस प्रकारकरि) सर्व नदी वापी तडाग आदिकविषै गत (स्थित) जलोंका समुद्र (अब्धि)। एक अयन (एक

---

८२४ तथापि प्रज्ञानहीं एक ऐसैं होवैगा। ब्रह्म नहीं? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहांः—सत्य ज्ञान आदिक वाक्यतैं ब्रह्मकूं तन्मात्र होनेतैं। यह अर्थ है ॥

८२५ उक्त प्रकारका ब्रह्म। जब निश्चय करनेकूं योग्य है। तब "सो जैसैं" इत्यादि वाक्य क्यूं है? यह आशंका क-रिके। ताका शेष होनेकरि प्रलयकूं दिखावनेकूं यह दृष्टां-तका वचन है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां प्रलीन होवैहै इसविषै सो प्रलय कहिये है। एक ऐसा जो प्रलय सो एकप्रलय क-हिये है। ऐसैं विग्रह है ॥

कायनमेवꣳ सर्व्वेषां कर्मणाꣳ हस्तावे-
कायनमेवꣳ सर्व्वेषामानन्दानामुपस्थ
एकायनमेवꣳ सर्व्वेषां विसर्गाणां पायु-

(बुद्धि) एकायन है। ऐसैं सर्व कर्मोंका
दो हस्त एकायन है। ऐसैं सर्व आनंदोंका
उपस्थ एकायन है। ऐसैं सर्व विसर्गनका

गमन) कहिये एक प्रलय। अर्थ यह जो अविभा-[८२६]
गकरि प्राप्ति है॥ जैसैं यह दृष्टांत है। ऐसैं सर्व
मृदु कर्कश कठिन पिच्छिल (गट्टायुक्त दधि आ-
दिक) वायुके आत्मभूत स्पर्शनका त्वक् ए-
कायन है। इहां त्वक् [८२७] इस शब्दकरि त्वक्का

८२६ तडाग आदिकविषै गत (स्थित) जलनका समुद्रविषै लय कहांतैं होवै है। जातैं तिनकी तिसके साथि संगति नहीं है? यह आशंका करिके कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इहांहीं समुद्रशब्दकरि जलका सामान्य कहियेहै औ तातैं व्यतिरेककरि जलविशेषनका अभाव विवक्षित है। तिनकूं ताका साधनमात्र होनेतैं औ यातैं इनका इसविषै अविभागकी प्राप्ति है। ऐसैं समुद्रविषै अविभागकी प्राप्ति है औ पिच्छिल आदिकनका। इहां आदिशब्दकरि अनुक्त स्पर्शविशेष सर्व ग्रहण करिये हैं ॥

८२७ ननु विषयनकूं इंद्रियके कार्यभावके अभावतैं स्प-

रेकायनमेवꣳसर्व्वेषामध्वनांपादावेका-
यनमेवꣳ सर्व्वेषां वेदानां वागेकायनम्
॥ ११ ॥

पायु एकायन है। ऐसैं सर्व मार्गनका दो
पाद एकायन है । ऐसैं सर्व वेदनका वाक्
एकायन है ॥ ११ ॥

विषय स्पर्शका सामान्यमात्र कहियेहै[८२८] । तिस-
विषै प्रविष्ट भये स्पर्शविषै समुद्रके प्रति आ-
पकीन्यांई तिसतैं व्यतिरेककरि अभावभूत
होवैहैं। जातैं तिसीहींके वे संस्थानमात्र होते
भये ॥ तैसैं[८२९] सो स्पर्शसामान्यमात्र बी त्वक्

र्शनका त्वचाविषै विलय कहांतैं होवैगा ? यह आशंका क-
रिके कहैहैं ॥

८२८ स्पर्शविशेषनके स्पर्शसामान्यविषै अंतर्भावकूं प्रपं-
चन करै हैं ॥

८२९ तथापि समस्त जगत्का ब्रह्म व्यतिरेककरि अभावतैं
ब्रह्मभाव है। यह कैसैं प्रतिज्ञा किया ? यह आशंका क-
रिके परंपराकरि ब्रह्मविषै सर्वके प्रविलयकूं दिखावनेकूं क्रमकूं
अनुक्रमसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मनके होते विषय
विषयीभावके देखनेतैं औ न होते न देखनेतैं विषयनका
समूह मनस्पंदित मात्र है। ऐसैं ताके (मनके) विषयमात्र

शब्दका वाच्य है ॥ औ मनके विषयके सामान्य-मात्ररूप संकल्पविषै त्वचाके विषयविषै स्पर्श विशेषनकीन्यांई प्रविष्ट (प्रवेशकूं पाया) है। तिसतैं व्यतिरेककरि अभावभूत होवैहै ॥ [८३०] ऐसैं मनका विषयबी बुद्धिके विषयके सामान्य मात्रविषै प्रविष्ट है । तिसतैं व्यतिरेककरि अभावभूत होवैहै । कहिये विज्ञानमात्रहीं [८३१] होयके प्रज्ञानघनरूप परब्रह्मविषै समुद्रविषै आपकीन्यांई प्रलीन होवैहै ॥ ऐसैं [८३२] परंपरा क्रम

(विषय सामान्य)विषै प्रविष्ट भये ता (विषयनके समूह)का तिसतैं अतिरेककरि असद्भाव है ॥

८३० संकलपकूं अध्यवसायकी परतंत्रताके देखनेतैं औ अध्यवसायरूप बुद्धिविषै ताके विषयके पूर्वकीन्यांई अनुप्रवेशतैं संकलप विकलपात्मक मनकरि स्पंदित द्वैतके संकलपात्मक मनविषै अंतर्भावतैं औ तिस बुद्धिविषयके सामान्यविषै प्रविष्ट भये विद्यमान मनके विषयके सामान्यका तिसतैं व्यतिरेककरि असद्भाव है । ऐसैं कहैहैं ॥

८३१ सर्व जगत् । उक्त न्यायकरि बुद्धिमात्र होयके "सो जो श्रेय आत्माके भीतर है" इस श्रुतिकरि ब्रह्मविषै पर्यवसानकूं पावता है । ऐसैं कहैहैं ॥

८३२ ननु विलीयमान यह जगत् शक्तिविषै है शेष (संस्कार) जिसका ऐसा हुयाहीं विलीन होवै है । काहेतैं तत्वज्ञानतैं विना ताके निःशेष नाशके अनाश्रयणतैं । तिस-

करि शब्दादिकके करणरूप ग्राहककरि सहित प्रज्ञानघनविषै प्रलीन हुये उपाधिके अभावतैं सैंधवघनकीन्यांई प्रज्ञानघन एकरस अनंत अपार निरंतर निरंजन ब्रह्म व्यवस्थित होवैहै । [८३३]तातैं आत्माहीं एक अद्वय है । ऐसैं प्रतीति करनेकूं योग्य है ॥ [८३४]तैसैं पृथिवीके विशेषरूप सर्व गंधोंका दो नासिका (घ्राणके विषयका सामान्य) है ॥ तैसैं जलके विशेरूप सर्व रसनका जिव्हा इंद्रियके विषयनका सामान्य है ॥ तैसैं तेजके विशेषरूपनका चक्षुके विषयका सा-

---

प्रकार हुये ब्रह्मके एकरसरूपकी प्रतिपत्ति कहांतैं होवैगी ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—शक्तिशेषरूप लयके हुयेबी ता (शक्ति)कूं दुर्निरूप होनेतैं वस्तुके एकरसकी बुद्धि अविरुद्ध है ॥

८३३ एकायनकी प्रक्रियातैं सर्वकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां ब्राह्मणके विषयका सामान्य इत्यादिकविषै एकायन है । ऐसैं सर्वत्र संबंध है ॥

८३४ फेर इहां प्रतिपर्याय जैसैं होवै तैसैं ब्रह्मविषै पर्यवसान कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां:—जैसैं सर्व पर्यायोंविषै ब्रह्ममैं पर्यवसान है । तैसैं कहिये है । यह अर्थ है औ पूर्वकी न्यांई याका त्वचाके विषयके सामान्यकी न्यांई यह अर्थ है औ संकल्पविषै लय है । यह शेष है औ विज्ञानमात्रविषै इस ठिकानेबी तैसैंहीं (लय ऐसा शेष) है ॥

मान्य है । तैसें श्रोत्रादिकके विषयनका सामान्य पूर्वकी न्यांईं (त्वचाके विषयके सामान्यकी न्यांईं) है ॥ तैसें श्रोत्र आदिकके विषयके सामान्योंका मनके विषयके सामान्यरूप संकल्पविषै लय होवैहै औ मनके विषयके सामान्यकाबी बुद्धिके विषयके सामान्यरूप विज्ञानमात्रविषै लय होवैहै ॥ [ऐसें सर्व जगत्] विज्ञानमात्र होयके प्रज्ञानघनरूप परब्रह्मकेविषै प्रलीन होवैहै ॥[८३५] तैसें कर्म इंद्रियनके विषय जे वदन आदान गमन विसर्ग विषय अरु आंनदविशेष । वे तिन क्रियाओंके सामान्योंविषैहीं प्रविष्ट हुये समुद्रविषै अब्धिविशेषनकीन्यांईं विभज्य (विभाग करनेके योग्य) नहीं होवैहैं ।[८३६] औ वे सामान्य प्राणमात्र होवैहैं औ प्राण । प्रज्ञान मात्र होवैहै ॥ इस रीति-

---

८३५ " ऐसें सर्व कर्मोका " इत्यादि वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

८३६ क्रियासामान्योंकी सूत्रात्माविषै संस्थानकी भेदताकूं अंगीकार करिके कहैहैं ॥ इहां चेतनकी उपाधिभूत क्रियाशक्ति अरु ज्ञानशक्तिके चेतनसैं भेदाभेदकूं अभिप्रायका विषय करिके " औ प्राण " इत्यादिकरि भावना करनेकूं योग्य है ॥

सैं जोई[८३७] प्राण है सो प्रज्ञा है। जोई प्रज्ञा है सो प्राण है । ऐसैं कौषीतकि शाखावाले ब्राह्मण पढते हैं ॥ ॥ ननु[८३८] सर्वत्र विषयकाहीं प्रलय कहा । करणका तो नहीं । तहां कौंन अभिप्राय है ? यह[८३९] तेरा कथन। बाढ (श्रुतिनैं करणका लय नहीं कहा यह सत्य) हैः—किंतु[८४०] श्रुति। करणकूं विषयके समानजातिवाला मानतीहै । परंतु अन्यजातिवाला नहीं । विषयकाहीं[८४१] आपका ग्राहक होनेकरि अन्य संस्थान करण नाम है ॥ जैसें रूप विशेषकाहीं संस्थान प्रदीप । सर्व रूपोंके प्रकाशनेविषै करण है । ऐसैं सर्व विषय विशेषनके हीं स्वस्वरूप विशेषनके प्रकाश होनेकरि अन्य संस्थान करण हैं[८४२] । प्रदीपकी

---

८३७ तहां तिनके अन्योन्य अभेदविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

८३८ श्रुतिके मुखतैं करणका लय नहीं भासता है औ आप व्याख्यान करियेहै । तहां कौंन हेतु है ? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

८३९ श्रुतिकरि करणके लयकी अनुक्तताकूं सिद्धांती। अंगीकार करै हैं ॥

८४० पूछे हुये अभिप्रायकूं खोलते हैं ॥

८४१ करणकी विषयसैं सजातीयताकूं वर्णन करै हैं ॥

८४२ यामैं क्या प्रमाण है ? यह आशंकाकरिके । अनु-

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत न हास्योद्ग्रह-

अर्थः—सो जैसें सैंधवका खिल्य (खडा) उदकविषै फेंक्या हुया उदकके तांईंहीं पीछे विलय होवैहै । या (खिल्य)के उद्ग्रहण (उद्धार करिके पूर्ववत् ग्रहण) न्यांई ॥ [८४३]तातें करणोंके पृथक् प्रलयविषै यत्न करने योग्य नहीं है । विषयके सामान्यस्वरूप होनेतें विषयनके प्रलयकरिहीं करणोंका प्रलय सिद्ध होवैहै इति ॥ ११ ॥

टीकाः—[८४४]तहां (पूर्व ग्रंथविषै) "यह सर्व जो यह आत्मा है" ऐसैं प्रतिज्ञा किया। तिसविषै

मानकूं सूचन करै हैं ॥ इहांः—चक्षु जो है सो तैजस (तेजका कार्य) है । रूपादिकनके मध्यरूपकाहीं प्रकाशक होनेतैं । संप्रतिपन्नकी न्यांई ॥ इत्यादिक अनुमान । शास्त्रप्रकाशिकाविषै जाननेकूं योग्य हैं ॥

८४३ करणोंकूं विषयकी सजातीयताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां पृथक् विषयके प्रलयतैं यह शेष है औ एकायनप्रक्रियाकी समाप्तिविषै इति शब्द है ॥

८४४ "सो जैसैं सैंधवखिल्य" इत्यादि वाक्यके संबंधकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करै हैं ॥ इहां पूर्वसंदर्भ (गत ग्रंथरचना) "तहां" ऐसैं कहिये है ॥

णायेव स्यात् । यतो यतस्त्वाददीत ल-
वणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तम-

अर्थ नहीं होवैहै । जिस जिस देशतैं सो (उ-
दक) ग्रहण करिके आश्वादन करिये । ल-
वणहीं होवैहै ॥ ऐसैंहीं अरे (मैत्रेयि) !
यह (परमात्मा नामक) महत्‌भूत अनंत

आत्माकी सामान्यता । आत्मातैं जन्यता औ
आत्माविषे प्रलयवान्तारूप हेतु कहा । [८४५]तातैं
उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय कालविषै प्रज्ञानतैं
व्यतिरेककरि अभावतैं प्रज्ञान ब्रह्महीं है । आ-
त्माहीं यह सर्व है । ऐसैं जो प्रतिज्ञा किया ।
सो तर्कतैं साधित भया ॥ ॥ [८४६]स्वाभाविक यह

---

८४५ प्रतिज्ञात अर्थविषै पूर्वोक्त हेतुकूं अनुवाद करिके। साध्यकी सिद्धिरूप फलकूं दिखावै हैं ॥ इहां उक्त हेतुतैं उक्त प्रकारका ब्रह्महीं सर्व यह जगत् है ऐसैं । जो प्रतिज्ञा किया । यह सर्व जो यह आत्मा है । सो पूर्व उक्त दृष्टांतके प्रबंधरूप तर्कके वशतैं साधित भया । ऐसैं योजना है ॥

८४६ उत्तर वाक्यके विषयके परिशेष अर्थ उक्त प्रलय-विषै पौराणिकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥ इहां कार्यनका प्रकृति-विषै जो आश्रितपना है । सो स्वाभाविकपना है ॥

पारं विज्ञानघन एव। एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवाऽनु विनश्यति न

अपार विज्ञानघनहीं है ॥ इन भूतनतैं सम्यक् उत्थान करिके। तिन भूतनके तांईहीं पीछे विनाशकूं पावताहै। मरणकूं

प्रलय होवैहै। ऐसैं पौराणिक कहते हैं ॥ औ[८४७] जो ब्रह्मवेत्ता पुरुषनकूं ब्रह्मविद्यारूप निमित्तवाला बुद्धिपूर्वक प्रलय होवैहै। यह आत्यंतिक प्रलय है। ऐसैं कहते हैं। जो (आत्यंतिक प्रलय)अविद्याके[८४८] निरोधद्वारा होवैहै। तिसके अर्थ यह विशेष आरंभ है ॥ तिस (आत्यंतिक प्रलय) विषै दृष्टांत ग्रहण करियेहैः—सो जैसैं सैंधवखिल्य (सिंधुलवणका खडा) [सिंधुका विकार सैंधव] है। इहां सिंधुशब्दकरि उदक कहियेहै। स्यंदनतैं (चलनेतैं) उदक सिंधु कहियेहै। तिसका विकार वा तिसविषै

---

८४७ प्रलयांतर (आत्यंतिकप्रलय)विषैबी तिनकी संमतिकूं कहैहैं ॥

८४८ द्वितीय प्रलयकूं आश्रय करिके पीछले ग्रंथकूं प्रगट करै हैं ॥ इहां तहां ऐसी आत्यंतिक प्रलयकी उक्ति है ॥

प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥

पायके संज्ञा (विशेषज्ञान) नहीं है। अरे ! ऐसें कहताहूं। इस रीतिसें याज्ञवल्क्य कहते भये ॥ १२ ॥

होनेवाला जो लवण सो सैंधव है। सैंधव ऐसा जो खिल्य (खिल) कहिये खडा सो सैंधव खिल्य कहिये है। इहां खिलहीं खिल्य कहिये है। स्वार्थविषे यत् प्रत्यय है । सो [लवणका खडा]। उदक (अपने योनिरूप सिंधु)विषै फेक्या हुया विलीयमान उदककेतांईहीं पीछे विलयकूं पावताहै ॥ [८४९] जो भौम अरु तैजसके संपर्कतैं खिल्य (खडे)कूं कठिनताकी प्राप्ति है। सो स्वयोनि (उदक)के संपर्कतैं दूरी होवैहै। सो उदकका विलय होना है। ताके पीछे सैंधवखिल्य विलीन होवैहै। ऐसैं कहियेहै ॥

---

८४९ उदक विलीयमान होवैहै। यह अयुक्त है। काहेतैं कठिनताके विलय हुयेबी ताके लयके अदर्शनतैं? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

सो यह कहै हैः—उदकके तांईंहीं पीछे विलीन होवैहै ऐसैं ॥ ईंसं खिल्यके उद्धार करिके पूर्वकीन्यांईं ग्रहण करनेकूं कोईबी (सुष्ठुप्रकारसैं निपुण पुरुषबी) नहीं समर्थ होवैहै ॥ काहेतैं? जिस जिस देशतैं सो उदक ग्रहण करिके प्राशन करिये [तहां तहां] लवणके आस्वादवालाहीं सो उदक होवैहै । परंतु खिल्यभाव नहीं होवैहै । जैसैं यह दृष्टांत है ॥ ऐसैंहीं तो अरे मैत्रेयि! यह परमात्मा नामक महद्भूत है । जिसैं महत्भूततैं तूं (मैत्रेयी) अविद्याकरि परिच्छिन्न हुयी कार्य अरु करणरूप उपाधिके संबंधतैं खिल्यभावकूं प्राप्त भयी हैं । औ मर्त्य (मरने योग्य मनुष्य) अरु जन्म

---

८५० न ह । इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां अन्वयके दिखावने अर्थ नहीं ऐसैं फेर कहा है औ महत्भूत एक अद्वैत है । ऐसैं उत्तरग्रंथविषै संबंध है औ इस अर्थकी सर्व उपनिषदनविषै प्रसिद्धताके दिखावने अर्थ वै शब्द है ॥

८५१ यह महत्भूत है । इस ठिकाने इदं शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥ सो यह परमात्मा नामक महत्भूत है । ऐसैं पूर्व ग्रंथके साथि संबंध है ॥

८५२ खिल्यभावकी प्राप्तिके कार्यकूं कथन करैहैं ॥

मरण क्षुधा तृषा आदिक संसार धर्मवाली हैं। औ[853] नामरूप कार्यस्वरूप अमुक अन्वय (वंश) वाली मैं हूं ऐसा ॥ सो[854] खिल्यभाव तेरेकूं कार्य-करणरूप उपाधिके संपर्ककी भ्रांतिसें जनित है औ महत्भूत स्वयोनिरूप महासमुद्र स्था-नीय अजर अमर अभय शुद्ध सैंधवघनकी न्यांई एकरस[855] प्रज्ञानघन[856] अनंत[857] अपार निरंतर अविद्या-जनित भ्रांतिके भेदसें वर्जित परमात्माविषै प्रवेशित (प्रवेशकूं पावै) है ॥ तिसें[859] स्वयोनि-

---

८५३ कौन यह खिल्यभाव अभिप्रेत है? तहां कहैहैं ॥ इहां कार्य करणके संघातविषै तादात्म्य अभिमानद्वारा जो जातिका अभिमान है। सो खिल्यभाव है औ इति शब्दकरि अभिमान लखिये है ॥

८५४ उक्त प्रकारके खिल्यभावके होते भूतका महत्पना कहांतें होवैगा? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां खिल्य-भाव स्वशब्दका अर्थ है औ परमात्माकी परिशुद्धता अर्थ अजरादि विशेषण हैं ॥

८५५ किसरूपकरि एकरसता है? सो कहैहैं ॥

८५६ ताके अपरिच्छिन्नभावकूं कहैहैं ॥

८५७ ताके सापेक्षभावकूं निवारण करै हैं ॥

८५८ प्रतिभासमान भेदके होते उक्तप्रकारका तत्व कैसें होवैगा? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

८५९ उक्तप्रकारके तत्वविषै खिल्यभावका प्रवेश होहु। तथापि क्या होवैगा? यह आशंका भयी। यातैं कहैहैं ॥

करि ग्रस्त खिल्यभावके प्रविष्ट भये। अविद्याकृत भेदभावके प्रणाशित हुये। यह एकअद्वैत महत्भूत होवैहै ॥ [८६०] सर्वसैं अत्यंत बडा होनेतैं औ आकाश आदिकका कारण होनेतैं सो महत् है औ भूत कहिये [८६१] तीन कालविषै बी स्वरूपके अव्यभिचारतैं सर्वदाहीं पर निष्पन्न है । ऐसैं त्रैकालिक निष्ठाप्रत्यय है । अथवा भूतशब्द परमार्थका वाची है । अर्थ यह जो महत् औ पारमार्थिक है ॥ [८६२] यद्यपि स्वप्नमा करिके कियाहीं महत् आदिक पर्वतोपम लौकिक महत् होवैहै । परंतु सो परमार्थ वस्तु नहीं है। यातैं विशेषण देते हैंः–यह (ब्रह्म) महत् है औ भूत है ऐसैं ॥ औ याका अंत विद्यमान नहीं है।

---

८६० महत्पनेकूं साधते हैं ॥

८६१ भूतपनेकूं उपपादन करै हैं ॥

८६२ ननु महत् ऐसैं कहे हुये पारमार्थिक है । यह विशेषण किस अर्थ है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां जाग्रत्कालका परिदृश्यमानहीं महदादिरूप महत् यद्यपि होवैहै । तथापि स्वप्न अरु मायाआदिकके तुल्य होनेतैं सो परमार्थ वस्तु नहीं है । जातैं दृश्य जड जो है सो इंद्रजालादिकतैं विशेष नहीं होवैहै । यातैं लौकिक महत्तैं ब्रह्मकूं भिन्नकरनेकूं "भूत" ऐसा विशेषण है । यह अर्थ है ॥ औ आपेक्षिक होवैगा । अनंतपना । यह शेष है ॥

यातैं अनंत है ॥ कदाचित् आपेक्षिक अनंतता होवैगी । यातैं विशेषण देते हैंः—अपार है ऐसैं ॥ औ विज्ञप्ति कहिये विज्ञान औ विज्ञान ऐसा जो घन सो विज्ञानघन है ॥ इहां घन शब्द अन्य जातिके प्रतिषेध अर्थ है ॥ जैसैं सुवर्णघन है अरु अयोघन है। इति ॥ इहां एव शब्द अवधारण (निश्चय)के अर्थ है । [८६३] अर्थ यह जोः—अंतरालविषै अन्य जातिअंतर विद्यमान नहीं है ॥ ॥ [८६४] जब यह एक अद्वैत परमार्थतें स्वच्छ अरु [८६५] संसार दुःखकरि असंपृक्त (असंग)है । तब आत्माकूं मैं [८६६] जन्म्या मर्या सुखी दुःखी हूं । यह मेरा है। इत्यादि लक्षणवाला अरु अनेक संसारके धर्मोंकरि उपद्रुत (दू-

---

८६३ अवधारणरूप अर्थकूंहीं स्पष्ट करै हैं ॥

८६४ " इन भूतनतैं सम्यक् उत्थानकरिके " इत्यादिरूप समनंतर वाक्यकरि व्यावर्त्य (निवार्य) आशंकाकूं कहैहै ॥

८६५ वस्तुतैं शुद्धताके हुये क्या सिद्ध होवैहै ? सो कहैहै ॥

८६६ खिल्यभावकूंहीं प्रतिवादी । विशेषण देताहै ॥ इहां अनेक संसाररूप धर्म जो क्षुधा तृषाआदिक है । तिसकरि उपद्रुत कहिये दूषित । यह अर्थ है ॥

षित) यह[८६७] खिल्य[illegible] किस निमित्तवाला है? यह शंका भयी । तहां कहिये है[८६८]:—इन भूतनतें कहिये जे[८६९] ये स्वच्छ[८७०] सलिलोपम प[illegible]मात्माके कार्य करणरूप विषयाकारकरि परिणत नाम-[८७१]रूपात्मक सलिलके[८७२] फेन बुद्बुद्की उपमावाले हैं औ विषयपर्यंत जिनका[८७३] प्रज्ञानघन ब्रह्म-विषै परमार्थ विवेकज्ञानकरि नदी[८७४] समुद्रकी

---

८६७ तब तिसविषै निमित्तके अभावतैं ताका खिल्यपना नहीं होवैगा । ऐसैं मानिके प्रतिवादी । कहैहै ॥

८६८ खिल्यभावविषै निमित्तकूं दिखावते हुये सिद्धांती । उत्तरकूं कहैहैं ॥

८६९ एतत् (इन) शब्दके अर्थकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां स्वच्छ परमात्माके कार्य करण अरु विषय आकारकरि परिणामकूं प्राप्तभये । यह अर्थ है ॥

८७० स्वच्छताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

८७१ तिनकूं व्यवहारकी सिद्धि अर्थ विशेषण देते हैं ॥

८७२ तिनके अतिदुर्बलपनैकूं सूचन करै हैं ॥

८७३ तिनकी प्रत्यक्षताके हुयेबी प्रकृतपनैके अभाव हुये एतत्शब्दकरि तिनका परामर्श (ग्रहण) कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां उक्त [illegible]कायनप्रक्रियाविषै । यह शेष है ॥

८७४ प्रज्ञानघन ब्रह्ममैं भूतनके प्रलयविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

न्यांई प्रविलापन कहा। इन हेतुभूत[875] सत्य[876] श-ब्दके वाच्य भूतनतैं सम्यक् उत्थान करिके कहिये सैंधवखिल्यकीन्यांई[877] वा[878] जैसें जलोंतैं सूर्य चंद्र आदिकका प्रतिबिंब होवैहै। वा जैसें स्वच्छ स्फटिकका अलक्तकादि (लाक्षादि) उ-पाधिनतैं रक्त आदिक भाव होवैहै॥ ऐसें कार्य-करणभूत भूतरूप उपाधिनतैं विशेष आत्माके खिल्यभावकरि सम्यक् उत्थान करिके जिनं[879] भूतनतैं उत्थित होवैहै ॥ जब वे कार्यकरण रूप विषयाकारकरि परिणत। आत्माके विशेष स्वरूपके खिल्यके हेतुभूत ये भूत। शास्त्र[880] अरु

८७५ हेतुविषै पंचमी है। ऐसें दिखावै हैं॥

८७६ पूर्वब्राह्मणविषै षष्ठी विभक्ति है अंतविषै जिसके ऐसे सत्यशब्दके वाच्य होनेकरि तिन (भूतन)के प्रकृत-पनैकूं कहैहैं॥

८७७ जैसें सैंधवरूप हुया खिल्य (खडा) सिंधुतें तेजके संबंधकूं अपेक्षाकरिके उद्भव होवैहै। तैसें भूतनतैं खिल्य-भाव होवैहै। ऐसें कहैहैं॥

८७८ समुत्थानकूंहीं विवरण करै हैं॥

८७९ "तिनहींके पीछे" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करै हैं॥ इहां खिल्यके हेतुभूत कहिये तिसविषै हेतुताके हुयेबी वे भूत। यह अर्थ है॥

८८० ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिविषै हेतुकूं कहैहैं॥

आचार्यके उपदेशकरि जनित ब्रह्मविद्यासैं नदी [८८१] समुद्रकी न्यांई प्रविलापित हुये विनाशकूं पावै हैं । तब [८८२] सलिलविषै फेन बुद्‌बुद आदिककी न्यांई तिन (भूतन)के विनाशकूं पावते हुये पीछे सो यह विशेषात्माका खिल्यभाव विनाशकूं पावताहै ॥ [८८३] जैसैं उदक अरु अलक्तक आदिक हेतुके दूरी किये हुये सूर्य चंद्र अरु स्फटिक आदिकका प्रतिबिंब विनाशकूं पावताहै । चंद्र आदिकका स्वरूपहीं परमार्थतें व्यवस्थित होवैहै । ताकीन्यांई प्रज्ञानघन अनंत अपार स्वच्छ वस्तु व्यवस्थित होवैहै । तिस (कैवल्य)-विषै मरिके कार्य करणके संघातनतैं विमुक्त पुरुषकी विशेषसंज्ञा नही है ॥ ऐसें अरे मै-

---

८८१ ता (ब्रह्मविद्या)के फलकूं दृष्टांतसहित कहैहैं ॥

८८२ जैसैं जलविषै फेनआदिक विनाशकूं पावतेहैं । तैसैं तिन भूतनके विनाशकूं प्राप्त हुये पीछे खिल्यभाव नाशकूं पावता है । ऐसैं कहै हैं ॥

८८३ फेर भूतनके औ खिल्यभावके विनाश हुये क्या अवशेष रहैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां "तहां" ऐसैं कैवल्यकी उक्ति है ॥

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगव न-

अर्थः—सो मैत्रेयी। प्रसिद्ध कहतीभईः—

त्रेयि ! मैं कहताहूं। मैं[८८४] यह हूं। अमुकका पुत्र हूं। मेरा यह क्षेत्र है। धन है। मैं सुखी हूं दुःखी हूं। इत्यादिरूप विशेष संज्ञा नहीं है। अविद्याकृत होनेतें औ ता अविद्याकूं ब्रह्मविद्याकरि निःशेषतें नाशित होनेतें चैतन्यस्वभावविषै स्थित ब्रह्मवेत्ताकूं विशेषसंज्ञाका संभव कहांतें होवैगा ॥ [८८५]शरीरविषै अवस्थित (सुषुप्त)कूं बी विशेषसंज्ञा नहीं संभवैहै। फेर कार्यकरणतें विमुक्त अरु सर्व ओरतें मुक्त भये ब्रह्मवेत्ताकूं विशेषसंज्ञा नहीं है। यामें क्या कहना है !! इस रीतिसें मैत्रेयी भार्याके अर्थ। याज्ञवल्क्य मुनि। परमार्थ दर्शनकूं प्रसिद्ध कहते भये ॥ १२ ॥

टीकाः—[८८६]ऐसें प्रतिबोधित भयी सो मैत्रेयी।

---

८८४ उक्तहीं वाक्यार्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥

८८५ अशरीररूप ब्रह्मवेत्ताके विशेषसंज्ञाके अभावकूं कैमुतिकन्यायकरि कथन करै हैं ॥ इहां शरीरावस्थित पदका सुषुप्तकूं। यह अर्थ है औ सर्वतें मुक्तकूं। यह शेष है ॥

८८६ उक्त परमार्थदर्शनकूंहीं स्पष्ट करनेकूं मैत्रेयी। प्रश्न

मूमुहन्न प्रेत्यसंज्ञाऽस्तीति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्यो न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥

इहांहीं (इस ब्रह्मविषैहीं) मुजकूं भगवान् (पूजावान् आप)। "मरणकूं पायके संज्ञा नहीं है" ऐसैं मोहकूं करते भये॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य कहते भयेः—अरे ! मैं मोहकूं नहीं कहताहूं। अरे! यह विज्ञानके अर्थ निश्चय करि परिपूर्ण है ॥ ॥ १३ ॥

प्रसिद्ध कहती भयीः—इहांहीं (इसीहीं एक ब्रह्मरूप वस्तुविषै) विरुद्धधर्मवान्पनैंकूं कहनेवाले भगवान (तुम)नैं मेरेकूं मोह किया। सो कहैहैः—इहांहीं मुजकूं भगवान् (पूजावान् आप) मोहकूं करते भये ॥ ॥ ननु तिस (याज्ञवल्क्य)नैं विरुद्धधर्मवान्पना कैसैं कहा ? तहां कहियेहैः—पूर्व विज्ञानघनहीं है । ऐसैं

करै है ॥ इहां तिसनैं। याका याज्ञवल्क्यनैं। यह अर्थ है। औ ऐसैं कहनेवाले तिसनैं विरुद्धधर्मवान्पना कहा। यह शेष है ॥

प्रतिज्ञा करिके । फेर मरिके संज्ञा नहीं है । ऐ-[८८७]
सैं ॥ विज्ञानघननहीं कैसैं है वा मरिके संज्ञा नहीं है यह कैसैं है । [८८८]जातैं उष्ण औ शीत एकहीं अग्नि नहीं होवैहै । [८८९]यातैं इहां (उक्तविषयविषै) मैं मूढ हूं ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य प्रसिद्ध कहते भयेः—अरे[८९०] मैत्रेयि! मैं मोहकूं नहीं कहता हूं । अर्थ यह जो मैं मोह करनेवाले वाक्यकूं नहीं कहता हूं ॥ ॥ [८९१]ननु विज्ञानघन अरु संज्ञाके अभावरूप विरुद्ध धर्मवान्पनेकूं तुम कैसैं कहते भये? [८९२]मैनें यह एक धर्मी-

८८७ ऐसैं कहनेवाले याज्ञवाल्क्यकीबी काहेतैं विरुद्ध धर्मकी उक्ति है? तहां मैत्रेयी कहैहै ॥

८८८ एकहींकी विज्ञानघनताके हुये औ संज्ञारहितताके हुये काहेतैं विरुद्ध बुद्धि है? यह आशंका करिके। मैत्रेयी । कहैहै ॥

८८९ विरुद्धबुद्धिके फलकूं मैत्रेयी कहैहै ॥ इधरः—इहां यह उक्तविषयका ग्रहण है ॥

८९० नवै (नहीं) इस प्रतीककूं लेके अब याज्ञवल्क्य व्याख्यान करै हैं ॥

८९१ मोहन वाक्यकूं आप कहतेहीं हो? इस प्रकार मैत्रेयी शंका करैहै ॥

८९२ याज्ञवल्क्य समाधान करै हैं ॥

विषै नहीं कहा । [८९३]तैनैंहीं यह विरुद्धधर्मवान्ता-करि एक वस्तु । भ्रांतिसैं ग्रहण किया है । मैंनैं तो कहा नहीं ॥ [८९४]मैंनैं तो यह कहा हैः—जो अ-विद्याकरि आरोपित कार्यकरणके संबंधी आ-त्माका खिल्यभाव है । ताके विद्याकरि नाशित हुये तिस निमित्तवाली शरीर आदिक संबंधी विषै अन्यभावके ज्ञानरूप जो विशेषसंज्ञा है । सो कार्यकरणके संघातरूप उपाधिके प्रविला-पित हुये हेतुके अभावतैं नष्ट होवैहै । उदक आदिक आधारके नाशतैं चंद्रादिकके प्रतिबिंब औ तिस निमित्तवाले प्रकाश आदिककी न्यांई ॥ [८९५]फेर परमार्थरूप चंद्र अरु आदित्यके स्वरूपके अनाशकीन्यांई विज्ञानघनरूप असंसारी ब्रह्म-स्वरूपका नाश नहीं होवैहै । [८९६]सो (ब्रह्म) वि-

---

८९३ तब मुजकूं एकहीं वस्तुविषै विरुद्धधर्मवान्ताकी वुद्धि कैसैं भयी? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८९४ तब तुह्मनैं क्या कहा? यह शंका भई । तहां कहैहैं ॥

८९५ ननु खिल्यभावके विनाश हुये प्रत्यगात्माका रूपहीं विनाशकूं पावैगा? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

८९६ ब्रह्मस्वरूपके अनाश हुये विज्ञानघनकूं क्या आया । इस आशय करिके । कहैहैं ॥

ज्ञानघन है । ऐसैं कहा।[897] परमार्थतैं सर्व जगत्का आत्मा सो भूतनके[898] नाशतैं विनाशी नहीं होवैहै। विनाश तो अविद्याकरि जो खिल्यभाव है सो होवैहै। "[899] वाचारंभण विकार नामधेय है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ [900] यह तो पारमार्थिक है । "अ-[901] विनाशीहीं अरे ! यह आत्मा है" [902] यातैं अरे ! यह महत्भूत अनंत अपार जैसा[903] व्याख्यान किया तैसा विज्ञानके अर्थ (जाननेकूं) अलं (परिपूर्ण) है काहेतैं "[904] विज्ञाताकी विज्ञातिका विपरिलोप नहीं है अविनाशी होनेतैं" ऐसैं जातैं आगे कहियेगा ॥ १३ ॥

---

८९७ विज्ञानघनके उक्तपनैकूं दिखावै हैं ॥

८९८ तब "तिनकेहीं पीछे विनाशकूं पावता है" यह कैसैं कहा ? तहां कहैहैं ॥

८९९ खिल्यभावकी अविद्याकृतताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

९०० ननु खिल्यभावकी न्यांई परमात्माकाबी विनाशीपना होवैगा ? इस प्रकार जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

९०१ पारमार्थिकताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

९०२ अविनाशीभावके फलकूं कहैहैं ॥ इहां जाननेकूं परिपूर्ण है । ऐसैं संबंध है ॥

९०३ इदं (यह) इत्यादि पदनके गतार्थ होनेतैं व्याख्यान करनेकी अयोग्यताकूं सूचन करै हैं ॥

९०४ विज्ञानघनहीं है । इस अर्थविषै वाक्यशेषकूं प्रमाण करै हैं ॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति। तदितर इ-
तरं जिघ्रति । तदितर इतरं पश्यति ।

अर्थः—जहां (खिल्यभावके होते) हीं
द्वैतकीन्यांई होवैहै । तहां इतर इतरकूं सूं-
घताहै । तहां इतर इतरकूं देखताहै । त-

टीकाः—ननु[९०५] तब मरिके संज्ञा नहीं है । यह
कैसें कहिये है ? तहां सुनोः[९०६]—जहां कहिये जि-
स अविद्या कल्पित कार्यकरणके संघातरूप
उपाधिकरि जनित विशेष आत्मारूप खिल्य-
भावके होते जातें परमार्थतें अद्वैतरूप ब्रह्मविषै
द्वैतकी न्यांई[९०७] (आत्मातें भिन्नकी न्यांई) वस्तु

९०५ ननु आत्माका विज्ञानघनपना जब प्रामाणिक है ।
तब संज्ञा (विज्ञान)के निषेधका वाक्य अयुक्त होवैगा ?
इसप्रकार प्रतिवादी शंका करै है ॥

९०६ अविद्याकृत विशेषविज्ञानके अभावके अभिप्रायकरि
निषेधवाक्यका संभव है। ऐसें सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं॥ इहांः—
जिस उक्तलक्षणवाले खिल्यभावके होते जातें उक्त प्रकारके
ब्रह्मविषै द्वैतकीन्यांई द्वैत लखीयेहै । तातें तिस (खिल्यभाव)
के होते इतर इतरकूं सूंघताहै। ऐसें संबंध है॥

९०७ द्वैतकी न्यांई ऐसें उक्त अर्थकूं अनुवाद करिके व्या-
ख्यान करै हैं ॥

तदितर इतरं शृणोति। तदितर इतरमभि-
वदति । तदितर इतरं मनुते । तदितर इ-
तरं विजानाति ॥ यत्र वा अस्य सर्व्वमा-
त्मैवाभूत्तत्केन कं जीघ्रेत्तत्केन कं पश्ये-

हां इतर इतरकूं सुनताहै । तहां इतर इ-
तरकूं कहताहै । तहां इतर इतरकूं मनन
करताहै । तहां इतर इतरकूं जानताहै ॥
जहां (विद्याअवस्था विषै) या (ब्रह्म-
वेत्ता)कूं सर्व आत्माहीं होता भया । तहां

अंतर उपलक्षित होवैहै ॥ ॥ ननु[१०८] द्वैतकरि
द्वैतकूं उपमीयमान (उपमाकूं प्राप्त) होनेतैं पा-
रमार्थिकपना है ? यह शंका भयी । तहां सि-
द्धांती कहे हैंः—सो बनै नहीं । काहेतैं "वाचा[१०९]-

१०८ इव शब्दके उपमारूप अर्थकूं अंगीकार करिके । प्र-
तिवादी शंका करै है ॥ इहां यह अर्थ हैः—द्वैतकरि द्वैतकूं
उपमीयमान होनेतैं दृष्टांतरूप औ दार्ष्टांतरूप तिस (द्वैत)का
वस्तुपना होवैगा । काहेतैं उपमान अरु उपमेयरूप चंद्र अरु
मुखके वस्तुपनेकी प्रतीतितैं ॥

१०९ द्वैतप्रपंचके मिथ्यात्वकी कहनेवाली श्रुतिके वि-
रोधतैं । ताकी सत्यता नहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती । परि-

त्तत्केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदे-
त्तत्केन कं मन्वीत । तत् केन कं विजा-
नीयात् ॥ येनेदꣳ सर्व्वं विजानाति तं

किसकरि किसकूं सूंघे । तहां किसकरि
किसकूं देखै । तहां किसकरि किसकूं सुनै ।
तहां किसकरि किसकूं कहै । तहां किसक-
रि किसकूं मनन करै । तहां किसकरि कि-

रंभण विकार नामधेय है" इस अन्य श्रुतितें
औ "एकहीं अद्वितीय है । आत्माहीं यह सर्व है"
ऐसें बी कहा है ॥ जातें द्वैतकीन्यांई होवैहै ।
तातेंहीं तहां तिस (खिल्यभाव)के होते प-
रमात्मातें इतर यह खिल्यभूत आत्मा [अप-
रमार्थतें हुया निरंतर सूंघताहै] । परमार्थरूप
९१० चंद्र आदिकतें इतर उदकगत चंद्र आदिकके

हार करै हैं ॥ इहांः—तहां याका तिस खिल्यभावके होते । यह अर्थ है औ स्वप्न आदिक द्वैतकी न्यांई जागरितविषैबी सो द्वैत जातैं च्यारीओरतें लखिये है । तातैं परमात्मातैं इतर यह खिल्यभूत आत्मा अपरमार्थतैं हुया निरंतर सूंघता है । ऐसैं योजना है ॥

९१० परमात्मातैं इतर अपरमार्थरूप खिल्यभूत आत्मा-विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन वि-
जानीयादिति ॥ १४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य
चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

सकूं जानै ॥ जिसकरि इस सर्वकूं जानता
है ताकूं किसकरि जानै। अरे! विज्ञाताकूं
किसकरि जानै। इति ॥ १४ ॥

इति श्रीमद् बृहदारण्यकोपनिषद् मूलमात्र-भाषादी-
पिकायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

प्रतिबिंबकीन्यांई ॥ द्रष्टा[९११] इतर चक्षु आदिक
करणकरि इतर जो देखने योग्य रूपादिक है।
ताकूं देखताहै ॥ इहां "इतर[९१२] इतरकूं"। ऐसैं कार-
कके दिखावने अर्थ कहा है औ "देखता है" ऐसैं

---

९११ इतरशब्दकूं अनुवाद करिके। ताके अर्थकूं क-
हेहैं ॥

९१२ अविद्यादशाविषै सर्वबी कारक हैं। काहेतैं कर्त्ता
औ कर्मके निर्देशकूं सर्व कारकोंका उपलक्षण होनेतैं। ऐसैं
कहेहैं ॥

क्रिया अरु फलका कथन है ॥ जैसें[११३] छेदन करैहै यह क्रियापद है। कहिये जैसें उद्यम करिके उद्यम करिके निपातन [रूप क्रिया] औ छेद्य (छेदनरूप क्रियाके विषयकाष्ठ)का द्वैधीभाव (काष्ठके दो टुकडे करनेरूप क्रियाका फल) उभय (दोनूं) "छेदन करैहै" इस एकहीं [क्रियापदरूप] शब्दकरि कहियेहै । फलोंकूं[११४] क्रियारूप अवसानवाले होनेतें औ क्रियातें व्यतिरेककरि ताके फलकी अप्रतीतितें ॥ ॥ औ इतर[११५] घ्राता । इतर घ्राणकरि इतर घ्रातव्य (गंध)कूं सूंघताहै ॥ तैसें[११६] सर्वकूं पूर्वकी

---

११३ क्रिया अरु फलकी एकशब्दकी वाच्यताविषै दृष्टांतकूं विवरण करै हैं ॥

११४ दृष्टांतविषैबी विप्रतिपत्तिकूं आशंका करिके । अनंतर उक्त हेतुकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ औ यातैं "सूंघताहै इहांबी क्रिया अरु फलकूं एकशब्दकी वाच्यता अविरुद्ध है । यह शेष है ॥

११५ उत्तर वाक्यके अर्थकूं अनुवादकरिके वाक्यांतरोंविषै अतिदेश करैहैं ॥ इहांः—इतर द्रष्टा इतर चक्षुकरि इतर दृष्टव्यकूं देखताहै । इत्यादि देखनेकूं योग्य है । यह शेष है ॥

११६ उत्तर वाक्यनविषैबी पूर्व वाक्यकीन्याईं कर्त्ता अरु

न्यांईं जानताहै । यह[917] अविद्यावान्की अवस्था है ॥ जहां[918] तो ब्रह्मविद्याकरि अविद्या नाशकूं प्राप्त भयी । तहां आत्मातें व्यतिरेककरि अन्यका अभाव है ॥ जहांहीं[919] इस ब्रह्मवेत्ताकूं सर्व नाम रूपआदिक आत्माविषै हीं प्रविलापित होवैहै (आत्माहीं संवृत्त भया) कहिये जहां[920] ऐसें आत्माहीं होता भया । तहां[921] किस करणकरि । किस द्रष्टव्य (रूप)कूं कौंन देखे । तैसें सूंघे । जाने ॥ ॥ जातें[922] सर्वत्र कारकोंकरि साध्य क्रिया होवैहै । यातें कारकके अभाव हुये क्रियाका असंभव होवैहै औ क्रियाके

कर्मके निर्देशकूं सर्व कारकोंकी उपलक्षणता औ क्रियापदकूं क्रिया अरु ताके फलकी वाचकता तुल्य है । ऐसें कहैहैं ॥

९१७ "जहांहीं" इत्यादिरूप वाक्यके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

९१८ "इहांहीं याकूं" इत्यादिरूप वाकयके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

९१९ उक्त अर्थविषै वाक्यके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ।

९२० ताही अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां:—सर्व कर्त्ता अरु करण आदिक । यह शेष है ॥

९२१ "तहां किसकरि" इत्यादि वाकयकूं व्याख्यान करै हैं ॥

९२२ किं शब्दके आक्षेपरूप अर्थकूं कथन करै हैं ॥

अभाव हुये फलका अभाव होवैहै ॥ तातैं अविद्याकेहीं होते क्रिया कारक अरु फलका व्यवहार है । ब्रह्मवेत्ताकूं नहीं । [९२३] सर्वका आत्मा होनेतें हीं । आत्मव्यतिरेककरि कारक क्रिया वा फल नहीं है औ [९२४] अनात्मा हुया सर्व किसीकावी आत्माहीं नहीं होवैहै ॥ [९२५] तातैं अविद्या करिहीं अनात्मभाव परिकल्पित है । परमार्थतैं तो आत्मातैं व्यतिरेककरि किंचित् नहीं है । [९२६] तातैं परमार्थरूप आत्माकी एकताके ज्ञानके हुये क्रिया कारक अरु फलके ज्ञानका असंभव है । [९२७] यातैं विरोधतैं ब्रह्मवेत्ताकूं क्रियाओंकी औ

---

९२३ ननु ब्रह्मवेत्ताकेबी कारकद्वारा क्रिया आदिक स्वीकार करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

९२४ सर्वके आत्मभावकी असिद्धिकूं आशंका करिके । " सर्व आत्माहीं होताभया " इस श्रुतिकरि समाधान करैहैं ।

९२५ तब सर्व आत्मव्यतिरेककरि कैसैं भासताहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

९२६ भेदभानकी अविद्याकृतताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां:—तिसके हेतु अज्ञानकूं निवर्त्त होनेतैं । यह शेष है ॥

९२७ ननु एकताके प्रत्ययतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा क्रियाआदिकके प्रत्ययके निवृत्त हुयेबी क्रियाआदिक होवैगा? तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां:—करण औ प्रमाणके अभाव हुये कार्यकूं विरुद्ध होनेतैं । यह "यातैं" पदका अर्थ है ॥

तिनके साधनोंकी अत्यंतहीं निवृत्ति होवैहै ॥ किसंकरि[९२८] किसकूं । यह आक्षेपके अर्थ वचन है। प्रकारांतरके असंभवके दिखावने अर्थ नहीं । काहेतैं किसीबी प्रकारकरि क्रिया करण आदिक कारकोंके असंभवतैं । अर्थ[९२९] यह जोः— किसीकरिबी। किसकूं बी। कोईबी । किसी प्रकारसैं बी । नहीं देखताहै ॥ जैहांबी[९३०] अविद्या अवस्थाविषै अन्य अन्यकूं देखताहै । तहांबी जिसकरि इस सर्वकूं जानताहै । ताकूं किसकरि जानै । जिसंकरि[९३१] जानताहै तिस करणके

---

९२८ ननु किंशब्दके प्रश्नरूप अर्थवाले प्रतीयमान हुये विद्वान्कूं क्रिया अरु ताके साधनकी अत्यंतनिवृत्ति कैसैं कहियेहै? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः— किंशब्दकी पूर्वहीं आक्षेपार्थता उक्त है औ सो आक्षेपरूप अर्थका वचन विद्वान्के सर्व प्रकारकी क्रिया अरु कारक आदिकके असंभवके दिखावने अर्थ है । यातैं विद्वान्कूं अत्यंतहीं क्रियाकी निवृत्ति युक्त है ॥

९२९ सर्व प्रकारके असंभवकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥

९३० कैवल्य अवस्थाके प्रति स्थित होयके संज्ञाके अभावका वचन है । ऐसैं कहिके तहांहीं किंपुनर्न्यायकूं कहनेकूं अविद्या अवस्थाविषैबी साक्षीके ज्ञानकी अविषयताकूं कहैहैं ॥

९३१ जिस कूटस्थरूप बोधकरि व्याप्तहुया लोक । सर्वकूं जानता है । तिस साक्षीकूं किस करणकरि वा कौन ज्ञाता

विज्ञेयविषै विनियुक्त (उपयुक्त) होनेतैं औ तातैं[९३२] ज्ञाताकूं ज्ञेयविषैहीं जिज्ञासा होवैहै आत्माविषै नहीं ॥ औ[९३३] अग्निकीन्यांई आत्माका विषय आत्मा नहीं होवैहै औ[९३४] अविषयविषै ज्ञाताकूं ज्ञान नहीं संभवैहै। तातैं[९३५] जिसकरि इस सर्वकूं जानताहै । तिस विज्ञाताकूं किस करणकरि वा कौंन अन्य जानैगा ॥ जबतो[९३६]

जानैगा । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जिस चक्षुरादिकरि लोक जानता है । तिस करणकूं विषयके ग्रहणकरिहीं उपक्षीण (कृतार्थ) होनेतैं । ताकी साक्षीविषै प्रवृत्ति नहीं है ॥

९३२ आत्माकूं असंदिग्ध भाव (सत्ता)वाला होनेतैंबी प्रमेयभावकी असिद्धि है । ऐसैं कहैहैं ॥

९३३ किंवाः—आत्मा आपकरिहीं जानियेहै वा अन्य ज्ञाताकरि ? तिनमैं आद्य पक्ष बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

९३४ द्वितीय पक्ष बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अन्य ज्ञाताके अभावतैं ताका विषय यह आत्मा कहांतैं तिसकरि जाननेकूं शक्य होवैहै । जातैं अन्य ज्ञाता नहीं है " इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं है " इत्यादि श्रुतितैं ॥

९३५ आत्माविषै प्रमाता अरु प्रमाणके अभाव हुये ज्ञानकी अविषयता फलती है । ऐसैं कहैहैं ॥

९३६ " विज्ञाताकूं " इत्यादि वाक्यके अर्थकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इहांः—सो ऐसैं स्वरूपकी अपेक्षावाला विज्ञानघनप-

फेर परमार्थके विवेकी ब्रह्मवेत्ताकूं विज्ञाताहीं केवल अद्वैत वर्त्तताहै। तिस विज्ञाताकूं अ-रे! किसकरि जानै इति ॥ १४ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थं मैत्रेयि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ना है औ विशेष अविशेष विज्ञानकी अपेक्षावाला संज्ञाके अ-भावका वचन है॥ इस रीतिसैं दोनूंका अविरोध है। इति॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायगतचतुर्थब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

इयं पृथिवी सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्यै

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य पंचमं-मधु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—यह पृथिवी सर्व भूतनका मधु

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया। द्वितीयाध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

टीकाः—जो[९३७] केवल[९३८] कर्म निरपेक्ष अमृतभा-

अथ द्वितीयाध्यायगतपंचमब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

९३७ पूर्वोत्तर ब्राह्मणकी संगतिकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्तन करै हैं ॥

९३८ कैवल्यकूं व्याख्यान करै हैं ॥ इहां सो आत्मज्ञान कहा। ऐसैं संबंध है। तिसतैं निराकांक्षपना सिद्ध भया। यह चकार (औ)का अर्थ है ॥

पृथिव्यै सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय-
मस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पु-
रुषो यश्चायमध्यात्मꣳ शारीरस्तेजोम-

है। इस पृथिवीके अर्थ (पृथिवीके) सर्वभूत
मधु (कार्य) हैं॥ औ जो यह इस पृथिवी-
विषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो
यह अध्यात्मरूप शारीर तेजोमय अमृत-

वका साधन है। सो कहनेकूं योग्य है। औ
सो यातें मैत्रेयि—ब्राह्मण आरंभ किया है। आ-
त्मज्ञान [९३९] सर्व संन्यासके अंगीकरि विशिष्ट
कहा [तातैं निराकांक्ष सिद्ध भया] ॥ [९४०] औ आ-
त्माके विज्ञात भये सर्व यह विज्ञात होवैहै औ
[९४१] आत्मा सर्वतें प्रिय है। [९४२] तातैं आत्मा देखनेकूं

९३९ आत्मज्ञान। संन्यासी जनोंकाहीं है। ऐसैं नियम क-
रनेकूं विशेषण देते हैं ॥

९४० ननु तिसतैं निराकांक्षपना कहांतैं होवैगा। का-
हेतैं तिसके होतेबी अन्य विज्ञेयके संभवतैं? यातैं कहैहैं ॥

९४१ "प्रसिद्ध अरे! पतिके काम अर्थ पति प्रिय नहीं
होवैहै" इत्यादिकविषै उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

९४२ ताकी निरतिशय प्रेमकी आस्पदताकरि परमानंद-
ताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ १ ॥

मय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आ-
त्मा है। यह अमृत है । यह ब्रह्म है। यह
सर्व है ॥ १ ॥

योग्य है औ[९४३] सो श्रवण करनेकूं योग्य है । मनन
करनेकूं योग्य है अरु निदिध्यासन करनेकूं यो-
ग्य है । ऐसें दर्शनके प्रकार (उपायके भेद)
कहे । औ[९४४] तिनमें आचार्य अरु आगमकरि
श्रवण करनेकूं योग्य है औ तर्कतें मनन करने-
कूं योग्य है । औ तहां[९४५] (दुंदुभि आदिक ग्रंथ
विषे) तर्क पूर्व कहा है। औ[९४६] आत्माहीं यह सर्व है।

---

९४३ सो जब दर्शनके योग्य है । तब ताके दर्शनविषै कौंन साधन हैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां दर्शनके प्रकार कहिये दर्शनके उपायके प्रभेद ॥

९४४ श्रवण अरु मननके स्वरूपविषै विलक्षणताकूं दिखावै हैं ।

९४५ कौंन यह तर्क है । जिसकरि आत्मा मनन करने योग्य होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां दुंदुभिआदिक ग्रंथ । सप्तमीका अर्थ है ॥

ऐसैं प्रतिज्ञा किये अर्थका हेतुवचन आत्मा ए-ककी सामान्यता आत्मा एकतैं उद्भवता औ आत्मा एकविषै प्रलय है ॥ [९४७] तहां आत्मा एक-विषै सामान्य उद्भव अरु प्रलय नामक जो यह हेतु है। सो असिद्ध है? ऐसैं आशंका करिये है ॥ तिस आशंकाकी निवृत्ति अर्थ यह (पंच-म मधु) ब्राह्मण आरंभ करियेहै ॥ [९४८] जातैं प-रस्पर उपकार्य्य उपकारकभूत पृथिवी आदिक सर्व जगत् है [९४९] औ जो लोकविषै परस्पर उप-कार्य्य उपकारकभूत है। सो एक कारणपूर्वक एक सामान्यात्मक औ एकविषै प्रलयवाला देख्या है ॥ [९५०] तातैं यह पृथिवी आदिरूप जगत्

---

९४७ प्रधानादि वादकूं लेके हेतुकी असिद्धिकी शंकाके हुये। ताके निराकरण अर्थ यह ब्राह्मण है। ऐसैं संगतिकूं कहैहैं ॥

९४८ हेतुके असिद्धिकी शंका। किस प्रकारसैं उद्धार क-रिये है? तहां कहैहैं ॥ इहांः—तातैं तिस प्रकारका होनेकूं योग्य है। ऐसैं उत्तरविषै संबंध है ॥

९४९ अन्योऽन्य (परस्पर) उपकार्य अरु उपकारकभूत जगत्। एक चैतन्यकरि अनुविद्ध अरु एक (प्रकृतिवाला) है। इस अर्थविषै व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहांः—देख्या है स्वप्न आदिक। यह शेष है ॥

९५० दृष्टांतविषै सिद्ध अर्थकूं दार्ष्टांतिकविषै जोडते हैं ॥

बी [९५१] परस्पर कार्य करणरूप होनेतैं तिस प्रकारका होनेकूं योग्य है ॥ [९५२] येहेहीं अर्थ इस ब्राह्मणविषै प्रकाश करियेहै [९५३] अथवा आत्माहीं यह सर्व है। ऐसें प्रतिज्ञा किये अर्थके आत्माविषै उत्पत्ति स्थिति अरु लयवान्‌पनेरूप हेतुकूं कहिके। फेर आगमाविषै प्रधान मधुब्राह्मण करि प्रतिज्ञात अर्थका निगमन करियेहै ॥ तैसैंहीं [९५४] नैयायिकोंनैं कहा हैः—हेतुके अपदेशतैं प्रतिज्ञाका फेर कथन निगमन है ऐसैं॥ औ [९५५] अन्यों-

---

९५१ तत् (तातैं) शब्दके अर्थकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां तथाभूत (तिस प्रकारका)। यह एक कारणपूर्वक होनेतैं। ऐसें ग्रहण करिये है ॥

९५२ ननु विवादका विषय जो जगत्। सो एक कारणवाला है। परस्पर उपकार्य उपकारकभूत होनेतैं। स्वप्नकी न्यांई ॥ यह अनुमान अयुक्त है। काहेतैं हेतुकी असिद्धितैं ॥ जातैं सर्व जगत्। परस्पर उपकार्य उपकारकभूत नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

९५३ हेतुकी असिद्धिकी शंकाकूं परिहार करनेवास्ते यह ब्राह्मण है। ऐसैं संगतिकूं कहिके। अब प्रकारांतरकरि ता (संगति)कूं कहैहैं ॥

९५४ प्रतिज्ञा औ हेतुकूं क्रमसैं कहिके। हेतुसहित प्रतिज्ञारूप अर्थका फेर कथन निगमन है। इस अर्थविषै तार्किकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥

९५५ भर्तृप्रपंचके अनुसारीनके ब्राह्मणके आरंभके प्रका-

नैं व्याख्यान किया हैः—दुंदुभिके दृष्टांतपर्यंत जो आगमवचन है। सो श्रोतव्यके अर्थ है औ मधुब्राह्मणतैं पूर्व जो आगमवचन है। सो उपपत्तिके प्रदर्शनकरि मंतव्यके अर्थ है औ मधुब्राह्मणकरि तो निदिध्यासनका विधि (प्रकार) कहियेहै इति? सर्वथा[९५६] (श्रवणादिककी विधेयताके हुयेबी) तो जैसैं आगमकरि निश्चित है। तैसैंहीं तर्कसैं मनन करनेकूं योग्य है। जैसैं तर्कतैं मनन कियेका कहिये तर्क अरु आ-

---

रकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—द्रष्टव्यआदिक वाक्यतैं आरंभ करिके। दुंदुभिके दृष्टांतपर्यंत जो आगमका वचन है। सो "श्रोतव्य है" इस प्रकारसैं उक्त श्रवणके निरूपण अर्थ है औ दुंदुभिके दृष्टांततैं आरंभ करिके मधुब्राह्मणतैं पूर्व उपपत्तिके दिखावनेकारि जो आगम वचन है। सो "मंतव्य" इस प्रकारसैं उक्त मननके निरूपण अर्थ है। औ निदिध्यासनकूं व्याख्यान करनेकूं फेर यह ब्राह्मण है ॥

९५६ इस (भर्तृप्रपंचके मत)कूं दूषण देते हैं ॥ इहां सर्वथाबी। याका श्रवणादिककी विधेयताके हुयेबी यह अर्थ है औ अन्वय व्यतिरेककरि श्रवणविषै प्रवेशभये पुरुषकूं तिसकी पुष्कलताके हुये अर्थ तैं प्राप्त जो मनन। सो विधिकूं अपेक्षा करता नहीं। जैसैं तर्कतैं मनन किया तत्व है। तैसैं

गमकरि निश्चय कियेका तैसैंहीं निदिध्यासन करियेहै। यातैं पृथक् निदिध्यासनका विधि अनर्थ कहीं है । [९५७]तातैं श्रवण मनन अरु निदिध्यासनके पृथक् प्रकरणका विभाग अनर्थक (व्यर्थ)है । यह हमारा अभिप्राय है ॥ ऐसैं [९५८]सर्वथाबी (श्रवणादिककी विधिके उपगम हुयेबी) तो अध्यायद्वयका अर्थ इस ब्राह्मणविषे उपसंहार करियेहैः—[९५९]यह पृथिवी । सर्व भूतनका मधु है कहिये सर्व ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत भूतन (प्राणिन)का मधुके कार्य मधुकीन्यांई

तर्क अरु आगमकरि निश्चयकिये तत्वकूं उभयके सामर्थ्यतैंहीं निदिध्यासनकी सिद्धिके हुये । सो (निदिध्यासन)बी विधिकी अपेक्षासैं रहितहीं है । यह अर्थ है ॥

९५७ श्रवणादि तीनोंकूं विधिकी अपेक्षासैं रहितताके हुये फलितकूं कहेहैं ॥ इहां इस हेतुतैं परकीय व्याख्यान अयुक्त है । यह शेष है ॥

९५८ ननु सिद्धांतविषैबी श्रवणादिकके विधिके उपगम (अंगीकार)तैं कैसैं परकीय प्रस्थान निषेध किया ? यह आशंका करिके कहेहैं ॥ इहांः—सर्वथाबी । याका तिनकी विधिके अंगीकार हुयेबी । यह अर्थ है ॥

९५९ ऐसैं ब्राह्मणकी संगतिकूं कहिके । ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करै हैं ॥

मधु है ॥ [९६०] जैसें एक मधु । आपूप (मिष्ट मालपूआ आदिक) । अनेक मधुकरोंकरि निर्वर्त्तित (उत्पादित) होवैहै । ऐसें यह पृथिवी । सर्व भूतोंकरि निर्वर्त्तित (उपपादित) होवैहै ॥ तैसें सर्व भूत । या पृथिवीके मधु कहिये कार्य हैं ॥ [९६१] किंवाः—जो यह पुरुष इस पृथिवीविषै तेजोमय (चिन्मात्र प्रकाशमय) अरु अमृतमय (अमरण धर्मवाला) पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप शारीर (शरीरविषै होनेवाला) पूर्वकी न्यांई तेजोमय अमृतमय पुरुष है [९६२] औ सो लिंगाभिमानी है [९६३] औ सो सर्व भूतनका उपकरण होनेकरि मधु है औ [९६४] सर्व भूत याके मधु

---

९६० जो कहा "मधुकी न्यांई मधु है" ऐसें । ताकूं विवरण करै हैं ॥

९६१ केवल उक्त मधुद्वय नहीं है । किंतु अन्य मधुबी है ऐसें कहैहैं ॥

९६२ पुरुषशब्दकी क्षेत्र (शरीर)की विषयताकूं निवारण करैहैं ॥

९६३ ता (पुरुष)के पृथिवीकी न्यांई मधुपनेकूं कहैहैं ॥

९६४ औ सर्व भूतनके ता (पुरुष)के प्रति मधुपनेकूं दिखावै हैं ॥

हैं। यह [९६५] च शब्दके सामर्थ्यतें जानियेहै ॥ ऐसैं [९६६] यह चतुष्टय प्रथम एक है। सर्व [९६७] भूतनका कार्य है औ सर्व भूत याके कार्य हैं॥ [९६८] यातें याकूं एककारण पूर्वकता है ॥ [९६९] जातें एक कारणतैं यह जन्म्या है। सोई एक परमार्थतें ब्रह्म है। इतर कार्य "वाणीतें आरंभ किया विकार नाम

९६५ ननु प्रथमकेहीं दो मधु सुने हैं औ नहीं सुने जो पीछले दो मधु। सो तो कल्पना करनेकूं अशक्य हैं। कल्पकके अभावतैं? यातैं कहैहैं ॥

९६६ प्रथम पर्यायके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—पृथिवी। सर्वभूत। पार्थिव पुरुष औ शारीर पुरुष। यह चतुष्टय (च्यारी) एक मधु है। यह शेप है ॥

९६७ मधुशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां:—याका। इस पदका। पृथिवीआदिकका। यह अर्थ है ॥

९६८ परस्पर उपकार्य उपकारक भावके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां "याका" इसपदकरि जगत् कहिये है। सो पूर्व कहा है:—जातैं परस्पर उपकार्य अरु उपकारकभूत जगत्। सर्व पृथिवीआदिक है। इत्यादि ॥

९६९ इस न्यायकरि सर्व मधुके पर्यायोंविषै कारणका उपदेश होहू। परंतु ब्रह्मका उपदेश कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—सो प्रकृत आत्माहीं यह च्यारी प्रकारका उक्त भेद है। ऐसैं योजना है ॥

मात्र है"। इस रीतिसैं यह सर्व मधुके पर्यायों-का संक्षेपतैं अर्थ है ॥ यहहीं सो है। जो यह प्रतिज्ञात है। यह सर्व है। जो यह आत्मा है। ऐसैं यह अमृत है॥ कहिये जो मैत्रेयीके अर्थ अमृतभावका साधन आत्मविज्ञान कहा। यह सो अमृत है। यह[९७०] ब्रह्म है। जो "ब्रह्म तेरेताईं कहताहूं। जनाऊंगा" ऐसैं अध्यायकी आदिविषै प्रकृत है औ जिसकूं[९७१] विषय करनेवाली विद्या ब्रह्मविद्या ऐसैं कहिये है। यह सर्व है। जातैं[९७२] ब्रह्मके विज्ञानतैं सर्वरूप होवैहै ॥ १ ॥

---

९७० इहां इदं (यह)। इस शब्दकरि च्यारी कल्पनाके अधिष्ठानके विषयक ज्ञानकूं ग्रहण करै हैं ॥ इहां च्यारीका अधिष्ठान इदंशब्दका अर्थ है ॥

९७१ औ तृतीयविषै ताके प्रकृतपनैकूं दिखावै हैं ॥ इहां:—यह सर्व। इस ठिकाने ब्रह्मज्ञान है ऐसैं कहा औ सर्व पदका सर्वकी प्राप्तिका साधन। यह अर्थ है ॥

९७२ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं।

इमा आपः सर्वेषा भूताना मध्वा-
सामपाꣳ सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमास्वप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
यश्चायमध्यात्मꣳ रैतसस्तेजोमयोऽमृ-
तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदम-
मृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ २ ॥

अर्थः—ये आप (जल) सर्वभूतनकी
मधु हैं । इन आपनका सर्वभूत मधु हैं
औ जो यह इन आपोंविषै तेजोमय अ-
मृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप
रैतस तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहही
सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत
है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ २ ॥

टीकाः—तैसैं[९७३] आप अध्यात्म[९७४] है । रेतविषै
जलका विशेषकरि अवस्थान है ॥ २ ॥

---

९७३ जैसैं पृथिवी मधुपनैकरि व्याख्यानकरी । तैसैं अ-
न्यबी व्याख्यान करनेकूं योग्य हैं । ऐसैं कहेहैं ॥

९७४ रैतस । या विशेषणके अर्थकूं कहेहैं ॥ इहांः—
“ आप रेतरूप होयके शिश्नके प्रति प्रवेश करत भयी ” ऐसैं
जातैं अन्य श्रुति है ॥

अयमग्निः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चायमस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥ ३ ॥

अर्थः—यह अग्नि सर्वभूतनका मधु है। इस अग्निके सर्वभूत मधु हैं औ जो यह इस अग्निविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है। औ जो यह अध्यात्मरूप वाङ्मय तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ३ ॥

टीकाः—तैसैं[९७५] अग्नि है। वाक्[९७६]विषै अग्निका विशेषकरि अवस्थान है ॥ ३ ॥

९७५ पृथिवीविषै औ जलविषै उक्त न्यायकूं अग्निविषै अतिदेश करै हैं ॥

९७६ वाङ्मय। याके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः— "जातैं अग्नि वाक् होयके मुखके प्रति प्रवेश करताभया"। ऐसैं सुनीये है ॥

अयं वायुः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चायमस्मिन्वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ ४ ॥

अर्थः—यह वायु सर्वभूतनका मधु है। इस वायुके सर्वभूत मधु हैं औ जो यह इस वायुविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप प्राण तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ४ ॥

टीकाः—[९७७] तैसैं प्राणरूप हुया वायु [९७८] अध्यात्म है। [९७९] भूतनकूं शरीरका आरंभक होनेकरि उप-

९७७ अग्निविषै उक्त न्यायकूं वायुविषै जोडते हैं ॥

९७८ "वायु प्राणरूप होयके दो नासिकाके प्रति प्रवेश करताभया" इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

९७९ पृथिवी आदिकनका औ एक वाक्यकरि ग्रहण

अयमादित्यः सर्व्वेषां भूताना मध्वस्यादित्यस्य सर्व्वाणि भूतानि मधु।

अर्थः—यह आदित्य सर्वभूतनका मधु है । इस आदित्यके सर्व भूत मधु हैं औ

कारतें मधुपना है औ ताके अंतर्गत तेजोमय आदिकनकूं करणरूप होनेकरि उपकारतें मधुपना है ॥ तिसैं[980] प्रकार कहा हैः—"तिसींहीं वाक्का पृथिवी शरीर है। ज्योतिरूप यह अग्नि है" इति ॥ ४ ॥

टीकाः—तैसैं[981] आदित्य मधु है । चक्षु[982] अध्यात्म है ॥ ५ ॥

किये तिनके अंतर्वर्त्ति पुरुषनका एकरूप मधुपना है? या शंकाकूं परिहार करते हुये अवांतर विभागकूं कहैहैं ॥

९८० पृथिवी आदिकनका कार्यपना है औ तेजोमय आदिकनका करणपना है। इस अर्थविषै सप्त अन्नके अधिकारकी संमतिकूं कहैहैं ॥

९८१ यद्यपि आदित्य तृतीयभूतविषै अंतर्भूत होवैहै। तथापि देवताके भेदकूं आश्रय करिके अग्निविषै उक्त न्यायकूं तिस (आदित्य)विषै अतिदेश करै हैं ॥

९८२ "आदित्य चक्षुरूप होयके दो नेत्रनके प्रति प्रवेश करताभया" इस श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ ५ ॥

इमा दिशः सर्व्वेषां भूतानां मध्वासां

जो यह इस आदित्यविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप चाक्षुष तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ५ ॥

अर्थः—ये दिशा सर्वभूतनकी मधु हैं।

टीकाः—तैसैं[९८३] दिशा मधु हैं ॥ दिशाओंका[९८४] य-

---

९८३ आदित्यविषै गत न्यायकूं दिशाओंविषै संपादन करै हैं ॥

९८४ ननु "दिशा श्रोत्ररूप होयके दो कर्णोंकेप्रति प्रवेश करतीभयीं" इस श्रुतितैं श्रोत्रहीं दिशाओंका अध्यात्म है। तिस प्रकार हुये अध्यात्म श्रोत्र है। ऐसैंहीं कहनेकी यो-

दिशाᳬ सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय-
मासु दिक्षु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो
यश्चायमध्यात्मᳬ श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कस्ते-
जोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदᳬ सर्व्वम्
॥ ६ ॥

इन दिशाओंके सर्व भूत मधु हैं औ जो इन
दिशाओंविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है
औ जो यह अध्यात्मरूप श्रौत्र प्रातिश्रुत्क
तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है।
जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म
है। यह सर्व है ॥ ६ ॥

द्यपि श्रोत्र अध्यात्म है। तथापि शब्दके प्रति
श्रवणकी वेलाविषै तो विशेषकरि सन्निहित
होवैहै। यातें अध्यात्म प्रातिश्रुत्क है ॥ प्रति-
श्रुत्क कहिये प्रतिश्रवणकी वेला। तिसविषै जो
होवै सो प्रातिश्रुत्क कहियेहै ॥ ६ ॥

ग्यताके हुये प्रातिश्रुत्क यह विशेषण कैसैं कहा ? यह आशं-
का करिके कहैहैं ॥ इहांः—तथापि इस अर्थविषै तु शब्द है ॥

अयं चन्द्रः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्य चन्द्रस्य सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय-मस्मिꣳश्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृ-तमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-ममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ ७ ॥

अर्थः—यह चंद्र सर्व भूतनका मधु है। इस चंद्रके सर्व भूत मधु हैं औ जो इस चंद्र-विषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप मानस तेजोमय अमृत-मय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आ-त्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ७ ॥

टीकाः—तैसैं[९८५] चंद्र अध्यात्म[९८६] मानस है ॥ ७ ॥

---

९८५ दिशाओंविषै व्यवस्थित न्यायकूं चंद्रविषै दिखावै हैं ॥

९८६ "चंद्रमा मनरूप होयके हृदयके प्रति प्रवेश करताभया" इस श्रुतिकूं अनुसरीके कहेहैं ॥

इयं विद्युत्सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चायमस्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं तैजसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ ८ ॥

अर्थः—यह विद्युत् सर्व भूतनकी मधु है। इस विद्युत्के सर्व भूत मधु हैं औ जो यह इस विद्युत्विषै तेजोमय अमृतमय पुरुषहै औ जो यह अध्यात्मरूप तैजस तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ ८ ॥

टीका:—तैसैं[९८७] विद्युत् र्ऽवैक् है। तेजविषै होनेवाला जो तैजस है। सो अध्यात्म है ॥ ८ ॥

---

९८७ चंद्रकी न्यांई बीजलीकेबी मधुपनैकूं कहैहैं ॥

९८८ अध्यात्म तैजस है। याके अर्थकूं कहैहैं ॥

अयꣳ स्तनयित्नुः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तनयित्नोः सर्व्वाणि भूतानि मधु । यश्चायमस्मिꣳस्तनयित्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ शाब्दः सौवरस्तेजो[illegible]योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ ९ ॥

अर्थः—यह स्तनयित्नु (मेघ) सर्व भूतनका मधु है । इस स्तनयित्नुके सर्वभूत मधु हैं औ जो यह इस स्तनयि[illegible] विषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप शाब्द सौवर तेजोमय अमृतमय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ ९ ॥

टीकाः—[९८९] तैसैं स्तनयित्नु (मेघ) है । यद्यपि

---

९८९ पर्जन्य (मेघ)बी विद्युत् आदिकनकी न्यांई सर्व भूतनका मधु होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

अयमकाशः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्याकाशस्य सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चायमस्मिन्नाकाशे तेजोमयोऽमृतमयः

अर्थः—यह आकाश सर्व भूतनका मधु है। इस आकाशके सर्व भूत मधु हैं औ जो यह इस आकाशविषे तेजोमय अमृतमय

---

[९९०] शब्दविषे होनेवाला जो शाब्द पुरुष। सो अध्यात्म है। तथापि स्वरविषे विशेषकरि होवैहै। यातें सौवर पुरुष अध्यात्म है॥ ९॥

टीकाः—[९९१] तैसें आकाश अध्यात्म है॥ हृदयाकाश कहिये हृदय॥ इहां [९९२] आकाशपर्यंत अरु पृथिवी आदिक भूतगण औ देवतागण। कार्य-

---

९९० अध्यात्म शाब्द है। याके अर्थकूं कहैहैं॥ इहांः—यद्यपि अध्यात्म शब्दविषै होवै ऐसा शाब्द पुरुष है। तथापि स्वरविषै विशेषकरि होवैहै। यातैं अध्यात्म सौवर पुरुष है। ऐसैं योजना है॥

९९१ स्तनयित्नु (मेघ)विषै उक्त न्यायकूं आकाशविषै अतिदेश करै हैं॥

९९२ पर्यायके अनंतर वृत्तकूं अनुवाद करिके उत्थापन करै हैं॥ इहां प्रति शरीरीके। याका सर्व शरीरीनके मध्य प्रत्येकके तांई। यह अर्थ है॥

पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ हृद्याकाशस्ते-
जोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-
ऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम्॥१०

अयं धर्म्मः सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्य

पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप हृदयाकाश (हृदय) तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है। जो यह आत्मा है। यह अ-मृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ १० ॥

अर्थः—यह धर्म सर्व भूतनका मधु है।

करणके संघातस्वरूप होयके प्रतिशरीरीके तांई (सर्व शरीरीनके मध्य प्रत्येकके तांई) उप-कार करते हुये मधु होवैहैं ॥ जिसकरि वे प्र-युक्त (प्रेरित) होयके शरीरीनके साथि संबं-ध्यमान हुये मधु होनेकरि उपकार करैहैं । सो कहनेकूं योग्य है। यातैं यह आरंभ करियेहै ॥ १० ॥

टीकाः—यह[११३] धर्म। यह ऐसैं अप्रत्यक्ष हुया-

---

११३ धर्मकूं शास्त्रैकगम्यताकरि परोक्ष होनेतैं "यह" ऐसे निर्देशकी अयोग्यताकूं आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां

धर्म्मस्य सर्व्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमस्मिन्धर्म्मे तेजोमयोऽमृतमयः पु-
रुषो यश्चायमध्यात्मं धार्म्मस्तेजोम-

इस धर्मके सर्व भूत मधु हैं औ जो यह इस
धर्मविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ
जो यह अध्यात्मरूप धार्म तेजोमय अमृ-

बी धर्म । तिसकरि प्रयुक्त प्रत्यक्ष कार्यकरि यह
धर्म ऐसैं व्यपदेश करियेहै ॥ औ प्रत्यक्षकी
न्यांई [९९४]श्रुति स्मृतिरूप [९९५]धर्म व्याख्यान किया ॥

यह अर्थ है:—यद्यपि धर्म अप्रत्यक्ष हुया । "यह" ऐसैं निर्देशके अयोग्य है । तथापि पृथिवीआदिक धर्मके कार्यकूं प्रत्यक्ष होनेतैं । तिसकरि कारणके औपचारिक अभेदकूं लेके प्रत्यक्ष घटादिककी न्यांई यह धर्म है ऐसैं व्यपदेशका संभव है ॥

९९४ तब ता (धर्म)कूं प्रत्यक्ष होनेतैं प्रेरणालक्षणवान्पना नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके । गौणभाव मुख्यभावकरि अविरोधकूं अभिप्रायका विषयकरिके कहेहैं ॥

९९५ ननु कौन यह धर्म है । जाका प्रत्यक्षताकरि व्यपदेश है ? तहां कहेहैं ॥ इहां:—आदिविषै व्याख्यान किया है "तिस श्रेयरूप धर्मकूं स्रजताभया" इत्यादिकविषै । यह शेष है ॥

योऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-
त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँसर्व्वम् ॥ ११ ॥

तमय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है । यह सर्व है ॥ ११ ॥

---

[९९६] क्षत्रिय आदिकनकाबी नियंता । जगत्[९९७]की विचित्रताका कर्ता । पृथिवी[९९८] आदिकनके परिणामका हेतु होनेतैं औ प्राणी[९९९]ओंकरि अनुष्ठीयमान रूप है । तिसकरिबी यह "धर्म" ऐसैं प्रत्यक्ष-करि व्यपदेश है ॥ [१०००] औ शास्त्र अरु आचाररूप सत्य अरु धर्मका पूर्व अभेदकरि निर्देश किया

---

९९६ तिसीहींविषै कार्य लिंगक अनुमानकूं सूचन करैहैं ॥

९९७ तहांहीं अनुमानांतरकूं कहनेकूं इच्छिके कहा है ॥

९९८ जगत्की विचित्रताकी कारीताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

९९९ धर्मके प्रत्यक्षकरि व्यपदेशविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं:—तिसकरि याका अनुष्ठीयमान आचारसैं धर्मकी वक्ष्यमाणता करी । यह अर्थ है ॥

१००० ननु तृतीय (प्रथम) अध्यायविषै "जोई सो धर्म है । सत्यहीं सो है" ऐसैं सत्य अरु धर्मके अभेदके वचनतैं तिन दोनूंके भेदकरि इहां दो पर्यायोंका ग्रहण अघटित है ? यातैं कहैहैं ॥

औ इहां तो भेदकरि व्यपदेश जो है सो । एकताके होतेबी[1001] दृष्ट अरु अदृष्टके भेदरूपकरि कार्यका आरंभ होनेतैं है ॥ जो[1002] अदृष्टरूप अपूर्व नामक धर्म है । सो तो सामान्य विशेष स्वरूप अदृष्टरूपकरि कार्यकूं आरंभ करताहै ॥ सामान्यरूपकरि[1003] पृथिवीआदिकनका प्रयोक्ता होवैहै औ विशेषरूपकरि[1004] कार्य अरु करणकेसंघातका प्रयोक्ता अध्यात्म होवैहै ॥ तिनमैं[1005] पृथिवी आदिकनके प्रयोक्ता इस धर्मविषे जो यह तेजोमय है ॥ तैसैं[1006] अध्यात्म कार्य करणके संघातके कर्त्तारूप धर्मविषै होनेवाला धार्म है ॥ ११ ॥

१००१ ननु एकताके हुये भेदकरि कथन कैसैं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१००२ अदृष्टरूपकरि कार्यकी आरंभकताकूं प्रगट करैहैं ॥

१००३ सामान्यरूपकरि आरंभकताकूं उदाहरण करैहैं ॥

१००४ विशेषरूपकरि कार्यकी आरंभकताकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१००५ धर्मके दो भेद कहे । तिनके मध्य प्रथमकूं आश्रय करिके "औ जो यह इस धर्मविषे" इत्यादि वाक्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

१००६ द्वितीय (सत्यरूप) धर्मकूं विषयकरिके "औ जो यह अध्यात्म" इत्यादि वाक्य । प्रवृत्त भया है । ऐसैं कहैहैं ॥

इदꣳसत्यꣳसर्व्वेषां भूताना मध्वस्य सत्यस्य सर्व्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय-मस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चाऽयमध्यात्मꣳ सात्यस्तेजोमयो-ऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमा-त्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्व्वम् ॥ १२ ॥

अर्थः—यह सत्य सर्व भूतनका मधु है। इस सत्यके सर्व भूत मधु हैं औ जो यह इस सत्यविषै तेजोमय अमृतमय पुरुष है औ जो यह अध्यात्मरूप सात्य तेजोमय अमृतमय पुरुष है। यहहीं सो है । जो यह आत्मा है। यह अमृत है। यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ १२ ॥

टीकाः—तैसैं[१००७] दृष्टस्वरूप अनुष्ठीयमान आ-चाररूपकरि सत्य नामक सोई धर्म होवैहै ॥ सोबी सामान्य विशेषरूपकरि दो प्रकारकाहीं

१००७ "यह सत्य है" इस पर्यायविषै सत्यशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—सोबी । यह अपि (बी) शब्द । धर्मके उदाहरण अर्थ है ॥

इदं मानुषꣳ सर्व्वेषां भूतानां मध्वस्य

अर्थः—यह मानुष (मनुष्यजाति) सर्व

है ॥ [१००८] सामान्यरूप जो है। सो पृथिवी आदिकसैं समवेत है औ विशेषरूप जो है। सो कार्य करणके संघातसैं समवेत है॥ [१००९] तिनमैं पृथिवी आदिकसैं समवेत वर्त्तमान क्रियारूप सत्यविषै। [१०१०] तैसैं अध्यात्मरूप कार्य अरु करणके संघातसैं समवेत सत्यविषै होनेवाला "सात्य" कथियेहै "[१०११] सत्यकरि वायु च्यारीओरतैं वाता है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ १२ ॥

टीकाः—[१०१२] धर्म अरु सत्यकरि प्रयुक्त यह कार्य

१००८ दोनूंबी प्रकारोंके विनियोग (उपयोग) कूं विभाग करैहैं ॥ इहां:—उभयठिकाने जो समवेतशब्द है। सो तहां कारणताकरि अनुगत अर्थवाला है ॥

१००९ "औ जो यह इसविषै" इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥ इहां:—सत्यविषै औ जो। इत्यादि वाक्य है। यह शेष है।

१०१० "जैसैं यह अध्यात्म है" इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥

१०११ "सत्यकी पृथिवी आदिकविषै औ कार्य करणके संघातविषै कारणतामैं प्रमाणकूं कहैहैं ॥

१०१२ "यह मानुष" इस वाक्यविषै मानुषका ग्रहण

मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चा-
यमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पु-
रुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं
ब्रह्मेदꣳ सर्वं ॥ १३ ॥

भूतनका मधु है । इस मानुषके सर्व भूत
मधु हैं औ जो यह इस मानुषविषे तेजो-
मय अमृतमय पुरुष है । यहहीं सो है जो
यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म
है । यह सर्व है ॥ १३ ॥

अरु करणका संघात विशेष है । सो जिस जा-
तिविशेषकरि संयुक्त होवैहै[१०१३] । सो जातिवि-
शेष मानुषादि है ॥ तिनमें मानुष आदिक जा-
तिनकरि विशेषहीं सर्व प्राणीनके समूह । प-
रस्परके उपकार्यउपकारकभावकरि वर्त्तमान
हुये देखीयेहैं । यातें मानुष आदिक जातिवी

सर्व जातिनका उपलक्षण है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

१०१३ फेर यह जाति। सर्व भूतनका मधु कैसें होवैहै ?
तहां कहैहैं ॥ इहांः—तहां इस सप्तमीका अर्थ भोगभूमि है ॥

अयमात्मा सर्वेषां भूताना मध्व-
स्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चा-
यमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः

अर्थः—यह आत्मा सर्व भूतनका मधु
है। इस आत्माके सर्वभूत मधु हैं औ जो
यह इस आत्माविषै तेजोमय अमृतमय पु-

सर्व [१०१४]भूतनका मधु है ॥ तिनमैं मानुषआदिक
जातिबी बाह्य औ आध्यात्मिक। इस भेदकरि
दो प्रकारसैं निर्देशकी भजनेवाली होवैहै॥ १३ ॥

टीकाः—[१०१५]औ जो कार्य करणका संघात मा-
नुषादि जातिकरि विशिष्ट है। सो यह आत्मा

१०१४ "औ जो यह इसविषै" इत्यादि दो वाक्यके विषयके भेदकूं दिखावैहैं ॥ इहांः—तहां। याका व्यवहार भूमिविषै। यह अर्थ है औ धर्मादिककीन्यांई। यह अपि (बी) शब्दका अर्थ है औ निर्देश करनेवाले पुरुषकूं स्वशरीरविषै स्थित जाति आध्यात्मिकी है अरु अन्य शरीरकेप्रति आश्रित जाति तो बाह्य है। यह भेद है। औ वस्तुतैं तो उभय प्र-प्रकारसैंबी नहीं है। इस अभिप्रायकरिके। निर्देशभाक् (कथनकी भागीदार) है। ऐसैं कहा ॥

१०१५ अंतके पर्यायकूं अवतार देते हैं ॥

पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वं ॥ १४ ॥

रुष है। औ जो यह आत्मा तेजोमय अमृतमय पुरुष है । यहहीं सो है । जो यह आत्मा है । यह अमृत है । यह ब्रह्म है। यह सर्व है ॥ १४ ॥

सर्व भूतनका मधु है ॥ ॥ [१०१६] ननु यह शरीरशब्दकरि निर्देश किया पृथिवीका पर्यायहीं होवैगा ? [१०१७] यह कथन बनै नहीं:—काहेतें पार्थिव अंशकेहीं तहां ग्रहणतें ॥ इहां तो सर्वात्मा अरु अध्यात्म अधिभूत अधिदैव आदिक सर्व विशेषतें रहित औ [१०१८] सर्वभूत अरु देवताके गुणकरि

१०१६ ननु आत्माकूं शरीरके साथि प्राप्तभया होनेतैं ताकी पुनरुक्ति (फेरकथन) निरुपयोगी है ? इस प्रकारसैं प्रतिवादी शंका करै है ॥

१०१७ अवयव (शरीर) अरु अवयवी (आत्मा)रूप भिन्न विषय वाले होनेकरि दो पर्याय हैं । वे पुनरुक्तिदोषसैं रहित हैं । इस रीतिसैं सिद्धांती । परिहार करै हैं ॥

१०१८ परमात्माकूं व्यावर्त्तन करै हैं ॥

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानाम-

अर्थः—सोई यह आत्मा सर्व भूतनका

विशिष्ट जो कार्य[१०१९] करणका संघात है । सो यह आत्मा ऐसैं कहियेहै ॥ तिसैं[१०२०] इस आत्माविषै तेजोमय अमृतमय अमूर्त्तरस सर्वात्मक पुरुष निर्देश करियेहै ॥ एक[१०२१] देशकरि तो पृथिवी आदिकविषै निर्दिष्ट है । इहां अध्यात्मविशिष्टके अभावतैं । सो नहीं निर्देश करियेहै ॥ औ[१०२२] जो परिशिष्ट विज्ञानमय है । जिसके अर्थ यह देह अरु लिंगका संघातरूप आत्माहै । सो जो यह आत्मा है । ऐसैं कहियेहै ॥ १४ ॥

टीकाः—जिसैं[१०२३] आत्माविषै परिशिष्ट विज्ञा-

१०१९ चेतनकूं व्यवच्छिन (भिन्न) करै हैं ॥

१०२० "औ जो यह इसविषै" इत्यादि वाक्यके विषयकूं कहैहैं ॥

१०२१ "औ जो यह अध्यात्म है ऐसा क्यूं नहीं कहा यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इधरः—इहां । ऐसैं अंतके पर्यायका कथन है ॥

१०२२ "औ जो यह आत्मा है" याके अर्थकूं कहैहैं ॥

१०२३ "सोई यह आत्मा है" याके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—परिशिष्ट कहिये पूर्वले पर्यायोंविषै अनुपदिष्ट अरु अंतके पर्यायविषै यह आत्मा है ऐसैं उक्त जो विज्ञानमय । सो जिस आत्माविषै खिल्य दृष्टांतके वचनकरि

धिपतिः सर्वेषां भूतानाᳪं राजा। तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे सम-

---

अधिपति है । सर्व भूतनका राजा है ॥ सो जैसें रथकी नाभिविषै औ रथकी नेमिविषै

नमय अंतके पर्यायविषै प्रवेशित है । सो यह आत्मा है । अविद्याकृत[१०२४] कार्य करणके संघात-रूप उपाधिकरि विशिष्टरूप जीवके तिस पर-मार्थरूप आत्मा (ब्रह्म)विषै ब्रह्मविद्याकरि प्र-वेशित हुये सो ऐसें उक्त अनंतर अबाह्य सं-पूर्ण प्रज्ञानघनभूत सर्व भूतनका यह आत्मा सर्वकरि उपास्य सर्व[१०२५] भूतनका अधिपति स-

---

प्रवेशित है । तिस परमात्माके साथि तादात्म्यकूं प्राप्त भया जो विद्वान् । सो इहां आत्माशब्दका अर्थ है ॥

१०२४ उक्त आत्मशब्दके अर्थकूं अनुवाद करिके "सर्व भू-तनका" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—अविद्याकृत कार्य करणका संघातहीं उपाधि है । तिसकरि विशिष्ट जीवके तिस परमार्थरूप आत्मा (ब्रह्म)विषै ब्रह्मविद्याकरि प्रवेशित हुये । सोई यह आत्मा उक्त प्रकारके विशेषणोंवाला सर्वौं-करि उपास्य अरु सर्व भूतनका अधिपति है । ऐसें संबंध है ॥

१०२५ व्याख्येय (व्याख्यान करने योग्य) पदकूं लेके ।

र्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मनः समर्पिताः ॥ १५ ॥

सर्व अर (काष्ठविशेष) समर्पित हैं । ऐसेंहीं इस आत्माविषै सर्वभूत । सर्व देव । सर्व लोक । सर्व प्राण । सर्व ये आत्मा । समर्पित (अविद्याकरि कल्पित)हैं ॥१५॥

र्वे भूतनके मध्य स्वतंत्र होवैहै । [1026] कुमार अमात्य (मंत्री)की न्यांई नहीं ॥ किंतु सर्व भूतनका राजा । [1027] राजभावका विशेषण अधिपति है ।

ताके वाच्य अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां ताहीका विवक्षित अर्थ सर्वोंकरि उपास्य है । ऐसें कहा ॥

१०२६ स्वतंत्रताकूं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥

१०२७ ननु "सर्व भूतनका राजा है" इतनेकरिहीं उक्त प्रकारके अर्थकी सिद्धिके हुये "अधिपति है" यह विशेषण क्यूं कहा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—राजत्व जातिकरि अनाक्रांत हुयाबी कोईक ता (राजा)के उचित परिपालनादि व्यवहारवान् हुया राजा कहियेहै । यह उपलब्ध है । फेर ताकी स्वतंत्रता नहीं है । राजाके परायण होनेतैं । तातैं तिस (उपचारमात्र राजा)तैं भेद अर्थ "अधिपति" यह विशेषण है ॥

ऐसा होवैहै ॥ कोईक राजाके उचित वृत्तिकूं आश्रय करिके राजा कहियेहै । परंतु सो अधिपति कहियेहै । यातैं अधिपति ऐसैं विशेषण देतेहैं ॥ [१०२८] इस रीतिसैं सर्व भूतनका आत्मा विद्वान् ब्रह्मवित् मुक्त होवैहै ॥ जो [१०२९] कहाथा कीः— ब्रह्मविद्याकरि सर्वरूप होनेवाले मनुष्य मानते हैं । क्या सो ब्रह्म जानताभया । जातैं सो सर्वरूप होता भया । ऐसैं यह सो व्याख्यान किया ॥ [१०३०] ऐसैं आत्माकूंहीं सर्वात्मभावकरि आचार्य अरु आगमसैं सुनिके । तर्कतैं मनन करिके । ऐसैं साक्षात् जानिके । [१०३१] जैसैं मधुब्राह्मण-

१०२८ राजा अरु अधिपति । इन दोनूं शब्दनकेबी विशेषणविशेष्यभावकूं अभिप्रायका विषय करिके । वाक्यार्थकूं निगमन करैहैं ॥

१०२९ उक्त ब्रह्मविद्याके फलकी तृतीय (प्रथम) अध्यायके साथि एकवाक्यताकूं कहेहैं ॥

१०३० ताही व्याख्यानकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां ऐसैं । याका मैत्रेयीब्राह्मणविषै उक्त क्रमकरि । यह अर्थ है ॥

१०३१ ऐसैं । या पदके अर्थकूं कथन करैहैं ॥ इहांः— मधुब्राह्मणविषै औ पूर्वब्राह्मणविषै उक्त क्रमकरि आत्माविषै श्रवणादिक तीनकूं संपादन करिके विद्वान् ब्रह्म होता भया । ऐसैं संबंध है ॥

विषै दिखाया है ॥ [१०३२]तातें इस लक्षणवाले ब्रह्म विज्ञानतें पूर्वबी ब्रह्महीं हुया अविद्याकरि अ-ब्रह्म होताभया औ सर्वहीं हुया असर्व होता भया । औ [१०३३]तिस अविद्याकूं इस विज्ञानतें ति-रस्कार करिके ब्रह्मवित् ब्रह्महीं हुया ब्रह्म होता भया । सर्व हुया सर्व होता भया ॥ [१०३४]जिस (शा-स्त्र)का अर्थ (विषय प्रयोजक नामक) प्रस्तुत कियाथा । सो शास्त्रार्थ परिसमाप्त भया ॥ तिस इस सर्वात्मभूत ब्रह्मवेत्तारूप सर्वात्मा विषै

१०३२ ननु मोक्षअवस्थाविषैहीं विद्वान्कूं ब्रह्मभावक-रि अपरिच्छिन्नभाव है । पूर्वकी अविद्यादशाविषै नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां तीन पंचमी । समाना-धिकरण (एक अर्थवाली)हैं औ ऐसे लक्षणवाले याका "मैं ब्रह्म हूं" ऐसे श्रवणादिकके किये ताके साक्षात्कारतें यह अर्थ है ॥

१०३३ ननु तब अब्रह्मभाव आदिककी बुद्धिका नाश कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०३४ वृत्तकूं अनुवाद करिके उत्तर ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥ इहां:—जिस शास्त्रका विषय अरु प्रयोजन नामक अर्थ । ब्रह्मकंडिकाविषै औ चतुर्थ आदिकविषै प्रस्तुत किया । ताका अर्थ उक्त प्रकारके न्यायकरि निर्धार किया । यह अनुवादका अर्थ है औ सर्वात्मभूतपना कहिये सर्व आदिककी न्यांई कल्पित सर्वके आत्मभावकरि स्थितपना औसर्वात्मपना कहिये सर्व जो ब्रह्म तिस रूपपना ॥

सर्व जगत् समर्पित है । तिस इस अर्थविषै दृ-ष्टांत ग्रहण करिये हैः—सो जैसैं रथकी ना-भिविषै औ रथकी नेमि (धारा)विषै अर (काष्ठ दंडविशेष) सर्व समर्पित होवैहैं । यह प्रसिद्ध अर्थ है । ऐसैं इस आत्माविषै कहिये परमात्माभूत ब्रह्मवेत्ताविषै सर्वभूत । ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत औ सर्व देव । अग्नि आदि-क औ सर्व लोक । भूरादिक औ सर्व प्राण । वाक् आदिक औ सर्व ये आत्मा ।[१०३५] जलविषै चंद्रकीन्यांई शरीर शरीरकेप्रति पीछे प्रवेश करनेहारे समर्पित (अविद्याकरि कल्पित) हैं ।[१०३६] सर्व जगत् इसविषै समर्पित है ॥[१०३७] जो पूर्व कहा थाः—"ब्रह्मवित् वामदेव प्राप्त होता भया । मैं मनु होता भया औ सूर्य होता भया" ऐसैं ।

१०३५ ननु "सर्व ये आत्मा" यह भेदकी उक्ति काहेतैं है । आत्माकी एकताकूं शास्त्रप्रतिपादित होनेतैं ? यह आ-शंका करिके । कहैहैं ॥

१०३६ दार्ष्टांतिकभागके मिलित अर्थकूं कहैहैं ॥

१०३७ उक्त सर्वात्मभावकी तृतीय (प्रथम) अध्यायके साथि एक वाक्यताकूं निर्देश करैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्वि-

अर्थः—इस स्मरण किये तिस मधुकूं द-

सो यह सर्वात्मभाव व्याख्यान किया।[१०३८] सो यह विद्वान् ब्रह्मवित् सर्व उपाधिवाला सर्वात्मा हुया सर्व होवैहै औ निरु[१०३९]पाधिक हुया निरुपाख्य (शब्द अरु प्रत्ययका अगोचर) अनंतर अबाह्य संपूर्णप्रज्ञानघन अज अजर अमृत अभय अचल। ऐसैं नहीं ऐसैं नहीं। अस्थूल अनणु। इस प्रकारके विशेषणोंवाला होवैहै ॥ १५ ॥

[१०४०] टीकाः—तिस इस अर्थकूं नहीं जानते हुये ता-

१०३८ ननु सर्वात्मभावके हुये विद्वान्कूं सप्रपंचता होवैगी ? यह आशंका करिके कहेहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सर्व कल्पित द्वैतकरि सहित अधिष्ठानभूत ब्रह्मकूं प्रत्यक् (आत्म)-भावकरि देखता हुया विद्वान् सर्व उपाधिवाला अरु तिस रूपकरि स्थित हुया सर्वरूप होवैहै। तातैं ऐसैं विद्वान्कूं अविद्वान्की दृष्टिकरि कल्पित सप्रपंचपना अभीष्ट है ॥

१०३९ विद्वान्की दृष्टिकरि ताकी निष्प्रपंचताकूं दिखावैहैं ॥ इहां निरुपाख्यपना कहिये शब्द अरु प्रत्ययका अगोचरपना। ब्रह्मका सप्रपंचपना अविद्याकृत है अरु निष्प्रपंचपना तात्त्विक (वास्तविक)है। ऐसैं आगमके अर्थका अविरोध कहा ॥

१०४० ननु तब तार्किक अरु मीमांसक। शास्त्रके अर्थकूं

भ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्तद्वा-
न्नरा सनये दꣳस उग्रमाविष्कृणोमि। त-

ध्यङ्ङाथर्वणमुनि । अश्विनीकुमारनके अर्थ
कहताभया । तिस इस (मधु)कूं ऋषि
(मंत्र) देखता हुया कहताभयाः—हे नरा
(नराकार अश्विनीकुमार) ! तुह्मारे तिस
लाभके अर्थ किये उग्र दंस (कर्म)कूं मैं

किंक औ केईक पंडितंमन्य आगमके वेत्ता (मी-
मांसक)। शास्त्रार्थकूं विरुद्ध मानते हुये विकल्प
करते हुये अगाध मोहकूं पावैंहैं ॥ तिस[१०४१] इस अर्थकूं
ये दो मंत्र अनुवाद करैहैं "अचल है एक है मनतें
वेगवाला है सो चलता है सो नहीं चलता है"
ऐसैं ॥ औ तिसप्रकार तैत्तिरीय उपनिषद्विषै क-

विरुद्ध देखते हुये ब्रह्म है अरु नहीं है इत्यादि विकल्पकूं क-
रते हुये कैसैं मोहकूं पावते हैं ? तहां कहैहैं ॥

१०४१ वादीनके व्यामोहके अज्ञानरूप मूलकूं कहिके ।
प्रकृत ब्रह्मकी द्विरूपताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहांः—तैत्ति-
रीय श्रुतिविषै आदिशब्दकरि " मैं अन्नकूं अरु अन्नके भक्ष-
ककूं भक्षण करूंहूं" इत्यादि ग्रहण करिये है औ छांदोग्य श्रुति
विषै आदिशब्दकरि "सत्यकाम । सत्यसंकल्प । विजर । वि-
मृत्यु" । इत्यादि ग्रहण किया है ॥

न्यतुर्न वृष्टिम्। दध्यङ्ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाचेति॥१६॥

प्रगट करूं हूं। वृष्टिकूं तन्यतु (मेघ)की-न्यांई ॥ जिस (मधु)कूं दध्यङ्आथर्वण। तुह्मारेअर्थ अश्वके शिरकरि जो कहताभया [ताकूं मैं प्रगट करूं हूं] ऐसें ॥ १६ ॥

हाहैः—"जातें पर अपर किंचित् नहीं है। इस सामकूं गायन करता हुया स्थित होवैहै। मैं अन्नहूं मैं अन्नहूं मैं अन्नहूं" इत्यादि औ तैसें छांदोग्य-विषै कहा हैः—" हसता हुया क्रीडा करताहुया रममाण है। सो जब पितृलोकके कामनावाला सर्वगंध सर्व रस सर्वज्ञ सर्ववित् होवैहै" इ-त्यादि औ अथर्वणवेदविषै कहा हैः—" दूरतें सो दूरविषै है औ सो इहां समीपविषै है" औ कठव-ल्लीविषैबी कहाहैः—"अणुतें अतिशय अणु है। मह-त्तें अतिशयकरि महत् है। कौंन तिस मदामद देवकूं। सो दौडनेवाले अन्योंकूं अतिक्रमण करैहै अरु स्थित होवैहै" ऐसें औ तैसें[१०४२] गीताविषैबी

१०४२ श्रुतिसिद्ध ब्रह्मकी द्विरूपताविषै स्मृतिकूंबी कथन करैहैं ॥

कहा हैः—"मैं क्रतु हूं मैं यज्ञ हूं मैं इस जगत्‌का पिताहूं। किसीकेबी पापकूं नहीं ग्रहण करैहै। सर्व भूतनविषै सम है। विभक्तनविषै अविभक्त है। ग्रसिष्णु अरु प्रभविष्णु है" इत्यादि[1043] आगमके अर्थकूं विरुद्धकीन्यांईं भासमान मानते हुये स्वचित्तके सामर्थ्यतें अर्थके निर्णयवास्ते विकल्प करते हुयेः—आत्मा[1044] है। आत्मा नहीं है॥ कर्त्ता है। अकर्त्ता है। मुक्त है। बद्ध है। क्षणिक है। विज्ञानमात्र है औ शून्य है। इस प्रकारसैं विकल्प करते हुये पारकूं नहीं पावतेहैं। अविद्याकूं सर्वत्र (सारे) विरुद्ध धर्मकी दिखावनेहारी होनेतैं॥ तातैं तहां जेई[1045] श्रुति अरु आचार्यकरि दर्शित मार्गके अनुसारी हैं। वेई अविद्याके पारकूं पावतेहैं औ वेई[1046] इ-

---

१०४३ पूर्वोक्त प्रकारकरि आगमके अर्थविषै विरोधके समाधानके विद्यमान हुयेबी। ताके अज्ञानतैं वादीनकूं विभ्रांति है। ऐसैं उपसंहार करैहैं॥

१०४४ विकल्पकूंहीं स्पष्ट करैहैं॥ इहां "सर्वत्र" याका श्रुति स्मृतिनविषै (आत्माविषै) आत्मामैं। यह अर्थ है॥

१०४५ कौन तब ब्रह्मविद्याके पारकूं सम्यक् पावते हैं? तहां कहैहैं॥

१०४६ ब्रह्मज्ञानके फलकूं कहैहैं॥

स अगाध मोहरूप समुद्रतैं ऊतरेंगे । इतर स्वबुद्धिकी कुशलताके अनुसार नहीं ॥ [1047] अमृतभावकी साधनभूत ब्रह्मविद्या परिसमाप्तकरी । जा (ब्रह्मविद्या)कूं मैत्रेयी भर्त्ता (याज्ञवल्य)केतांई पूछतीभयी । "जाहीकूं भगवान् अमृतभावका साधन जानतेहो । सोई मेरेअर्थ कहो" ऐसैं । [1048] ईसै ब्रह्मविद्याकी स्तुतिअर्थ यह आख्यायिका [1049] प्रांत करी है । ता [1050] आख्यायिकाके संक्षेपतैं अर्थके प्रकाशक प्रयोजनवाले ये दोनूं मंत्र होवैहैं ॥ [1051] ऐसैंहीं मंत्र अरु ब्राह्मणकरि स्तुत

१०४७ "सो जैसैं" इत्यादि वाक्यके अर्थकूं विस्तारसैं कहिके वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१०४८ ननु जब ब्रह्मविद्या परिसमाप्त करी । तब उत्तर ग्रंथसैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०४९ यह ऐसैं प्रवर्ग्यप्रकरणविषै स्थित आख्यायिकाकूं स्मरण करैहैं ॥ इहांः—"इस स्मरण किये तिस मधुकूं" इत्यादिरूप ब्राह्मणनैं । यह शेष है ॥

१०५० "सो यह ऋषि" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां "ता (क्रूरकर्म)कूं तुम दोनूंके अर्थ । हे नरा (नराकार दो अश्विनीकुमार)! इत्यादिरूप एक मंत्र है औ "आथर्वणके अर्थ" इत्यादिरूप दूसरा मंत्र है ॥

१०५१ मंत्र अरु ब्राह्मणकरि वक्ष्यमाण रीतिसैं ब्रह्मविद्याकी स्तुतताके हुये क्या सिद्ध होवैहै ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

होनेतैं ब्रह्मविद्याकूं अमृतभाव अरु सर्वकी प्राप्तिआदि[illegible] साधनता प्रकटकरी हुयी । राजमार्गके प्रति प्राप्त होवैहै । जैसैं[1052] आदित्य उदय हुया रात्रिके अंधकारकूं दूरी करैहै । ताकी न्यांई ॥ किंवाः[1053]—ऐसैं स्तुत ब्रह्मविद्या है । जो इंद्र[1054]राजाकरि रक्षित है । सो देवनकरिबी दुष्प्राप्य है । जातैं[1055] देवनके वैद्य अश्विनीकु[illegible] इंद्रकरि रक्षितविद्या बडे आयासकरि प्राप्तकरी है ॥ ब्राह्मणें[1056] (दध्यङ्ङाथर्वा)के शिरकूं छेदन करिके । अश्वके शिरकूं प्रतिसंधान करिके । तिस (अश्वशिर)के इंद्रकरि छेदन किये हुये । फेर स्व (ब्राह्मणके) शिरकूंहीं प्रतिसंधानकरिके । तिस ब्राह्मणके स्वशिरकरिहीं उक्त संपूर्ण ब्रह्मविद्या

१०५२ ता (ब्रह्मविद्या)की मुक्तिकी साधनताकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

१०५३ किस प्रकारकरि ब्रह्मविद्याका स्तुतपना है? तहां कहैहैं ॥ इहांः—“अपि” शब्द। स्तावक ब्राह्मणकी संभावना अर्थ है औ “च” शब्द। दो मंत्रनके समुच्चय (ग्रहण) अर्थ है ॥

१०५४ एवं (ऐसैं) शब्दकरि सूचित स्तुतिके प्रकारकूंहीं प्रकट करैहैं ॥

१०५५ ता (विद्या)की दुष्प्राप्यताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

१०५६ महान् आयासकूं स्पष्ट करैहैं

श्रवणकरी ॥[1057] तातें तिस (ब्रह्मविद्या)तें परतर (अतिशय श्रेष्ठ) कछुबी पुरुषार्थका साधनभूत नहीं है । वा भावि नहीं है । वर्त्तमान कहांतैंहीं होवैगा ऐसैं । यातें पर (उत्कृष्ट) स्तुति नहीं है ॥[1058] किंवा ऐसैं ब्रह्मविद्या स्तुतिकी विषयकरियेहै:—सर्व[1059] पुरुषार्थनका कर्महीं साधन है । ऐसैं लोकविषै प्रसिद्ध है औ सो कर्म । वित्तकरि साध्य है । तिसकरि अमृतभावकी आशाबी नहीं है ॥ सो यह अमृतभाव केवल (कर्मनिरपेक्ष)[1060] आत्मविद्याकरि प्राप्त होवैहै । जातें कर्मके प्रकरणविषै कहनेकूं प्राप्त हुयीबी प्रवर्ग्य प्रकरणविषै कर्म प्रकरणतें ऊतरीके[1061] कर्मके सा-

१०५७ कृतार्थ इंद्रकरिबी रक्षिततताके हुये विद्याकी दुर्लभतारूप फलितकूं कहैहैं ॥

१०५८ केवल उक्त प्रकारकरिहीं विद्या स्तुत करियेहै ऐसैं नहीं । किंतु प्रकारांतरकरिबी स्तुत करिये है । ऐसैं कहैहैं ॥

१०५९ ताही प्रकारांतरकूं प्रकट करैहैं ॥ इहां “केवल” पदका व्याख्यान । कर्मनिरपेक्ष है ॥

१०६० तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

१०६१ ननु तर्कके प्रकरणविषै प्राप्त हुयेबी । प्रकरणांतर विषै क्यूं कथन करिये है ? तहां कहैहैं ॥

थि विरुद्ध होनेतैं केवल संन्याससहित अमृतभावके साधनअर्थ अभिहित है। तातैं इसतैं [१०६२] पर पुरुषार्थका साधन नहीं है॥ किंवा[१०६३] ऐसें स्तुत ब्रह्मविद्या हैः—जातैं सर्व लोक। द्वंद्वविषै आराम है। सोई नहीं रमता भया "तातैं एकाकी नहीं रमता है" इस श्रुतितैं॥ याज्ञवल्क्य। लोकसाधारण हुयाबी। आत्मज्ञानके बलतैं भार्या पुत्र वित्तआदिक संसारकी रतिकूं परित्याग करिके प्रज्ञानतृप्त हुया आत्मरति होताभया॥ किंवा[१०६४] ऐसैं स्तुत ब्रह्मविद्या हैः—जातैं संसारमार्गतैं व्युत्थान करनेवालेबी याज्ञवल्क्यनैं प्रिय भार्याके वास्ते प्रीतिके अर्थहीं कहीहै। "तूं प्रिय [१०६५] भाषेण करतीहैं आ बैठ" इस लिंगतैं। इ-

---

१०६२ प्रसिद्ध पुरुषार्थके उपायकूं "कर्म" ऐसें कहिके। विद्याविषैहीं आदरके हुये। तिसविषै अधिकारीकूं सम्यक् प्राप्त होवैहै। ऐसैं फलितकूं कहैहैं॥

१०६३ प्रकारांतरकरि ब्रह्मविद्याकी स्तुतिकूं दिखावैहैं॥ इहां यह अर्थ हैः—अनात्माविषै प्रीतिकूं छोडीके आत्माविषैहीं आत्मरतिकी हेतु होनेतैं विद्या बडी है॥

१०६४ अन्य विद्याकरि ताकी स्तुतिकूं कहैहैं॥

१०६५ ब्रह्मविद्या भार्याके तांई प्रीतिके अर्थ कही। यह कैसें जानिये है? तहां कहैहैं॥

१०६६
हां यह स्तुतिके अर्थ आख्यायिका है । ऐसैं हम कहतेहैं ॥ कौंन फेर सो आख्यायिका है? तहां कहियेहैः—यह ऐसैं अनंतर निर्देश कियेकूं व्यपदेश करैहै बुद्धिविषै संनिहित होनेतैं । "वै" शब्द स्मरणके अर्थ है ॥ सो यह आख्यायिकाकरि निर्वृत्त (समाप्त किये) प्रकरणांतरविषै अभिहित परोक्षकूं वै शब्दकरि स्मरण करवता हुया इहां व्यपदेश करैहै ॥ १०६७ जो सो प्रवर्ग्यप्रकरणविषै सूचित अरु अप्रगट किया मधु है सो यह मधु इहां "यह पृथिवी मधु है" इत्यादिकरि अनंतर निर्देश किया है ॥ ॥ १०६८ तहां प्रकरणांतरविषै कैसैं सूचना किया है? तहां कहैहैंः—दध्यङ्ङाथर्वण नामक ऋषि। इन दो अश्वनीकु[illegible]के अर्थ मधुनाम ब्राह्मणकूं कह-

---

१०६६ आख्यायिकाकी स्तुति अर्थताकूं प्रतिपादन करिके। वृत्तकूं अनुवाद करिके । आकांक्षापूर्वक ता (आख्यायिका) कूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इधरः—"इहां" इस सप्तमीका । ब्रह्मविद्या अर्थ है ॥

१०६७ पदार्थकूं कहिके । वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

१०६८ "दध्यङ्" इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करते हुये। आकांक्षापूर्वक प्रवर्ग्यप्रकरणविषै स्थित आख्यायिकाकूं अनुकीर्त्तन करैहैं ॥

ताभया ॥ [१०६९] सो इन दोनूंकूं प्रीतिका स्थान होताभया ॥ [१०७०] ताहीकूं इस वक्ष्यमाण प्रकारकरि देता हुयाहीं इन दोनूं अश्वनीकुमारनके आचार्यभावकरि समीप गमन करताभया ॥ [१०७१] सो (द-

---

१०६९ किस प्रकारकरि कहता भया ? इस अपेक्षाके हुये कहते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इन दो अश्विनीकुमारोंकूं सो मधु प्रीतिका आस्पद होता भया। ताके वशतैं तिन दोनूंकरि प्रार्थित हुया ब्राह्मण कहता भया ॥

१०७० जो अश्विनीकुमारोंकरि मधु प्रार्थित है । सो इस वक्ष्यमाण प्रकारकरि देता हुयाहीं इन दो अश्विनीकुमारोंके आचार्यभावकरि ब्राह्मण । समीप गमन करता भया । ऐसैं कहैहैं ॥

१०७१ आचार्यभावके अनंतर ब्राह्मणके वचनकूं दिखावैहैं ॥ इहां एतत् (यह) शब्द मधुके अनुभवकूं विषय करनेवाला है औ यत् शब्द जो है सो यदि (जब) अर्थवाला है अरु तत् शब्द तर्हि (तब) अर्थवाला है वा औ तुम दोनूंकूं उपनयन करूंगा । याका शिष्यभावकरि स्वीकार करूंगा । यह अर्थ है औ वे दोनूं कहिये देवनके वैद्य दो अश्विनीकुमार औ शिरके छेदनरूप निमित्तवाला मरण पंचमीका अर्थ है औ हमकूं उपनयन करैगा । याका । जब अपने शिष्यभावकरि स्वीकार करैगा । यह अर्थ है औ अथ शब्द । तदा (तब) अर्थवाला है ॥ ब्राह्मणकी आज्ञाके अनंतर अथ ऐसैं कहा औ मधु प्रवचनके अनंतर । यह तृतीय अथ शब्दका अर्थ है औ जो अश्वका शिर ब्राह्मणविषै निबद्ध है ताके छेदनके अनंतर । यह चतुर्थ अथ शब्दका अर्थ है ॥

ध्यङ्ङाथर्वा) कहताभयाः—मैं इंद्रकरि[illegible]ें उक्त (उक्तिका विषय भया) हूं । सो उ[illegible] जब अन्यके अर्थ कहैगा । ताहीतैं तेरे शिरकूं छेदन करूंगा ऐसैं । ताहीतैं मैं भयकूं [illegible]ताहूं । जबहीं सो (इंद्र) मेरे शिरकूं नहीं छेदैगा । तब मैं तुम दोनूंकूं शिष्यभावकरि स्वीकार करूंगा ऐसैं ॥ वे (देवनके वैद्य दो अश्विनीकुमार) कहतेभयेः— हम तेरेकूं तिस (शिरच्छेद निमित्त मरण)तैं रक्षा करेंगे ऐसैं ॥ ॥ कैसैं मुजकूं रक्षा करोगे ऐसैं [ऋषि कहताभया] ॥ [तहां अश्विनीकुमार कहैहैंः—] जब हमकूं शिष्यभावकरि स्वीकार करैगा तब तेरे शिरकूं छेदन करिके अन्य ठिकाने लेजायके स्थापन करैंगे । और अश्वके शिरकूं ल्यायके सो तेरेकूं प्रतिसंधान करैंगे। तिसकरि तूं हमकूं उपदेश करैगा । सो जब हमकूं उपदेश करैगा । तब तेरे तिस शिरकूं इंद्र छेदन करैगा । अनंतर तेरे स्वशिरकूं ल्यायके ताकूं तेरे अर्थ हम प्रतिसंधान करैंगे । तैसैं ॥ [तब सो ऋषिः—] तथाऽस्तु ऐसैं कहिके । तिन दोनूंकूं शिष्यभावकरि स्वीकार करताभया । तिन दोनूंकूं जब शिष्यभावकरि स्वीकार करते भये ।

तब याके शिरकूं छेदन करिके अन्य ठिकाने स्थापन करतेभये ॥ अनंतर अश्वके शिरकूं ल्यायके सोई याकूं अनुसंधान करतेभये ॥ तिसकरिहीं तिन दोनूंके अर्थ उपदेश करताभया । सो जब इन दोनूंके अर्थ उपदेश करताभया । तब याके तिस शिरकूं इंद्र छेदन करताभया ॥ अनंतर याके स्वशिरकूं ल्यायके सोई याकूं प्रतिसंधान करतेभये ॥ ॥ [१०७२] जहांपर्यंत तो प्रवर्ग्यकर्मका अंगभूत मधु है । तहांपर्यंतहीं तहां कहा है । परंतु आत्मज्ञाननामक कक्ष्य (गोप्य) नहीं कहा । [१०७३] तिसविषै यह आख्यायिका कहीहै । सो इहां ब्रह्मविद्याकी स्तुतिअर्थ दिखाईयेहैः—

[१०७४] **इसं स्मरण किये तिस मधुकूं दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि । इस प्रपंचकरि अश्विनीकुमारोंकेअर्थ**

१०७२ तब समस्तबी मधु । प्रवर्ग्य प्रकरणविषै दिखायाहीं है । यातैं इस ब्राह्मणनैं क्या किया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०७३ ननु प्रवर्ग्य प्रकरणविषै स्थित आख्यायिका । इहां किस अर्थ आनयन करी ? यह आशंका करिके । इस ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ यह आख्यायिका है । इस ठिकाने उक्त अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

१०७४ ब्राह्मणभागकी व्याख्याकूं निगमन करैहैं ॥

कहताभया ॥ तिस[१०७५] इस कर्मकूं ऋषि (मंत्र) देखता हुया (उपलभमान हुया) कहता भया ॥ उहां कैसा सो दंस है । ऐसें व्यवहितसें संबंध है ॥ दंस यह कर्मका नाम है ॥ औ सो दंस किस विशेषणवाला हैः—उग्र (क्रूर) है । तुह्मारा। हे नराकार दो अश्विनीकुमार ! औ सो कर्म किस निमित्त किया है किः—सनि (लाभ)के अर्थ किया है ॥ जातें[१०७६] लाभविषै लुब्ध हुया जो पुरुष। सो लोकविषैबी क्रूर कर्मकूं आचरता है । तैसेंहीं ये दोनूं उपलभ्यमान होवैहैं। जैसें लोकविषै ॥ ताकूं प्रकाश करूंहूं । जो रहस्य (एकांत)विषै तुम दोनूंनें किया है ॥ ॥ किसकीन्यांई ? तहां कहियेहैः—वृष्टिकूं तन्यतु (मेघ)कीन्यांई ॥ [१०७७]इहां नकार तो ऊ-

१०७५ "तिसकूं तुह्मारे तांई" इत्यादि मंत्रकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥

१०७६ यह क्रूर कर्मका अनुष्ठान लाभके अर्थ कैसें है ? यातें कहैहैं ॥

१०७७ ननु प्रतिषेधरूप अर्थविषै मुख्य जो नकार। सो इव (न्यांई) शब्दके अर्थविषै कैसें व्याख्यान करियेहै ? त-

परतैं उपचाररूप (कथनमात्र) है । सो वेदविषै उपमाके अर्थ होवैहै । प्रतिषेधके अर्थ नहीं ॥ [१०७८] जैसें अश्वंन कहिये [१०७९] अश्वकीन्यांई । यह पद है । ताकीन्यांई ॥ वृष्टिकूं [१०८०] मेघकीन्यांई कहिये जैसें मेघ मेघगर्जनाआदिक शब्दनकरि वृष्टिकूं प्रकाशताहै । ताकीन्यांई । मैं तुह्मारे क्रूरकर्मकूं प्रकाश करूंहूं । ऐसें संबंध है ॥ ॥ [१०८१] ननु दो

हां कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—वेदविषै पदतैं ऊपर जो नकार सुन्या है । सो निश्चयकरि उपचाररूप हुया उपमारूप अर्थवालावी संभवैहै । निषेधरूप अर्थवाला नहीं ॥

१०७८ तहां उदाहरणकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— "अश्विनीकुमारनैं अश्वकूं न गूढ (अश्वकी न्यांई रक्षित)" इस ठिकाने नकार जैसें उपमारूप अर्थवाला है । तैसें प्रकृतविषैबी है ॥

१०७९ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१०८० जैसें । इस प्रकारसैं उपमारूप अर्थवाले नकारके हुये । वाक्यके स्वरूपकूं अनुवाद करिके ताके अर्थकूं कथन करैहैं ॥

१०८१ ननु विद्याकी स्तुतिद्वारा ता (गुरु)के हंता अश्विनीकुमार । इहां स्तुतिके विषय नहीं करियेहैं किंतु क्रूर कर्मके कर्त्ता होनेकरि निंदाके विषय करियेहैं । तातैंबी । आख्यायिका विद्याकी स्तुति अर्थ है । यह कथन अयुक्त है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिअर्थ ये दो मंत्र कैसें होवैंगे। जातें ये दोनूं निंदाके वचन हैं? यह[1082] दोष नहीं हैः—यह स्तुतिहीं है। निंदाके वचन नहीं ॥ जातें इस प्रकारकेबी अतिक्रूरकर्मकूं करनेवाले तुम दोनूंका लोम (रोम)बी नहीं क्षीण होवैहै ऐसैं औ अन्य[1083] किंचित्बी नष्ट हुयेकीन्यांई नहीं होवैहै। ऐसैं ये दो मंत्र स्तुत होवैहैं ॥ जातें लौकिक[1084] जन निंदाकूं प्रशंसा स्मरण करैहैं। तिस प्रकार[1085] हुये प्रशंसारूप

१०८२ आख्यायिकाकी विद्यास्तुतिअर्थता अविरुद्ध है। इस रीतिसैं सिद्धांती। परिहार करैहैं ॥ इहां:—तुह्मारा लोममात्रबी नहीं नष्ट होवैहै। ऐसैं जातैं कहा है। तातैं विद्याकी स्तुतिकरि तिस क्रूर कर्मवाले अश्विनीकुमारोंकी स्तुतिहीं इहां कहनेकूं वांछित है। ऐसैं योजना है ॥

१०८३ यद्यपि क्रूरकर्मके करनेवाले दो अश्विनीकुमारोंकी दृष्टहानि (इस लोककी हानि) नहीं है। तथापि अदृष्टहानि (परलोककी हानि) होवैगीहीं? यह आशंका करिके। कैमुतिक न्यायकरि कहैहैं ॥

१०८४ ननु निंदाके दृश्यमान हुये कैसैं स्तुति अंगीकार करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं निंदा निंद्यकूं निंदा करनेकूं नहीं है। किंतु विधेय (विधिबोधित) अर्थकी स्तुति करनेकूं है। इस न्यायतैं ॥

१०८५ जैसैं निंदा। निंद्यकूं निंदा करनेकूं हीं नहीं होवै-

निंदा लोकविषै प्रसिद्ध है ॥ [1086] दध्यङ्नाम आथर्वण ऋषि [इहां "ह" ऐसा निरर्थक निपात है] जो गोप्य आत्मज्ञानरूप मधु है । सो तुम दोनूंके अर्थ अश्वके शिरकरि कहता भया औ यह आथर्वण ऋषि । जिस मधुकूं तुह्मारे अर्थ कहताभया [इहां "ईं" ऐसा अर्थरहित निपात है] इस स्मरण किये तिस मधुकूं [मैं प्रकाश करूंहूं] इत्यादि पूर्वकी न्यांई है । सो [1087] अंन्य मंत्रके प्रदर्शन अर्थ है ॥ १६ ॥

है । तैसैं स्तुतिबी । स्तुत्य (स्तुतिके योग्य)कूं स्तुति करनेकूंहीं नहीं होवैहै किंतु निंदा करनेकूंबी होवैहै । तिस प्रकार हुये इन दो (निंदा स्तुति)का व्यवस्थितपना नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

१०८६ सो तुह्मारे तांई । इत्यादि मंत्रके पूर्वार्द्धकूं व्याख्यान करिके औ आख्यायिकाकी स्तुति अर्थताके विरोधकूं उद्धार करिके । अब उतरार्द्धकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः— जो गोप्य ज्ञाननामक मधु है । सो आथर्वण मुनि तुम दोनूंके अर्थ अश्वके शिरकरि कहताभया औ जिस मधुकूं यह (मुनि) तुह्मारे अर्थ कहताभया । ताकूं मैं प्रगट करूंहूं । ऐसैं संबंध है ॥

१०८७ समान अर्थके हुये । फेर क्यूं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यꣳ शिरः

अर्थः—इस स्मरणकिये तिस मधुकूं दध्यङ् आथर्वणमुनि । अश्विनीकुमारोंके अर्थ कहताभया । तिस इसकूं ऋषि (मंत्र) देखताहुया कहताभयाः—दध्यङ्आथर्वणके अर्थ । हे अश्विनीकुमार ! तुह्म अश्वके स्वभूत शिरकूं प्राप्तकरते भये । सो तुह्मारे अर्थ जो

टीकाः—तैसें[१०८८] अन्यमंत्र तिसीहीं आख्यायिकाकूं अनुसरताभया ॥ इहां अथर्वातें दध्यङ्नामा आथर्वण । अन्य विद्यमान है । यातें विशेषण देतेहैंः—दध्यङ्नामा[१०८९] आथर्वण ॥ तिस दधीच आथर्वणके अर्थ । हे दो अश्विनीकुमार !

१०८८ तुल्य अर्थवाले ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

१०८९ विशेषणके कृत्यकूं दिखावते हुये व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—प्रथम अश्वकूं इत्यादि पदार्थका वचन है । अश्वका इत्यादिकविषै छेदन करिके । ऐसें याके कर्मका कथन है औ अश्वके शिरकूं । इस ठिकाने तो अन्वयके अर्थ कहा है । यह विभाग है ॥

प्रत्यैरयतम् । स वां मधु प्रवोचदृताय-
न्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वामिति ॥१७॥

त्वाष्ट्र (सूर्यसंबंधी) मधु है ताकूं सत्यके तांई
पालन करनेकूं इच्छताहुया कहताभया । हे
दस्र (शत्रुनके हिंसक)! कक्ष्य (ज्ञानरूप
गोप्य मधु) कूं बी तुह्मारे अर्थ [कहताभ-
या] ऐसें ॥ १७ ॥

ऐसा मंत्रदर्शीका वचन है । अश्वके स्वभूत शि-
रकूं ब्राह्मणके शिरके छेदन हुये अश्वके शिरकूं
छेदन करिके इस प्रकारके अतिक्रूरकर्मकूं क-
रिके अश्वके शिरकूं ब्राह्मणके प्रति तुम प्राप्त
करतेभये । औ सो आथर्वण मुनि । तुम दो-
नूंके अर्थ तिस मधुकूं कहताभया । जो पूर्व
कहूंगा ऐसें प्रतिज्ञा कियाथा ॥ [१०९०] ॥ सो (मुनि)
किस अर्थ ऐसें जीवितके संदेहकूं आश्रय करि-
के कहताभया? तहां कहियेहैः—जो पूर्व प्रतिज्ञा
किया सत्य है । ताकूं परिपालन करनेकूं इ-

१०९० ननु प्रेक्षापूर्वकारिन (विवेकिन)की ऐसी प्रवृत्ति
अयुक्त है ? ऐसें शंका करिके समाधान करैहैं ॥

च्छता हुया कहताभया ॥ जातैं जीविततैंबी[१०९१] सत्यरूप धर्मकी परिपालना गुरुतर है। याका लिंग यह है। किस प्रकारके तिस मधुकूं कहता भया ? तहां कहियेहैः—त्वाष्ट्र है कहिये त्वष्टा जो आदित्य ताका संबंधी यज्ञका[१०९२] शिर छेदन किया। सो त्वष्टा होताभया। ताके प्रति संधान अर्थ प्रवर्ग्य कर्म है। तहां[१०९३] प्रवर्ग्य कर्मका अंगभूत जो विज्ञान है। सो त्वाष्ट्र मधु है कहिये यज्ञके[१०९४] शिरके छेदन अरु प्रतिसंधान आदिककूं विषय करनेवाला दर्शन (ज्ञान)रूप

१०९१ "सत्यकूं पालन करनेकूं इच्छता हुया" इस ठिकाने अर्थतैं सिद्ध अर्थकूं कथन करैहैं ॥

१०९२ "यज्ञके शिरकूं छेदन करते भये। वे दो अश्विनीकुमाररूपदेवनकूं कहतेभये। हे भिषज (वैद्य) ! इस यज्ञके शिरकूं प्रतिसंधान कीया" इत्यादि अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

१०९३ प्रवर्ग्य कर्मके ऐसैं प्रवृत्त हुयेबी प्रकृतविज्ञानविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

१०९४ उक्त अर्थकूंहीं संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां जो उक्त प्रकारका ज्ञान है। सो त्वाष्ट्र (त्वष्टा संबंधि) मधु है। औ जो सो मधु है ताकूं कहताभया। ऐसैं संबंध है औ अध्याय द्वयकरि प्रकाशित। याका तृतीय अरु चतुर्थ (प्रथम अरु द्वितीय) अध्यायोंकरि प्रकट किया। यह अर्थ है ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् ।

अर्थः—इस स्मरणकिये तिस मधुकूं दध्यङ् आथर्वण । अश्विनीकुमारनके अर्थ कहताभया । तिस इसकूं ऋषि देखता हुया जो त्वाष्ट्र मधु है सो । हे दस्रौ (शत्रुनकी सेनाके उपक्षयके कर्त्ता वा शत्रुनके हिंसक अश्विनीकुमार)! [तुह्मारे अर्थ कहता भया] ॥ किंवा केवल कर्मसंबंधी त्वाष्ट्रहीं मधु तुह्मारे अर्थ कहताभया ऐसैं नहीं । किंतु कक्ष्य कहिये गोप्य (रहस्य) परमात्मासंबंधी जो विज्ञानरूप मधु । मधु-ब्राह्मणकरि कहा है औ दो अध्यायोंकरि प्रकाशित है । सो तुह्मारे अर्थ कहताभया । ऐसैं अनुषंग है ॥ १७ ॥

टीकाः—यह स्मरण किया सो मधु है । ऐसैं पूर्वकी न्यांई[१०९५] उक्त दो मंत्र । प्रवर्ग्यसंबंधी आख्यायिकाके उपसंहारके कर्त्ता हैं । [१०९६]प्रवर्ग्य कर्म-

१०९५ उक्त दो मंत्रोंकरि वक्ष्यमाण दो मंत्रोंकी अपुनरुक्ततारूप अर्थवान्ताकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१०९६ आख्यायिकाविशेषकरि प्राप्त संकोचकूं परिहार करैहैं ॥

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः। पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति।

कहताभयाः—दो पादवाली पुरिनकूं करताभया। च्यारी पादवाली पुरिनकूं करताभया। प्रथम सो (परमेश्वर) पक्षी (लिंग शरीर) होयके पुरिन (शरीरन)के प्रति पुरुष प्रवेश करताभया ऐसें ॥ सो प्रसिद्ध-

रूप अर्थवाले दो अध्यायनका अर्थ आख्यायिकाभूत दो मंत्रनकरि प्रकाशित किया औ [१०९७] ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाले दो अध्यायोंका अर्थ पीछली दो ऋचाओंकरि प्रकाश करनेकूं योग्य है। यातें प्रवर्त्त होवैहैः—[१०९८] आथर्वण मुनि। जो कक्ष्य (गोप्य) मधु है। सो तुह्मारे अर्थ कहताभया। ऐसें कहा ॥ ॥ फेर क्या सो मधु है? तहां कहियेहैः—पुरनकूं कहिये शरीरनकूं करताभया। [१०९९] जातैं यह अव्याकृतके व्याकरण (प्रकटीकर-

१०९७ पीछले दो मंत्रनकी प्रवृत्तिकूं प्रतिज्ञा करैहैं ॥

१०९८ अब अवांतर संगतिकूं कहैहैं ॥

१०९९ हिरण्यगर्भके किये शरीरके निर्माणकूं इहां नहीं कहियेहै किंतु प्रकरणके बलतैं ईश्वरका किया कहियेहै।

स वा अयं पुरुषः सर्व्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किञ्चनानावृतं नैनेन किञ्चनासंवृतम् ॥ १८ ॥

यह सर्व पुरिनविषै पुरिशय हुया पुरुष कहियेहै। इसकरि कछुबी अनावृत नहीं। इसकरि कछुबी असंवृत (भीतर अननुप्रवेशित) नहीं है ॥ १८ ॥

ण)की प्रक्रिया है। सो परमेश्वर अव्याकृत (अप्रगट) नामरूपकूं प्रगट करता हुया प्रथम भूरादिक लोकनकूं सृजीके दो पादोंकरि उपलक्षित मनुष्यशरीररूप। पुरीनकूं (शरीरनकूं) औ तैसें च्यारीपादोंकरि उपलक्षित पशुशरीररूपपुरीनकूं करताभया॥ पूर्व सो (ईश्वर) पक्षी (लिंगशरीर) होयके पुरन (शरीरन)के प्रति पुरुष हुया आवेश (प्रवेश) करताभया। याके अर्थकूं श्रुति कहैहैः—सोई यह पुरुष। स-

---

ऐसें कहैहैं ॥ इहांः—शरीरकी सृष्टिकी अपेक्षाकरि लोकसृष्टिकी प्रथमता है औ पुरस्तात् (पूर्व)। याका देहसृष्टितैं अनंतर अरु प्रवेशतैं पूर्व। यह अर्थ है ॥

र्वे पुरीनविषे (सर्व शरीरनविषे) "पुरविषे सोवताहै सो पुरिशय है" ऐसा हुया "पुरुष" ऐसें कहियेहै ॥ [1100] ईसंकरि किंचत्‌बी अनावृत (अनाच्छादित) नहींहै । तैसें इसकरि किंचित् बी असंवृत (भीतर अननुप्रवेशित) नहीं है कहिये [1101] बाह्य भूतकरि औ अंतर भूतकरि अनावृत नहीं है ॥ [1102] ऐसें सोई नामरूप स्वरूप अंतर बाहिर भावसें कार्य करणरूपकरि व्यवस्थित हुया [1103] पुरीनकूं करताभया । इत्यादिरूप मंत्र। संक्षेपतें आत्माकी एकताकूं कहता है । यह अर्थ है ॥ १८ ॥

११०० सोई सर्व शरीरनविषे वर्त्तमान हुया पुरीविषै सोवताहै । इस व्युत्पत्तिकरि । पुरिशय हुया पुरुष होवैहै । ऐसें कहिके । प्रकारांतरकरि पुरुष शब्दकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

११०१ दो वाक्यनकी एकार्थताकूं आशंका करिके । सर्व जगत् ओत प्रोत भावकरि आत्मासें व्याप्त है । इस अर्थविशेषकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

११०२ आत्माकी पूर्णताके हुये "दिव्य अमूर्त्त पुरुष है" इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय करिके । फलितकूं कहैहैं ॥

११०३ मंत्र अरु ब्राह्मणके अर्थके भेदकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचद्रूपꣳ रूपं प्रतिरूपो बभूव । तदस्य रूपं प्रतिच

अर्थः—इस स्मरण किये तिस मधुकूं दध्यङ् आथर्वण । अश्विनीकुमारनके अर्थ कहताभया । तिस इसकूं ऋषि देखता हुया कहताभयाः—रूप रूपकेतांई (उपाधिभेदके तांई) प्रतिरूप (प्रतिबिंबरूप)

टीकाः—यह[1104] सो मधु है । इत्यादि पूर्वकी न्यांई है ॥ रूपरूपके तांई प्रतिरूप होताभया । अर्थ यह जोः—रूपकेप्रति रूपकेप्रति प्रतिरूप (रूपांतर) होताभया ॥ वा प्रतिरूप कहिये अनुरूप । जिस प्रकारके[1105] संस्थान (आकार)

११०४ प्राचीनहीं ब्राह्मणकूं अनुवाद करिके । मंत्रांतरकूं अवतार देते हैं ॥ इहांः—"प्रति" शब्द जो है सो तंत्रकरि उच्चारण किया है । यातैं रूप रूपके तांई कहिये उपाधि भेदके तांई प्रतिरूप (रूपांतर) कहिये प्रतिबिंबरूप होताभया । यह प्रतिरूप होताभया । इस ठिकाने विवक्षित है । ऐसैं योजना है ॥

११०५ वा अनुरूप है । ऐसैं उक्त अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

क्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति । अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि

होताभया । सो याका रूप प्रतिचक्षण (प्रतिख्यापन)के अर्थ है ॥ इंद्र (परमेश्वर) । मायाओंकरि पुरुरूप (बहुरूप) प्रतीत होवैहै । युक्त (शरीररूप रथविषै योजना किये) जातें याके हरि (इंद्रियरूप अश्व) दशशत (सहस्र) हैं ॥ यह (परमेश्वर)हीं हरि हैं । यहहीं दशसहस्र

वाले मातापिता होवैं । तिस संस्थानवाला तिनका अनुरूप (अनुसारी) हीं पुत्र जन्मताहै । [११०६] जातें चतुष्पादतें दोपादवाला वा दो पादवालेतें [११०७] चतुष्पादवाला नहीं जन्मताहै ॥ सोईहीं परमेश्वर नामरूपकूं प्रकट करता हुया रूप रूप

११०६ उक्त अर्थकूं अनुभवविषै आरूढ करैहैं ॥

११०७ रूपांतरके होनेविषै अन्य कर्त्ताकूं निवारण करैहैं ॥ इहां प्रतिख्यापनके अर्थ । याका शास्त्र अरु आचार्य आदिकनके भेदकारि तत्वके प्रकाश करनेवास्ते । यह अर्थ है ॥

चानन्तानि च। तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरम-
नन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू-
रित्यनुशासनम् ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्यायस्य
पंचमं मधु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

औ बहु औ अनंत हैं ॥ सो यह ब्रह्म अपूर्व
(कारणरहित) अनपर (कार्यरहित) अ-
नंतर (जात्यंतररहित) बाह्य। यह आत्मा
ब्रह्म सर्वानुभू (सर्वकाअनुभवकर्ता) है ।
यह अनुशासन (सर्व वेदांतनका उपदेश)
है ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य पंचमं
मधु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

(उपाधिभेद)के प्रति प्रतिरूप (प्रतिबिंबरूप)
होताभया ॥ ॥ फेर ताका प्रतिरूप आगमन
किस अर्थ है ? तहां कहियेहैः—सो इस आ-
त्माका रूप प्रतिचक्षण (प्रतिख्यापन)के अ-

र्थ है ॥ [1108]जबही नामरूप नहीं प्रगट करियेहै तब इस आत्माका निरुपाधिक प्रज्ञानघनना-मक रूप नहीं प्रख्यात होवै । जब फेर कार्य का-रण स्वरूपकरि नामरूप प्रगट होवैहैं । तब या-का रूप प्रख्यात होवै ॥ इंद्र (परमेश्वर) [1109]मायाओंकरि कहिये प्रज्ञाओंकरि वा नामरूपभूत-ताके किये मिथ्या अभिमानोंकरि । [परमार्थतैं तो नहीं] पुरुरूप प्रतीत होवैहै कहिये एक-[1110]रूपही प्रज्ञानघन हुया अविद्यारूप प्रज्ञाओंक-रि वहुरूप भासता है ॥ [1111]फेर किस कारणतैं किः—

११०८ ताहीकूं व्यतिरेककरि औ अन्वयकरि स्पष्ट करैहैं ॥

११०९ मायाओंकरि कहिये प्रज्ञाओंकरि । ऐसैं पर प-क्षकूं कहिके । स्वपक्षकूं कहैहैं ॥ इहांः—मिथ्याबुद्धिकी हेतु-भूत अनादि अनिर्वाच्य दंडायमान अज्ञानके वशतैं यह ब-हुरूप भासता है । यह अर्थ है ॥

१११० प्रकारके भेदतैं तो वहुवचन है । ऐसैं वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहांः—अविद्यारूप प्रज्ञाओंकरि वहुरूप प्रतीत हो-वैहै । ऐसैं पूर्वके साथि संबंध है ॥

११११ परमात्माकी बहुरूपताविषै निमित्तकूं प्रश्नपू-र्वक निवेदन करैहैं ॥ इहांः—जैसैं रथनविषै जोडे हुये वाजी (घोडे) रथीकूं स्वगोचर देशके तांई प्राप्त करनेकूं प्रवृत्त हो-वैहैं । तैसैं तिस प्रत्यगात्माके रथस्थानीय शरीरविषै जोडे हुये हरि (इंद्रियरूप घोडे) हैं ॥ वे स्वविषयके प्रकाश क-

रथविषै युक्त (जोडे) वाजिन (अश्वन)की न्यांईं स्वविषयके प्रकाश करने अर्थ। जातैं या (प्रत्यगात्मा)के हरणे[1112]करनेतैं इंद्रियरूप हरि (घोडे) प्राणि[1113]नके भेदकी बहुलतातैं दशशत (सहस्र) होवैहैं ॥ तातैं इंद्रियनके विषयनकी बहुलतातैं तिन[1114]के प्रकाश करने अर्थही वे (इंद्रिय) युक्त (जोडे) हैं। आत्माके प्रकाश करने अर्थ नहीं "स्वयंभू इंद्रियनकूं बाहिर (बहिर्मुख करनेरूप) हिंसा

रनेके प्रति जातैं प्रवृत्त होवैहैं। तातैं इंद्रियनकूं औ तिनके विषयनकूं बहुल होनेतैं तिनके रूपनकरि यह बहुरूप भासना है। ऐसैं योजना है ॥

१११२ हरि शब्दकी इंद्रियनविषै प्रवृत्तिमैं निमित्तकूं कहैहैं ॥ इहां प्रत्यगात्माके विषयके प्रति। यह शेष है ॥

१११३ इंद्रियनकी बहुलताविषै तो हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां:—इंद्रियनकी बहुलतातैं प्रत्यगात्मा बहुरूप भासता है। यह शेष है ॥

१११४ ननु आत्माकूं प्रकाश करनेकूं इंद्रिय प्रवृत्त होवैहैं। रूपादिककूंहीं प्रकाश करनेकूं तो नहीं। तातैं तिन (इंद्रियन)के विषयके वशतैं आत्माकी अन्यथा प्रथा कैसैं होवैहै? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

करताभया" ऐसैं जातैं कठवल्लिविषै कहाहै[१११५] । [१११६] तातैं विषय स्वरूप तिन (इंद्रियन)करिहीं प्रतीत होवैहै।प्रज्ञानघन एकरस स्वरूपकरि नहीं॥ ॥[१११७] तब यह परमेश्वर अन्य है। हरि (अश्व) अन्य हैं। इस प्रकारसैं प्राप्त हुये कहियेहैः—[१११८] यहीं (परमेश्वर) हीं हरि हैं औ यहहीं दश सहस्त्र हैं औ बहु हैं औ अनंत हैं[१११९]। प्राणिनके भेदकूं

१११५ तातैं इंद्रियनके विषयनकी बहुलतातैं। इस ठिकाने उक्त अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

१११६ यद्वा उक्त प्रकारकी श्रुतिके वशतैं लब्ध अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं इंद्रियां बाह्य विषयविषै प्रवृत्त होवैहैं। तातैं तिन विषय स्वरूप इंद्रियनकरिहीं यह प्रत्यगात्मा बहुरूप प्रतीत होवैहै। अपने साधारणरूप करि तो नहीं ॥

१११७ याके हरि (घोडे) युक्त (जोडे हुये) हैं। इस संबंधकूं आश्रय करिके प्रतिवादी शंका करै है ॥

१११८ यह। इत्यादि वाक्यकरि। सिद्धांती परिहार करै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिस तिस इंद्रिय आदि रूपसैं आत्माकेहीं अविद्याकरि भानतैं संबंधकूं कल्पित होनेतैं अद्वैतकी हानि नहीं है ॥

१११९ इंद्रियनकी अनंतताविषै हेतुकूं कहैहै ॥

अनंत होनेतैं ॥ बहुत[1120] कहनेकरि क्या है ! सो यह ब्रह्म जो आत्मा है औ अपूर्व है। याका पूर्व (कारण) नहीं है यातैं अपूर्व है। याका अपर (कार्य) नहीं है। यातैं अनपर है। याके अंतरालविषै जात्यंतर नहीं है। यातैं अनंतर है। तैसैं अबाह्य है। याके बाहिर नहीं है। यातैं अबाह्य है ॥ फेर क्या है:—सो निरंतर ब्रह्म यह आत्मा है ॥ कौंन यह ? जो प्रत्यगात्मा द्रष्टा श्रोता मंता बोद्धा विज्ञाता अरु सर्वरूपसैं सर्वकूं अनुभव करैहै यातैं सर्वानुभू है। इस प्रकारका यह अनुशासन (सर्व वेदांतनका उपदेश) है। यह[1121] सर्व वेदांतनका उप-

---

११२० वाक्यार्थके व्याख्यान अर्थ ऐसैं प्राप्त वाक्यकी रचनाकरि भूमिकाकूं रचिके। तत्पर वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥

११२१ केवल उक्त दो अध्यायनकाहीं अर्थ संक्षेपसैं उपसंहार किया ऐसैं नहीं। किंतु सर्व वेदांतनका अर्थ उपसंहार किया। ऐसैं कहेहैं ॥

संहार किया अर्थ है । [1122] यह अमृत है अभय है । औ [1123] शास्त्रार्थ परिसमाप्त भया ॥ १८ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायस्य पंचमं मधु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ५ ॥

११२२ ताके उभयविध पुरुषार्थरूप अर्थकूं कहैहैं ॥

११२३ वक्तव्यांतर (कहने योग्य अन्य)के परिशेषकी शंकाकूं परिहार करै हैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
द्वितीयाध्यायगत-पंचमब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ५ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदो द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अथ वꣳशः पौतिमाष्यो गौपवनाद्

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अर्थः—अब वंश है:—पौतिमाष्य ॥ गौप-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—अनंतर [1124] अब ब्रह्मविद्यारूप अर्थवाले मधुकांडका वंश । ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ है

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाष्यादीपिकाया द्वितीयाध्यायगतषष्ठब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

११२४ ब्रह्मविद्याकूं संक्षेप अरु विस्तारकरि प्रतिपादन करिके । अब वंश ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहांः—जातैं महाजनोंकरि परिगृहीत ब्रह्मविद्या है । तिसकरि सो महा भागधेया है । यह स्तुति है ॥

गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौपवनाद् गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः ॥ १ ॥

वनतैं गौपवन। पौतिमाष्यतैं पौतिमाष्य। गौपवनतैं गौपवन। कौशिकतैं कौशिक। कौंडिन्यतैं कौंडिन्य। शांडिल्यतैं शांडिल्य। कौशिकतैं औ गौतमतैं गौतम। होताभया ॥ १ ॥

औ [११२५]यह मंत्र। स्वाध्यायके अर्थ औ जपके अर्थ है। [११२६]तहां वंशकी न्यांई वंश है। [११२७]जैसें वेणुरूप

११२५ ब्राह्मणके अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां—स्वाध्याय कहिये स्वाधीन उच्चारणकी समर्थताके होते अध्यापन (पढावना) औ जप तो प्रतिदिन आवृत्ति है। यह भेद है ॥

११२६ उक्त प्रकारकी नीतिकरि ब्राह्मणारंभके स्थित हुये। वंश शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

११२७ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहांः—शिष्यके अवसानके उपलक्षणीभूत पौतिमाष्यतैं आरंभ करिके तदादि कहिये

आग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्चानभिम्लाताच्चानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लातो गौतमाद् गौतमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्याᳬ सैतवप्राचीनयोग्यौ पाराशर्य्यात्पाराशर्य्यो भारद्वाजाद्भारद्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वाजाद् भारद्वाजः पाराशर्य्यात्पा-

---

अर्थः—आग्निवेश्यतैं आग्निवेश्य । औ शांडिल्यतैं औ आनभिम्लाततैं आनभिम्लात । आनभिम्लाततैं आनभिम्लात । आनभिम्लाततैं आनभिम्लात । गौतमतैं गौतम । सैतव अरु प्राचीन योग्यतैं सैतव अरु प्राचीन योग्य । पाराशर्यतैं पारा-

वंश । पर्वतैं पर्वतैंहीं भेदकूं पावता है । ताकी न्यांई अग्रतैं आरंभ करिके मूलकी प्राप्तिपर्यंत यह

वेदनामक ब्रह्मके मूलपर्यंत यह वंश है । सो पर्वपर्वतैं भेदकूं पावता है । ऐसैं संबंध है ॥

राशर्य्यो वैजवापायनाद्वैजवापायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः ॥ २ ॥

घृतकौशिकाद् घृतकौशिकः पाराशर्य्यायणात् पाराशर्य्यायणः पाराशर्य्यात् पाराशर्य्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैव-

शर्य । भारद्वाजतैं भारद्वाज । औ भारद्वाजतैं औ गौतमतैं गौतम । भारद्वाजतैं भारद्वाज । पाराशर्यतैं पाराशर्य । वैजवापायनतैं वैजवापायन । कौशिकायनितैं कौशिकायनि ॥ २ ॥

अर्थः—घृत कौशिकतैं घृतकौशिक । पाराशर्य्यायणतैं पाराशर्य्यायण । पाराशर्य्यतैं पाराशर्य्य।जातूकर्ण्यतैं जातुकर्ण्य। औ आसुरायणतैं अरु यास्कतैं आसुरायण । त्रैवणितैं

वंश है । अध्याय चतुष्टयकी आचार्यनकी परंपराका जो क्रम है सो । वंश ऐसैं कहियेहै ॥ ति-

११२८ वंश शब्दकरि सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

णेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरे-
रासुरिर्भारद्वाजाद् भारद्वाज आत्रेयादा-
त्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो वा-
त्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः
कैशोर्य्यात्काप्यात्कैशोर्य्यः काप्यः कु-
मारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गाल-
वो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डि-
न्यो वत्सनपातो बाभ्रवाद्वत्सनपाद्

त्रैवणि । औपजंधनितैं औपजंधनि । आसु-
रितैं आसुरि।भारद्वाजतैं भारद्वाज। आत्रेयतैं
आत्रेय । माण्टितैं माण्टि । गौतमतैं गौतम ।
वात्स्यतैं वात्स्य । शाण्डिल्यतैं शाण्डिल्य ।
कैशोर्य्यकाप्यतैं कैशोर्य्यकाप्य । कुमारहा-
रिततैं कुमारहारित । गालवतैं गालव । वि-
दर्भीकौण्डिन्यतैं विदर्भीकौण्डिन्य । वत्स-
नपात् बाभ्रवतैं वस्तनपात् बाभ्रव । पंथा

११२९
नमैं प्रथमांत शिष्य है अरु पंचम्यंत आचार्य

११२९ अब इहां शिष्य अरु आचार्यके वाचक शब्दके अ-

बाभ्रवः पथसौभरात्पन्थाः सौभरोऽया-
स्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूते-
स्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वा-
ष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ द-
धीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथर्वणोऽथर्वणो
देवादथर्वा दैवो मृत्योः प्राध्वꣳसना-
न्मृत्युः प्राध्वꣳसनः प्रध्वꣳसनात्प्रध्वꣳ

सौभरतैं पंथासौभर। अयास्य आङ्गिरसतैं
अयास्य आङ्गिरस। आभूति त्वाष्ट्रतैं आभू-
ति त्वाष्ट्र। विश्वरूपत्वाष्ट्रतैं विश्वरूपत्वाष्ट्र।
दो अश्विनीकुमारोंतैं दो अश्विनीकुमार।
दधीच आथर्वणतैं दध्यङ्आथर्वण। अथ-
र्वा दैवतैं अथर्वा दैव। मृत्युरूप प्राध्वंश-
नतैं मृत्युरूप प्राध्वंशन। प्रध्वंशनतैं प्रध्वं-

है॥ ॥ परमेष्ठी जो विराट्[११३०]। सो ब्रह्मा (हि-

भाव हुये काहेतैं व्यवस्था होवैगी? यह शंका भई। तहां
कहैहैं॥

११३० परमेष्ठी अरु ब्रह्म शब्दकी एकार्थताकूं आशंका
करिके कहैहैं॥

सन एकऋषेरेकऋषिर्विप्रचित्तेर्विप्रचि-
त्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः। सनात-
नात्सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः
परमेष्ठि ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभुब्रह्मणे नमः
॥ ३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्या-
यस्य षष्ठं-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

शन । एकऋषितैं एकऋषि । विप्रचित्तितैं
विप्रचित्ति । व्यष्टितैं व्यष्टि । सनारुतैं स-
नारु। परमेष्ठीतैं परमेष्ठी । ब्रह्मतैं ब्रह्म। स्व-
यंभु ब्रह्मके अर्थ नमस्कार है ॥ ३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूल मात्र-
भाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं
वंश-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

रण्यगर्भ)तैं होताभया । तिसं[११३१] (हिरण्यगर्भ)

११३१ ननु तब ब्रह्माकूं विद्याकी प्राप्ति कहांतेभई ? त-
हां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है,—आपहीं प्रकाशित भया है
वेद जिसकूं ऐसा जो हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) सो अन्य आचा-
र्यकूं अपेक्षा करता नहीं । काहेतैं ईश्वरकारि अनुगृहीत ताकूं
बुद्धिविषै आविर्भूत वेदतैंहीं विद्या लाभके संभवतैं ॥

तैं पर आचार्यकी परंपरा नहीं है ॥[1132] फेर जो ब्रह्म है सो नित्य अरु स्वयंभु है ।[1133] तिस स्वयंभु ब्रह्मके तांई नमस्कार है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य षष्ठं वंश-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

११३२ तब वेद किसतैं उपजता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—परब्रह्मकेहीं वेदरूपकरि अवस्थानतैं ताकूं नित्य होनेतैं हेतुकी अपेक्षा नहीं है ॥

११३३ आदिविषै औ अंतविषै किया है मंगल जिनके ऐसे जे ग्रंथ । वे प्रचारवाले होवैहैं । ऐसैं जनावनेकूं अंतविषै "ब्रह्मणे नमः" ऐसैं कहा है । ताकूं व्याख्यान करै हैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां द्वितीयाध्यायगतषष्ठ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयाध्यायः ॥ २ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीतृतीयाध्यायारंभः ३

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वलब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

ओं नमः परमात्मने ॥ जनको वै-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

अर्थः—जनक वैदेह बहु दक्षिणावाले य-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वलब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

टीकाः—"जनक वैदेह" इत्यादिरूप याज्ञव-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्ययगत प्रथम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ १ ॥

१ मधुकांडविषै त्वाष्ट्र औ कक्ष्य इस भेदतैं दो भांतिका

देहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे ॥ तत्र ह कुरु-पाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभू-

ज्ञकरि यजन करताभया । तहां कुरु अरु पांचाल देशके ब्राह्मण इकठे होतेभये ॥

ल्कीयकांड आरंभ करियेहै ॥ इस कांडकूं [२]युक्ति-प्रधान होनेतैं अतिक्रांत जो मधुकांड । तिस-करि समान अर्थताके हुयेबी पुनरुक्तता नहींहै ॥ [३]मधुकांड । जातैं आगम[४]प्रधानहै औ आगम अरु उपपत्ति । ये दोनूं जातैं आत्माकी एकताके प्रकाशकरने अर्थ प्रवृत्त हुये करतलगत बिल्वकी न्यांई आत्मतत्वकूं दिखावनेकूं समर्थ होवैहैं ॥

मधु व्याख्यान किया ॥ अब अन्य कांड (याज्ञवल्क्यकांड)-के आरंभकूं प्रतिज्ञा करै हैं ॥

२ ननु पूर्वले दो अध्यायनविषै व्याख्यान कियाहीं तत्व । उत्तर अध्यायविषैबी कहियेगा । तिस प्रकार हुये पुनरुक्तितैं मुनिकांडकरि अलं (बहुत) भया ? यह शंका भई । तहां कहैहैं ॥

३ ननु युक्तिप्रधानता मधुकांडकीबी तुल्य है ? इस प्रकार जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

४ ननु आगमरूप प्रमाणतैंहीं तत्वज्ञान उत्पन्न होवैगा । युक्तिकरि वा युक्तिप्रधान कांड (ग्रंथके भाग)करि क्या है ? तहां कहैहैं ॥

वुस्तस्य जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञा-

तिस जनक वैदेहकूं विजिज्ञासा होतीभयी।

जातें "श्रोतव्यहै । मंतव्यहै" ऐसें कहा है । ता-तैं आगमके अर्थकेहीं परीक्षापूर्वक निर्धारण अ-र्थ युक्तिप्रधान याज्ञवल्कीय कांड । आरंभक-रियेहै ॥ आख्यायिका तो विज्ञानकी स्तुति अ-र्थहै वा उपायके विधिपर है ॥ औ जातें प्रसि-

५ करण (शब्द प्रमाणरूप)होनेकरि आगम । तत्वज्ञान विषै हेतु है औ उपपत्ति (युक्ति) । उपकरणरूप होनेकरि प-दार्थनके परिशोधनद्वारा ताका हेतु है । इस अर्थविषै प्रमा-णकूं कहैहैं ॥

६ करण अरु उपकरणरूप आगम अरु उपपत्तिकूं तत्व-ज्ञानकी हेतुताके हुये । सिद्धभये फलितकूं उपसंहार करैहैं ॥

७ ननु उक्त रीतिकरि कांडके आरंभके हुयेबी आख्या-यिका क्यूं रचिये है ? तहां कहै हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः— विज्ञानवाले पुरुषनकी पूजा इहां प्रपूज्यमान (उत्कृष्ट) दे-खीयेहै । तिस प्रकार हुये "विज्ञान । महाभागधेय है" ऐसी स्तुति इहां विवक्षित है ॥

८ अथवा विद्याके ग्रहणविषै दाननामक उपायके प्रकारके ज्ञापनपर आख्यायिका है । इस अन्य अर्थकूं कहैहैं ॥

९ फेर दानकूं विद्याग्रहणकी उपायता कैसें है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—"गुरुशुश्रूषाकरि विद्या होवैहै वा पुष्कल धनकरि" इत्यादि वाक्यविषै दाननामक विद्याके

सा बभूव । कः स्विदेषां ब्राह्मणानाम-
नूचानतम इति ॥ स ह गवाᳫं सहस्रम-

कौंन इन ब्राह्मणोंके मध्य अनूचानतम है ।
ऐसी ॥ सो गौवनके सहस्रकूं बांधताभ-

ह्यउपाय विद्वानोंनैं[10] शास्त्रनविषै दान देख्या है ।
जातैं दानकरि[11] प्राणी उपनमन करैहैं ॥ प्रभूत[12]
(पुष्कल) हिरण्य अरु गोसहस्रका दान इहां प्र-
तीत होवैहै । तातैं[13] अन्य अर्थः—के परायण शा-

ग्रहणका उपाय जातैं प्रसिद्ध है । तातैं ताकी तदुपायताविषै
वक्तव्य नहीं है ॥

१० "दानविषै सर्व प्रतिष्ठित है" इत्यादि श्रुतिनविषै वि-
द्वानोंनैंहीं विद्याके ग्रहणका उपाय देख्या है । तातैं ता (दा-
न)की उपायताविषै विवाद करनेकूं योग्य नहीं है । ऐसैं क-
हैहैं ॥

११ दानकूं विद्याके ग्रहणकी उपायता सिद्धभई । ऐसैं
कहैहैं ॥

१२ दान । विद्याके ग्रहणका उपाय होहु । तथापि यह
आख्यायिका । ताके प्रदर्शनपर कैसैं है ? यह आशंका करिके
कहैहैं ॥

१३ ननु समुदित (इकट्ठे हुये) ब्राह्मणनविषै ब्रह्मिष्ठतमकूं
निर्धार करनेकूं राजा पूछताभया । तातैं अपर ग्रंथकरि वि-
द्याके ग्रहणके उपायके विधान अर्थ कैसैं आख्यायिका आरं-

वरुरोध । दश दश पादा एकैकस्याः श्रृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ॥ १ ॥

या । एकएक गौके दो शृंगोंविषै दश दश पाद आबद्ध होतेभये ॥ १ ॥

स्त्रनैंबी विद्याकी प्राप्तिके उपायरूप दानके दिखावने अर्थ आख्या[illegible] आरंभकरीहै ॥ ॥ किंवा:–तिस वेद्य अर्थविषै है विद्या जिनकूं ऐसे पुरुषनके साथि संयोग औ तिनके साथि वादका करणरूप । विद्याकी प्राप्तिका उपाय । न्यायविद्याविषै देख्या है औ सो इस अध्यायविषै प्रबल-

भ करिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां । तातैं शब्दका अर्थ उक्त प्रकारका उपलंभ है ॥

१४ यातैंबी आख्यायिका विद्याकी प्राप्तिके उपायके प्रदर्शनपर है । ऐसैं कहैहैं ॥

१५ तिस वेद्य अर्थविषै है विद्या जिनकूं ऐसैं जे ज्ञानी । वे तद्विद्य कहियेहैं । तिनके साथि जब संबंध होवै । तब तिनोंसैंहीं प्रश्न अरु प्रतिवचनद्वारा वादका करना विद्याकी प्राप्तिका उपाय है । इस अर्थविषै गमककूं कहैहैं ॥

१६ जातैं तत्वके निर्णयरूप फलवाली वीतराग पुरुषनकी कथाकूं इच्छते हैं । [यातैं] तद्विद्य पुरुषनके संयोग आदिकनकूं विद्याकी प्राप्तिकी उपायताके हुयेबी प्रकृतविषै ताके प्रदर्शनकी परता कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां तद्विद्य पुरुषनके संयोगतैं । यह तत् शब्दका अर्थ है ॥

ताकरि दिखाइयेहै। औ प्रत्यक्षतैं[17] विद्वानोंके संयोगके हुये प्रज्ञाकी वृद्धि होवेहै। तातैं[18] विद्याकी प्राप्तिके उपायके दिखावनेरूप अर्थवालीहां आख्यायिकाहैः—जनक नाम प्रसिद्ध विदेहनका संम्राट् राजा होताभया। तहां (तिसके कुलविषै) जो होवै सो वैदेह कहियेहै ॥ औ सो जनक वैदेह बहुदक्षिणावाले यज्ञकरि यजन करताभया। शाखांतरविषै प्रसिद्ध बहुदक्षिण नाम यज्ञ है वा अश्वमेध। दक्षिणाकी बहुलतातैं बहुदक्षिण इहां कहियेहै। तिसकरि यजन करताभया ॥ तिस यज्ञविषै निमंत्रित वा दर्शनकी कामनावाले कुरु देशनके अरु पंचाल देशनके ब्राह्मण

---

१७ केवल तर्क शास्त्रके वशतैंहीं तद्विद्य पुरुषनके संयोग हुये प्रज्ञानकी वृद्धि होवैहै ऐसैं नहीं किंतु स्वानुभवके वशतैंबी प्रज्ञाकी वृद्धि होवैहै। ऐसैं कहैहैं ॥

१८ आख्यायिकाके तात्पर्यकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहांः— राजसूय यज्ञविषै अभिषिक्त सार्वभौम (सारी पृथिवीका पति) राजा "सम्राट्" ऐसैं कहियेहै। सो बहुदक्षिणावाले यज्ञकरि यजन करताभया ॥ अश्वमेधविषै दक्षिणाकी बहुलता। अश्वमेधके प्रकरणविषै स्थित है ॥ ब्राह्मण अभिसंगत (इकट्ठे) होतेभये। ऐसैं संबंध है ॥

[तिन देशनविषै[19] जातैं विद्वानोंकी बहुलता प्रसिद्धहै] च्यारीओरतैं एकत्र (इकठे) होतेभये ॥ तहां बडे विद्वानोंके समुदायकूं देखिके । अनंतर तिस [illegible] जनक वैदेह नामवाले यजमानकूं "कौंन निश्चयकरि इहां ब्रह्मिष्ठ है" ऐसैं विशेषकरि जाननेकी इच्छारूप विजिज्ञासा होतीभयी ॥ ॥ कैसैंकिः[20]—कौंन निश्चयकरि इनब्राह्मणोंके मध्य अनूचानतम (अतिशयकरि अनुवचनविषै समर्थ) है ॥ सर्व ये अनूचानहैं । कौंन निश्चयकरि इनके मध्य अतिशयकरि अनूचानतमहै ॥ ऐसैं सो यजमान । अनूचानतमविषै उत्पन्नभयीहै जिज्ञासा जिसकूं ऐसा हुया ताके विज्ञानके उपाय अर्थ प्रथमवयवाली

---

१९ "कुरु पंचालनके" ऐसा देशोंका विशेषण किस कारणतैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां "तहां" याका यज्ञशालाविषै । यह अर्थ है ॥

२० जिज्ञासाकूंहीं आकांक्षापूर्वक बोधन करै हैं ॥ इहां अनूचानपना कहिये अनूवचनविषै समर्थपना । तिनोंके मध्य अतिशयकरि अनूचानतम एक होवैहै । ऐसैं योजना है औ एक पल (च्यारी तोले)के जे च्यारी भाग । तिनके मध्य जो एक भाग । सो " पाद (तोला) " ऐसैं कहिये है ॥

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो

अर्थः—तिनकूं कहताभयाः—हे भगवाले

गौवनके सहस्रकूं गोष्ठ (व्रज)विषै अवरोध करताभया ॥ ॥ किस विशेषणवाली वे गौवां अवरोधकरीहैं ? तहां कहियेहैंः—सुवर्णके पलका चतुर्थभाग पाद कहियेहै। तैसे दश दश पाद एक एक गौके दो शृंगनविषै आबद्ध (बंधनकूं प्राप्त) होतेभये। एक ऐंक[21] शृंगविषै पांच पांच पाद बंधनकूं प्राप्त होतेभये ॥ १ ॥

टीकाः—गौवनकूं ऐसैं अवरोधकरिके । तिन ब्राह्मणनकूं कहताभयाः—हे भगवान् (सर्वज्ञ) ब्राह्मण ! ऐसैं बुलायके । जो तुह्मारे मध्य ब्रह्मिष्ठ होवै ॥ सर्व तुम ब्रह्मके अतिशयकरि वेत्ता हो । तुह्मारे मध्य ब्रह्मिष्ठ होवै सो इन गौवनकूं

---

२१ प्रत्येक शृंगकेविषै दश दश पाद बांधेथे । इस आशंकाके निराकरण करनेकूं विभाग करै हैं ॥ इहां एक एक शृंगविषै बद्ध होते भये । ऐसैं पूर्वके साथि संबंध है औ वेदाध्यायनकरि संपन्न अरु तिसके अर्थविषै निष्ठावाले इहां ब्राह्मण कहियेहैं । तिनके प्रति । "लेजाओ" ऐसैं कहताभया । यह अर्थ है ॥

वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति ॥ ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सौम्योदज सामश्रवा ३ इति ता होदाच-

---

ब्राह्मणो। जो तुह्मारे मध्य ब्रह्मिष्ठ (ब्रह्मवेत्ता) होवै सो इन गौवनकूं लेजाओ ऐसे ॥ वे ब्राह्मण न ले जातेभये । अनंतर याज्ञवल्क्य । अपने ब्रह्मचारी (विद्यार्थी)कूं कहताभयाः—हे सौम्य ! इन गौवनकूं लेजा ॥ हे सामस्रवा (सामविधिका श्रोता) सो [शि-

---

स्वग्रहके प्रति ले जाओ ॥ वे ब्राह्मण । ऐसैं उक्तहुये । आपकी ब्रह्मिष्ठताकूं प्रतिज्ञा करनेकूं नहीं प्रगल्भ होते भये ॥ तिन अप्रगल्भभूतनविषै अनंतर याज्ञवल्क्य। अपनेहीं ब्रह्मचारी (शिष्य)केप्रति कहताभयाः—हे सौम्य (प्रियदर्शन)! इन गौवनकूं हमारे गृहनके प्रति लेजा॥ हे सामश्रवः ! [सामकी विधिकूं जातैं सुनताहै यातैं ॥ अर्थतें च्यारी वेदवाला याज्ञव-

कार। ते ह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताऽश्वलो बभूव। सहैनं पप्रच्छ।

ध्य] ऐसैं तिन गौवनकूं लेजाताभया ॥ वे ब्राह्मण क्रोध करतेभये। तूं हमारेमध्य कैसें ब्रह्मिष्ठ हूं यह कहै ॥ अनंतर जनक वैदेहका होता अश्वल होताभया।

ल्क्य है] ऐसैं सो तिनै[22] गौवनकूं आचार्यके गृहके प्रति ले जाताभया। याज्ञवल्क्यनैं[23] ब्रह्मिष्ठके पणके स्वीकारकरि आपकी ब्रह्मिष्ठता प्रतिज्ञातकरी ॥ वे ब्राह्मण क्रोध करतेभये ॥ तिनके क्रोधके अभिप्रायकूं कहैहैः—हमों एक एक प्रधानों-

---

२२ जातैं यजुर्वेदके वेत्ता याज्ञवल्क्यतैं ब्रह्मचारी सामविधिकूं सुनताहै औ ऋचाओंविषै अध्यारूढ साम गायन करियेहै औ तीनहीं वेदोंविषै अंतर्भूत अथर्व वेद है। तातैं अर्थात् यजुर्वेदी मुनिके शिष्यकूं सामवेदके अध्ययनके असंभवतैं वेद चतुष्टयकरि विशिष्ट याज्ञवल्क्य मुनि है। सो कहताभया ऐसैं कहैहैं ॥

२३ निमित्तके निवेदनपूर्वक सभाविषै स्थित ब्राह्मणनकी क्रोधप्राप्तिकूं दिखावै हैं ॥

त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी ३ इति । स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय

सोई या (याज्ञवल्क्य)कूं पूछताभयाः– हे याज्ञवल्क्य ! तूं हमारे मध्य ब्रह्मिष्ठ हैं क्या ? ऐसें ॥ सो कहताभयाः–हम ब्रह्मिष्ठके तांई नमस्कार करैहैं । [अबी] हम के मध्य "मैं ब्रह्मिष्ठहूं" यह कैसें कहै ऐसें ॥ अनंतर ऐसें क्रोधवान्[24] ब्राह्मणोंविषै जनक वैदेह नामक यजमानका होता (होम करनेवाला) ऋत्विक् अश्वल नाम होताभया । सो ऐसें ब्रह्मिष्ठाभिमानी औ राजाके[25] आश्रयवाला होनेतैं धृष्ट (निभर्य)हुया इस याज्ञवल्क्यके प्रति पूछताभया ॥ ॥ कैसैंकि[26]? हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः–हे याज्ञवल्क्य! तूं निश्चय-

---

२४ क्रोधकी अनंतरतारूप अथ शब्दके अर्थकूं कथन करैहैं ॥

२५ अश्वल मुनिके प्रश्नकी प्रथमताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां "याज्ञवल्क्यके तांई" ऐसा अनुवाद। अन्वयके दिखावने अर्थ है ॥

२६ प्रश्नकूंहीं प्रश्नपूर्वक स्पष्ट करै हैं ॥

कुम्मों गोकामा एव वयꣳ स्म इति ।
तꣳ ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताऽश्वलः॥२॥

गौवकी कामनावालेहीं है ऐसें ॥ ताहीतें ताकूं होता अश्वल पूछनेकूं मन धारण करताभया ॥ २ ॥

करि हमारे मध्य ब्रह्मिष्ठहैं ऐसें । ऐसी श्रुति (उच्चगति) निंदाके अर्थ है ॥ [27] ॥ सो याज्ञवल्क्य कहताभयाः—हम ब्रह्मिष्ठके तांई नमस्कार करेंहैं ॥ [28]अबी हम गौवनकी कामनावालेंहैं ऐसें ॥ तिस ब्रह्मिष्ठकी प्रतिज्ञावाले हुये याज्ञवल्क्यकूं [29]ताहीतें (ब्रह्मिष्ठके पणके स्वीकरणतें) होता अश्वल प्रश्न करनेकूं मन धारण करताभया ॥ २ ॥

---

२७ अनौद्धत्य (उच्छृंखलताके अभाव)रूप ब्रह्मवेत्ताके लिंगकूं सूचन करै हैं ॥

२८ ननु तब स्वगृहके प्रति ब्रह्मनिष्ठताकी पणभूत गौंवा क्यूं भेजी ? तहां कहैहैं ॥

२९ ननु ता (याज्ञवल्क्य)की तैसी प्रतिज्ञा नहीं भासती है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच। यदिदꣳ सर्व्वं मृत्युनाऽऽप्तꣳ सर्व्वं मृत्युनाऽभिपन्नं केन

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभया:—जो यह सर्व मृत्युकरि आप्त है। सर्व मृत्युकरि अभिपन्न है। किसकरि यजमान

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य![30] ऐसें कहताभयाः—[31] तहां मधुकांडविषै दर्शनकरि समुच्चित पांक्त-कर्मकरि यजमानके मृत्युका नाश व्याख्यान किया। उद्गीथप्रकरणविषै [आसंगपापरूप मृत्यु-

३० तहां प्रथम मुनिकी अभिमुखताकूं आपादन करनेकूं संबोधन देता है ॥

३१ उक्त रीतिसैं अश्वल-प्रश्नके प्रसंगविषै प्राप्तभये ताकी उद्गीथ-प्रकरणके साथि संगतिकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्व व्याख्यान किये मधुकांडविषै जो उद्गीथ प्रकरण है। तिसविषै आसंगमय पापरूप मृत्युका नाश समुच्चितकर्मकरि संक्षेपतैं व्याख्यान किया। ऐसैं संबंध है॥ "औ तिसीहींकी" याका उद्गीथ दर्शनकी। यह अर्थ है ॥ औ परीक्षाका विषय कहिये विचारकी भूमिरूप यह प्रश्न उत्तररूप ग्रंथ है। यह अर्थ है॥ औ "तद्गत" इहां जो तत् शब्द है। सो समनंतर निर्देश किये ग्रंथकूं विषय करने हारा है ॥ औ तद्गतदर्शन कहिये उद्गीथका उपासन। ताका विशेष जो वाक् आदिककी अग्नि आदि स्वरूपताका विज्ञान। ताकी सिद्धि अर्थ। यह क्रम है ॥

यजमानो मृत्योराप्तिमतिमुच्यत इति ॥ होत्रर्त्विजाऽग्निना वाचा । वाग्वै यज्ञस्य

मृत्युकी आप्तिकूं अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै ? ऐसैं ॥ होता ऋत्विक् अग्निरूप वाक्करि ॥ वाक्हीं यज्ञका होता है । सो जो

का नाश समुच्चित कर्मकरि] संक्षेपतैं व्याख्यानकिया ॥ तिसी (उद्गीथके दर्शन)कीहीं परीक्षाकूं विषय करनेवाला (विचारकी भूमि) यह (प्रश्नोत्तररूप ग्रंथ) है । ऐसैं तद्गत दर्शनविशेषके अर्थ यह विशेष आरंभ करियेहै । [३२]जो यह नरके कर्मके साधनका समूह ऋत्विक्, अरु अग्नि आदिक है । सो सर्व स्वाभाविक आसंगसहित कर्मरूप मृत्युकरि व्याप्तहै । [३३]केवल व्याप्त नहीं किंतु सर्व मृत्युकरि अभिपन्न (वशीकृत) है ॥

३२ ऐसैं अवांतर संगतिकूं कहिके । अब प्रश्नके अक्षरनकूं व्याख्यान करै हैं ॥

३३ "मृत्युकरि व्याप्त" इस कथनकरि । मृत्युकरि अभिपन्न (वशीकृत) इस कथनकी अगतार्थता होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

होता । तद्येयं वाक् सोऽयमग्निः स होता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ३ ॥

यह वाक् है सो यह अग्नि है । सो होता है । सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति है ॥ ३ ॥

किसैं[34] दर्शनरूप साधनकरि यजमान । मृत्युकी प्राप्तिकूं उल्लंघन करिके कहिये मृत्युकी गोचरताकूं अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै । अर्थ यह जो स्वतंत्र हुया मृत्युके अवश्य होवैहै ऐसें ॥ ॥ ननु[35] जिस मुख्य प्राणात्माके स्वरूपके दर्शनकरि अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै । सो उद्गीथविषैहीं कहाहै ? ऐसें जो कहो । तो बाढ[36]

३४ कर्मकूं मृत्युरूप होनेतैं तिसकरि मृत्युके नाशके अयोगतैं ताके नाशका साधनरूप कछुक उपासनहीं कहनेकूं योग्य है ? इस अभिप्रायकरि पूछताहै ॥

३५ दर्शन विषयक प्रश्नके प्रति याज्ञवल्क्य मुनि आक्षेप करै हैं ॥ इहांः—जिस मुख्य प्राणात्माके उपासनकरि मृत्युतैं अतिमुक्त होवैहै । सो उपासन । उद्गीथप्रक्रियाविषैहीं कहा । तैसैं हुये मृत्युके नाशके उपायरूप विज्ञानकूं ज्ञात होनेतैं "किसकरि" इस प्रश्नका असंभव है। ऐसैं योजना है ॥

३६ "तिसीहींकी परीक्षाकूं विषय करनेवाला यह ग्रंथ है" इत्यादि स्थलविषै उक्त अर्थकूं लेके अश्वलमुनि परिहार करैहै ॥ इहां यह अर्थ हैः—उद्गीथप्रकरणविषै वाकूआ-

(सत्य) है। तहां (उद्गीथ प्रकरणविषै) उक्त जो विशेष। सो अनुक्तहै। ताके अर्थ यह आरंभ-है। यातैं अदोषहै॥ होतारूप ऋत्विक्करि औ अग्निरूप वाक्करि। ऐसैं याज्ञवल्क्य क-कहताभया॥ [37]याँके अर्थकूं व्याख्यान करैहैः—कौं-[38]नैं फिर होता (होमका कर्त्ता) है। जिसकरि मृत्युकूं अतिक्रमण करैहै? तहां [39]कहियेहैः—वा-क्हीं यज्ञ (यजमान)की "[40]यज्ञहीं यजमान है" इस श्रुतितैं यज्ञरूप [41]यजमानकी जो वाक् (अ-

दिकके अग्निआदिक स्वरूपका दर्शनरूप जो विशेष वक्तव्य-बी था। सो पूर्व कहा नहीं। ताके कथन अर्थ यह प्रश्न उ-त्तररूप ग्रंथ है। ऐसैं करिके "किसकरि" इत्यादि प्रश्नका संभव है॥

३७ ननु फेर मृत्युके जयका साधन "होता" इत्यादि स्थलविषै कहा जो उपासन। सो किस प्रकारका है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥ इहां वाक्ही यज्ञका। इत्यादिकरि व्याख्यान करै हैं। यह शेष है॥

३८ व्याख्यानकूंहीं स्पष्ट करनेकूं याज्ञवल्क्य मुनि पूछते हैं॥

३९ उपासनाके विषयकूं दिखावनेकूं उत्तर कहैहैं॥

४० ननु यज्ञशब्दका यजमानविषै वृद्धोंका प्रयोग नहीं है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥

४१ यजमानकी जो अध्यात्मरूप वाक् है। सोई अधिय-

ध्यात्म) है। सोई अधियज्ञविषै होता होहू ॥ कैसैं किः—तहां[42] जो यह यज्ञरूप यजमानकी वाक् है। सो यह[43] प्रसिद्ध अग्निरूप अधिदैवतहै। सो यह अन्नके प्रकरणविषै व्याख्यान किया औ [44]सो अग्नि होताहै "अग्निहीं होताहै" इस श्रुतितैं। [45]सो यह यज्ञके साधनोंका द्वय है। होता औ ऋत्विक् अधियज्ञ औ अध्यात्म वाक्। यह उभय (साधनद्वय)परिच्छिन्न हुया मृत्युकरि कहिये स्वा[46]भाविक अज्ञानरूप आसंगकरि प्रेरित कर्मरूप मृत्युकरि व्याप्तहै कहिये प्रतिक्षण अन्यथाभाव-

---

ज्ञविषै होता होहू। तथापि तिन दोनूंकी देवतास्वरूपसैं उपासन कैसैं है? तहां कहैहैं॥

४२ तिन दोनूंके अग्निस्वरूपसैं उपासनकूं उत्तरवाक्यके आश्रयकरि व्याख्यान करै हैं॥

४३ ननु फेर वाक् अरु अग्निकी एकता कैसैं है? सो कहैहैं॥

४४ तिन दोनूंकी एकताके हुयेबी होताकी तिनके साथि एकता काहेतैं होवैगी? यह आशंका करिके। कहैहैं॥

४५ "सो मुक्ति है" इस वाक्यकूं अवतार देनेकूं भूमिकाकूं करै हैं॥

४६ केवल यह दोनूं। मृत्युकरि सम्यक् स्पर्शकियाहीं है ऐसैं नहीं। किंतु तिसकरि वशीकृतबी है ऐसैं कहैहैं॥

कूं प्राप्तहुया वशीकृतहै । [47]सो इस अधिदैवतरूप अग्निकरि दृश्यमान हुया यजमानके मृत्युकी अतिमुक्तिके अर्थ होवैहै ॥ [48]तिसं इसकूं कहैहैः—सो मुक्तिहै कहिये सो होतारूप अग्नि मुक्तिहै (अ[49]ग्निके स्वरूपका दर्शनहीं मुक्तिहै) । [50]जैंबहीं साधनद्वयकूं अग्निरूपकरि देखताहै । तबीहीं जातैं स्वाभाविक परिच्छिन्नरूप आध्यात्मिक औ आधिभौतिक आसंगरूप मृत्युतैं विमुक्त होवैहै । तातैं सो होता अग्निरूपकरि देख्या हुया [51]मुक्ति

४७ "मृत्युकरि व्याप्त है औ मृत्युकरि वशीकृत है" इन दोनूं वाक्यनके अर्थकूं अनुवाद करिके "होताकरि" इत्यादि वाक्यके अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥ इहां दोनूं साधन तत्शब्दका अर्थ है औ यजमानका ग्रहण जो है सो होताका उपलक्षण है ॥

४८ उक्त अर्थविषै समनंतर वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां "मुक्ति" शब्द जो है सो ताके साधनकूं विषय करनेवाला है ॥

४९ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहां वाक्का औ होताका अग्निस्वरूपसैं उपासनहीं मुक्तिका हेतु है । यह अर्थ है ॥

५० उक्त अर्थकूं प्रपंचन करै हैं ॥

५१ "सो मुक्ति है" या वाक्यके अर्थकूं उपसंहार करै हैं ॥

(मुक्तिका साधन) है। यजमानकूं [५२]सो अतिमुक्तिहै ॥ औ जोई मुक्तिहै सो अतिमुक्ति है। अर्थ यह जो अतिमुक्तिका साधनहै ॥ परिच्छिन्नरूप [५३]दो साधनोंकी जो अधिदेवतारूप अपरिच्छिन्न अग्निरूपसैं दृष्टिहै। सो मुक्ति है जो यह मुक्ति अधिदेवताकी दृष्टिहै । सोई अध्यात्म अधिभूतरूप परिच्छेदकूं विषय करनेवाले आसंगके आस्पंदरूप मृत्युकूं अतिक्रमणकरिके अधिदेवताभावरूप अग्निभावकी प्राप्तिहै । [५४]जो फलभूतहै । सो अतिमुक्ति ऐसैं कहियेहै । तिसैं अतिमुक्तिका मुक्तिहीं साधनहै । ऐसैं करिके सो अतिमुक्तिहै ऐसैं कहैहै । जातैं [५६]यजमानकी अतिमुक्ति वाक् आदिकनका अग्निभाव है । ऐसैं उद्गीथ प्रकरणविषै

---

५२ वाक्यांतरकूं उठायके व्याख्यान करै हैं ॥

५३ मुक्ति अरु अतिमुक्तिके अमिश्रभावकूं दिखावै हैं ॥ इहां प्राप्ति अतिमुक्ति है । ऐसैं संबंध है ॥

५४ ताहीकूं संक्षेपकरि कहैहैं ॥

५५ फलभूत अग्निआदि देवताकी प्राप्तिके हुये अतिमुक्ति शब्दकी उपपत्ति कैसैं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५६ ननु वाक्आदिकनका अग्निआदिभाव इहां सुनिये है । यजमानका कछुबी नहीं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच । यदिदं सर्वं-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—

व्याख्यान कियाहै। तहां[57] सामान्यकरि मुख्यप्राणका दर्शनमात्र मुक्तिका साधन कहा। ताका विशेष जो वाक् आदिकनका अग्नि आदिक रूपसैं दर्शन। सो नहीं कहा। इहां विशेष वर्णन करियेहै। मृत्युकी[58] प्राप्तितैं अतिमुक्ति तो सोई फलभूतहै जो उद्गीथब्राह्मणनैं "मृत्युकूं अतिक्रांत हुया प्रकाशताहै" इत्यादिरूप व्याख्यान करीहै॥ ३॥

टीकाः—हे[59] याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः— स्वाभाविक अज्ञानरूप आसंगनैं किये कर्मरूप मृत्युतैं अतिमुक्ति व्याख्यानकरी। तिस कर्मरूप आसंगमय मृत्युके आश्रयभूत दर्श[60] पूर्णमा-

५७ ननु तब तिसीहींकरि गतार्थ होनेतें यह ब्राह्मण व्यर्थ है? यह आशंका करिके। "बाढ (सत्य) है" इत्यादि वाक्यकरि उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं॥

५८ उपासनकी न्यांई फलविषैबी विशेष होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं॥

५९ प्रश्नांतरकूं प्रगट करिके तात्पर्यकूं कहैहैं॥

६० आश्रयभूत वे कौन हैं? यह आशंका करिके। क-

र्व्वमहोरात्राभ्यामाप्तꣳ सर्व्वमहोरात्रा-
भ्यामभिपन्नं ॥ केन यजमानोऽहोरात्र
योराप्तिमतिमुच्यत　इत्यध्वर्य्युणर्त्वि-

जो यह सर्व अहोरात्रकरि आप्त है। सर्व
अहोरात्रकरि अभिपन्न है। किसकरि य-
जमान अहोरात्रकी आप्तिकूं अतिक्रमण-
करिके मुक्त होवैहै? ऐसें ॥ अध्वर्यु ऋ-

स आदिक कर्मके साधनोंके परिणामका हेतु जो
काल है। तिसकालतैं [६१] पृथक् अतिमुक्ति कहनेकूं
योग्य है। यातैं यह आरंभ करियेहै। काहेतैं क्रि-
[६२] योंके अनुष्ठानके व्यतिरेककरिबी क्रियातैं आगे

हैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—प्रतिक्षण अन्यथाभाव विपरिणाम
कहियेहै। अग्निआदि साधनोंकूं आश्रय करिके मृत्युशब्द-
का वाच्य काम्यकर्म उत्पन्न होवैहै। तिन साधनोंकूं विप-
रिणामके हेतु होनेतें काल मृत्यु कहिये है। तातैं अतिमुक्ति
कहनेकूं योग्य है। यातैं उत्तर ग्रंथका आरंभ है ॥

६१ कर्मतैं जब मुक्ति कही। तब कालतैंबी सो कहीहीं
है। काहेतैं ताकूं कर्मविषै अंतर्भावकरि मृत्युरूप होनेतें ? यह
आशंका करिके। कहैहैं ॥

६२ कर्मकी निरपेक्षताकरि कालके मृत्युभावकूं प्रतिपादन
करै हैं ॥

जा चक्षुषाऽऽदित्येन । चक्षुर्वै यज्ञस्या-ऽध्वर्य्युस्तद्यदिदं चक्षुः सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्य्युः स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥४॥

त्विक् आदित्यरूप चक्षुकरि ॥ चक्षुहीं यज्ञका अध्वर्यु है । सो जो यह चक्षु है सो-यह आदित्य है । सो अध्वर्यु है । सो मुक्ति है। सो अतिमुक्ति है ॥ ४ ॥

औ पीछे साधनके त्रिपरिणामकी हेतुताकरि कालके व्यापारके देखनेतें ॥ [६३] तातें कालतें पृथक् अतिमुक्ति कहनेकूं योग्यहै ? यातें कहैहैं:—जो यह सर्व अहोरात्र (रात्रिदिवस) करि व्याप्त है औ [६४] सो काल दो रूपवाला है। अहोरात्रादिरूप औ तिथि आदिकरूप। [६५] तिनमें अहोरात्रादिरूप का-

६३ कालके पृथक् पृथक् मृत्युभावके सिद्धभये फलितकूं कहैहैं ॥

६४ उत्तर ग्रंथविषै स्थित दोनूं प्रश्नोंके विषयकूं भेदन करनेकूं कालकूं भेदन करै हैं ॥ इहां आदित्य औ चंद्र ऐसें कर्त्ताके भेदतें द्विविधता कल्पना करनेकूं योग्य है ॥

६५ कालकी द्विरूपताविषै सत्यादि कंडिकाके विषय (अर्थ)कूं कहैहैं ॥

लतैं प्रथम अतिमुक्तिकूं कहैहैंः—जातैं[66] अहोरात्रकरि सर्व जन्मता है । वढता है औ विनाशकूं पावता है औ तैसैं यज्ञका साधन है । यजमा[67]नरूप यज्ञका चक्षु अध्वर्यु है । शिष्ट (अवशेषरहे) अक्षर पूर्वकी न्यांई ल्यावनेकूं योग्य हैं औ[68] यंजमानका चक्षुरूप अध्वर्यु । अध्यात्म अरु अधिभूतके परिच्छेदरूप साधनद्वयकूं छोडिके अधिदैवत स्वरूपकरि जो देख्या है । सो मुक्ति है । [69] सो अध्वर्यु आदित्[70]यके भावकरि देख्याहुया मुक्तिहै । सोई मुक्तिहीं अतिमुक्ति है ॥ ऐसैं पूर्वकी न्यांई आदित्यके आत्मभावके तांई प्राप्तभयेकूं जातैं अहोरात्र नहीं संभवे हैं ॥ ४ ॥

---

६६ दिवस अरु रात्रिके मृत्युभावके सिद्धभये तिन दोनूंतैं अतिमुक्ति कहनेकूं योग्य है । सोई कैसैं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यज्ञका साधनबी तैसैं तिन दोनूंकरि उपजता है वढता है औ नाश होवैहै । ऐसैं संबंध है ॥

६७ प्रतिवचनके व्याख्यानविषै यज्ञ शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

६८ "सो मुक्ति है" या वाक्यके तात्पर्यरूप अर्थकूं कहैहैं ॥

६९ तिसीहीं वाक्यके अक्षरार्थकूं कहैहैं ॥

७० उक्त रीतिकरि आदित्य स्वरूपताके हुयेबी अहोरात्ररूप मृत्यूतैं अतिमुक्ति कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अ-

याज्ञवल्क्येति होवाच। यदिदꣳ सर्व्वं पूर्व्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्तꣳ सर्व्वं पूर्व्वप-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य ? ऐसें कहताभया:—जो यह सर्व पूर्वपक्ष अपरपक्षकरि

टीकाः—अब तिथि आदिकरूप कालतैं अतिमुक्ति कहिये हैः—जो यह सर्व । पूर्व पक्ष अरु अपर पक्षकरि व्याप्त है ॥ इहां अविशिष्ट अहोरात्रिका[72] कर्त्ता जो आदित्य है । सो प्रतिपत् आदिक तिथिनका कर्त्ता नहीं है । तिन प्रतिपत् आदिक तिथिनका तो वृद्धि अरु क्षयकी प्राप्तिकरि चंद्रमा कर्त्ता है । याँतें[73] तिस (चंद्रमा)

र्थ हैः—"न उदय होवैहै । न अस्त होवैहै" इत्यादिरूप श्रुतितैं आदित्यविषै वस्तुतैं अहोरात्र नहीं हैं । तैसैं हुये तिस स्वरूप विद्वान्‌विषैबी वे (अहोरात्र) नहीं संभवते हैं ॥

७१ अन्य कंडिकाके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

७२ ननु अहोरात्रादिरूप कालविषै तिथि आदिरूप कालके अंतर्भावतैं तिसतैं अतिमुक्तिके कहे हुये तिथिआदिरूप कालतैंबी अतिमुक्ति कहीहीं है । यातैं पृथक् आरंभसैं क्या किया ? तहां कहैहैं ॥ इहां अविशिष्ट पदका वृद्धि अरु क्षयकरि शून्य । यह अर्थ है ॥

७३ तब तिथिआदिरूप कालतैं अतिमुक्ति कैसैं है ? यातैं कहैहैं ॥

क्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं। केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोराप्तिमतिमुच्यत

आप्त है । सर्व पूर्वपक्ष अपरपक्षकरि अभिपन्न है । किसकरि यजमान पूर्वपक्ष अपरपक्षकी आप्तिकूं अतिक्रमण करिके मुक्त

की प्राप्तिकरि पूर्वपक्ष अरु अपरपक्षका अत्यय (नाश) होवैहै । आदित्यकी प्राप्तिकरि अहोरात्रके अत्ययकी न्यांई ॥ [७४] तहां यजमानका प्राणवायु [७५] सोई उद्गाता है। ऐसैं उद्गीथ ब्राह्मणविषै निश्चित है औ "जातैं [७६] वाक्करिहीं अरु प्राणकरि सो उद्गानकूं करताभया" ऐसैं निर्धार किया

---

७४ चंद्रकी प्राप्तिकरि तिथिआदिकका नाश माध्यंदिन श्रुतिकरि कहिये है । काण्व श्रुतिकरि तो वायुभावकी प्राप्तिकरि तिनका नाश कहा है । तिस प्रकारसैं हुये दोनूं श्रुतिनके विरोधविषै कौंन समाधान है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां तहां इस पदका काण्व श्रुतिविषै यह अर्थ है॥

७५ उद्गाताकीबी प्राणस्पंदरूप वायुरूपताकूं दोनूं श्रुतिके अनुसारकरि दिखावै हैं ॥

७६ उद्गाताका प्राणभाव । केवल प्रतिज्ञामात्रकरि घटित नहीं किंतु विचार करिके निर्धारित है । ऐसैं कहैहैं ॥

इत्युद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन। प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स उद्गाता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ५ ॥

होवैहै ? ऐसें ॥ उद्गाता ऋत्विक् वायुरूप प्राणकरि ॥ प्राणहीं यज्ञका उद्गाता है। सो जो यह प्राण है सो वायु है। सो उद्गाता है। सो मुक्ति है। सो अतिमुक्ति है॥ ५॥

है ॥ औ "अनंतर[७७] इस प्राणका आप शरीर है। ज्योतिरूप यह चंद्र है" ऐसें प्राणवायु[७८] अरु चंद्रमाकूं एक होनेतें चंद्रमाकरि अरु वायुकरि उपसंहारसें कोईबी विशेष है। ऐसें मानती हुयी श्रुति। अधिदैवतरूप वायुकरि उपसंहार करै

७७ प्राण अरु चंद्रमाकी एकता। सप्तान्न-ब्राह्मणविषै निर्धारित है। ऐसें कहैहैं ॥

७८ उक्त रीतिसें प्राण आदिकनकी एकताके हुये दोनूं श्रुतिनके अविरोधरूप फलितकूं कहैहैं ॥ इहां:—मन अरु ब्रह्माके चंद्रमाके प्राण अरु उद्गाताके वायुस्वरूपसें उपास्यभावकरि ग्रहण किये हुये मृत्युके तरणविषै विशेष नहीं है। ऐसें दोनूं श्रुतिनका विकल्पकरि संभव है। यह अर्थ है ॥ औ उपसंहार करै है। यापदका प्राणकूं औ उद्गाताकूं तिस रूपसें उपास्यताकरि काण्व श्रुति ग्रहण करै है। यह अर्थ है ॥

है ॥ किंवा[७९]:—जातैं चंद्रमाके वृद्धि अरु क्षय । वायुरूप निमित्तवाले हैं । तिसैं[८०] हेतुकरि तिथि आदिरूप कालके कर्त्ता (चंद्रमा)का कारयिता वायु (सूत्रात्मा) है । यौतैं[८१] वायु उपपन्न हुया तिथिआदिक कालतैं अतीत होवैहै । यह उपपन्नतर होवैहै ॥ तिसैं[८२] हेतुकरि अन्यश्रुतिविषै चंद्ररूपकरि जो दृष्टि। सो मुक्ति औ अतिमुक्ति है ॥ इहांतो काण्वोंकी श्रुतिनविषै दो साधनोंकी तिनके कारणरूप वायुस्वरूपकरि जो दृष्टि

---

७९ कहनेके हेतुतैंबी काण्व श्रुति घटित है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां वायु कहिये सूत्रात्मा तिसरूप निमित्तवाले अपने अवयवरूप चंद्रमाके वृद्धि अरु ह्रास हैं । जातैं सूत्रात्माके आधीन चंद्रादिरूप जगत्की चेष्टा है । यह अर्थ है ॥

८० वृद्धि आदिककी हेतुताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ कर्त्ताकी कहिये चंद्रमाकी । यह अर्थ है ॥

८१ वायुके चंद्रमाविषै करयिताभावके हुयेबी प्रकृतविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

८२ उदित अरु अनुदित होमकी न्याईं विकल्पकूं अंगीकार करिके अविरोधकूं उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—श्रुत्यंतर कहिये माध्यंदिन श्रुति । औ साधनद्वयका । यह पद दोनूंओर संबंधकूं पावता है । तहां आदिविषै मनका अरु ब्रह्माका औ उत्तर वाक्यविषै प्राणका औ उद्गाताका । यह अर्थ है ॥ औ तत् शब्द । चंद्रमाकूं विषय करनेवाला है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच॥यदिदमन्त-
रिक्षमनारम्बणमिव केनाऽऽक्रमेण य-
जमानः स्वर्गलोकमाक्रमत इति ॥ ब्र-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जो यह अंतरिक्ष अनालंबनकीन्यांई है।
किस आक्रमकरि यजमान स्वर्ग लोककूं पा-

है। सो मुक्ति औ अतिमुक्ति है। यातें दोनूं
श्रुतिनका विरोध नहीं है ॥ ५ ॥

टीकाः—[८३]कालरूप मृत्युतें यजमानकी अतिमु-
क्ति व्याख्यानकरी।सो अतिमुच्यमान हुया किस
आश्रयकरि परिच्छेदके विषय मृत्युकूं अतिक्रम-
ण करिके फलकूं पावताहै कहिये अतिमुक्त हो-
वैहै? ऐसैं कहिये हैः—जो [८४]यह प्रसिद्ध अंतरि-
क्ष (आकाश) अनालंबनकी न्यांई है। इहां
इव (न्यांई) शब्दतें सो आलंबन हैहीं। परंतु सो

८३ "जो यह अंतरिक्ष है" इत्यादिरूप अन्य प्रश्नकूं वृ-
त्तके अनुवादपूर्वक ग्रहण करै हैं॥ इहां व्याख्यान अरु व्या-
ख्येयभावकरि दोनूं क्रियापद ग्रहण करनेकूं योग्य हैं। ऐसैं
यह प्रश्नका रूप समनंतर वाक्यकरि कहिये है। यह अर्थ है॥

८४ ताकूं व्याख्यान करै हैं॥

ह्मणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण । मनो वै य-
ज्ञस्य ब्रह्मा । तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः

वताहै ? ऐसैं ॥ ब्रह्मा ऋत्विक् चंद्ररूप म-
नकरि ॥ यहहीं यज्ञका ब्रह्मा है । सो जो

नहीं जानियेहै । यह अभिप्राय है ॥ औ [85]जो
सो अज्ञायमान आलंबन है । सो सर्वनाम कि-
सकरि (किं शब्दकरि) ऐसैं पूछियेहै । [86]अन्यथा
फलकी प्राप्तिके असंभवतैं ॥ जिस आश्रयरूप
आक्रमकरि यजमान कर्मफल स्वर्गलोककूं
प्राप्त हुया अतिमुक्त होवैहै । सो क्या है ? य-
ह [87]प्रश्नका विषय है ॥ किस क्रमकरि यजमान
स्वर्गलोककूं आक्रमण करैहै ऐसैं । अर्थ यह जो
स्वर्गलोकरूप फलकूं पावताहै (अतिमुक्त होवै
है) ब्रह्मारूप ऋत्विक्करि औ मनोमय चं-
द्रकरि ॥ ऐसैं अक्षरनका न्यास पूर्वकी न्यांई

८५ "किसकरि" या प्रश्नके विषयकूं कहै हैं ॥

८६ प्रश्नके विषयकूं प्रपंचन करै हैं ॥

८७ प्रश्नके अर्थकूं संक्षेपकरि उपसंहार करै हैं ॥ इहां:—
अक्षरोंका न्यास । याका अक्षरोंकी अर्थनविषै प्रवृत्ति । यह
अर्थ है ॥

स ब्रह्मा स मुक्तिः साऽतिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ सम्पदः ॥ ६ ॥

यह मन है सो यह चंद्र है। सो ब्रह्मा है। सो मुक्ति है। सो अतिमुक्ति है। ऐसें अतिमोक्ष कहे। अब संपत् कहियेहैं॥ ६ ॥

है ॥ तहां[८८] यजमानरूप यज्ञका जो यह प्रसिद्ध मन है। सो अध्यात्म है। सो यह चंद्र अधिदेव है। जातें मन अध्यात्म है। चंद्रमा अधिदेवत है। यह प्रसिद्ध है ॥ सोई चंद्रमा ब्रह्मारूप ऋत्विक् है। तिसकरि[८९] अधिभूत ब्रह्माका परिच्छिन्नरूप है अरु अध्यात्म मनका रूप है। इन दोनूंकूं अपरिच्छिन्न चंद्रमाके रूपकरि देखताहै। तिसं[९०] चंद्रमारूप मनोमय आलंबनकरि कर्मके फलरूप स्वर्गलोककूं पावताहै। अभिप्राय यह

---

८८ " मनहीं यज्ञका ब्रह्मा है " इत्यादिरूप वाक्यके अर्थकूं कहेहैं ॥ इहां व्यवहारभूमि " तहां " इस सप्तमीका अर्थ है ॥

८९ वाक्यार्थकूं कहेहैं ॥ इहां द्वितीया जो है सो दोनूं तृतीयाओंके साथि संबंधकूं पावती है ॥

९० दर्शनके फलकूं कहेहैं ॥

जो अतिमुक्त होवैहै ॥ इहां "इति" ऐसा उपसंहारके अर्थ वचन है । यातैं इस प्रकारके मृत्युके अतिमोक्ष हैं । [९१]जातैं सर्व दर्शनके प्रकार यज्ञके अंगनकूं विषय करनेवाले इस अवसरविषै कहे हैं । ऐसैं करिके उपसंहार है । ऐसैं अतिमोक्ष हैं । अर्थ यह जो [९२]इस प्रकारके अतिमोक्ष हैं ॥ अब संपत् कहिये हैं ॥ [९३]संपत् नाम [९४]किसीबी सामान्यकरि अग्निहोत्रादिक [९५]फल-

९१ वाक् आदिकनके अग्निआदि भावकरि दर्शन कहा। त्वक्आदिकनका तो वायुआदि भावकरि दर्शन कहनेकूं योग्य है । तातैं वक्तव्यके शेषके होते उपसंहारका संभव कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

९२ वाक्आदिकविषै उक्त न्यायका त्वक्आदिकविषै अतिदेश इहां कहनेकूं वांछित है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अथ शब्द । दर्शनके प्रभेदके कथनके अनंतररूप अर्थवाला है ॥

९३ यह संपत् नाम कौन है ? ऐसैं पूछता है ॥

९४ उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां:—महान् अरु फलवाले अश्वमेधादि कर्मोंके कर्मता आदिकरि सामान्यके हुये वा अल्पकर्मोंविषै विवक्षित फलकी सिद्धि अर्थ जो संपत्ति । सो संपत् ऐसैं कहिये है। अर्थ यह जो यथाशक्ति अग्निहोत्रादि कर्मके करनेकरि अश्वमेधादि मेरेकरि करियेहै ऐसा ध्यान संपत् है ॥

९५ यद्वा देवलोकादि फलकीहीं उज्वलता आदिककी समताकरि घृतआदिककी आहुतिका संपादन संपत् है। ऐसैं कहैहैं ॥

वाले कर्मोंका तिनके फल अर्थ संपादन [संपत्] है वा फलकाहीं सर्व[96] उत्साहकरि फलके साधनके अनुष्ठानविषै प्रयत्न करनेवाले पुरुषनका किसीबी विगुणताकरि असंभव होवैगा। सो अब आहिताग्नि हुया अग्निहोत्रादिकनके मध्य यत् किंचित् कर्मकूं यथासंभव लेके (आलंबन करिके) कर्मफलकी[97] विद्वत्ताके हुये सो ताके प्रति जिस कर्मके फलकी कामनावाला होवैहै तिसी (कर्मफल) हीकूं संपादन करैहै। अन्यथा[98] राजसू-

९६ संपत्के अनुष्ठानके अवसरकूं दिखावै हैं ॥ इहां जब अनुष्ठानका असंभव होवै तब। यह शेष है औ कर्मिष्टनकूंहीं संपत्के अनुष्ठानविषै अधिकार है। ऐसैं दिखावनेकूं "आहिताग्नि हुया" ऐसैं कहा औ अग्निहोत्रादिकनका। यह षष्ठी निर्धारणविषै है औ "यथा संभव" याका वर्णाश्रमके अनुसार यह अर्थ है औ लेके। याका आलंबन करिके यह अर्थ है ॥

९७ केवल कर्मिष्ठपनाहीं संपत्के अनुष्ठाताकूं अपेक्षित नहीं किंतु ताके फलकी विद्यावान्ताबी अपेक्षित है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां ताहीकूं। याका कर्म फलकूंहीं। यह अर्थ है ॥

९८ ननु कर्महीं फलवान् हैं संपत् नहीं। तातैं फलोंकूं तिनकी कार्यता कैसैं है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विहितके अध्ययनकूं अर्थके ज्ञान अरु अनुष्ठान आदिककी परंपराकरि फलवान्पना इष्ट है औ अश्वमेध आदिकनविषै सर्वकूं अनुष्ठानका संभव नहीं है काहेतैं

य। अश्वमेध। पुरुषमेध। सर्वमेधरूप यज्ञोंके अधिकारी त्रैवर्णिकनकूं बी असंभव होवैगा। इन तिनकूं ताका पाठ केवल स्वाध्यायके अर्थ होवैगा ॥ [९९] जब तिनके फलकी प्राप्तिका उपाय कोईबी नहीं होवैगा। तब ॥ [१००] तातें तिन राजसूय आदिकनकी संपत्करिहीं तिस फलकी प्राप्ति होवै है ॥ [१०१] तातें संपदनकूंबी (कर्मोंकी न्यांई) फलवान्पना है। [१०२] यातें वे संपत् आरंभ करिये हैं ॥ ६ ॥

कितनेक कर्मविषै अधिकारी त्रैवर्णिकनकूंबी अनुष्ठानके असंभवतें। यातें तिनकूं ताके अध्ययनकरि अर्थवान्ता है उपपत्तिकरि संपदाओंकूंबी फलवान्ता माननेकूं योग्य है ॥

९९ बडे अश्वमेध आदिकके फलकी अल्प संपदाकरि प्राप्ति कैसें होवैगी? यह आशंका करिके। शास्त्रकी प्रमाणतातें होवैगी। इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥ इहां तब ताका पाठ स्वाध्यायके अर्थहीं होवैगा। ऐसें पूर्वके साथि संबंध है ॥

१०० अध्ययनकी फलवान्ताके कहनेकी योग्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां तिनकी। याका राजसूयादिकनकी। यह अर्थ है ॥

१०१ ब्राह्मणादिकनकूं राजसूय आदिकनके अध्ययनके सामर्थ्यतें तिनकूं संपत् करिहीं तिस फलकी प्राप्तिके हुयेबी क्या सिद्ध होवैहै? तहां कहैहैं ॥ इहां कर्मोंकी न्यांई ऐसें दृष्टांत अर्थ अतिशब्द है ॥

१०२ तिनकी फलवान्ताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच । कतिभिरयमद्यर्ग्भिर्होताऽस्मिन्यज्ञे करिष्यतीति । तिसृभिरिति ॥ कतमास्तास्तिस्र इति ॥

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभया ? यह होता अब कितनी ऋचाओंकरि इस यज्ञविषै करैगा ? ऐसैं ॥ तीन [ऋचाओंकरि] ऐसैं [कहतेभये] ॥ कौंनसी वे तीन

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य[103] ! ऐसैं अभिमुख करणे अर्थ कहताभयाः—कितनी[104] (कति संख्यावाली) ऋचाओं (ऋचाओंकी जातिन) करि यह होता नामक ऋत्विक् अब इस यज्ञविषै करैगा (शस्त्रकूं प्रशंसा करैहै) ? ॥ ॥ तहां इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—तीन ऋचाओंकी जातिनकरि ॥ ॥ ऐसैं कहनेवाले याज्ञवल्क्यके प्रति इतर (अश्वल) कहैहैः—

---

१०३ संपदाओंके आरंभकूं उपपादन करिके अब प्रश्नके वाक्यकूं उठावते हैं ॥

१०४ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥

पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृ-तीया ॥ किन्ताभिर्जयतीति ॥ यत्कि-ञ्चेदं प्राणभृदिति ॥ ७ ॥

ऋचा हैं। ऐसैं [पूछताभया] ॥ पुरोनुवा-क्या अरु याज्या औ तीसरी शस्याहीं ॥ क्या तिनोकरि जयकरैहै। ऐसैं ॥ जो कछु यह प्राणभृत् है ऐसैं ॥ ७ ॥

वे तीन कवन हैं ? यह संख्येय (गिनती क-रने योग्य)नकूं विषय करनेवाला प्रश्न है । पू-र्वला तो संख्याकूं विषय करनेहारा प्रश्न है ॥[105] ॥ पुरोऽनुवाक्या औ याज्या औ तृतीया श-स्याहीं है ॥ प्रयोगकालतें पूर्व जे प्रयोग क-रिये हैं (उच्चारण करियेहैं) ऋचा। सो ऋ-चाओंकी जाति "पुरोऽनुवाक्या" ऐसैं कहिये

१०५ कितनी ऋचाओंकी जातिओंकरि औ कौंनसी ऋ-चाओंकी जातिआं है। इन दोनूं प्रश्नोंके विषयके भेदकूं दि-खावै हैं ॥

है ॥ यागके अर्थ जो प्रयोग करियेहैं । सो ऋ-चाओंकी जाति “ याज्या ” ऐसैं कहिये है ॥ शस्त्रके अर्थ जो प्रयोग करियेहैं ऋचा । सो ऋ-चाओंकी जाति “ शस्या ” ऐसैं कहियेहै ॥ सर्व[१०६] तो जो कोईबी ऋचा हैं वे । वा स्तोत्रिय । वा अन्य हैं वे सर्व इनहीं तीन ऋचाओंकी जातिन-विषै अंतर्भूत होवैहैं ॥ ॥ तिनकरि किसकूं जीतता है ? ऐसैं ॥ ॥ जो कछु यह प्रा-णभूत (प्राणधारिनका समूह लोकत्रय) है [ताकूं] ऐसैं ॥ ॥ औ यातें संख्याके सामा-न्यतें जो कछुबी प्राणधारिनका समूह है। तिस सर्वकूं जय करैहै । कहिये तिस सर्व फलके स-मूहकूं संपादन करैहै । संख्या आदिकके सामा-न्यकरि ॥ ७ ॥

---

१०६ स्तोत्रिया नामक अन्यबी कोईक ऋचाओंकी जाति है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ वा अन्य । ऐसैं शास्त्रविषै जातिका ग्रहण है औ विधेयके अभेदकरि सर्व शब्दतैं पुनरुक्ति होवैहै । यातैं संपत्तिके कारणतैं यह अर्थ है औ संख्याके सामान्यतैं । याका तीन प्रकारके अविशेषतैं। यह अर्थ है ॥ प्राणधारिनका समूह। लोकत्रय विवक्षित है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययम-
द्याध्वर्य्युरस्मिन्यज्ञ आहुतीर्होष्यतीति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इ-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसा कहताभया:—अब यह अध्वर्यु इस यज्ञविषै कितनेप्रकारकी आहुतिनकूं होमैगा? ऐसें ॥ तीन

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभया:—[यह पूर्वकीन्यांई है] यह अध्वर्य्यु[107] अब इस यज्ञविषै कितनी आहुतिनकूं होम करैगा। कहिये कितने आहुतिनके प्रकार हैं? तीन हैं ऐसें ॥ ॥ वे तीन कवन हैं? ऐसें ॥ ॥ पूर्वकी न्यांई इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—जे हवनकरी हुयी उज्वलती हैं (प्रकाश करैहैं) [वे] समिध अरु घृतकी आहुतियांहैं ॥ जे हवनकरी हुयी अतिशयहीं श-

१०७ प्रथम प्रश्न संख्याकूं विषय करनेवाला है औ द्वितीय प्रश्न तो जिनकी संख्या करिये तिन संख्येयकूं विषय करनेवाला है। इस विभागकूं लखावते हैं ॥ इहां तिस सामान्यकरि। याका उज्ज्वलताकरि। यह अर्थ है ॥

ति ॥ या हुता उज्ज्वलन्ति । या हुता अ-
तिनेदन्ते । या हुता अधिशेरते ॥ कि-
न्ताभिर्जयतीति ॥ या हुता उज्ज्वलन्ति
देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इव हि

हैं ऐसें ॥ कौंनसी वे तीन हैं ? ॥ जे हुत-
हुयी उज्वल होवैहैं । जे हुतहुयी अतिशय
शब्दकूं करैहैं । जे हुतहुयी भूमिके नीचे
जायके प्रस्त्रत होवैहैं ॥ तिनकरि किसकूं
जय करैहै ? ऐसें ॥ जे हुतहुयी उज्ज्वल होवैहैं
तिनकरि देवलोककूंहीं जय करैहै । जातें

ब्दकूं करैहैं [वे] मांस आदिकनकी आहुतियां-
हैं ॥ जे हवनकरी हुयी भूमिकाके नीचे श-
यन करैहैं [वे] पय अरु सोमकी आहुतियांहैं ॥ ॥
तिनकरि किसकूं जीतता है कहिये ऐसें उत्प-
न्न करी तिन आहुतिनकरि किसकूं जय करैहै ?
ऐसें ॥ ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी उ-
ज्ज्वलन करैहैं । कहिये उज्ज्वलनयुक्त आहुतियां
संपादितहैं । तिनकरि देवलोक नामक उज्ज्व-

देवलोको या हुता अतिनेदन्ते पितृलो-कमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको

देवलोक दीप्त हुयेकी न्याईं है ॥ जे हुत-हुयी अतिशय शब्दकूं करै हैं । तिनकरि पितृलोककूं हीं जय करैहै । जातैं पितृलोक लहीं फलकूं तिस सामान्यकरि (उज्ज्वलत्वकरि) जय करैहै ॥ जे मुजकरि ये उज्ज्वल करनेवाली-यां आहुतियां संपाद्यमानहैं । वे ये साक्षात् देव-लोकमय कर्मफलके रूप हैं। देव[108]लोक नामक फ-लहीं मुजकरि संपादन करियेहै । ऐसैं संपादन करैहै ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी अति-शयहीं शब्दकूं करैहैं। तिनकरि पितृलोककूं-हीं जय करैहै । कुत्सित शब्दके कर्त्तापनैके सा-मान्यकरि ॥ जातैं पितृलोकसैं संबंद्ध संयमिनी पुरीविषै वैवस्वत (यमराज)करि पात्यमान जीवनका "हा हत भयेहैं। छोडछोड" ऐसा श-ब्द होवैहै । तैसैं अवदानरूप आहुतियां शब्दकूं करैहैं । तिसकरि पि[109]तृलोकके सामान्यतैं पितृ-

१०८ उक्त अर्थकूं संक्षेपकरि कहैहैं ॥

१०९ ननु मांस आदिककी आहुतिनकूं पितृलोकके सा-

या हुता अधिशेरते मनुष्यलोकमेव ताभिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ॥ ८ ॥

अतिशयहीं शब्द करैहै ॥ जे हुतहुयी च्यारी ओरतें प्रस्रवत होवैहैं । तिनकरि मनुष्य लोककूंहीं जय करैहै । जातें मनुष्य लोक नीचेकी न्यांई है ॥ ८ ॥

लोकहीं मुजकरि संपादन करियेहै । ऐसें संपादन करैहै ॥ जे आहुतियां हवनकरी हुयी भूमिकाके नीचे शयन करैहैं । तिनकरि मनुष्यलोककूंहीं जय करैहै । भूमिकाके उपरि संबंधके सामान्यतें । जातें अधकी न्यांई अधहीं मनुष्यलोक है । ऊपरके साधने योग्य लोकनकूं अपेक्षाकरिके । अथवा अधोगमनकूं अपेक्षा करिके ॥ यातें मनुष्यलोकहीं मुजकरि संपादन

थि उक्त प्रकारका सामान्य कैसें है ? यातें कहैहैं ॥ इहां अधोगमनके प्रति अपेक्षा करिके । याका सोम आदिकनकी अहुतिनका अधोगमनहीं है औ पापप्रचुर मनुष्य लोकका तैसा गमन है । ताकूं अपेक्षा करिके । यह अर्थ है औ यातें याका सामान्यतें । यह अर्थ है औ दक्षिणतैं आहवनीयका । यह शेष है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कतिभिर-
यमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गो-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
अब कितनी देवताओंकरि यह ब्रह्मा द-
क्षिणबाजू यज्ञकूं रक्षण करैहै? ऐसैं॥ एक

करिये है। ऐसैं संपादन करैहै। पय अरु सोम-
की आहुतिनके देनेके कालविषै ॥ ८ ॥

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहता भयाः—
[यह पूर्वकी न्यांई है] यह ब्रह्मा नामक ऋत्वि-
क् दक्षिणतैं (दक्षिण दिशाके बाजू)। ब्रह्मास-
नविषै स्थित होयके यज्ञकूं रक्षण करैहै। सो।
कितनी देवताकरि रक्षण करैहै? यह बहुव-
चन प्रासंगिकहै।[११०] जातैं एकैंहीं देवताकरि यह
रक्षण करैहै ऐसैं जाने हुये आपहीं जाननेवालेकूं
बहुवचनकरि प्रश्न नहीं संभवै है। तातैं पूर्वकी
दो कंडिकामैं प्रश्न अरु प्रतिवचनोंविषै “कि-
तनीकरि कितनीकरि। तीनकरि तीनहैं” ऐसैं

---

११० प्रासंगिक बहुवचन है। इस प्रकारसैं उक्त अर्थकूं
प्रकट करै हैं ॥

पायतीत्येकयेति ॥ कतमा सैकेति । म-
देवताकरि ॥ कौंन सो एक देवता है ? ऐसें

प्रसंगकूं देखीके इहांबी बहुवचनकरि हीं प्रश्नका उपक्रम करियेहै । अथवा[111] प्रतिवादी (वक्ता)के व्यामोहअर्थ बहुवचनहै ॥ इतर (याज्ञवल्क्य) कहै हैः—एक (देवता) करि [रक्षणकरैहै] ऐसें । एक सो देवताहै जिसकरि दक्षिणतैं ब्रह्मासनविषै स्थित होयके यज्ञकूं रक्षण करैहै ॥ ॥ सो एक देवता कौंनसीहै ? ऐसें ॥ ॥ मनहींहै ऐसें कहिये सो देवता मनहै ॥ जीतें[112] मनसैं ब्रह्मा ध्यानकरिहीं व्यापार करैहै । "तिस यज्ञके मन औ वाक् मार्गहैं । तिनदोनूंके मध्य अन्यतर (वाक्) कूं ब्रह्मा मनकरि संस्कार करैहै" इस अन्यश्रुतितैं ॥ तिस हेतुकरि मनहीं देवताहै । तिस मनकरि हीं ब्रह्मा यज्ञकूं रक्षण करैहै ।

---

१११ जल्पकथा प्रस्तुत है । ऐसैं हृदयविषै धारण करिके बहुवचनविषै अन्यगतिकूं कहैहैं ॥

११२ मनके देवतापनेकूं साधते हैं ॥ इहां यह अर्थ है । तिन वाक् अरु मनरूप मार्गोंविषै एक वाचाकूं मन (मौन) करि ब्रह्मा संस्कारयुक्त करै है । वाणीका विसर्ग है । प्रायश्चित्तके विधानतैं । यह अन्य श्रुतिका अर्थ है ॥

न एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥ ९ ॥

मनहीं है ऐसें ॥ अनंत प्रसिद्ध मन है । अनंतरूप विश्व देवता हैं । सो तिसकरि अनंतरूपहीं लोककूं जय करैहै ॥ ९ ॥

औ सो मन[113] । वृत्तिनके भेदकरि अनंत है ॥ इहां "वै" शब्द प्रसिद्धका प्रकाशक है । मनकी अनंतता प्रसिद्ध है । तिसकी अनंतताके अभिमानिनी सर्व देवता अनंतहैं "सर्व देव जहां एक होवैहैं" इस अन्यश्रुतितैं । तिसैं[114] अनंतताके सामान्यतैं सो तिसकरि अनंतहीं लोककूं जयकरैहै ॥ ९ ॥

---

११३ तथापि संपत्की सिद्धि कैसैं होवैगी ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जिसमनविषै सर्व देव एकरूप होवैहैं कहिये अभिन्नताकूं पावते हैं तिसविषै विश्वेदेवकी दृष्टिकरि अनंतलोककी प्राप्ति होवैहै । यह अन्य श्रुतिका अर्थ है ॥

११४ अनंतकूंहीं । इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां तिसकरि याका उक्त प्रकारकरि यह अर्थ है । औ तिसकरि मनविषै विश्वेदेवकी दृष्टिके अध्यासकरि । यह अर्थ है औ सो ऐसैं उपासकका कथन है औ पूर्ववत् याका अभिमुख करनेवास्ते है । यह अर्थ है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययम-द्योद्गाताऽस्मिन्यज्ञे स्तोत्रियास्तोष्य-तीति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इ-ति ॥ पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यै-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—अब कितनी स्तोत्रियाहैं। यह उद्गता इस यज्ञविषै स्तुति करैगा? ऐसें ॥ तीन हैं ऐसें॥ कौंनसी वे तीन हैं? ऐसें ॥ पुरोनुवाक्या। अरु याज्या औ तीसरी शस्याहीं ॥ कौंनसी

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभ-याः—[यह पूर्वकी न्यांई है] [जितनीकरि] अब यह उद्गाता स्तुति करैहै। वे स्तोत्रिया ऋचा कितनी हैं ?। कहिये स्तोत्रिया नाम ऋ-क् सामसमूह है ॥ कितनी ऋचाओंका समु-दाय है? स्तोत्रिया वा शस्या वा जे कोईबी ऋ-

१ प्रतिवचनकूं ग्रहण करै हैं ॥ इहां प्रगीत जो ऋ-चाओंका समूह। सो स्तोत्र कहिये है औ अप्रगीत जो ऋचा-ओंका समूह। सो शस्य कहिये है ॥

व तृतीया ॥ कतमास्ता या अध्यात्ममिति ॥ प्राण एव पुरोऽनुवाक्याऽपानो याज्या व्यानः शस्या ॥ किन्ताभिर्जय-

वे ऋचा हैं जे अध्यात्मरूप होवैंहैं? ऐसें ॥ प्राणहीं पुरोनुवाक्या है। अपान याज्या है। व्यान शस्या है ॥ तिनकरि किसकूं जय क-

चा हैं वे सर्व तीनहीं हैं। ऐसें कहेहैंः[116]—औ वे व्याख्यान करी। पुरोऽनुवाक्या औ याज्या औ तीसरी शस्याहीं है ऐसें ॥ [117]तहां पूर्व कहाथाकिः—जो कछु यह प्राणभृत् है तिस सर्वकूं जय [118]करैहै ऐसें। सो किस सामान्यकरि जय क-

११६ कौंनसी वे ऋचा हैं। इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

११७ प्रश्नांतररूप वृत्तकूं अनुवाद करिके। ग्रहण करैहैं ॥ इहां "तहां" इस सप्तमीका यज्ञाधिकार अर्थ है ॥

११८ ननु पुरोनुवाक्या आदिककरि लोकत्रयका जयरूप फल किस सामान्यकरि होवैहै? इस अपेक्षाके हुये। संख्या विशेषकरि होवैहै। ऐसें उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कत्ययमद्योद्गाताऽस्मिन्यज्ञे स्तोत्रियास्तोष्यतीति ॥ तिस्र इति ॥ कतमास्तास्तिस्र इति ॥ पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यै-

---

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—अब कितनी स्तोत्रियाहैं। यह उद्गता इस यज्ञविषै स्तुति करैगा? ऐसें ॥ तीन हैं ऐसें॥ कौंनसी वे तीन हैं? ऐसें ॥ पुरोनुवाक्या। अरु याज्या औ तीसरी शस्याहीं ॥ कौंनसी

टीकाः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—[यह पूर्वकी न्यांई है] [जितनीकरि] अब यह उद्गाता स्तुति करैहै। वे स्तोत्रिया ऋचा कितनी हैं ?। कहिये स्तोत्रिया नाम ऋक् सामसमूह है ॥ कितनी ऋचाओंका समुदाय है? स्तोत्रिया वा शस्या वा जे कोईबी ऋ-

---

... १ प्रतिवचनकूं ग्रहण करै हैं ॥ इहां प्रगीत जो ऋचाओंका समूह। सो स्तोत्र कहिये है औ अप्रगीत जो ऋचाओंका समूह। सो शस्य कहिये है ॥

व तृतीया ॥ कतमास्ता या अध्यात्म-मिति ॥ प्राण एव पुरोऽनुवाक्याऽपानो याज्या व्यानः शस्या ॥ किन्ताभिर्जय-

वे ऋचा हैं जे अध्यात्मरूप होवैहैं? ऐसैं ॥ प्राणहीं पुरोनुवाक्या है। अपान याज्या है। व्यान शस्या है ॥ तिनकरि किसकूं जय क-

चा हैं वे सर्व तीनहीं हैं। ऐसैं कहैहैं:[116]—औ वे व्याख्यान करी। पुरोऽनुवाक्या औ याज्या औ तीसरी शस्याहीं है ऐसैं ॥ [117]तहां पूर्व कहाथाकि:—जो कछु यह प्राणभृत् है तिस सर्वकूं जय करैहै ऐसैं। सो[118] किस सामान्यकरि जय क-

---

११६ कौनसी वे ऋचा हैं। इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

११७ प्रश्नांतररूप वृत्तकूं अनुवाद करिके। ग्रहण करैहैं ॥ इहां "तहां" इस सप्तमीका यज्ञाधिकार अर्थ है ॥

११८ ननु पुरोनुवाक्या आदिककरि लोकत्रयका जयरूप फल किस सामान्यकरि होवैहै? इस अपेक्षाके हुये। संख्या विशेषकरि होवैहै। ऐसैं उक्त अर्थकूं स्मरण करावैहैं ॥

तीति ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया । द्युलोकꣳ

रैहै ? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्याकरि पृथिवीकूंहीं जय करैहै । याज्याकरि अंतरिक्ष लोककूं

रैहै । यह [119]कहियेहैः–कौनसी[120] वे तीन ऋचा हैं ? जे अध्यात्म होवैहैं । ऐसैं प्राणहीं पुरोऽनुवाक्या है अपशब्दके सामान्यतैं ॥ अपान याज्या है अनंतर होनेतैं । [121]जातैं अपानकरि दत्त हविकूं देवता ग्रसतेहैं औ याग प्रदान है ॥ व्यान शस्या है " प्राणनैकूं[122] करता हुया अपा-

---

११९ उक्त अधियज्ञकूं स्मरण करायके अध्यात्म विशेषकूं दिखावनेकूं उत्तर ग्रंथ है । ऐसैं कहैहैं ॥

१२० प्राण आदिकविषै औ पुरोनुवाक्या आदिकविषै पृथिवी आदिक लोकनकी दृष्टि होवैहै । ऐसैं प्रश्नपूर्वक कहैहैं ॥

१२१ अपानविषै याज्याकी दृष्टिविषै हेतु अंतरकूं कहैहैं ॥ इहां अपानकरि याका । हस्त आदिकसैं आदानरूप व्यापारकरि । यह अर्थ है ॥

२२२ प्राण अरु अपानके व्यापार विना शस्त्रके प्रयोगकूं अन्य श्रुतिविषै सिद्ध होनेतैं व्यानविषै शस्याकी दृष्टि होवैहै ॥ इहां "तहां" इस सप्तमीका पुरोनुवाक्या आदिकनविषै । यह

शस्यया ॥ ततो ह होताऽश्वल उपरराम ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

जय करैहै । शस्याकरि स्वर्ग लोककूं जय करैहै ॥ तदनंतर होता अश्वल। प्रश्नतैं उपराम होताभया ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथम-मश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

ननकूं न करता हुया ऋचाकूं उच्चारण करैहै" इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ तिन ऋचाओंकरि किसकूं जय करैहै ? यह व्याख्यानकिया ॥ तहां (पुरोऽनुवाक्यादिकनविषै) विशेष संबंधका सामान्य नहीं कहा है। सो इहां कहियेहै । अन्य सर्व व्याख्यान किया ॥ लोके[१२३] संबंधके सा-

---

अर्थ है ॥ इहां । ऐसैं अनंतर वाक्यका कथन है औ अन्य सर्व । ऐसैं संख्याके सामान्यका कथन है ॥

१२३ क्या सो विशेष संबंधका सामान्य है ? सो कहैहैं ॥

तीति ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया । द्युलोकꣳ

रैहै ? ऐसैं ॥ पुरोनुवाक्याकरि पृथिवीकूंहीं जय करैहै । याज्याकरि अंतरिक्ष लोककूं

रैहै । यह [119] कहियेहैः—कौनसी [120] वे तीन ऋचा हैं ? जे अध्यात्म होवैहैं । ऐसैं प्राणहीं पुरोऽनुवाक्या है अपशब्दके सामान्यतैं ॥ अपान याज्या है अनंतर होनेतैं । जातैं [121] अपानकरि दत्त हविकूं देवता ग्रसतेहैं औ याग प्रदान है ॥ व्यान शस्या है "प्राणनेकूं [122] करता हुया अपा-

---

११९ उक्त अधियज्ञकूं स्मरण करायके अध्यात्म विशेषकूं दिखावनेकूं उत्तर ग्रंथ है । ऐसैं कहैहैं ॥

१२० प्राण आदिकविषै औ पुरोनुवाक्या आदिकविषै पृथिवी आदिक लोकनकी दृष्टि होवैहै । ऐसैं प्रश्नपूर्वक कहैहैं ॥

१२१ अपानविषै याज्याकी दृष्टिविषै हेतु अंतरकूं कहैहैं ॥ इहां अपानकरि याका । हस्त आदिकसैं आदानरूप व्यापारकरि । यह अर्थ है ॥

१२२ प्राण अरु अपानके व्यापार विना शस्त्रके प्रयोगकूं अन्य श्रुतिविषै सिद्ध होनेतैं व्यानविषै शस्याकी दृष्टि होवैहै ॥ इहां "तहां" इस सप्तमीका पुरोनुवाक्या आदिकनविषै । यह

शस्यया ॥ ततो ह होताऽश्वल उपरराम ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य प्रथममश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

जय करैहै । शस्याकरि स्वर्ग लोककूं जय करैहै ॥ तदनंतर होता अश्वल। प्रश्नतैं उपराम होताभया ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथम-मश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

ननकूं न करता हुया ऋचाकूं उच्चारण करैहै" इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ तिन ऋचाओंकरि किसकूं जय करैहै ? यह व्याख्यानकिया ॥ तहां (पुरोऽनुवाक्यादिकनविषै) विशेष संबंधका सामान्य नहीं कहा है । सो इहां कहियेहै । अन्य सर्व व्याख्यान किया ॥ लोक[१२३] संबंधके सा-

---

अर्थ है ॥ इहां । ऐसैं अनंतर वाक्यका कथन है औ अन्य सर्व । ऐसैं संख्याके सामान्यका कथन है ॥

१२३ क्या सो विशेष संबंधका सामान्य है ? सो कहैहैं ॥

मान्यकरि पृथिवी लोककूंहीं पुरोऽनुवाक्या-करि जय करैहै ॥ अंतरिक्ष लोककूं याज्या-करि जय करैहै । मध्यभावके सामान्यतैं ॥ द्युलोककूं शस्याकरि जय करैहै । ऊर्ध्वभा-वके सामान्यतैं ॥ तातैं आपके प्रश्नके निर्णयतैं[124] यह होता अश्वल उपराम होताभया । यह हमारा गोचर (विषय) नहीं है । ऐसैं [जा-निके] ॥ १० ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य प्रथम-मश्वल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ १ ॥

इहां यह अर्थ हैः--पृथिवीरूप लोकके साथि प्रथमताकरि संबंधका सामान्य पुरोनुवाक्याविषै है। तिसकरि पृथिवी लो-ककूंहीं पावता है ॥

१२४ तूर्ष्णींभावकूं भजनेहारे अश्वल मुनिके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयाध्याय-गत-प्रथम ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य द्वितीय-मार्त्तभाग-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

अथ हैनं जारत्कारव आर्त्तभागः प-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य द्वितीय-मार्त्तभाग-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥२॥

अर्थः—अनंतर या (याज्ञवल्क्य)कूं जा-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य द्वितीय-मार्त्तभाग-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

टीकाः—[125]आख्यायिकाका संबंध प्रसिद्धहीं है ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्याय-गत-द्वितीय-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ २ ॥

१२५ अन्य (द्वितीय) ब्राह्मणकूं अवतार देते हुये आख्यायिका किस अर्थ है । ऐसें शंका करनेवालेके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातें याज्ञवल्क्य विद्याके प्रकर्षके वशातें इहां पूजाभागी लखीयेहै । तैसें आर्त्तभाग नहीं ॥ विद्याकी मंदतातें । यातें विद्याकी स्तुति अर्थ यह आख्यायिका है ॥

प्रच्छ। याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ कति-
ग्रहाः कत्यतिग्रहा इत्यष्टौ ग्रहा अष्टा-

रत्कारव आर्त्तभाग पूछताभया। हे याज्ञव-
ल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—कितने ग्रह हैं। कित-
ने अतिग्रह हैं! ऐसैं॥ अष्ट ग्रह हैं। अष्ट अ-

कालरूप औ कर्मरूप [१२६]मृत्युतैं अतिमुक्ति व्या-
ख्यानकरी ॥ कौंन[१२७] फेर यह मृत्यु है जिसतैं
अतिमुक्ति व्याख्यान करी है औ[१२८] सो मृत्यु स्वा-
भाविक अज्ञानतैं होनेवाले आसंगका आस्पद
(विषय) हीं है आस्पद जिसका ऐसा है औ
[१२९]अध्यात्म अरु अधिभूत विषयकरि परिच्छिन्न
अरु [१३०]ग्रहं अतिग्रहरूप है ॥ [१३१]तिसैं परिच्छिन्नरूप

१२६ अब ब्राह्मणके अर्थकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥

१२७ मृत्युके स्वरूपकूं पूछता है ॥

१२८ ताके स्वरूपके निरूपण अर्थ ब्राह्मणकूं उठावतेहैं ॥ इहां सो मृत्यु ऐसैं संबंध है औ स्वाभाविक कहिये नैसर्गिक (अनादिसिद्ध) जो अज्ञान । तिसतैं जो आसंग होवैहै । ताका आस्पदहीं है आस्पद (स्थानक) जाका ऐसा जो मृत्यु । सो स्वाभाविकाज्ञानासंगास्पद कहियेहै । ऐसैं विग्रह है ॥

१२९ ताके विषयकूं कहिके व्याप्तिकूं कहैहैं ॥

१३० ताके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

१३१ अग्नि आदिकनके मध्य उक्त प्रकारके मृत्युकी व्या-

वतिग्रहा इति ॥ ॥ ये तेऽष्टौ ग्रहा अष्टा
वतिग्रहाः कतमे त इति ॥ १ ॥

तिग्रह हैं ऐसैं ॥ जे वे अष्ट ग्रह हैं । अष्ट
अतिग्रह हैं । वे कौंनसे हैं ? ऐसैं ॥ [पूछ-
ताभया । तहां कहैहैं] ॥ १ ॥

मृत्युतैं अतिमुक्तके अग्नि आदित्य आदिकरूप
उद्गीथ प्रकरणविषै व्याख्यानकिये औ अश्वलके
प्रश्नविषै उद्गत विशेष (अग्नि आदिगत दृष्टि-
भेद) कोईबी व्याख्यानकिया औ[132] सो यह (अ-
ग्नि आदित्य आदि स्वरूप सूत्रात्माका पदरूप)
उपासन सहित कर्मनका फल[133] [उक्त प्रकारके मृ-

तिकूं कथन करै हैं ॥ इहांः—वेबी ग्रह अरु अतिग्रहकरि
गृहीत हैं। अर्थ अरु इंद्रियनके संबंधि होनेतैं यह अर्थ है औ
तद्गतविशेष । याका अग्नि आदिगत दृष्टिका भेद । यह अर्थ
है औ कोईकबी व्याख्यान किया। ऐसैं संबंध है ॥

१३२ सूत्रात्माकेबी मृत्युकरि ग्रस्तपनैकूं अभिप्रायका विषय
करिके । कहैहैं ॥ इहां अग्नि अरु आदित्यादिस्वरूप । याका
सौत्र (सूत्रात्माका) पद । यह अर्थ है औ फल जो है
सो उक्त प्रकारके मृत्युकरि ग्रस्त है । यह शेष है ॥

१३३ ननु बंधनरूप मृत्युका स्वरूप क्यूं कहियेहै ? त-
हां कहैहैं ॥

त्युकरि ग्रस्त] है। इस साध्य साधनरूप सं-
सारतैं मोक्ष कर्त्तव्य है। यातैं बंधनरूप मृत्युका
स्वरूप कहियेहै । [134]जातैं बद्ध (बांधे हुये)का
मोक्ष कर्त्तव्य है ॥ [135]यद्यपि अतिमुक्तका स्वरूप-
कहा। तहांबी सो अतिमुक्त मृत्युरूप ग्रह अरु
अतिग्रहतैं अविनिर्मुक्तहीं है ॥ तिसें[136] प्रकार क-
हा है:—"अशनाया (क्षुधा) मृत्यु है । यहहीं
मृत्यु है" ऐसें आदित्यविषे स्थित पुरुषकूं अं-
गीकार करिके कहैहै औ "[137]एक मृत्यु बहुत हैं"
ऐसें [138]तदात्मभावकूं प्राप्तभया । मृत्युकी प्राप्तिके

---

१३४ ननु मोक्षके कर्त्तव्य हुये बंधनरूपका उपवर्णन अ-
नुपयुक्त है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१३५ अग्नि आदिकनके मध्य कही जो उक्त प्रकारके मृत्युकी
व्याप्ति। ताकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां अविनिर्मुक्तहीं अतिमुक्तबी।
यह शेष है ॥

१३६ तथापि सूत्रकूं यथोक्त मृत्युकी व्याप्ति कैसें है ? त-
हां कहैहैं ॥

१३७ अग्नि आदिकनकूं मृत्युकी व्याप्ति कैसें है । जातैं
तहां प्रमाण नहीं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां बहुत हैं। यह पद
छांदस है ॥

१३८ तथापि मृत्युतैं अतिमुक्त विद्वानकूं ताकी प्राप्ति न-
हीं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

तांई अतिमुक्त होवैहै ? तहां कहियेहैः–औ[१३९] तहां (सूत्रात्माके पदविषै) मृत्युरूप ग्रह अरु अतिग्रह नहींहैं ऐसैं नहीं "अब इस मनका द्यौ (स्वर्गलोक) शरीरहै । ज्योतीरूप यह आदित्यहै ॥ औ मन[१४०] ग्रहहै । सो कामरूप अतिग्रहकरि गृहीतहै" ऐसैं यह उपनिषद् कहैगी औ "प्राणहीं ग्रहहै । सो अपानरूप अतिग्रहकरि गृहीतहै ॥ ऐसैं वाक्हीं ग्रहहै । सो नाममय अतिग्रहकरि गृहीतहै" ऐसैं कहैगी ॥ तैसैं[१४१] तीन अन्नके विभागविषै हमनैं व्याख्यान कियाहै औ यह सुष्ठुप्रकारसैं विचार[१४२] कियाहैः–जोई प्र-

१३९ सूत्रात्माके पदविषै मृत्युकी व्याप्तिकूं प्रकारांतरकरि प्रकट करै हैं ॥

१४० मनविषै कार्य अरु करणरूपकरि स्वर्गकी औ आदित्यकी एकता होहु । तथापि सूत्रात्माकूं ग्रह अरु अतिग्रहकरि गृहीतपना कैसें है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१४१ वाक् आदिककी औ वक्तव्य आदिककी ग्रहरूपता औ अतिग्रहरूपताके हुये हिरण्यगर्भविषै क्या आया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१४२ औ कर्मफलकूं [illegible] होनेतैं ता (कर्म)का फलरूप सूत्रात्माका पद मृत्युकरि ग्रस्तहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जोई कर्मबंधकी प्रवृत्तिका प्रयोजक (का-

वृत्तिका कारणहै । सोई निवृत्तिका कारण नहीं होवैहै ॥ ॥ केई[१४३]कतो सर्व कर्मकूंहीं निवृत्तिका कारण मानतेहैं । ई[१४४]सैं कारणतें पूर्व पूर्व मृत्युतें मुक्त होवैहै । उत्तर उत्तरकूं प्रतिपद्यमान होवैहै । सो व्यावृत्तिके अर्थहीं प्रतिपद्यमान होवैहै! परंतु तिसतिस पदकी प्राप्ति अर्थ नहीं।

रण) है सोई बंधनिवृत्तिका कारण नहीं है। यातें कर्मका फल हिरण्यगर्भका पद बंध नहीं है ॥

१४३ स्वमतकूं कहिके । मतांतरकूं कहैहैं ॥ इहां:—सर्वहीं कर्म यह शेष है औ स्वर्गकाम वाक्यविषै देहके आत्मभावकी निवृत्ति है औ गोदोहन वाक्यविषै स्वतंत्र अधिकारकी निवृत्ति है । नित्यनैमित्तिक विधिनविषै अन्य अर्थके उपदेशकरि स्वाभाविक प्रवृत्तिका निरोध होवैहै । निषेध वाक्यनविषै साक्षात्हीं स्वाभाविक प्रवृत्तिआं निरोधकूं पावतिआं हैं । तातें ऐसैं सर्वहीं कर्मकांड निवृत्तिरूप द्वारकरि मोक्षपर है । यह अर्थ है ॥

१४४ ननु शास्त्रीय कर्मरूप हेतुतें उत्तर उत्तर पूर्वतें अतिशय वाले कार्यकरणके संघातकूं प्राप्त हुया पूर्व संघाततैं मुक्त होवैहै । तातें कर्मकांडकूं निवृत्तिपरता कैसैं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ ॥ इहां यह अर्थ है:—जो यह उत्तर उत्तर सातिशय फलरूप प्रजापतिका पद है । सोबी प्रासादके आरोहणके क्रमकरि व्यावृत्तिद्वारा मोक्षके प्रति अवतार देनेकूं है। परंतु तिसीहीं प्रजापतिके पदविषै श्रुतिका तात्पर्य नहीं है काहेतें ताकूंबी निरतिशय फलरूपताके अभावतें ॥

[145] यातैं कहैहैं:—द्वैतके क्षयतैं (द्वैतके क्षयपर्यंत) सर्व मृत्युहै । द्वैतके क्षय हुये तो परमार्थतैं मृत्युकी प्राप्तिकूं अतिक्रमण करिके मुक्त होवैहै ॥ यातैं अंतरालविषै जो मुक्ति होवैहै सो आपेक्षिकी हुई गौणीहै ॥ [146] ॥ सर्व यह ऐसैं बृहदारण्यक उक्त नहीं है ॥ [147] ॥ ननु सर्वसैं एकतारूप

१४५ फलितकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं पूर्व पूर्वकूं परित्याग करिके उत्तर उत्तरकूं प्राप्तभया पुरुष । तिस तिसकी निवृत्तिद्वारा मुक्तिके अर्थहीं सो प्राप्त होवैहै । परंतु तिस तिस पदकी प्राप्ति अर्थहीं वाक्य पर्यवसानकूं प्राप्त नहीं है । काहेतैं ताकूं अंतवान् होनेकरि अफलरूप होनेतैं । तातैं द्वैतके क्षय पर्यंत सर्वबी फलविशेष मृत्युकरि ग्रस्त होनेतैं "प्रासाद आरोहण" न्यायकरि मोक्षके अर्थ स्थित होवैहै । हिरण्यगर्भके पदकी प्राप्तिकरि द्वैतके क्षय भये तो वस्तुतैं मृत्युकी प्राप्तिकूं उल्लंघनकरिके परमात्मरूपसैं जो स्थित होवैहै सो मुक्त होवैहै । तिस प्रकार हुये मनुष्यभावतैं पीछे औ परमात्मभावतैं आगे मध्यमैं जो तिसतिस पदकी प्राप्ति है । सो प्रसिद्ध आपेक्षिकी हुयी गौणी मुक्ति है । मुख्या तो पूर्व उक्तहीं है ॥

१४६ सर्व यह उत्प्रेक्षामात्रकरि आरचित है परंतु बृहदारण्यकका औ अन्य श्रुतिका अर्थ नहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

१४७ सर्वकी एकतामय मोक्षरूप बृहदारण्यकका अर्थहीं हमोंकरि कहिये है । तातैं हमारा कथन बृहदारण्यकका अर्थ नहीं कैसैं है ? इस प्रकार प्रतिवादी (पूर्वपक्षी) शंका करैहै ॥

मोक्षहै "तातैं सो सर्व होता भया" इस श्रुतितैं? तहां सिद्धांती कहैहैं बाढ[148] (सत्य) है। यह[149] (सर्वसैं एकत्वरूप बृहदारण्यकका अर्थ) होवैहैबी ॥ परंतु[150] "ग्रामकी कामनावाला यजन करै। पशुकी कामनावाला यजनकरै" इत्यादि कर्मश्रुतिनकूं तिस अर्थता (उक्त प्रकारके मोक्षकी अर्थता) नहीं घटैहै ॥ जबहीं[151] इन श्रुतिनकूं अद्वैतरूप अर्थताहीं होवै औ ग्राम पशु अरु स्वर्ग आदिरूप अर्थवान्ता नहीं होवै। तब उक्त श्रुतिनकरि ग्राम पशु अरु स्वर्ग आदिक नहीं ग्रहणकिये जाते औ कर्मफलकी विचित्रता विशेष तो ग्रहण करियेहैं। [तातैं तिनकर्म श्रु-

---

१४८ सिद्धांती अंगीकार करै हैं ॥

१४९ अंगीकार किये अंशकूं स्पष्ट करै हैं ॥ यह ॥ इहां:— सर्वकी एकता आरण्यकका अर्थ होवैबी है ऐसैं योजना है ॥

१५० तब सर्व यह बृहदारण्यक उक्त नहीं है। यह कैसैं कहा? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तातैंउक्त रीतिकरि कर्मश्रुतिनकूं उक्त प्रकारके मोक्षकी अर्थता नहीं घटती है। तिसकरि सर्व यह कल्पनामात्र है। श्रौत (श्रुतिका अर्थ) नहीं है ॥

१५१ कर्मश्रुतिनकी मोक्षार्थताके अभावकूं समर्थन करै हैं ॥ इहां:—तातैं तिनकी मोक्षार्थता नहीं है। यह शेष है ॥

तिनकूं मोक्ष अर्थता नहींहै] ॥ ॥ औ जब[152] वैदिककर्मनकूं मोक्षार्थताहीं होवै तब संसारहीं नहीं होवैगा ॥ ॥ औ[153] कर्मनकूं मोक्षार्थताके हुयेबी अनुनिष्पादित पदार्थ (कर्म)का स्वभाव संसारहै ॥ जैसैं[154] आलोकविषै रूपदर्शनके अर्थवाला सर्वबी तहां स्थित पदार्थ प्रकाशकरियेहींहै। तैसैं॥ इस प्रकार जो कहै? सो[155] बनै नहीं:— काहेतें प्रमाणके असंभवतें कहिये वि[156]द्योसहित वैदिककर्मनकी अद्वैतार्थताके हुये अन्य (बंध) की अनुनिष्पादितता (पीछे उत्पाद्यता)विषै

१५२ किंवा:—संसार। प्रथम धर्म अधर्म हेतुवाला है औ वे (धर्म अधर्म) विधिनिषेधके आधीन हैं। तिन (विधिनिषेध)कूं जब तुजकरि उक्त रीतिकरि मोक्षार्थता होवै। तब हेतुके अभावतें संसारहीं नहीं होवैगा। ऐसैं कहै हैं ॥

१५३ विधिनिषेधकूं निवृत्तिद्वारा मुक्तिरूप अर्थवान्‌ताके हुयेबी विधि आदिकके ज्ञानतें अनंतर उत्पादनकिया यह कर्मपदार्थ ताका यह स्वभाव है। जो कर्त्ताकूं अनर्थके साथि जोडता है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

१५४ मोक्षरूप अर्थवाला कर्मकांडबी संसारके अर्थ होवैहै। ऐसैं प्रतिवादी। दृष्टांत सहित कहैहै ॥

१५५ प्रमाणके अभावकरि सिद्धांती। परिहार करै हैं ॥

१५६ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

प्रमाणका असंभवहै ॥ प्रत्यक्ष[157] प्रमाण नहींहै । अनुमान नहींहै औ याहीतें आगम (शास्त्ररूप प्रमाण) नहीं है ॥ ॥ ननु[158] उभय एक वाक्यकरि दिखाइयेहै । कुल्याप्रणयन[159] अरु आलोक आदिककी न्यांई? ऐसें जो कहै । सो[160] बनै नहीं:—काहेतें ऐसें वाक्यधर्मके असंभवतें औ एक वाक्यगत[161] अर्थकूं प्रवृत्तिकी अरु निवृत्तिकी

---

१५७ असंभवकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१५८ कर्मश्रुतिके वाक्यका अवांतर तात्पर्य यथाश्रुत अर्थविषै ग्रहण करियेहै । निवृत्तिद्वारा मुक्तिविषैतो महा तात्पर्य है ? ऐसें अंगीकार करिके। वही प्राचीनवृत्तिकार (भर्तृप्रपंच) शंका करै है ॥

१५९ कृत्रिम क्षुद्र नदीयां कुल्या कहिये हैं । तिनकी रचना । शाली (धान्यविशेष)के अर्थ जलपान अर्थ औ आचमन आदिक अर्थ है अरु प्रदीप जो है सो प्रासादकी सोभा अर्थ कियाहुया गमनादिकका हेतुबी होवैहै अरु वृक्षके मूलविषै जलकासेचन अनेक अर्थवाला होवैहै । तैसें कर्मकांड अनेक अर्थवाला है ? ऐसें प्रतिवादी उपपादन करै है ॥

१६० एक वाक्यका यथाश्रुत अर्थकरि अर्थवान्ता संभवै है । इहां तात्पर्य । कलपना करने योग्य नहीं । कल्पकके अभावतें औ तेरेकरि उक्त रीतिसें अनेक अर्थवान्तारूप धर्म । एक वाक्यकूं नहीं संभवै है " अर्थकी एकतातैं एक वाक्य है " इस न्यायतें । इस रीतिसें सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

१६१ वाक्यकूं अनेकार्थताके अभाव हुयेबी ताके अर्थरूप

साधनता जाननेकूं शक्य नहीं है ॥ कुल्याप्रणयन[१६२] अरु आलोक आदिकविषे अर्थकूं प्रत्यक्ष होनेतें अदोष है ॥ ॥ यद्यपि[१६३] इस अर्थविषे मंत्र देखे हैं। यातें हमोंकरि कहियेहै? ऐसें जो कहै तो। यहीं-[१६४] हीं तो प्रथम अर्थ हैः—प्रमाणकरि अगम्य मंत्र[१६५] फेर क्या इस अर्थविषे हैं अथवा अन्य अर्थविषे हैं। यह विचारनेकूं योग्यहै[१६६] ॥ तातें ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्यु बंधहै[१६७]। तिसतें मोक्ष कहनेकूं

कर्मकूं बंध मोक्षनामक अनेकार्थता होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१६२ प्रतिवादीकरि उक्त दृष्टांतकूं विपरीत घटावते हैं ॥

१६३ "विद्याकूं औ अविद्याकूं" इत्यादि मंत्र समुच्चयपर देखे हैं । जब समुच्चय होवै तब कर्मकांडकूं निवृत्तिद्वारा मोक्षार्थता है। इस अर्थविषे सिद्ध होवैहै? इस प्रकार प्रतिवादी। शंका करै है ॥

१६४ कर्मकांडकी उक्त रीतिसैं मोक्षार्थताविषे प्रमाण नहीं है । इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करै हैं ॥

१६५ मंत्रनकूं समुच्चयपर होनेतें औ ताकूं उक्त अर्थकी अपेक्षावाला होनेतें इस अर्थका प्रमाण कहांतें प्राप्त होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिन मंत्रनकूं समुच्चयपरता नहीं है। यह आगे स्पष्ट होवैगा ॥

१६६ परमतके असंभव हुये स्वमतकूं उपसंहार करै हैं ॥

१६७ बंधका निरूपण अनुपयोगी है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

योग्य है । यातें यह आरंभ करनेकूं योग्य है । [१६८] औ विषयकी संधिरूप अंतरालविषै अवस्थानकीन्यांई अरु अर्द्धजरतीय कौशलकी न्यांई [१६९] [व्याख्यान करनेकूं] हम नहीं जानते हैं ॥ औ जो मृत्युकी प्राप्तिकूं अतिक्रमणकरिके मुक्त होवैहै ऐसें कहिके । ग्रह अरु अतिग्रह कहिये हैं । सो यह सर्व साध्यसाधनरूप बंध अर्थके संबंधतें है । कहिये [१७०] ग्रह अरु अतिग्रहके अवि-

१६८ औ जो कर्मकांड । बंधके अर्थ वा मुक्तिके अर्थ नहीं होवैहै किंतु बीचमैं अवस्थानका कारण है ? ऐसैं कहै ? ताकूं दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं न जागता है नसोवता है । इस प्रकार विषय ग्रहणके छिद्ररूप अंतरालविषै अवस्थान दुर्घट है औ जैसैं कुकुटी (कूकडी)का अर्ध पाकके अर्थ है औ अर्ध प्रसवके अर्थ है । ऐसा कौशल नहीं देखीये है ॥ तैसैं कर्मकांड । बंधके अर्थ नहीं है अरु साक्षात् मोक्षके अर्थबी नहीं है । ऐसा व्याख्यान करनेकूं हम नहीं जानते हैं ॥

१६९ औ जो श्रुतिहीं उत्तर उत्तर पदकी प्राप्तिके कथनके मिषकरि मोक्षविषै पुरुषकूं प्रवेश करावती है ऐसैं कहा ? तहां कहैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना हैः—मृत्युकी प्राप्तिकूं उल्लंघन करिके मुक्त होवैहै । ऐसैं कहिके जो यह ग्रह अरु अतिग्रहका वचन है । सो यह सर्व साध्यसाधन रूप बंध है । इस अभिप्रायकरि कहियेहै काहेतैं ताके अर्थरूप मृत्युपदार्थके साथि अन्वय पदके देखनेतैं ॥

१७० अर्थके संबंधतैं । ऐसैं कथनकिये अर्थकूं स्पष्ट करै-

निर्मोकतैं है । जातैं निगड[171] (शृंखलाबंधन)के जाने हुये निगडित (शृंखलाकरि बद्ध)के मोक्ष अर्थ यत्न कर्त्तव्य होवैहै[172] । तातैं तिस अर्थताकरि ब्राह्मणका आरंभ हैः—अनंतर (अश्वलके उपरत हुये) या (प्रकृत याज्ञवल्क्य)कूं जरत्कारु गोत्रवाला जारत्कारव ऋतभागका अपत्य (पुत्र) आर्त्तभाग पूछताभया । अभिमुख करने अर्थ हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—पूर्वकी[173] न्यांई ॥ कितने ग्रह हैं । कितने अतिग्रह हैं । यह प्रश्न है ॥ इहां इति

हैं ॥ इहां यह भाव हैः—यहहीं श्रुति । बंधकूंहीं प्रतिपादन करै है । परंतु मोक्षविषै पुरुषकूं नहीं प्रवृत्त करै है ॥

१७१ ननु पुरुषकूं अपेक्षित जो मोक्ष सो प्रतिपादन करनेकूं योग्य है । अनर्थके स्वरूपका बोध क्यूं प्रतिपादन करिये है ? तहां कहैहैं ॥

१७२ बंधके ज्ञानविना तिसतैं छूटनेके अयोगतैं मुमुक्षुकूं सप्रयोजक बंधके ज्ञानरूप अर्थवान् होनेकरि अनंतरके ब्राह्मणकी प्रवृत्ति है । ऐसैं उपसंहार करै हैं ॥

१७३ कितने ग्रह हैं । इत्यादिरूप प्रथम संख्याकूं विषय करनेवाला प्रश्न है औ कौंनसे वे हैं । यह द्वितीय संख्येयकूं विषय करनेवाला प्रश्न है । ऐसैं कहैहैं ॥

शब्द वाक्यकी परिसमाप्ति अर्थ है ॥ ॥ [174] तहां ग्रह अरु अतिग्रहके ज्ञात हुये प्रश्न होवैहै वा अज्ञात हुये? जब प्रथम ग्रह औ अतिग्रह ज्ञात होवैं। तब तद्गत गुणरूप संख्याकूंबी ज्ञात होनेतें कितने ग्रह हैं। कितने अतिग्रह हैं। ऐसा संख्याकूं विषय करनेवाला प्रश्न बनै नहीं ॥ औ जो कहै वे अज्ञात हैं। तैसैं संख्यावालेकूं विषय करनेवाला प्रश्न है ॥ तो कौंन ग्रह हैं। कौंन अतिग्रह हैं। ऐसैं पूछनेकूं योग्य है। परंतु कितने ग्रह हैं। कितने अतिग्रह हैं। ऐसा प्रश्न बनै नहीं ॥ ॥ [175] किंवा:—ज्ञात सामान्यवाले वस्तुनके हुये विशेष विज्ञान अर्थ प्रश्न होवैहै। जैसैं कौंनसे इहां कठ (ऋग्वेदके पढनेवाले विद्यार्थी) हैं। कौंनसे इहां कलाप (समूह) हैं। ऐसैं [विशेष विज्ञानके अर्थ प्रश्न होवैहै] औ इहां ग्रह अरु अतिग्रह नाम पदार्थ कोईबी लोकविषै प्रसिद्ध नहीं है । जिसकरि विशेष

---

१७४ अब प्रश्नके प्रति पूर्ववादी आक्षेप करै है ॥

१७५ आद्य प्रश्नके प्रति आक्षेप करिके। द्वितीयके प्रति आक्षेप करै है ॥ इहां विशेषतैं ज्ञात पदार्थनविषै। यह "च" शब्दका अर्थ है ॥

अर्थ प्रश्न होवै ॥ ॥ ननु[१७६] "अतिमुक्त होवैहै" ऐसैं प्रथम ब्राह्मणविषै कहा है । जातैं ग्रहकरि छूटनेका मोक्ष होवैहै । सो मुक्ति है । सो अतिमुक्ति है । ऐसैं जातैं दोवार कहा है । तातैं प्राप्त ग्रह अरु अतिग्रह हैं ॥ ॥ तहां आक्षेपका कर्त्ता कहैहैः—ननु[१७७] तहांबी (वाक्हीं यज्ञका होता है इत्यादि वाक्यविषैबी) च्यारी ग्रह अरु अतिग्रह ज्ञात हैं। वाक् चक्षु प्राण अरु मन ॥ तहां "कितने" ऐसा प्रश्न नहीं संभवैहै विशेषकूं ज्ञात होनेतैं? यह[१७८] कथन बनै नहींः—काहे-

१७६ मुक्ति अरु अतिमुक्ति इन दो पदार्थनके प्रतियोगी बंधन नामवाले ग्रह अरु अतिग्रह सामान्यकरि प्राप्त हैं। प्रश्न तो विशेष जाननेकी इच्छाविषै होवैहै ? ऐसैं पूछनेवाला प्रश्न करै है ॥

१७७ तथापि (तौबी) दोनूं प्रश्न अघटित हैं ? ऐसैं आक्षेपका कर्त्ता कहैहै ॥ इहां "तहां" इसपदका "वाक्हीं यज्ञकाहोता है" इत्यादि वाक्यविषै । यह अर्थ है औ विशेषकूं ज्ञात होनेतैं । यह शेष है ॥

१७८ अतिमोक्षके उपदेशकरि त्वक् आदिकनकूंबी सूचित होनेतैं तिनोंविषै च्यारीके निर्धारणतैं अविशेषकरि प्राप्त वाक् आदिकनविषै विशेष जाननेकी इच्छाके हुये संख्या आदिकूं विषय करनेवाला होनेकरि प्रश्नकूं घटितार्थ होनेतैं

तैं? अनवधारणवाले अर्थके होनेतैं ॥ [179]जातैं त-हां (पूर्व ब्राह्मणविषै वाक्‌आदिकनमैं) च्या-रीपना विवक्षित नहीं है। [180]ईहां तो ग्रह अरु अ-तिग्रहके ज्ञान हुये अष्टपनेरूप गुणके कथन क-रनेकी इच्छाकरि "कितने" ऐसा प्रश्न घटता-हीं है ॥ [181]तातैं "सो मुक्ति है। सो अतिमुक्ति है" ऐसैं मुक्ति अरु अतिमुक्ति दो कही [तिस-सकरि ग्रह अरु अतिग्रहबी सिद्धभये]। यातैं कौंनसी संख्यावाले ग्रह हैं वा कितने अतिग्रह हैं। ऐसैं पूछताहै ॥ ॥ तहां इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—आठ ग्रह हैं। आठ अतिग्रह हैं। ऐसैं ॥ ॥ जे वे अष्टग्रह औ अष्ट अतिग्रह

तेरे आक्षेपका संभव नहीं है। इस रीतिसैं सिद्धांती समाधान करै हैं ॥

१७९ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥ इहां "तहां" याका पूर्व ब्रा-ह्मणमैं वाक् आदिकनविषै। यह अर्थ है ॥

१८० फलितरूप प्रथम प्रश्नके संभवकूं कथन करै हैं ॥

१८१ ननु ग्रहनकूं हीं पूर्वताके उपदेश अरु अतिदेशकरि प्राप्त होनेतैं तिनोंविषै विशेष जाननेकी इच्छाके हुये "कितने ग्रह हैं" इस प्रश्नके हुयेबी। अतिग्रहोंकूं अप्रसिद्ध होनेतैं "कितने अतिग्रह हैं" यह प्रश्न कैसैं होवैगा? यातैं कहै-हैं ॥ "इहां तातैं" याका पूर्व ब्राह्मणतैं। यह अर्थ है ॥

प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेनातिग्रहेण गृहीतोऽपानेन हि गन्धाञ्जिघ्रति ॥ २ ॥

अर्थः—प्राण प्रसिद्ध ग्रह है । सो अपानरूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं अपानकरि गंधनकूं सूंघताहै ॥ २ ॥

कहे । कौंनसे वे नियमकरि[182] ग्रहण करनेकूं योग्य हैं ? ऐसैं पूछ्या । तहां[183] कहैहैं ॥ १ ॥

टीकाः—प्राण प्रसिद्ध ग्रह है [इहां प्राण ऐसैं घ्राण इंद्रिय कहियेहै । प्रकरणतैं[184]] वायु[185] सहित अपान (गंध)रूप अतिग्राहकरि गृहीतहै ॥ इहां अपानकरि याका गंधकरि यह

---

१८२ वाक् आदिक औ वक्तव्य आदिक च्यारी ग्रह अरु अतिग्रह यद्यपि विशेषकरि ज्ञात हैं । तथापि अतिदेशकरि प्राप्त च्यारी विशेषतैं नहीं जानीये हैं । तिसकरि तिनोविषै विशेषतैं ज्ञानकी सिद्धि अर्थ प्रश्न है । इस अभिप्राय करिके विशेषण देते हैं ॥

१८३ द्वितीय प्रश्नविषै परिहारकूं उठावते हैं ॥

१८४ प्राण शब्दकी घ्राण विषयताविषै पूर्व उत्तर ग्रंथनविषै वाक् आदिकनके प्रकृतपनैरूप हेतुकूं कहैहैं ॥

१८५ ताके गंधकरि गृहीतपनैकी सिद्धि अर्थ विशेषण देते हैं ॥

वाग्वै ग्रहः स नाम्नाऽतिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामान्यभिवदति ॥ ३ ॥

अर्थः—वाक् प्रसिद्ध ग्रह है। सो नाम अतिग्रहकरि गृहीत है। जातें वाक्करि नामोंकूं कहताहै ॥ ३ ॥

अर्थ है। [१८६]अपानका सहायक होनेतें अपान गंध कहियेहै। [१८७]जातें अपानकरि उपहृत (गृहीत) गंधकूं घ्राणकरि सर्वलोक [१८८]सूंघताहै। सो यह कहियेहै:—जातें अपानकरि गंधनकूं सूंघताहै ऐसें ॥ २ ॥

टीकाः—वाक् प्रसिद्ध ग्रह है ॥ [१८९]जातें आ-

---

१८६ अपान शब्दकी गंधविषयताविषै गंधके अपानकरि अभावरूप हेतुकूं कहैहैं ॥

१८७ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां अपश्वास अपान शब्दका अर्थ है ॥

१८८ उक्त अर्थविषै वाक्यकूं गेरते हैं ॥

१८९ वाक्की ग्रहरूपताकूं उपपादन करै हैं ॥ इहां आसंगकाविषय शब्दादिकहीं है आस्पद जिसवाक्का सो आसंगविषयास्पद है। ऐसें विग्रह है औ ताकी सिद्धि अर्थ अध्यात्मरूपसैं परिच्छिन्न है। यह विशेषण है औ असत्य कहिये पर पीडाकर मिथ्यावचन। सोई स्वदृष्टमात्रका विरोधी

जिह्वा वै ग्रहः स रसेनातिग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि रसान्विजानाति ॥ ४ ॥

चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणातिग्राहेण गृहीतश्चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥ ५ ॥

अर्थः–जिव्हा प्रसिद्ध ग्रह है । सो रसरूप अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं जिव्हाकरि रसोंकूं जानताहै ॥ ४ ॥

अर्थः–चक्षु प्रसिद्ध ग्रह है । सो रूपमय अतिग्रहकरि गृहीत है । जातैं चक्षुकरि रूपनकूं देखताहै ॥ ५ ॥

संगके विषयरूप आस्पदवाली । अध्यात्मरूप करि परिच्छिन्न असत्य अनृत असभ्य बीभत्स आदिक वचनोंविषे व्यापृत (व्यवहारवाली) वाक्करि लोक गृहीत (अपहृत) होवैहै । तिस हेतुकरि वाक् ग्रह है ॥ सो नाममय अतिग्राहकरि गृहीतहै कहिये सो[१९०] वाक् नामक ग्र-

हुया अमृतरूप वा विपरीत होवैहै। आदिपदकरि इष्ट अरु अनिष्टके कथनका ग्रहण है ॥

१९० प्रकृत वाचाविषै "सो नामकरि" यह कैसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनातिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दाञ्छृणोति ॥६॥

मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान्कामयते ॥७॥

अर्थः—श्रोत्र प्रसिद्ध ग्रह है। सो शब्दरूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं श्रोत्रकरि शब्दनकूं सुनता है ॥ ६ ॥

अर्थः—मन प्रसिद्ध ग्रह है। सो कामरूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं मनकरि कामोंकूं कामना करैहै ॥ ७ ॥

ह। नाम (वक्तव्यविषय)मय अतिग्रहकरि गृहीत होवैहै ॥ इहां अतिग्राहकरि । यह दीर्घपना छांदस नाम है ॥ जातैं वक्तव्यरूप[१९१] अर्थवाली वाक् है। तिसकरि[१९२] वक्तव्यरूप अर्थकरि प्रयुक्त (प्रेरित) वाक् तिसकरि वशीकृत है।

---

१९१ वक्तव्यकरि वाक्के वशीकृतपनैकूं साधते हैं ॥ इहां तादर्थ्यकरि याका वचनकरणताकरि । यह अर्थ है ॥

१९२ वचनके अर्थ वाक्की वक्तव्यकरि वशीकृतताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां ताका कार्य वचन है औ असाधारण देवताके स्वरूपविषै पर्यवसान मोक्ष है ॥

हस्तौ वै ग्रहः स कर्म्मणाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्याꣳ हि कर्म्म करोति॥८॥

त्वग्वै ग्रहः स स्पर्शेनातिग्राहेण गृहीतस्त्वचा हि स्पर्शान्वेदयत इत्येतेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ॥ ९ ॥

अर्थः—दो हस्त प्रसिद्ध ग्रह है। सो कर्मरूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं दो हस्तोंकरि कर्मकूं करैहै ॥ ८ ॥

अर्थः—त्वक् प्रसिद्ध ग्रह है। सो स्पर्शरूप अतिग्रहकरि गृहीत है। जातैं त्वचाकरि [पुरुष] स्पर्शोंकूं जानता है। ऐसैं ये अष्ट ग्रह। अष्ट अतिग्रह हैं ॥ ९ ॥

तिसकरि ताके कार्य (वचन)कूं[193] नकरिके ता (वाक्)का मोक्ष नहीं होवैहै। यातैं नाममय अतिग्रहकरि गृहीत वाक् है ॥ जातैं[194] वक्तव्यके

---

१९३ वक्तव्य अर्थके कथनविना वाक्के पर्यवसानके हुये सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

१९४ वाक्के अतिग्रहकरि गृहीतपनेकूं अनुभवकरि साधते हैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदिदꣳ स-
र्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जो यह सर्व मृत्युका अन्न है। कौंनसी सो

आसंगकरि प्रवृत्त हुयी वाक्। सर्व अनर्थोंके सा-
थि योजना करियेहै ॥ [१९५] अन्य अर्थ समान है ॥
इसरीतिसैं ये [१९६] त्वचापर्यंत अष्ट ग्रह हैं औ [१९७] स्पर्श
पर्यंत ये अष्ट अतिग्रह हैं । इति ॥ ३ ॥ ४ ॥
॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

टीकाः—ग्रह अरु अतिग्रहनके उपसंहार हुये
आर्त्तभागमुनि कहैहै । फेर हे याज्ञवल्क्य!
ऐसैं कहताभयाः—[१९८] जो यह सर्व मृत्युका अ-

---

१९५ "वाक्करिहीं" इत्यादिककी "अपान करिहीं" इत्यादिकसैं तुल्य अर्थतातैं अव्याख्येयताकूं कहैहैं ॥

१९६ घ्राण । वाक् । जिह्वा । चक्षु । श्रोत्र । मन । दो हस्त । औ त्वचा । ऐसैं उक्त ग्रहनकूं सूचना करैहैं ॥

१९७ गंध । नाम । रस । रूप । शब्द । काम । कर्म । स्पर्श ॥ इन अष्ट अतिग्रहनकूं निगमन करैहैं ॥

१९८ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—जो यह व्याकृत जगत् है सो सर्व मृत्युका अन्न है । ऐसैं योजना है ॥

मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः । सोऽपामन्न-मप पुनर्मृत्युं जयति ॥ १० ॥

देवता है जाका मृत्यु अन्न है ? ऐसें ॥ अग्नि प्रसिद्ध मृत्यु है। सो जलका अन्न है। पुनर्मृत्युकूं अपजय करैहै ॥ १०

न्न है । सर्व[199] उपजताहै अरु विनाशकूं पावताहै । ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युकरि ग्रस्तहै ॥ कौंनसी सो देवता होवैहै जिस देवताका मृत्यु[200]-बी अन्न होवै "मृत्यु जाका उपसेचन (शाक) है" इस अन्य श्रुतितैं ॥ ॥ इहां पूछनेवालेका[201] येहै अभिप्रायहैः—जब मृत्युके मृत्युकूं कहैगा तब अनवस्था होवैगी औ जब नहीं कहैगा तब इस ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युतैं मोक्ष न-

१९९ ताकी तिसकी अन्नरूपताकूं साधते हैं ॥

२०० मृत्युकी अन्नरूपताकी संभावनाविषै अन्य श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥

२०१ मृत्युके मृत्युकूं आश्रय करिके प्रश्नकी करटदंत (काकदंत)के निरूपणकी न्याईं अप्रयोजनताकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

हीं संभवैहै । जातैं ग्रह[२०२] अरु अतिग्रहरूप मृत्युके विनाशके हुये मोक्ष होवैहै । सो[२०३] जब मृत्युकाबी मृत्यु होवै तब ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युका विनाश होवै । यातैं दुर्वचन (दुरुत्तर) प्रश्नकूं मानताहुया आर्त्तभाग "कौंनसी सो देवता है" ऐसैं पूछताहै ॥ प्रथम[२०४] मृत्युका मृत्यु है॥ ॥ ननु[२०५] अनवस्था होवैगी। ताकाबी अन्य मृत्यु है ? ऐसैं ॥ ॥ अनवस्था[२०६] नहीं हैः—काहेतैं सर्वका मृत्युहै ताके स्वातिरिक्त अन्य मृत्युके असंभवतैं

---

२०२ ननु ग्रह अरु अतिग्रहके होतेहीं मृत्युतैं मोक्ष होवैगा? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै। तो सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

२०३ तब ग्रह अरु अतिग्रहके नाश हुये मुक्ति होहू ? यह प्रतिवादीनैं कहा । यातैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः— मृत्युका मृत्यु नहीं है अनवस्थादोपतैं । ऐसैं कहा औ अस्ति पक्षविषै अनवस्था है अरु नास्ति पक्षविषै अमुक्ति है । यह अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है ॥

२०४ अस्ति पक्षकूं ग्रहण करै हैं ॥

२०५ मृत्युका मृत्यु ब्रह्मात्माका साक्षात्कार विवक्षित है। ताकाबी जब अन्य मृत्यु है तब अनवस्था होवैगी औ जब नहीं है तब ताके हेतु अज्ञानकीबी स्थितितैं अमुक्ति होवैगी ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

२०६ तिनमैं अस्ति(है)पक्षकूं ग्रहण करिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—उक्त प्रकारके ज्ञानरूप मृत्युकूं स्वपरका विरोधि होनेतैं कछुबी दोष नहींहै ॥

॥ ॥ फेरं[२०७] मृत्युका मृत्यु। है यह कैसें जानियेहै ? दृष्ट होनेतें [जानियेहै] ॥ अग्नि[२०८] जो है । सो प्रथम सर्वका दृष्ट (प्रत्यक्ष) मृत्यु है । विनाशक होनेतें । सो (अग्नि) जलोंकरि भक्षण करियेहै । सो अग्नि जलनका अन्न है । तब मृत्युका मृत्यु है । ऐसें ग्रहणकर[२०९] (जान) ॥ तिसें[२१०] मृत्युके मृत्यु (आत्मज्ञान)करि सर्व ग्रह अरु अतिग्रहनका समूह भक्षण करियेहै । तिसें[२११] बंधनके नाशितभये (मृत्युकरि भक्षित हुये) संसारतें मोक्ष उपपन्न (सिद्ध) होवैहै ॥ जातें[२१२] ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन कहा औ तातें मोक्ष संभवैहै यह । " मृत्युका मृत्यु है " ऐसें दिखानेकरि प्रसाधित किया ॥ जातें[२१३] बंध मोक्षके

२०७ उक्त पक्षकूं प्रश्नद्वारा प्रमाणाऽऽरूढ करैहैं ॥

२०८ दृष्टताकूं स्पष्ट करैहै ॥

२०९ दृष्ट फलकूं कथन करैहैं ॥

२१० ताके कार्यकूं कथन करैहैं ॥

२११ " पुनर्मृत्युकूं अपजय करैहै " या वाक्यकी भूमिकाकूं करैहैं ॥

२१२ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां मृत्युकाभी मृत्यु है इस दिखावनेकरि प्रसाधितभया । यह शेष है ॥

२१३ मोक्षकी उपपत्तिके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्राऽयं पु-
रुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्या-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—
जिस कालविषै यह ज्ञानी पुरुषमरताहै इस
(मरनेहारे ज्ञानी) तैं प्राण ऊर्ध्वकूं गमन

अर्थ पुरुषका प्रयास सफल होवैहै। [२१४] यातैं (ज्ञा-
नतैं) फेर अपमृत्युकूं जय करैहै ॥ १० ॥

टीकाः—पर[२१५]मात्माके दर्शन (ज्ञान)रूप अन्य
मृत्युतैं [ग्रहातिग्रहरूप बंधमय] मृत्युविषै जो यह
मुक्तभया विद्वान है। सो यह पुरुष जिस का-
लविषै मरता है (देहकूं छोडताहै) तब इस
(म्रियमाण ब्रह्मवित्)तैं प्राण कहिये वाक्‌आ-

---

२१४ पुरुषके प्रयास समाधिपूर्वक श्रवणादि । ताके फल ज्ञानके फलकूं दिखावते हुये वाक्यकूं योजना करैहैं ॥ इहां यातैं इस सप्तमीका अर्थ ज्ञान है । सम्यक् ज्ञानका फल पुन-र्मृत्युकूं अपजय करैहै ॥

२१५ फलकूं स्पष्ट करनेकूं प्रश्नांतरकूं उठावते हैं ॥ इहां परमात्माके दर्शनरूप पर मृत्युकरि। ऐसैं संबंध है औ ग्रहाति-ग्रहरूप बंध मृत्युविषै इस सप्तमीका अर्थ है ॥ ग्रह शब्दकरि प्रयोज्यराशि ग्रहण कियाहै ॥

हो ३ नेति ॥ नेति होवाच याज्ञवल्क्योऽ-

करैहैं अथवा नहीं? ऐसें ॥ याज्ञवल्क्य कहतेभये:—नहीं उत्क्रमण करैहैं किंतु इस

दिक ग्रह अरु नाम आदिक अतिग्रह । वासना[216]-रूप अंतरविषै स्थित संप्रयोजक[217] हुये उत्क्रमण करैहैं (ऊर्ध्वकूं जाते हैं)। अथवा नहीं? ऐसें:—तैहां[218] याज्ञवल्क्य कहताभया:—नहीं ऐसें कहिये उत्क्रमण नहीं करैहैं किंतु इहांहीं सम्यक् विलीन होवैहैं कहिये कार्य वा करण सर्व परमात्माके साथि अविभाग (अभेद) कूं

---

२१६ स्थूल नामादिकनकूं वाहीर स्थितताके हुये स्वरस-करि त्यक्त होनेतें तिनकी उत्क्रांति कैसें पूछीये है? तहां कहैहैं ॥

२१७ तिनकी अनुत्क्रांतिके हुये मुक्तिके असंभवकूं सूचन करैहैं ॥ इहां यह भाव है:—उत्क्रांतिके पक्षविषै "मृतका निश्चित जन्म होवैहै" इस न्यायतें फेर उत्पत्ति होवैगी औ अनुत्क्रांतिके पक्षविषै मरणकी प्रसिद्धि विरोधकूं पावैगी ॥

२१८ द्वितीय पक्षकूं ग्रहण करिके सिद्धांती परिहार करै हैं ॥ इहां:—कार्य वा करण सर्व परमात्माके साथि विमार्ग (अमार्ग)के तांई जाते हुये इसीहीं विद्वान्‌विषै विलीन होवैहैं । ऐसें संबंध है ॥

त्रैव समवनीयन्ते उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते ॥ ११ ॥

विषैहीं प्रलीन होवैहैं। [जातैं सो] पुष्टताकूं पावताहै। अरु बाह्य वायुकरि पूर्ण होवैहै औ वायुकरि पुरित मृत हुया सोवताहै ॥ ११ ॥

पावते हुये इसीहीं विद्वान्विषै सम्यक् लीन होवैहैं नाम स्वयोनिरूप[219] परब्रह्मतत्वविषै सम्यक् अवनयनकूं पावतेहैं (एकीभावकरि स्थित होवैहैं) अर्थ यह जो समुद्रविषै[220] ऊर्मिनकीन्यांई[221] प्रलीन होवैहैं॥ तिस प्रकार हुये अन्यश्रुति। कला शब्दके वाच्य प्राणोंके परमा-

२१९ तिनके विद्वान्मैं विलयविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विद्वान्हीं पूर्व अविद्याकरि तिनका योनि होताभया। तिसविषै विद्यादशामैं ताके बलतैं अविद्याके दूरीभये परिपूर्ण तत्वविषै तिनका पर्यवसान संभवै है ॥

२२० कारणविषै कार्योंके विलयमैं दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

२२१ ननु प्राणादिनका जब कारणके साथि संसर्ग नामक लय होवै। तब फेर उत्पत्ति होवैगी? यह आशंका करिके। ज्ञानके होते अज्ञानके ध्वंसतैं ऐसैं बनै नहीं। इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

त्माविषे प्रलयकूं दिखावैहै:—"ऐसैंहीं इस परिद्रष्टाकी ये षोडशकला पुरुष[222]रूप आश्रयवाली हुई पुरुषकूं पायके अस्तकूं पावतियांहैं" ऐसैं। इसरीतिसैं परमात्माके साथि अविभागकूं पावतीयांहैं ऐसैं दिखाया ॥ ॥ [223]तब मृत नहीं होवैहै ऐसैं नहीं। जातैं सो (ज्ञानी) उच्छूनताकूं पावताहै। बाह्यवायुकरि पूर्णकरियेहै। भस्त्रा (लोहारकी धमिनी) की न्यांई। च्यारीओरतैं बाह्य वायुकरि पूरित। मृत (निश्चेष्ट) हुया सोवताहै। तातैं यह मृत भयाहै ॥ बं[224]धनके नाश हुये मुक्त पुरुषका कहींबी गमन नहीं होवैहै। यह वाक्यका अर्थ है ॥ ११ ॥

---

२२२ विषय सहित एकादश इंद्रियां औ पांच वायु। ये षोडश कला हैं। तिनके स्वतंत्रपनैकूं औ अन्य आश्रयकूं निवारण करैहैं ॥

२२३ औ तिनकी निवृत्ति पुरुषविना नहींहै यातैं पुरुषकूं पायके प्राण जब उत्क्रमण नहीं करैहैं तब मृत नहीं होवैहै। ऐसैं प्रतीतिके विरोधकूं शंका करिके सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां दृष्टिशब्द भस्त्रा (लोहारकी धमण)कूं विषय करनेवाला है ॥

२२४ प्रकृत वाक्य प्रत्यक्ष सिद्ध देह मरणका अनुवादक है। इस अभिप्राय करिके। कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति । ना-

अर्थः—हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—जिस कालविषै यह पुरुष मरताहै। क्या इसकूं नहीं त्यागताहै? ऐसें ॥ नाम [इसकूं

टीकाः—मुक्तके[225] क्या प्राणहीं प्रलीन होवैहैं। अथवा ताका प्रयोजकबी सर्व ॥[226] जो कहो प्राणहीं प्रलीन होवैहैं। ताका प्रयोजक सर्व[227] नहीं। तो प्रयोजकके विद्यमान हुये फेर प्राणोंका प्रसंग होवैगा औ जब सर्वहीं काम कर्म आदिक प्रलीन होवैहै। तातैं मोक्ष बनैहै ॥ इस प्रकारके अर्थवाला उत्तर (पीछला) प्रश्न है ॥ हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—जहा यह पुरुष

२२५ प्राण उत्क्रमण करै हैं। इस विशेषणकूं आश्रयकरिके। प्रश्नांतरकूं ग्रहण करै हैं ॥

२२६ दोनूं पक्षनविषैबी प्रयोजनकूं कथन करै हैं ॥

२२७ जो पुत्रक्षेत्रादिक होताभया सो अब नाममात्र अवशेष है। इस कथनकरि अवशिष्ट किंचित् रहैहै। यह जैसैं जानिये है। तैसैं इहांबी म्रियमाण विद्वान्कूं नाममात्र नहीं त्यागता है। इस कथनकरि किंचित् अवशिष्ट रहैहै यह दृष्टि होवैगी। ऐसैं प्रत्युत्तरके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

मेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वे देवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥१२॥

नहीं त्यागताहै] ऐसैं ॥ अनंतहीं नाम है। अनंत सर्व देवहैं । सो तिसकरि अनंतहीं लोककूं जयकरै है ॥ १२ ॥

मरताहै तहां कौंन इसकूं नहीं छोडताहै? ऐसैं पूछ्या । तहां इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैं:— नाम [इसकूं छोडता नहीं] ऐसैं । सर्व प्रलीन होवैहै । यह अर्थ है । नाम[228]मात्रतो नहीं लीन होवैहै । आकृतिके साथि संबंधतैं ॥ [229]यातैं नाम नित्य है [तातैं] अनंतहीं नाम है । नाम[230]की

२२८ यथा श्रुत अर्थकूं आश्रयकरिके प्रत्युत्तरकूं व्याख्यान करैहैं

२२९ विद्वान्के नामकी नित्यताविषै अन्य हेतुकूं उत्तर वाक्यके आश्रयकरि दिखावैहैं ॥

२३० अनंत शब्द नामकी व्यक्तिनकी बहुलताविषै भासता है ताकी नित्यता काहेतैं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—व्यक्तिके भेदकूं प्रसिद्ध होनेतैं सो कहनेकूं योग्य नहीं। ब्रह्मवेत्ताका स्वदृष्टिकरि नामबी नहीं शेष रहताहै । परदृष्टिकरि ताके अवशेषकी उक्ति है । शुक मुक्तभया । इत्यादि व्यापदेशके देखनेतैं । यातैं नामकी नित्यता व्यावहारिक है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति । वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं

अर्थः–हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः–जिस कालविषै इस मृत पुरुषके अग्निके प्रति वाक् लीन होवैहै । वायुके प्रति प्राण । आदित्यके प्रति चक्षु । चंद्रके प्रति मन ।

नित्यताहीं अनंतता है ॥ तिसैं[231] (नाम)की अनंततावि‌षै अधिकारी अनंतहीं सर्व देव हैं । तिसकरि सो अनंतहीं लोककूं जीतताहै कहिये तिसैं[232] नामकी अनंततावि‌षै अधिकारी सर्व देवनकूं आत्मभावकरि प्राप्त होयके तिस अनंतताके दर्शनकरि अनंतहीं लोककूं जय करैहै॥१२॥

टीकाः–ग्रहै[233] अरु अतिग्रहरूप मृत्युरूप बंध-

२३१ मैं ब्रह्म हूं । इस ज्ञानकरि विश्वे देवनकूं आत्मभावकरि जानिके अनंत लोककूं जीतता है । यह सिद्धोंका अनुवाद ब्रह्मविद्याकी स्तुति करनेकूं है। इस अभिप्राय करिके अनंतर वाक्यकूं ग्रहण करैहैं ॥

२३२ तिस वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥

२३३ "जहां याका" इत्यादिरूप वाक्यके तात्पर्यकूं वृत्तके अनुवादपूर्वक कथन करैहैं ॥

पृथिवीꣳ शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लो-
मानि वनस्पतीन्केशा अप्सु लोहितञ्च
रेतश्च निधीयते ॥ क्वायं तदा पुरुषो भ-

श्रोत्रके प्रति दशा। पृथिवीके प्रति शरीर।
आकाशके प्रति आत्मा (हृदयाकाश)।
औषधिनके प्रति लोम। वनस्पतिनके प्रति
केश। जलनकेविषै लोहित औ रेत। निधान
करियेहै। तब यह पुरुष (जीव) कहां हो-
वैहै? ऐसें [आर्त्तभाग पूछताभया। तब

न कहा औ तिस मृत्युके सद्भावतें मोक्षबी बनै
है औ सो मोक्ष ग्रह अरु अतिग्रहरूप मृत्युनका
इहांहीं प्रलय है। प्रदीपके निर्वाणकीन्यांई ॥
जो सो ग्रह अरु अतिग्रह नामक बंधन मृत्यु-
रूप है। ताका जो प्रयोजक है। ताके स्वरूपके
निर्द्धारण अर्थ यह आरंभ करियेहैः—हे याज्ञ-
वल्क्य! ऐसें कहताभयाः—[२३४]ईहां (कौंन इस-

२३४ "क्या इसकूं" इत्यादि वाक्यकी स्व व्याख्याकूं कहीके औ "जहां" इत्यादि वाक्यका तात्पर्य कहा। अब भर्तृप्रपंचके प्रस्थान (मत)कूं उठावते हैं ॥ इहां। याका "क्या इसकूं" इत्यादि वाक्यविषै। यह अर्थ है ॥

वतीत्याहर सोम्य हस्तमार्त्तभागाऽऽवा-
मेवैतस्य वेदिष्यावो न नावेतत् सजन

याज्ञवल्क्य कहैहैः—] हे सोम्य आर्त्तभाग!
हस्तकूं ग्रहणकर। हम दोनूंहीं याके विष-
यकूं जानैंगे। हम दोनूंके इसवस्तुकूं सजन

कूं नहीं छोडताहै इत्यादि वाक्यविषै) केईक
(भर्तृप्रपंचके अनुसारी) वर्णन करैहैंः—प्रयोज-
क सहित ग्रह औ अतिग्रहके विनाश हुयेबी
नामिकरि[२३५] अवशिष्ट ऊषर स्थानीय स्वात्मातैं प्र-
भववाली अविद्याकरि परिछिन्न औ भोज्य ज-
गतूतैं व्यावृत्त उच्छिन्न[२३६] कामकर्मवाला हुया

२३५ समुच्चयके अनुष्ठानतैं सप्रयोजक दोनूं देहनके ना-
श हुयेबी जब पुरुषकूं मुक्ति नहीं होवै। तब ताकूं बद्धताके
अयोगतैं यह कौन दशाकूं आश्रय करैगा? यह सिद्धांतीकी
आशंका मनमैं ल्यायके कहैहै॥

२३६ पृथिवीके ऊपरकी न्यांई अवस्थित आत्माकी वि-
द्याकरि परमात्मातैं परिच्छिन्न जब आत्मा होवै तब बंध प-
क्षकाहीं होवैगा परंतु भोगने योग्य जगतूतैं व्यावृत्ति नहीं हो-
वैगी॥ इहां यह अर्थ हैः—सर्व कर्मादिकके फलरूप समु-
च्चयकरि प्राप्त सूत्रात्माके भोगतैं अप्राप्त अर्थके अभावतैं का-
मकी असिद्धिकरि कर्मके अभावतैं प्रयोजककी राशिका उच्छे-
द होवैहै॥

इति ॥ तौ होत्क्रम्य मन्त्रयाञ्चक्राते। तौ ह यदूचतुः कर्म्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशꣳसतुः कर्म्म हैव तत्प्रशशꣳसतुः पु-

(जनसमुदाय) विषै नहीं ऐसें ॥ फेर वे दोनूं तहांतें गमन करिके विचार करतेभये। वेदोनूं जो कहतेभये। कर्महीं सो कहतेभये। अनंतर जिसकूं प्रशंसा करतेभये तिस क-

अंतराल (मध्य) विषै व्यवस्थित होवैहै। [२३७] तौ (विद्याके अधिकारी) कूं परमात्माकी एकताके ज्ञानकरि द्वैतका दर्शन दूरी करनेकूं योग्य है। ऐसें [वर्णन करैहैं] यातें परे परमात्माका द-दर्शन आरंभ करनेकूं योग्य है। [२३८] ऐसें अपवर्ग

२३७ "क्या इसकूं" इत्यादि वाक्यविषै अंतर अवस्था-वाले विद्याधिकारीके निर्धारणतैं ताकूं अपेक्षित विद्याकी अ-वशेषताकरि उषस्त प्रश्न आदिकके आरंभकूं संभावना करैहै ॥ इहां इति शब्द वर्णन करै है। याके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

२३८ तब जहां उषस्त प्रश्न आदिकविषै ब्रह्मविद्या कहि-येहै ताहीका आरंभ युक्त है "जहां याका" इत्यादिक तो वृथा है? यह आशंका करिके। फलवाली विद्याकी प्राप्तिका शेष (साधन) होनेकरि निवर्त करने योग्य मृत्युके प्रयोज-

ण्यो वै पुण्येन कर्म्मणा भवति । पापः
र्मकूंहीं प्रशंसा करतेभये ॥ पुन्यहीं पुन्यकर्म
करि होवैहै । पाप पापकरि ऐसैं ॥ तदनंतर

नामक अंतराल अवस्थाकूं कल्पना करिके उ-
त्तर ग्रंथके संबंधकूं करैहैं ॥ ॥ तहां[२३९] तुमकरि क-
हनेकूं योग्य है किः—कैरणोंके[२४०] विनाशित हुये वि-
देह (देहरहित)कूं परमात्माका दर्शन श्रवण
मनन अरु निदिध्यासन कैसैं होवैंगे ॥ यह जातैं
विलीन[२४१] प्राणवाले नाममात्रकरि अवशिष्टकूं वि-
द्याविषै अधिकार है । ऐसैं तिनोंकरि कहियेहै
"मृतै[२४२] हुया सोवताहै" ऐसैं जातैं श्रुतिविषै

कके निर्धारण अर्थ "जहां याका" इत्यादि वाक्य है। इस अ-
भिप्राय करिके भर्तृप्रपंचके अनुसारी कहैहैं ॥

२३९ हिरण्यगर्भतैं अन्य वा अनन्य विद्याका अधिकारी
है । प्रथमविषैबी मृतकूं वा जीवतेकूं विद्याका अधिकार तु-
जकरि विवक्षित है । ऐसैं सिद्धांती पूछते हैं ॥

२४० तहां आद्य विकल्पके प्रति आक्षेप करै हैं ॥

२४१ आक्षेपकूं स्पष्ट करनेकूं ताकी (प्राचीन वृत्तिकार-
की) मुक्तिकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां नाममात्रकरि अवशिं-
ष्टकूं विद्याविषै अधिकार है । यह शेष है ॥

२४२ समवनीत प्राणकूं । तिस अर्थविषै श्रुतिकूं कथन
करैहैं ॥

पापेनेति ॥ ततो ह जारत्कारव आर्त्त-
भाग उपरराम ॥ १३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
द्वितीयमार्त्तभाग-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

जारत्कारव आर्त्तभाग प्रश्नतैं उपराम हो-
ताभया ॥ १३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादी-
पिकायां तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमा-
र्त्तभाग-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

कहा है [यातैं] उपसंहृत प्राणवालेकूं मनो-
[२४३]रथंकरिबी यह (श्रवणादिकका अधिकारीप-
ना) उपपादन करनेकूं शक्य नहीं होवैहै ॥
[२४४]औ जो कहोः—जीवता हुयाहीं अविद्यामात्र है
अवशिष्ट जिसके अरु भोज्यतैं अपावृत्त (विरक्त)

---

२४३ इतनेकरि उक्त प्रकारके आक्षेपकी सिद्धि कैसैं हो-
वैगी ? तहां कहैहैं ॥ इहां उपसंहृत प्राणकूं श्रवणादिकका
अधिकारीपना एतत् (यह) शब्दका अर्थ है ॥

२४४ द्वितीय विकल्पके प्रति सिद्धांती शंका करैहैं ॥ इहां
अपावृत्त विद्याधिकारी है । यह शेष है ॥

निर्णीत अधिकारी है। ऐसें कल्पना करियेहै ॥ [२४५] तो सो (भोग्यतें व्यवर्त्तन) किस निमित्तवाला है। यह कहनेकूं योग्य है ॥ ॥ जब [२४६] समस्त द्वैतकी एकताकरि आत्माकी प्राप्तिरूप निमित्तवाला है। ऐसें कहियेहै। [२४७] सो पूर्वेहीं निराकरण किया। कहिये [२४८] कर्मसहित द्वैतकी एकतारूप आत्माके दर्शनकरि संपन्न विद्वान् मृत हुया प्रलीन प्राणवाला होयके जगत्के आत्मभावकूं वा हिरण्यगर्भके स्वरूपकूं प्राप्त होवै अथवा अप्रलीन प्राणवाला जीवता हुयाहीं भोज्यतें व्यावृत्त (विरक्त) होयके परमात्माके दर्शनकूं अ-

२४५ जीवते पुरुषकूं भोग्यतें व्यावर्तन सम्यक् बुद्धिविना अशक्य है? ऐसें मानिके पूछते हैं ॥

२४६ अप्राप्तविषै काम होवैहै। प्राप्तविषै निवर्त होवैहै। ऐसैं प्रसिद्ध हुये कर्मसमुच्चित अपरविद्याकरि हिरण्यगर्भके पदकी प्राप्तिहीं निवृत्तिका कारण है? इस प्रकारसैं सिद्धांती शंका करैहैं ॥

२४७ अपरविद्याकरि समुच्चित कर्म हिरण्यगर्भके भोगका प्रापक है। भोग्यतैं निवृत्तिका साधन नहीं। ऐसें तृतीयविषै (प्रथम अध्यायविषै) प्रतिपादन किया। इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

२४८ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करते हुये विभाग करै हैं ॥

भिमुख होवै । औ[२४९] उभय (दोई) एक प्रयत्न-सैं उपजावने योग्य साधनकरि लभ्य नहीं है ॥ ॥ जब[२५०] हिरण्यगर्भकी प्राप्तिका साधन होवै । तो तिसतैं व्यावृत्तिका साधन नहीं होवैगा औ जब परमात्माके अभिमुखीकरणरूप भोज्यतैं व्यावृत्तिका साधन होवै । तब हिरण्यगर्भकी प्राप्तिका साधन नहीं होवैगा ॥ जैतैं[२५१] जो गति-का साधन होवै सो गतिकी निवृत्तिकाबी सा-धन नहीं होवैहै ॥ ॥ औ जो[२५२] कहो मृत होयके हिरण्यगर्भकूं पायके तिसके[२५३] अनंतर प्रलीन प्रा-णवाला नामकरि अवशिष्ट [हिरण्यगर्भ]। पर-मात्माके ज्ञानविषै अधिकारी होवैहै ? तो ति-

---

२४९ अब एकहीं समुच्चित कर्म । उभय अर्थवाला क्यूं नहीं होवैगा ? यातैं कहैहैं ॥

२५० उभय अर्थताके अभावकूंहीं प्रतिपादन करैहैं ॥

२५१ समुच्चित कर्म उभय अर्थवाला नहींहै । इस अर्थ-विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

२५२ हिरण्यगर्भ विद्याका अधिकारी है इस पक्षकूं डा-लते हैं ॥

२५३ दूषण देते हैं ॥

सतैं अस्मदादिकके अर्थ परमात्माके ज्ञानका उपदेश व्यर्थ होवैगा । [२५४]जौतैं "ताकूं जो जो देवनके मध्य" इत्यादिरूप श्रुतिकरि ब्रह्मविद्या सर्वके पुरुषार्थ अर्थ उपदेश करियेहै। [२५५]तौतैं अत्यंत निकृष्ट अरु शास्त्रतैं बाह्यहीं यह (भर्तृप्रपंचकी) कल्पना है ॥ ॥ अब हम प्रकृतकूं वर्णावतेहैं:–[२५६]तहां किसकरि प्रेरित ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन है? याकूं निर्धार करनेकी इ-

---

२५४ ननु महानुभाव अरु हमतैं श्रेष्ठ पुरुषनकूंहीं उपदेशकरी हुयी ब्रह्मविद्या मोक्षके तांईं फलती है। हम (मनुष्यन)कूं नहीं? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

२५५ औ तेरे मतविषैवी जिसद्वारकरि श्रवणादिककूं करिके विद्याका उदय होवैहै तिस द्वारकरिहीं चिदात्माकूं मुक्तिकी सिद्धिके हुये इस ठिकाने श्रवणादिककरि प्रयोजन है ऐसैं कहनेकूं योग्य है औ द्वार भेदका अनुष्ठाताके विभागके आधीन प्रवृत्तिका किया प्रयोजन जब है तब विद्याके उदयकूं काल्पनिक होनेकरि प्रतीतिके अनुसार व्यवस्थाके संभवतैं वस्तुतैं निर्विशेष चिन्मात्रविषै अविद्या अरु विद्या बंध अरु मुक्ति नहीं है। या अभिप्राय करिके अपर पक्षके निराकरणकूं उपसंहार करिके। श्रुतिके व्याख्यानकूं सिद्धांती प्रसंगविषै प्राप्त करै हैं ॥

२५६ श्रुतिके व्याख्यानरूप कर्तव्यके हुये "जहां" इत्यादि वाक्यकूं आकांक्षापूर्वक अवतार देते हैं ॥

च्छाकरि कहैहैः—जहां (जिसकालविषै) इस असम्यक्दर्शी[257] शिर अरु पाणि आदिकवाले मृत पुरुषकी वाक् अग्निके प्रति लय होवैहै। चक्षु आदित्यके प्रति लय होवैहै। ऐसैं सर्वत्र संबंध होवैहै ॥ मन चंद्रके प्रति । दश दिशाके प्रति श्रोत्र। पृथिवीके प्रति शरीर। आकाशके प्रति आत्मा ॥ इहां आत्माका अधिष्ठान (निवासका स्थान) हृदयाकाश कहियेहै ॥ सो (हृदयाकाशरूप आत्मा) आकाशके प्रति लय होवैहै। औषधिनके प्रति लोम लय होवैहैं। वनस्पतिनके प्रति केश लय होवैहैं ॥ जलोंविषै लोहित (रुधिर) औ रेत (वीर्य) निधान[258] (स्थापना) करिये

२५७ तहां पुरुष शब्दकरि विद्वान् कहा अनंतर ताकी सन्निधि है? यह आशंका करिके। वक्ष्यमाण। कर्मकी आश्रयतारूप लिंगकरि सन्निधि बाध्य है। इस अभिप्राय करिके। कहैहैं ॥

२५८ सन्निधिके बाधविषै अन्य लिंगकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ताहीके फेर ग्रहणके योग्य द्रव्यके निधानविषै प्रयोगके देखनेतैं इहांबी फेर ग्रहण लोहितादिकका भासता है। यातैं प्रसिद्ध संसारीगोचरहीं यह प्रश्न है ॥

है । इहां पुनरादान (फेर ग्रहण)रूप लिंग है ॥
जातें[२५९] सर्वत्र वाक् आदिक शब्दकरि देवता ग्रहण करियेहैं । परंतु करणहीं (केवल करण) अपक्रमण करते नहीं पूर्वहीं तिनके मोक्षतैं ॥ तहां[२६०] (देवता अंशनके उपसंहार हुये) देवताओंकरि अनाश्रित करण न्यस्त[२६१] दात्र (रखदियेगासकाटनेके शस्त्रविशेष)की उपमावाले हैं औ विदेह[२६२] (देहरहित) जो कर्त्ता पुरुष है । सो अस्वतंत्र हुया किसके प्रति आश्रित होवैहै ?

---

२५९ अविद्वान्की वाक् आदिकके लयके अभावतैं "वाक्मनविषै दर्शनतैं" इस न्यायतैं औ ताकी इहां श्रुतितैं विद्वान्हीं पुरुष विवक्षित है। ताहीकी कलाके विलयकूं श्रुतिविषै प्रसिद्ध होनेतैं? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

२६० वाक् आदिक शब्दनके वाच्य अग्नि आदिकके अंशनके अपक्रमण हुयेबी करणोंके ता (अपक्रमण)के अभावतैं तिनके अधिष्ठानरूप देहकेबी भावकरि भोगके संभवतैं प्रश्नका अवकाश नहीं है ? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहां "तहां" इस शब्दका देवताके अंशनके उपसंहारकूं प्राप्त हुये। यह अर्थ है ॥

२६१ तिनकूं तिन (देवताओं)करि अनधिष्ठितताके हुये अर्थ क्रियाविषै असमर्थपना फल होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

२६२ अधिष्ठाताकरि रहित करणोंकी भोगहेतुताके हुयेबी भोक्ताके आश्रयका प्रश्न कैसैं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

ऐसैं कहिये तब कहां यह पुरुष होवैहै ऐसैं औ तब किसके प्रति आश्रित पुरुष होवैहै। ऐसैं पूछीयेहै। कहिये जिस [263]आश्रयकूं आश्रय करिके फेर कार्य करणके संघातकूं ग्रहण करैहै। जिसकरि ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन जुडताहै। सो क्या है? यह प्रश्नहै ॥ [264]इहां कहियेहैः—स्वभाव, यदृच्छा, काल, कर्म, दैव, विज्ञानमात्र, शून्य, वादीनकरि परिकल्पित हैं ॥ यातैं अनेक विप्रतिपत्तिनका स्थान होनेतैं ऐसैं जल्प न्यायकरि वस्तुका निर्णय नहीं होवैगा ॥ इहां जो तूं वस्तुके निर्णयकूं इच्छता हैं। तो हे सोम्य आर्त्तभाग! हस्तकूं ग्रहणकर। हम दोनूंहीं इस तुजकरि पूछे हुये वस्तुका जो जा-

---

२६३ प्रश्नकूं विवरण करै हैं ॥

२६४ "हस्तकूं ग्रहणकर" इत्यादि परिहारकूं अवतार देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मीमांसक लोकायत ज्योतिर्विद वैदिक देवताकांडकेअनुसारी विज्ञानवादी औ माध्यमिक। ऐसे अनेक वादी। परस्परके खंडनमात्रपर्यंत विचाररूप जल्प न्यायकरि विवादकूं करैहैं औ इधर "इहां" इस शब्दकरि प्रश्नका कथन है ॥

है। तिसतैं विपरीत कर्मकरि विपरीत होवैहै। पापरूप पापकरि होवैहै ॥ इस रीतिसें याज्ञवल्क्यकरि प्रश्नोंके निर्णीत हुये याज्ञवल्क्यकूं तिसतैं अशक्य प्रकंपवाला होनेतैं। जारत्कारव आर्त्तभाग उपराम होताभया ॥ १३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमार्त्तभाग-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अथ हैनं भुज्युर्लाह्यायनिः पप्रच्छ ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं लाह्यायनि भुज्यु

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया स्तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

टीकाः—[३६८]अनंतर या (याज्ञवल्क्य)कूं लह्यायनका पुत्र लाह्यायनि भुज्यु नामक मुनि पूछताभयाः—ग्रह अरु अतिग्रहरूप बंधन कहा ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकाया स्तृतीयाध्यायगत तृतीय ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ३ ॥

३६८ ब्राह्मणांतरकूं अवतार देके वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ मद्रेषु चरकाः पर्य्यव्रजाम । ते पतञ्चलस्य काप्यस्य

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहताभयाः—मद्र नामक देशोंविषै चरक हुये हम पर्यटन करतेभये । वे हम पतंचल

[२६९] प्रयोजक सहित जिसतैं मुक्त हुया पुरुष मुक्त होवैहै वा जिसकरि बद्ध हुया पुरुष संसारकूं पावताहै । सो मृत्युहै औ [२७०] तातैं मोक्ष बनवता है । जातैं मृत्युका मृत्युहै [तातैं] ॥ औ [२७१] मुक्तकी कहूंबी गति (गमन) नहीं होवैहै । औ सर्वका उत्साह (निवृत्ति) प्रदीपके निर्वाणकीन्यांई नाममात्र अवशेष है । यह निश्चित है ॥ [२७२] तहां

२६९ उक्तहीं ताके मृत्युपनैकूं स्पष्ट करै हैं ॥

२७० "अग्नि मृत्यु है" इत्यादि वाक्यविषै उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

२७१ "जहां यह" इत्यादि वाक्यविषै उक्त अर्थकूं अनुवाद करै हैं ॥

२७२ "जहां याका" इत्यादि वाक्यविषै निर्णीत अर्थकूं फेरी कथन करै हैं ॥ इहां पूर्व ब्राह्मणविषै स्थित ग्रंथ सप्तमीका अर्थ है औ ताका अवधारित । ऐसैं या पदके साथि संबंध है औ संसारकूं प्राप्तभये पुरुषनके औ मुक्त होनेवाले पु-

गृहानैम । तस्यासीद्दुहिता गन्धर्व्वगृहीता । तमपृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्रवीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति । तं यदा लो-

काप्यके गृहोंके प्रति जातेभये । ताकी गंधर्वकरि गृहीत दुहिता होतीभयी । ता (गंधर्व)कूं हम "तूं कौंन हैं"? ऐसें पूछतेभये ॥ सो कहताभयाः—मैं सुधन्वा आंगिरस हूं ऐसें ॥ ताकूं जब लोकनके अं-

(पूर्वब्राह्मणविषै) संसरनेवाले औ मुक्तभये पुरुषनके कार्य अरु करणोंके स्वकारणके साथि संसर्गके समान हुये मुक्तनकूं अत्यंतहीं फेर अग्रहण होवैहै औ जिसकरि प्रेरित संसरनेवाले पुरुषनकूं तो फेरि फेरि ग्रहण होवैहै । सो कर्म है । ऐसैं विचारपूर्वक निश्चित है औ ता[२७३](कर्म)के क्षयभये नामके अवशेषकरि सर्वका उत्सादरूप

रुषनके जे कार्य अरु करण हैं तिनोंका ऐसैं वैयधिकरण्य है। उपादान (ग्रहण) अनुपादान (अग्रहण) ऐसैं दोनूं ठिकाने कार्य करणोंका इस प्रकार संबंध है ॥

२७३ कर्मके भाव अभावकरि बंध मोक्ष कहे। तहां अभावद्वार कर्मकी मोक्षहेतुताकूं स्पष्ट करै हैं ॥

कानामन्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारिक्षिता अभवन्निति क्व पारिक्षिता अभवन् ॥ स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व पारिक्षिता अभवन्निति ॥ १ ॥

तनकूं हम पूछतेभये । अनंतर याकूं कहतेभयेः—कहां पारिक्षित होतेभये ऐसैं । कहां पारिक्षित होतेभये ? हे याज्ञवल्क्य ! सो तुजकूं पूछता हूंः—कहां पारिक्षित होतेभये ? ऐसैं ॥ १ ॥

मोक्ष होवैहै औ सो[२७४] कर्म पुण्यपाप नामवाला है काहेतैं "पुण्यकर्मकरि पुण्य होवैहै औ पापकरि पाप होवैहै" ऐसैं अवधारित होनेतैं याका किया संसार है॥ तहां[२७५] अपुण्यकरि स्वभावसैं दुःखबहुल अरु नरक तिर्यक् प्रेत आदिक स्थावर जंगमोंविषै फेरी फेरी जन्मता हुया अरु मरता हुया दुःखकूं अनुभव करैहै । यह राजमार्गकीन्यांई सर्व लो-

---

२७४ ताकी भावद्वारा बंधहेतुताकूं प्रकट करै हैं ॥

२७५ पुण्य अरु पाप दोनूंकूंबी संहार फलवान्ताके अविशेषतैं पुण्यके फलकी न्यांई पापका फल है ऐसैं इहां कहनेकूं योग्य है । अन्यथा तिसतैं विरागके अयोगतैं ? यह आशंका

कनकूं प्रसिद्ध है औ[२७६] जो शास्त्रीय (सुखानुभव) है "पुण्यकर्मकरि पुण्यहीं होवैहै" इस श्रुतिकरि इस ब्राह्मणविषै तहांहीं आदर करियेहै ॥ [२७७]पुण्यहीं कर्म सर्व पुरुषार्थका साधन है । ऐसैं सर्व श्रुति स्मृतिनके वाद हैं । मोक्षकोंबी पुरुषार्थरूप होनेतें तिसकी साध्यता प्राप्त भयी । [२७८]जितना पुण्यका उत्कर्ष है । तितने तितने फलके उत्कर्षकी प्राप्ति होवैहै । तातैं उत्तम पुण्यके उत्कर्षकरि मोक्ष होवैगा ? ऐसी आशंका होवैहै । सो निवर्त्त करनेकूं योग्य

करिके । अब आगे कहनेके ग्रंथके कहनेकूं भूमिकाकूं करै हैं ॥ इहां "तहां" यह सप्तमी पुण्योंविषै औ अपुण्योंविषै निर्द्धारण अर्थ है औ स्वभावसैं दुःख बहुलोंविषै यह पद । दोनूं ओरतैं संबंधकूं पावता है ॥

२७६ तब पुण्योंका फलबी सर्व लोकविषै प्रसिद्ध होनेतैं इहां कहनेकूं योग्य नहीं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां शास्त्रीय सुखानुभव है । यह शेष है औ "इहां" ऐसैं ब्राह्मणका कथन है ॥

२७७ शास्त्रीय कर्म सर्वबी संसाररूप फलवालाहीं है ऐसैं कहनेकूं ब्राह्मण है। यातैं उक्त आशंकाका उत्तर होनेकरि ताकूं अवतार देते हैं ॥

२७८ मोक्षकी पुण्यसाध्यताकूं प्रकारांतरकरि साधते हैं॥

है:—[279]ज्ञानसहित प्रकृष्टकर्मकी इतनी (संसाररूप) गति है। काहेतें कर्मकूं औ ताके फलकूं [280]व्याकृत नामरूपमय आस्पदवाला होनेतें ॥ प-[281]रंतु अकार्य नित्य अव्याकृतधर्मवाले [282]नाम रूपात्मक अरु [283]क्रिया कारक औ फल स्वभावसैं वर्जित मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं है औ [284]जहां व्यापार है सो संसारहीं है। [285]ऐसे अर्थके

---

२७९ ता शंकाका निवर्तन कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

२८० समुच्चित कर्मबी संसाररूप फलवालाहीं है। तिस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

२८१ मोक्षविषैवी स्वर्गआदिककी न्यांई पुरुषार्थपनैके अविशेषतैं कर्मका व्यापार होवैगा? यह आशंका करिके कहैहैं॥ इहां अकार्यता कहिये उत्पत्तिरहिता। नित्यता कहिये नाशशून्यता। अव्याकृतधर्मिता कहिये व्याकृत नामरूपसैं रहितता॥

२८२ "अशब्द अस्पर्श" इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय करिके। कहैहैं ॥

२८३ "निष्कल है निष्क्रिय है" इत्यादि श्रुतिकूं आश्रय करिके। कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—चतुर्विधक्रियाके फलतैं विलक्षण मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं संभवै है ॥

२८४ ननु स्थाणु (शिव) पर्यंत औ प्रजापति पर्यंत सर्व कर्मके व्यापारतैं प्रजापतिभावरूप मोक्षविषै कैसैं ताका व्यापार नहीं है? तहां कहैहैं ॥

२८५ कर्मफलकूं सर्व संसाररूपताहीं काहेतैं सिद्ध होवैहै? तहां कहैहैं ॥

दिखावनेअर्थ यह ब्राह्मण आरंभ करियेहै ॥ ॥

[२८६] औ जो कितनैक वादीनकरि कहियेहैः—विद्यासहित निष्कामकर्म विष अरु दधि आदिककी न्यांई कार्यांतरकूं आरंभ करैहै ऐसें? [२८७] सो बनै नहीं:—काहेतें मोक्षकूं अनारभ्य होनेतें। [२८८] बंधनै नाशहीं प्रसिद्ध मोक्ष है। कार्यभूत नहीं औ बंधनै [२८९] अविद्या है। ऐसें हम कहतेहैं। औ अविद्याका [२९०] नाश कर्मकरि बनता नहीं। काहेतें

---

२८६ विद्यासहित कर्मबी संसाररूप फलवाला है विद्याहीं मोक्ष अर्थ है। ऐसें स्वपक्षकी शुद्धिअर्थ विचार करते हुये पूर्वपक्ष करै हैं॥ इहां यह अर्थ है:—जैसें केवल विष औ दधि आदिक। मरण औ ज्वर आदिकका कारण है। तोबी मंत्र अरु शर्करा आदिककरि युक्त हुया जीवन अरु पुष्टि आदिककूं आरंभ करै है। तैसें स्वतः बंधरूप फलवालाबी कर्म। फलाभिलाषा विना अनुष्ठान किया अरु विद्याकरि समुच्चित हुया मोक्षके अर्थ समर्थ है॥

२८७ मुक्तिकी साध्यताके अंगीकार हुये समुच्चित कर्मकरि साध्यता होवै। परंतु ताकी साध्यता नहीं है काहेतें ज्ञानमात्रकरि नियामित होनेतें। ऐसें उत्तरकूं कहैहैं॥

२८८ हेतुकूंहीं साधते हैं॥

२८९ सो बंधन क्या है? सो कहैहैं॥

२९० ननु अविद्यानाशबी कर्मकरि आरम्भ होवैगा? ऐसें जो कहै। सो बनै नहीं। ऐसें कहैहैं॥ इहां यह अनुमानरूप

[२९१] कर्मके सामर्थ्यकूं दृष्टविषयवाला होनेतैं ॥ [२९२] जौतैं उत्पत्ति प्राप्ति विकार औ संस्कार। कर्मके सामर्थ्य-का विषय है ॥ [२९३] उत्पादन करनेकूं प्राप्त करनेकूं वि-कार करनेकूं औ संस्कार करनेकूं कर्मका सामर्थ्य है। यातैं व्यतिरिक्त विषय कर्मके सामर्थ्यका नहीं है। काहेतैं लोकविषै अप्रसिद्ध होनेतैं [२९४] औ मो-क्ष जो है सो इन पदार्थनके मध्य अन्यतम नहीं किंतु [२९५] अविद्यामात्रकरि व्यवहित है। ऐसैं हम क-

---

अर्थ है:—मोक्ष। कर्म साध्य नहीं है। अविद्याका नाशरूप हो-नेतैं। रज्जु अविद्याके नाशकी न्यांई ॥

२९१ तहांहीं अन्यहेतुकूं कहैहैं ॥ इहां कर्मसाध्य मुक्ति नहीं है। यह शेष है ॥

२९२ ताहीकूं स्पष्ट करै हैं ॥

२९३ उक्तहीं कर्मके सामर्थ्यके विषयरूप अर्थकूं अन्वय अरु व्यतिरेककरि साधते हैं ॥

२९४ ननु उत्पत्ति आदिकनके मध्य अन्यतम होनेतैं मो-क्षकूंबी कर्मके सामर्थ्यकी विषयता होवैगी ? इस प्रकार जो कहै। सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां नित्य होनेतैं आत्मा होनेतैं कूटस्थ होनेतैं नित्यशुद्ध होनेतैं औ निर्गुण होनेतैं यह अर्थ है ॥

२९५ ननु आत्मभूत उक्त प्रकारका जब मोक्ष है । तब सर्वकूं प्रथमतैं क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

हतेहैं ॥ ॥ तहां पूर्वपक्षी कहैहैः–बाढं[296] (सत्य है)! केवलहीं[297] कर्मका ऐसा स्वभाव होहू। विद्यासंयुक्त[298] अरु निष्काम कर्मका तो यातैं अन्यथा स्वभाव होवैहै ॥ जातैं[299] अन्यशक्तिमान् होनेकरि अज्ञातवी विष दधिआदिक पदार्थनका विद्या मंत्र अरु शर्कराआदिककरि संयुक्त भये तिनका अन्य (कार्यांतर)विषै सामर्थ्य है॥ तैसैं[300] कर्मकावी होहू? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो[301] बनै नहींः–काहेतैं प्रमाणके अभावतैं। जातैं तहां कर्मके उक्त विषयसैं व्यतिरेककरि विषयांतरविषै सामर्थ्यके सद्भावविषै प्रत्यक्ष प्र-

---

२९६ उक्त कर्मके सामर्थ्यकूं पूर्ववादी अंगीकार करैहै ॥

२९७ अंगीकारकूंहीं स्पष्ट करै है ॥

२९८ ऐसैं स्वभावतैं उत्पादन आदिकविषै कर्मकी समर्थता जब है तब कौन विप्रतिपत्ति है? तहां कहैहैं ॥ इहां अन्यथास्वभाव। याका चतुर्विध क्रियाके फलतैं विलक्षण मोक्षविषैवी समर्थता है। यह अर्थ है ॥

२९९ उत्पत्ति आदिकविषै समर्थ विद्यासंयुक्त कर्मका तिसतैं विलक्षण मोक्षविषैवी सामर्थ्य है। इस अर्थविषै प्रतिवादी दृष्टांतकूं कहैहै ॥

३०० उक्त दृष्टांतके वशतैं संसाररूप फलवाले केवल कर्मकूंवी विद्याके संयोगतैं मुक्तिरूप फलदातृतावी होवैगी॥

३०१ सिद्धांती समाधान करैहैं ॥

माण नहीं है। अनुमान नहीं है। उपमान नहीं है। अर्थापत्ति नहीं है। शब्द नहीं है॥ ॥ ननु[302] फलांतरके अभाव हुये चोदनाकी अनुपपत्तिरूप प्रमाण है इति ॥ ॥ जौतैं[303] नित्यकर्मोंका फल विश्वजित् यागके न्यायकरि नहीं कल्पना करियेहै औ श्रुत[304]

---

३०२ अतींद्रिय होनेतैं कर्मकी मोक्षसाधनताविषै प्रत्यक्ष आदिकके असंभव हुयेबी अर्थापत्ति है? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्यकर्मोंविषै मोक्षतैं अतिरिक्त श्रुतफलके अभाव होते तिसविषै उपलभ्यमान चोदनाकी मोक्षफलवान्ताविना अनुपपत्ति जो है सो कर्मोंकी मोक्षसाधनताविषै प्रमाण है ॥

३०३ ननु "विश्वजित् यागकरि यजन करो" इस ठिकाने यागकी कर्तव्यतारूप नियोग जानिये है। ताकूं नियोज्यकी अपेक्षावाला होनेतैं स्वर्ग होवैगा। सर्वके प्रति अविशिष्ट होनेतैं। इस न्यायकरि स्वर्गकाम नियोज्य अंगीकार किया है। तैसैं नित्यकर्मोंविषैबी नियोज्यका विशेषण स्वर्ग होवैगा? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"जीवता हुया होमकूं करै" ऐसैं जीवनविशिष्ट नियोज्यके लाभतैं नित्यकर्मोंविषै स्वर्ग नियोज्यका विशेषण नहीं होवैगा ॥

३०४ ननु जीवविशिष्ट पुरुषबी फलके अभावकरि नियोज्य होवैहै। तैसैं हुये "कर्मकरि पितृलोक होवैहै" ऐसैं सुन्या जो फल सो तिनोंविषै कल्पना करियेगा? यह कथन बनै नहीं। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्यविधिके प्रकरणविषै पितृलोकके वाक्यके अश्रवणतैं ॥

फलबी नहीं है औ वे (नित्यकर्म) चोदना[305]के विषय करियेहैं[306] ॥ परिशेषतैं तिनका फल मोक्ष है ऐसैं जानियेहै । जातैं[307] अन्यथा पुरुष नहीं प्रवृत्त होवैंगे ॥ ॥ ननु[308] विश्वजित्का न्यायहीं आया । मोक्षरूप फलकूं कल्पित होनेतैं औ[309] मोक्षके वा अन्य फलके अकल्पित (कल्पना नहीं किये) हुये पुरुष नहीं प्रवृत्त होवैंगे । यातैं श्रुतार्थापत्तिकरि कहिये श्रुत विधिके प्रवर्त्तककी अनुपपत्ति-

---

३०५ तब फलके अभावतैं चोदनाहीं नहीं होवैगी ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं । इस प्रकार कहैहैं ॥

३०६ तथापि फलांतर कल्पना करनेकूं योग्य है ? यह आशंका करिके । कल्पकके अभावतैं ऐसैं बनै नहीं इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

३०७ मुक्तिका जो कल्पक है । सोई फलांतरकाबी कल्पक क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके । ताकूं निरतिशय फलकूं विषय करनेवाला होनेतैं मुक्तिका कल्पकहीं है इस अभिप्रायकरिके कहैहैं ॥

३०८ जब अनुपपत्तिकरि नियोज्यके लाभ अर्थ नित्यकर्मोंविषै फल कल्पना करियेहै तब विश्वजित् न्याय कैसैं नहीं प्राप्त होवैगा । इस रीतिसैं सिद्धांती प्रत्युत्तर कहैहैं ॥

३०९ उक्त अर्थकूंहीं विवरण करै हैं ॥ इहां श्रुतार्थापत्तिकरि याका श्रुतविधिके प्रवर्तककी अनुपपत्तिकरि । यह अर्थ है ॥

करि मोक्षरूप फल कल्पना करिहेहै । जैसैं विश्वजित् यागविषे है । तैसैं ॥ ॥ कहिये [ननु[३१०]] ऐसैं हुये विश्वजित् न्याय नहीं होवैहै । यह कैसैं कहियेहै औ फल[३११] कल्पना करियेहै अरु विश्वजित् न्याय नहीं होवैहै यह विरुद्ध तेरेकरि कैसैं कहियेहै[३१२] ॥ ॥ जो कहै । मोक्ष फलहीं नहीं होवैहै ? सो[३१३] बनै नहीं:—काहेतैं प्रतिज्ञाके त्यागतैं । जातैं कर्म[३१४] जो है सो विष अरु दधि आदिककीन्यांई कार्यांतरकूं आरंभ करैहै । यह तेरेकरि प्रतिज्ञात है । सो जब मोक्ष होवै तब कर्मका कार्य फलहीं नहीं होवैहै सो प्रतिज्ञा नष्ट होवैगी औ कर्मकी[३१५] कार्यताके हुये मो-

---

३१० विश्वजित् यागकी न्यांई नित्यकर्मोंविषे मोक्षरूप फलके कल्प्यमान हुये फलितकूं कहैहैं ॥

३११ कैसैं । इस प्रकारसैं उक्त अनुपपत्तिकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

३१२ फल कल्पनाविषै विश्वजित् न्याय अवतरताहै मोक्षतो स्वरूपकी स्थितिरूप होनेकरि अनुत्पाद्य होनेतैं फलहीं नहीं होवैहैं ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३१३ निग्रहकूं उद्भव करते हुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

३१४ प्रतिज्ञाकी हानिकूं प्रकट करै हैं ॥

३१५ कर्मकी कार्यता मुक्तिकूं अंगीकार करिके कहा सोई अयुक्त है । ऐसैं कहैहैं ॥

क्षका स्वर्गादि फलोंतें विशेष वक्तव्य है ॥ औ[316] जब कर्मका कार्य नहीं होवैहै? तब नित्यक[317]-र्मोंका फल मोक्ष है। इस तेरी वचन व्यक्ति-का कौंन अर्थ है ॥ यह कहनेकूं योग्य है औ [318]कार्य अरु फल शब्दके भेदमात्रकरि विशेष क-ल्पना करनेकूं शक्य है ॥ औ [319]अफलरूप मो-क्ष नित्यकर्मोंकरि करियेहै। औ सो नित्यक[320]-र्मोंका फल है। कार्य नहीं। ऐसा यह अर्थ। विरुद्ध (व्याघातदोषयुक्त) कहियेहै। जैसें अग्नि शीत है। तैसें इति ॥ ॥ [321]ननु विज्ञानकीन्यांई?

---

३१६ फलरूपताके हुयेबी कर्मकी कार्यता मुक्तिकूं नहीं है। ऐसें उक्त दोषकूं परिहार करनेकूं प्रश्न करैहै ॥

३१७ प्रतिज्ञाके विरोधकरि सन्मुख पूछते हैं ॥

३१८ फलरूपताकूं अंगीकार करिके कार्यरूपताके अनंगी-कार किये कैसें व्याघात होवैगा? यह आशंका करिके। क-हैहैं ॥

३१९ विशेष अर्थगत ऐसें शेष फलरूपताकूं अंगीकार क-रिके कार्यरूपताके अनंगीकारविषै व्याघातकूं कहिके विप-रीतताविषैबी ताकूं प्रतिपादन करैहैं ॥

३२० पहिले व्याघातकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

३२१ दृष्टांतकरि व्याघातकूं परिहार करता हुया पूर्ववादी आशंका करैहै ॥

ऐसैं जो कहै कहिये जैसैं[322] तुह्मारे मतविषै ज्ञान-का कार्य मोक्ष ज्ञानकरि अक्रियमाण हुयाबी कहियेहै। तैसैं हमारे मतविषै मोक्षकूं कर्मकी कार्यता है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। [323]सो बनै नहीं:—काहेतें ज्ञानकूं अज्ञानका निवर्त्तक होनेतें। [324]ज्ञानकूं अज्ञानरूप व्यवधानका निवर्त्तक होनेतें मोक्ष ज्ञानका कार्य है। ऐसैं उपचार करियेहै। [325]परंतु कर्मकरि निवर्त्त करने योग्य अज्ञान नहीं है औ अज्ञानसैं व्यतिरेक करि मोक्षका अन्य व्यवधान (आच्छादक) कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है। काहेतें मोक्षकूं[326] नि-

३२२ ताहीकूं स्पष्ट करैहै ॥

३२३ अब सिद्धांती दृष्टांतकूं खंडन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ज्ञानकूं मोक्षके व्यवधानरूप अज्ञानका निवर्तक होनेतैं मोक्ष जो है सो तिसकरि अक्रियमाण हुयाबी ताका कार्य है इस व्यपदेशका भागी होवैहै ॥

३२४ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

३२५ दार्ष्टांतिककूं खंडन करैहैं ॥ इहां जो कर्मकरि निवर्त होवै सो मोक्षका अन्यव्यवधान कलपना करनेकूं तो शक्य नहीं है। ऐसैं संबंध है ॥

३२६ ननु व्यवधानके ध्वंस हुये कर्मके प्रवेश हुयेबी मु-

त्य होनेतैं औ साधकके स्वरूपसैं अभिन्न होनेतैं । जो कर्मकरि निवर्त्त करिये । सो नहीं है ॥ ॥ [३२७] ननु नित्यकर्म अज्ञानकूंहीं निवर्त्त करैहै ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । [३२८] सो बनै नहीं । काहेतें कर्मकूं ज्ञानतें विलक्षण होनेतें । [३२९] अनभिव्यक्तिरूप अज्ञान है । सो अभिव्यक्तिरूप ज्ञानसैं विरुद्ध होवैहै । कर्म तो अज्ञानसैं विरुद्ध नहीं होवैहै । तिस हेतुकरि ज्ञानतें विलक्षण कर्म है ॥ [३३०] जब ज्ञानाभाव । वा जब संशयज्ञान । वा जब विपरीतज्ञान अज्ञान है ऐसैं कहियेहै । तब सर्वहीं सो ज्ञानकरिहीं

क्तिविषैहीं ताका प्रवेश होवैगा ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

३२७ नित्य कर्मकरि निवर्त्त करने योग्य अन्य व्यवधान मति होहू । अज्ञानहीं तिसकरि निवर्त्त करने योग्य होवैगा । तिस प्रकार हुये मोक्षकूं कर्मकी कार्यता उपचार करनेकूं शक्य है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३२८ कर्मकूं ज्ञानतें विलक्षण होनेतें अज्ञानकी निवर्त्तकता नहीं है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

३२९ विलक्षणताकूंहीं प्रगट करैहैं ॥

३३० इसतैंबी ज्ञानकरि निवर्त्त होने योग्यहीं अज्ञान है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अन्यतम कहिये नित्य आदिक व्यस्तरूप वा समस्तरूप श्रौत औ स्मार्त्तकरि यह अर्थ है औ कर्म अरु अज्ञानका अविरोध हेतुका अर्थ है ॥

निवर्त्त होवैहै। कर्मकरि औ अन्यतमकरिबी तो नहीं। काहेतैं विरोधके अभावतैं ॥ [331] ॥ औ कर्मोंकूं अज्ञानकी निवर्त्तकता अदृष्टरूप कल्पना करनेकूं योग्य है? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। [332] सो बनै नहीं:—काहेतैं ज्ञानकरि अज्ञानकी निवृत्तिके प्रतीयमान हुये अदृष्टरूप निवृत्तिके कल्पनाके असंभवतैं ॥ [333] जैसें खांडनेकरि व्रीहिनकी तुषनिवृत्तिके प्रतीयमान हुये अग्नि होत्रादि नित्यकर्मका कार्य होवैहै। अदृष्टरूप तुषनिवृत्ति नहीं कल्पना करियेहै ॥ तैसें अज्ञानकी निवृत्तिबी नित्यकर्मकी कार्यरूप नहीं कल्पना करियेहै औ [334] ज्ञानसें कर्मोंका बहुत विरुद्धपना हम कहते हैं ॥ औ जो [335] कर्मोंसें अविरुद्ध ज्ञान है। सोई लोक

---

३३१ कर्मकूं अज्ञानकी निवर्त्तकता जो है सो अन्वय अरु व्यतिरेककरि सिद्ध नहीं। किंतु अदृष्टरूपहीं कल्पना करनेकूं योग्य है? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३३२ दृष्टके होते अदृष्टकी कल्पना युक्त नहीं है। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

३३३ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि बुद्धिविषै आरोप करैहैं ॥

३३४ ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होहु किंतु कर्मसमुच्चित ज्ञानतैं होवैहै? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

३३५ ननु कर्मोंके साथि अविरुद्धबी हिरण्यगर्भ आदि-

प्राप्ति[illegible] निमित्त है ऐसैं कहा । "विद्याकरि देव लोक होवैहै" ॥ ॥ किंवा[336] श्रुत नित्यकर्मोंके [337]कल्पना करने योग्य फलविषै अन्य कारणबी है । जो कर्मोंसैं विरुद्ध होवैहै औ [338]द्रव्य गुण अरु कर्मोंका कार्यहीं नहीं होवैहै। सो क्या कल्पना करिये । जिसविषै[339] कर्मका सामर्थ्यहीं देख्या नहीं ॥ ॥ किंवा[340] जिसविषै सामर्थ्य देख्या है । तिसविषै औ [341]जो कर्मोंका अविरुद्ध फल है सो। कल्पना करने योग्य है । यातैं [342]पुरुष प्रवृत्तिके ज-

---

कनका विज्ञान है । तैसैं हुये कर्मसमुच्चित ज्ञान । अज्ञानका ध्वंसी होवैगा ? तहां नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

३३६ समुच्चित औ असमुच्चित नित्यकर्मोंका । स्वरूप स्थितिरूप मोक्षविषै वा ताके प्रतिबंधक अज्ञानके नाशविषै दृष्ट सामर्थ्य। कल्पना करनेकूं योग्य नहीं है ऐसैं कहा । अब तिस कल्पनाकूं अंगीकार करिकेबी दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—कर्मकूं मोक्षका सामर्थ्य है । यह उक्त कारणतैं नहीं होवैहै किंतु अन्यबी कारण तहां है ॥

३३७ ताहीकूं दिखावनेकूं विचार करैहैं ॥

३३८ विरोधकूं दूरी करैहैं ॥

३३९ कार्यताके अभावकूं प्रतिपादन करैहैं ॥

३४० पक्षांतरकूं कहैहैं ॥

३४१ सामर्थ्यके विषयकूं स्पष्ट करैहैं ॥

३४२ इहां किस प्रकार निर्णय है ? तहां कहैहैं ॥ इहां

नन अर्थ अवश्य जब कर्मका फल कल्पना क-
रनेकूं योग्य है। तब कर्मसैं अविरुद्ध विषयविषै-
हीं श्रुतार्थापत्तिकूं क्षीण होनेतैं नित्य जो मोक्ष
सो फलरूप कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है वा
ताके व्यवधानरूप अज्ञानकी निवृत्ति [फलरूप
कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है] काहेतैं अविरुद्ध
होनेतैं औ अदृष्टरूप सामर्थ्यका विषय होनेतैं ॥
३४३
परिशेष न्यायतैं मोक्षहीं कल्पना करनेकूं योग्य

कल्पना करने योग्य फल है। ऐसैं संबंध है औ उत्पत्ति आ-
दिकनके मध्य अन्यतमहीं कर्मके साथि अविरुद्ध विषय है।
तहांहीं नित्यकर्मकी चोदनाके असंभवतैं उपशांतपना है।
नित्यकर्मका फल होनेकरि मोक्ष वा ताके व्यवधानरूप अ-
ज्ञानकी निवृत्ति कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है। कर्म अरु अ-
ज्ञानके विरोधके अभावतैं औ जिस उत्पत्ति आदिकविषै सा-
मर्थ्य देख्या है कर्मकूं तिस विषयवाला होनेतैं। तिसतैं
विलक्षण मोक्षविषै कर्मका व्यापार नहीं है। तिस प्रकार
हुये नित्यकर्मकी विधिके वशतैं पुरुषकी प्रवृत्तिके संपादन
अर्थ जब फल कल्पना करनेकूं होग्य होवै तब ताकी उत्प-
त्ति आदिकनके मध्य अन्यतमतैंहीं सो अविरुद्ध कल्पना क-
रनेकूं योग्य होवै। यह अर्थ है ॥ इहां इति शब्द जो है सो
श्रुतार्थापत्तिके परिहारकी समाप्ति अर्थ है ॥

३४३ ननु मोक्षहीं नित्यकर्मोंका फल होनेकरि कल्पना
करनेकूं योग्य है पारिशेष्य न्यायतैं? इस प्रकार प्रतिवादी
शंका करैहै ॥

है ? ऐसैं जो कहै कहिये जातैं[३४४] सर्व कर्मोंका सर्व फल है औ[३४५] इतर कर्मोंके फलतैं व्यतिरेककरि अन्य फल कल्पना योग्य नहीं है औ परिशिष्ट[३४६] मोक्ष है औ[३४७] सो वेदवेत्तानकूं इष्ट फल है । तातैं[३४८] सोई कल्पना करनेकूं योग्य है ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो[३४९] बनै नहीं:—काहेतैं कर्मफलकी व्यक्तिनकूं अनंत होनेतैं पारिशेष न्यायके असंभवतैं । जौतैं[३५०] पुरुषकी इच्छाके विषयरूप

३४४ पारिशेष्य न्यायकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥ इहां सर्व कहिये स्वर्ग पशु पुत्रादि ॥

३४५ तथापि मोक्षतैं अन्यहीं नित्यकर्मका फल क्यूं नहीं होवैगा ? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥

३४६ मोक्षकेबी इतर कर्मके फलविषै प्रवेशकूं आशंका करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

३४७ ताकी फलरूपताहीं कैसैं सिद्धभयी ? तहां प्रतिवादी कहैहै ॥

३४८ परिशेषतैं जो कहा। ताके अर्थकूं प्रतिवादी निगमन करैहै ॥

३४९ अब सिद्धांती। पारिशेष्यकी असिद्धिकारि दूषण देते हैं ॥

३५० कर्मफलकी व्यक्तिनकी अनंतता कही । ताकूं स्पष्ट करैहैं ॥

कर्मके फलोंका [३५१] वा तिनोंके साधनोंका इतने-पना प्रसिद्ध किसीबी असर्वज्ञकरि निश्चित नहीं है। औ पुरुषनकी इच्छाओंकूं [३५२] अनियमित देशकालरूप निमित्तवालियां होनेतें औ पुरुषकी इच्छाके विषयरूप साधनोंकूं [३५३] पुरुषके इष्टफलके कियेहोनेतें। [३५४] प्रतिप्राणीकी चेष्टाकी विचित्रतातें फलोंकी औ तिनके साधनोंकी अनंतताकी सिद्धि है औ [३५५] तिनकी अनंततातें पुरुषनकरि तिनका एतावान्पना जाननेकूं अशक्य है औ [३५६] साधन अरु फलोंके एतावान्पनैके अज्ञात

---

३५१ फलकी न्यांई फलके साधनोंकी औ फलविषयक इच्छाओंकी अनंतताकूं कथन करैहैं ॥

३५२ तिनकी अनंतताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३५३ इच्छा आदिकनकी अनंतताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां एतावान्पना प्रसिद्ध नहीं है। ऐसैं दोनूं ओर संबंध है औ पुरुषकूं इष्ट फल। शोभनाध्यासका विषयभूत है। काहेतैं तहां विषयी पुरुषनकूं शोभनाध्यासकरि प्रवर्त्त होनेतैं। यह हेतुका अर्थ है ॥

३५४ इच्छा आदिकनकी अनंतताकूं प्राणीनके भेदनविषै दिखायके तिनकी अनंतताकूं एक एकबी प्राणीविषै दिखावै हैं ॥

३५५ इच्छाआदिककी अनंतताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

३५६ साधन आदिकनविषै एतावान्पनैके अज्ञानके हु-

हुये मोक्षके परिशेषकी सिद्धि कैसें होवैगी इ-ति ॥ ॥ [३५७] ननु कर्मफलोंकी जातिका पारिशेष्य होवैगा? ऐसें जो कहै । कहिये [३५८] इच्छाकेविषय औ तिनके साधनोंकी अनंतताके हुयेबी कर्मफलका जातिपना नाम सर्वकूं तुल्य है । मोक्ष [३५९] तो अकर्मका फल होनेतें परिशिष्ट होवैगा। [३६०] तातें परिशेषतें सोई कल्पना करनेकूं युक्त है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो [३६१] बनै नहीं काहेतें ता (मोक्ष)कीबी नित्यकर्मकीफलरूपताके अंगीकार हुये कर्मफलके सजातीयताके संभवतें परिशेषकी अनुपपत्ति है ॥ [३६२] तातें अन्यथाबी

येबी क्या होवैहै? सो कहैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो पारिशेष्यके असंभवकी समाप्ति अर्थ है ॥

३५७ प्रकारांतरकरि पारिशेष्यकेतांई प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३५८ तिसीहीं शंकाकूं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥

३५९ तथापि मोक्षका परिशिष्टपना कैसें है? सो कहैहै ॥

३६० परिशेषके फलकूं कहैहै ॥

३६१ अब सिद्धांती शंकाके विषय किये परिशेषकूं दूषण देते हैं ॥

३६२ अर्थापत्ति अरु परिशेषकूं खंडन करिके अब अर्थापत्तिके खंडनकूं प्रपंचन करनेकूं प्रसंगविषै प्राप्त कहैहैं ॥

उपपत्ति है । तातैं श्रुतार्थापत्ति क्षीणभयी औ [३६३] उत्पत्ति प्राप्ति विकार अरु संस्कार । इनके मध्य अन्यतमबी नित्यकर्मोंका फल संभवैहै । यातैं श्रुतार्थापत्ति क्षीणभयी ॥ ॥ [३६४] ननु च्यारिनके मध्य अन्यतमहीं मोक्ष होवैगा ? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै । सो [३६५] बनै नहीं । काहेतैं मोक्ष प्रथम । अनुत्पाद्य है । नित्य होनेतैं । याहीतैं अविकार्य है औ याहीतैं अरु [३६६] असाधन द्रव्यरूप होनेतैं असंस्कार्य है । [३६७] जातैं साधनात्मक द्रव्य संस्कारयुक्त करियेहै । जैसैं पात्र अरु घृतादिक । प्रोक्षणादिकरि संस्कारयुक्त करियेहै औ [३६८] तैसैं मो-

३६३ अर्थापत्ति प्रमाणकूं प्रगट करैहैं ॥

३६४ नित्यकर्मोंकूं उत्पत्ति आदिक फलवान्ताके हुयेबी मोक्षकूं तिनकी फलरूपता सिद्ध होवैहै ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३६५ तिनविषै मोक्षकी उत्पाद्यताकूं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥ इहां दोनूं ठिकाने अतः (यातैं) शब्द जो है । सो नित्यताका स्मारक है ॥

३६६ मोक्षकी असंस्कार्यताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

३६७ ताहीकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करैहैं ॥

३६८ इसतैंबी मोक्षकी असंस्कार्यता है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जैसैं यूप (यज्ञका खंभ)। तक्षण (तक्षाके शस्त्रकरि बारीक करना) अष्टास्रीकरण (अष्ट आकृतिवाला क-

क्ष संस्क्रियमाण नहीं वा यूप आदिककीन्यांई संस्कारकरि निर्वाह करने योग्य नहीं है॥ ॥ [३६९] परिशेषतैं आप्य होवैगा? सो आप्यबी नहीं है। काहेतैं आत्माका स्वभावरूप होनेतैं औ एकरूप होनेतैं ॥ ॥ [३७०] ननु इतर कर्मोंकरि विलक्षण होनेतैं नित्यकर्मोंकूं तिनोंके फलकरिबी विलक्षण होना योग्य है? ऐसैं जो प्रतिवादी कहै। [३७१] सो बनैनहीं:—काहेतैं कर्मत्वरूप समान लक्षणके होनेतैं समानलक्षणवाला फल काहेतैं नहीं होवैहै ॥ ॥ ननु इतर कर्मोंके फलोंसैं निमि-[३७२]त्तकी विलक्षणतातैं [नित्यकर्मोंके फलकी विल-

रना) औ अभ्यंकन (रेखाओंकरि चित्रित करना) इत्यादिकरि संस्कारयुक्त करियेहै औ जैसैं आहवनीय (हवनका अग्नि)। संस्कारकरि उत्पादन करियेहै । तैसैं मोक्ष नहीं है काहेतैं नित्यशुद्ध होनेतैं औ निर्गुणरूप होनेतैं ॥

३६९ पक्षांतरकूं अनुवाद करिके दूषण देते हैं ॥ इहां एकत्व कहिये पूर्णत्व ॥

३७० ननु साधनकी विलक्षणता जो है सो फलकी विलक्षणताकूं कल्पती है? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३७१ अब सिद्धांती । हेतु (साधन)की विलक्षणताकी असिद्धिके हुये कल्पकके अभावतैं फलकी विलक्षणताकी असिद्धि है। इस रीतिसैं दूषण देते हैं ॥

३७२ निमित्तकरि किये हेतुकी विलक्षणताके वशतैं फ-

क्षणताकी सिद्धि है] ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । सो [३७३] बनैनहीं:–काहेतें क्षामवती आदि-ककरि समान होनेतें ॥ [३७४] जैसें प्रसिद्ध ग्रहदाहा-

---

लके विलक्षणताकी सिद्धि है ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

३७३ निमित्तका विलक्षणपना फलके विलक्षणपनैका अ-निमित्त है । इस रीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

३७४ ताहीकूं प्रपंचन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— "आहिताग्नि हुये जिस पुरुषका अग्नि गृहनकूं जलावै । क्षाम-वाले अग्निके अर्थ अष्टाकपाल (आठ कपालोंविषै पकाये) पु-रोडाशकूं निर्वपन करै" इस ठिकाने "जलावै" ऐसैं प्र-सिद्धिरूप अर्थवाले यत् शब्दकरि युक्त विधिके विभाग-करि गृहदाह नामक निमित्तके स्मरणकरि क्षामवाले अग्निके अर्थ पुरोडाशकूं निर्वपन करै । इत्यादिकरि क्षामवती इष्टि विधान करियेहै ॥ औ "जाका उभयहवि आर्त्तिकूं दूरी करै । सो इंद्रसंबंधी पंचशरावके मोदनकूं निर्वपन करै" इस ठिकाने "दूरी करै" ऐसैं विधिके विभागकरि निर्वपन करै । ऐसैं विधीयमान निमित्तरूप हवि आर्त्तिकूं । अनुवाद करिके निर्वाप विधान करियेहै औ "भिन्नविषै होमता है स्कन्न (गलित)विषै होमता है औ जाके दो पुरोडाश क्षीण होवैहैं तिस यज्ञकूं वरुण देवता ग्रहण करैहै । जब सो हवि स्थित होवै तब तिसीहीं हविकूं निर्वपन करै । यज्ञहीं यज्ञका प्रायश्चित्त है" इस रीतिसैं भेदन आदिक निमित्त-वाला प्रायश्चित्त कहा है औ सो मुक्तिरूप फलवाला नहीं

दिक निमित्तके हुये क्षामवती आदिक इष्टि है॥ जैसें " भिन्नके हुये होमताहै स्कन्नके हुये होमताहै " इत्यादि स्थलविषे नैमित्तिक कर्मोंके विषे मोक्षरूप फल कल्पना नहीं करियेहै। काहेतें तिन[375] (क्षामवतीआदिकन)सें नैमित्तिकताकरि [नित्यकर्मोंके] अविशेषतें औ जीवना[376]दि निमित्तविषे श्रवणतें ॥ ऐसें[377] नित्यकर्मोंकाबी मोक्ष फल नहीं है ॥ औ[378] आलोककी सर्वकूं रूपदर्शनकी साधनताके हुये उलूक आदिक आलोककरि रूपकूं नहीं देखतेहैं। यातें उलूक आदिकनके दो चक्षुनकी इतर लोकके चक्षुनकरि विलक्षणतातें रसादि विषयता नहीं कल्प-

---

है ॥ तैसें निमित्तके भेदहुयेबी नित्यकर्म मुक्तिरूप फलवाला नहीं है ॥

३७५ नित्यकर्मनकूं क्षामवती आदिककी तुल्यता कैसें प्राप्तभयी? यह आशंकाकरिके कहैहैं ॥ इहां तिनोंकरि कहिये क्षामवती आदिकनकरि औ अविशेषविषे हेतु नैमित्तिकताकरि । यह है ॥

३७६ सोई कैसें है? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। तहां कहैहैं ॥

३७७ दार्ष्टांतिककूं स्पष्ट करैहैं ॥

३७८ नित्यकर्म अन्यकर्मतें विलक्षण हुयाबी मोक्षरूप फलवाला नहीं है। इस अर्थविषे दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

ना करियेहै । काहेतैं [३७९] रसादि विषयविषै साम-र्थ्यकूं अदृष्ट होनेतैं । [३८०] अत्यंत दूरबी जायके जिस विषयविषै सामर्थ्य देख्या है तहांहीं कोईकवि-शेष (दूर सूक्ष्मादि अतिशय) कल्पना करनेकूं योग्य है ॥ ॥ [३८१] जो पूर्व कहाथाकिः—विद्या मंत्र अरु शर्करा आदिककरि संयुक्त विष दधिआदिककी न्यांई नित्यकर्म कार्यांतरकूं आरंभ करतेहैं ऐसैं । सो विशिष्ट कार्यकूं वे आरंभ करहु । तहां इष्ट हो-नेतैं अविरोध है । [३८२] फलाभिलाषारहित विद्यासं-युक्त कर्मकूं विशिष्ट कार्यांतरके आरंभविषै को-ईबी विरोध नहीं है। काहेतैं [३८३] देवयाजी अरु आ-

---

३७९ अन्योंके चक्षुनकरि उलूक आदिकनके दो चक्षुनकी विलक्षणताके हुयेबी तिन (उलूकके चक्षुन)कूं रसआदिक विषयवान्‌ता नहीं है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

३८० तब विलक्षणता कहां उपयोगकूं पावती है ? तहां कहैहैं ॥ इहां मनुष्यनकूं छोडिके उलूक आदिकविषै जाय-केबी यह अर्थ है औ जिसविषयविषै याका रूपादिविषै यह अर्थ है ॥ औ विशेष कहिये दूर अरु सूक्ष्मआदिक अतिशय ॥

३८१ दार्ष्टांतिककूं पूर्ववादके अनुवादपूर्वक कहैहैं ॥

३८२ ताहीकूं विवरण करैहैं ॥

३८३ विद्यासंयुक्त जो कर्म सो श्रेष्ठ कार्यकर है इस अर्थविषै शतपथ श्रुतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— "सो कहतेभये" ऐसैं उपक्रम करिके "देवयाजीतैं अति-

त्मयाजीके मध्य आत्मयाजीके "देवयाजीतैं आत्मयाजी अतिशय श्रेष्ठ है" इत्यादि वाक्यविषै औ "[३८४] जोई विद्याकरि करैहैं" इत्यादि छांदोग्य श्रुतिविषै विशेषके श्रवणतैं ॥ ॥ औ[३८५] जो परमार्थदर्शनके विषयमैं मनुनैं "सम देखता हुया

शय श्रेष्ठ है" इत्यादि स्थलविषै काम्यकर्मके कर्त्ता देवयाजीतैं आत्माकी शुद्धि अर्थ कर्मकूं कर्त्ता हुया आत्मयाजी अतिशय श्रेष्ठ है। ऐसैं आत्मयाजीके विशेषके श्रवणतैं। औ "सर्व यज्ञोंके याजीनके मध्य आत्मयाजी विशेष होवैहै" इस स्मृतितैं विशिष्ट कर्मकूं विशिष्टकार्यका आरंभकपना अविरुद्ध है ॥

३८४ छांदोग्यविषैबी विद्यासंयुक्त कर्मकूं विशिष्टकार्यकी आरंभकता देखी है। ऐसैं कहैहैं ॥

३८५ परंतु आत्मयाजी शब्द नित्यकर्मके अनुष्ठायीकूं विषय करनेवाला नहीं होवैहै ऐसैं नहीं। काहेतैं "सर्व भूतनविषै आत्माकूं औ सर्व भूतनकूं आत्माविषै सम्यक् देखताहुया आत्मयाजी निश्चयकरि स्वाराज्यकूं पावता है" इस वाक्यविषै परमात्मदर्शनविषै ता (आत्मयाजी) शब्दकूं प्रयोग किया होनेतैं ? यह शंका भयी। यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जब सम देखनेवाला होवै तब परमात्माके साथि एकी भूतहुया स्वराट् होवैहै । ऐसैं आत्मज्ञानकी स्तुति इहां विवक्षित है। जातैं बडी यह ब्रह्मविद्या है जो ब्रह्मवित्हीं आत्मयाजी होवैहै। ताके अनुष्ठानकूं पृथक् अपेक्षा करै है औ "ब्रह्मवित् पुण्यकारी होवैहै" ऐसैं आगे कहियेगा ॥

आत्मयाजी" ऐसें आत्मयाजी शब्द कहा है। ताका इहां सम देखता हुया आत्मयाजी होवैहै। यह अर्थ है ॥ [३८६] अथवा भूतपूर्वगतिकरि [३८७] आत्मयाजी आत्मा (अंतःकरण)के संस्कार अर्थ नित्यकर्मोंकूं करैहै। "[३८८] यह मेरा अंग इसकरि संस्कार युक्त करियेहै" इस श्रुतितें। तैसें [३८९] "गर्भसंबंधी होमोंकरि" इत्यादि प्रकरणविषे कार्यकरणके संस्काररूप अर्थवान्‌ता नित्यकर्मोंकूं दिखाई है औ [३९०] संस्कारयुक्त जो आत्मयाजी।

---

३८६ परमात्माके दर्शनवाले पुरुषविषै आत्मयाजी शब्दकी अन्य गतिकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—भूत जो पूर्वस्थिति। ताकूं अपेक्षा करिके आत्मयाजी शब्द। विद्वान्‌विषै प्रवर्त्त होवैहै ॥

३८७ ताहीकूं प्रपंचन करैहैं ॥

३८८ तिन (नित्य कर्मन)की ता (आत्मा)के संस्काररूप अर्थवान्‌ताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

३८९ तहांहीं स्मृतिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—गर्भसंबंधी होमकरि औ मौंजीबंधनादि कर्मोंकरि वैदिक (वेदोक्त)हीं पापकूं नाश करैहैं। इस प्रकरणविषै नित्यकर्मोंकी संस्काररूप अर्थवान्‌ता निश्चित है ॥

३९० संस्कारबी किसविषै उपयोगकूं पावता है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जो निश्चयकरि नित्यकर्मका अनुष्ठायी है सो सत् अनुष्ठानतैं जनित अपूर्वके वशतैं परि-

सो तिन कर्मोंकरि सम देखनेकूं समर्थ होवैहै। [३९१]तौकूं इस जन्मविषै वा जन्मांतरविषै सम आत्मदर्शन उत्पन्न होवैहै। [३९२]समं देखता हुया स्वाराज्यकूं पावताहै। ऐसैं यह अर्थ है ॥ [३९३]आत्मयाजी शब्द तो [३९४]ज्ञानयुक्त नित्यकर्मोंकी ज्ञानोत्पत्तिकी साधनताके दिखावनेअर्थ भूतपूर्व गतिकरि प्रयोग करियेहै ॥ ॥ [३९५]किंवा अन्यबी

शुद्ध बुद्धिवाला हुया सम्यक् बुद्धि (यथार्थ ज्ञान)के योग्य होवै ॥ इस अर्थविषै " महायज्ञोंकरि औ यज्ञोंकरि यह तनु ब्राह्मी (ब्रह्मज्ञानयुक्त) करियेहै " यह स्मृति है ॥

३९१ फेर यह सम्यक् ज्ञान कब उत्पन्न होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

३९२ उत्पन्न भये सम्यक् ज्ञानके फलकूं कहैहैं ॥

३९३ फेर सम्यक् ज्ञानवान्‌विषै आत्मयाजी शब्द कैसैं प्रवर्त्त होवैहै ? यह आशंका करिके। पूर्वोक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

३९४ ननु इहां भूत पूर्वगति क्यूं आश्रय करी है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—ऐहिक वा आमुष्मिक कर्मोंकरि शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषकूं श्रवणादिकके वशतैं मुक्ति फलवाला ऐक्यज्ञान उदय होवैहै। कर्म तो विद्यासंयुक्त हुयाबी संसाररूप फलवालाहीं है ॥

३९५ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—विद्यासंयुक्त हुयाबी कर्म बंधके अर्थहीं होवैहै । इस अर्थविषै केवल उक्तहीं कारण नहीं। किंतु अन्यबी ताका उपपादक है ॥

है:—"[३९६] ब्रह्मा विश्वसृज् (प्रजापति) धर्म महत्तत्व औ अव्यक्त। इस गतिकूं पंडित जन उत्तम सात्त्विकी कहतेहैं" ऐसें उपसंहारतें ॥ ॥

अब [३९७] देवसार्ष्टि व्यतिरेककरि भूतनविषै अप्यय (विलय)कूं दिखावैहैं:—पंचभूतनके तांईं विलय होवैहै॥ औ [३९८] भूतनकूं अतिक्रमण करिके जाता

---

३९६ तार्हीकूं दिखावै हैं ॥ इहां सात्त्विकी याका सत्व गुणकरि प्रसूत जो ज्ञान तिसकरि समुच्चित कर्मकी फलभूत। यह अर्थ है औ जहांहीं विद्यायुक्तबी कर्म संसाररूप फलवालाहीं सूचना करिये है "यह सर्व तीन प्रकारके कर्मका त्रिविधत्रिविध सार्वभौतिक कर्मरूप संसार सम्यक् कीर्त्तन किया" ऐसें उपसंहारतें। यह चकारका अर्थ है ॥

३९७ किंवा:—"प्रवृत्त (सकाम) कर्मकूं सेवन करिके देवनकी सार्ष्टिता (समानैश्वर्यता)कूं पावता है" ऐसें कर्मके फलभूत देवताओंके सदृश ऐश्वर्यकी प्राप्तिकूं कहिके। तिसतैं अतिरेककरि "निवृत्त (निष्काम कर्म)कूं सेवता हुया तो पंच भूतनकूं पावता है" ऐसें भूतनविषै अप्ययके वचनतैं समुच्चयकूं मुक्ति फलवान्‌ता नहीं है। ऐसें कहैहैं ॥

३९८ ननु "निवर्त्तकूं सेवता हुया तो पंचभूतनकूं पावता है" इस पाठतैं मुक्तिहीं समुच्चयके अनुष्ठानतैं विवक्षित है? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं ऐसें कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—ज्ञानहीं मुक्तिका हेतु है। इस अर्थकी प्रतिपादक उपनिषद्‌के विरोधतैं। यह पाठ अतिशय श्रेष्ठ नहीं है ॥

है। ऐसैं पाठकूं जे करते हैं तिनकूं वेदके विषयवि-
षै परिच्छिन्न बुद्धिवाले होनेतैं अदोष है औ ^३९९^ अध्या-
यकूं अर्थवादता नहीं है। काहेतैं ब्रह्मापर्यंत कर्म-
के विपाकरूप अर्थकूं औ तिसतैं व्यतिरिक्त आ-
त्मज्ञानरूप अर्थकूं कर्मकांड अरु उपनिषद्क-
रि तुल्य अर्थताके देखनेतैं औ ^४००^ विहितके अकर-

---

३९९ ननु विग्रहवाली देवताहीं नहीं है । जातैं सो दे-
वता मंत्रमयी है । शब्द अरु प्रत्यय आलंबन है। यातैं "ब्रह्मा
विश्वका स्रष्टा है" इत्यादि वाक्यकूं अर्थवादरूप होनेतैं ताके
बलकरि नित्यकर्मनकूं मुक्तिकी साधनता है। सो निराक-
रण करनेकूं शक्य नहीं है? यह शंका भयी। यातैं कहैहैं ॥
इहां ज्ञानरूप अर्थवाले "सम्यक् देखता हुया आत्मयाजी"
इत्यादिरूप वाक्यकी। यह शेष है ॥

४०० किंवा:—"विहित कर्मकूं न करता हुया औ निं-
दित कर्मकूं सम्यक् आचरता हुया अरु इंद्रियनके विषयन-
विषै आसक्त हुया नर पतनकूं पावता है [१] नर। शरीरतैं
जन्य कर्म दोषनकरि स्थावरभावकूं पावताहै । वाणीतैं
जन्य कर्म दोषनकरि पक्षी अरु मृग भावकूं पावता है औ
मनसैं जन्य कर्म दोषनकरि अंत्यज जातिभावकूं पावता है
[२] औ ब्रह्महा जो है सो श्वान शूकर खर उष्ट्र गौ अजा
अवि (मेष) मृग पक्षी चंडाल पुलकस इनोंकी योनिकूं पा-
वता है (३) इत्यादि वाक्योंकरि प्रतिपादित कर्म फलोंके प्र-
त्यक्षकरिवी देखनेतैं। जैसैं तहां अभूतार्थवादता नहीं है ।

ण अरु प्रतिषिद्ध कर्मोंके स्थावर श्वान शूकर आदिक फलके देखनेतें औ वांताशी[४०१] आदिक प्रेतोंके दर्शनतें औ[४०२] श्रुति स्मृतिविहित अरु प्रतिषिद्धसें व्यतिरेककरि विहित वा प्रतिषिद्ध कर्मे । किसीकरिबी जाननेकूं शक्य नहीं है । जिनोंके अकरणतें औ अनुष्ठानतें प्रेत श्वान शूकर स्थावरादि कर्मफल प्रत्यक्ष अरु अनुमानकरि

तैसें उक्त प्रकारके अध्यायकीबी अभूतार्थवादता नहीं है । ऐसें कहैहैं ॥

४०१ किंवाः—वंग (बंगाल) आदिक देशविषै वांताशी (वमनभक्षक) आदिक प्रेतनकूं प्रत्यक्ष होनेतें अध्ययन रहितबी स्त्रीशूद्रादिकनकूं वेदोच्चारणके देखनेतें औ ब्रह्मग्रहके सद्भावके शास्त्रतें ब्रह्मादि वाक्यकी अर्थवादता नहीं है। ऐसें कहैहैं ॥

४०२ ननु स्थावरादिकनकूं श्रौत स्मार्त्त कर्मकी फलरूपताके अभावतें तिस तिसके दर्शनकरि वचनोंकी भूतार्थता कल्पना करनेकूं शक्य है ? यह शंका भयी । यातें कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—सेवा आदिक दृष्ट कारणकी समताके हुयेबी फलकी विषमताकी प्रतीतितें अवश्य अतींद्रिय कारण कहनेकूं योग्य है औ तहां श्रुति स्मृतिकूं छोडिके अन्य प्रमाण नहीं है । तैसें हुये श्रौत स्मार्त्त कर्मके कियेहीं स्थावरादिक फल हैं ॥ औ सन्निहित अरु असन्निहित स्थावर आदिकनविषै प्रत्यक्ष अरु अनुमानकी यथायोग्य प्रवृत्ति जाननेकूं योग्य है ॥

प्रतीत होवैहै [४०३] औ इनोंकी अकर्मफलता किसी-करिबी नहीं जानियेहै । [४०४] तातैं विहितके अकरण औ प्रतिषिद्धकी सेवाके जैसैं ये कर्मविपाकरूप प्रेत तिर्यक् स्थावर आदिक हैं। तैसैं उत्कृष्ट ब्रह्मापर्यंतनविषैबी कर्मविपाकता जाननेकूं योग्य है ॥ [४०५] तातैं " सो (ब्रह्मा) आपके वपा (वीर्य)कूं पतन करताभया । सो रोदन करताभया"। इत्यादि वाक्यकी न्यांई या अध्यायकी अभूतार्थवादता (अनहुये अर्थकी बोधकता) नहीं है॥ [४०६] ननु तहां (उक्त दृष्टांतविषै)बी अभूतार्थवादता

---

४०३ स्थावरोंकूं जीवशून्य होनेतैं कर्मकी फलरूपता नहीं है ऐसैं केईक कहते हैं । तिनोंके प्रति कहेहैं॥ इहां यह अर्थ है:—असदादिककी न्यांईहीं वृक्षादिकनकी वृद्धि आदिकनके देखनेतैं सजीवताकी प्रसिद्धितैं औ " तातैं पादप देखते हैं " इत्यादि महाभारतके वचनतैं तिनोंके कर्म फलताकी सिद्धि है ॥

४०४ स्थावरादिकनकी कर्मफलताके सिद्ध भये फलितकूं कहेहैं ॥

४०५ ब्रह्मादिकनकी पुण्यकर्मकी फलरूपताके हुयेबी प्रकृतविषै क्या होवैहै ? सो कहैहैं ॥

४०६ कर्मफलके प्रकरणकी अभूतार्थवादताके अभाव हुये दृष्टांतविषैबी सो नहीं होवैगा ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

मति होहू? यह जो प्रतिवादी कहै। सो[४०७] ऐसैं होहूः—औ [४०८]ईतनेकरि इस न्यायका बाध नहीं होवैहै औ [४०९]वो हमारा पक्ष दूषणकूं पावता नहीं औ "[४१०]ब्रह्मा विश्वसृज्" इत्यादिकनकी काम्यकर्मकी फलरूपता कहनेकूं शक्य नहीं है। काहेतें

४०७ सिद्धांती सो अंगीकार करैहैं ॥

४०८ तब वैधर्म्य दृष्टांतकी सिद्धि कैसें है? यातैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—वैधर्म्य दृष्टांतके अभावमात्रकरि कर्मविपाकके अध्यायकी अभूतार्थवादता नहीं है। यातैं इस न्यायका बाध नहीं है। काहेतैं साधर्म्य दृष्टांततैंबी ताकी सिद्धितैं ॥

४०९ ननु "प्रजापति। आपके वीर्यकूं पतन करताभया" इत्यादि वाक्यनकी अभूतार्थवादताके अभाव हुये अर्थवादका अधिकरण कैसैं घटेगा? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—ताकी अघटनाके हुयेबी हमारे पक्षकी हानि नहीं है किंतु तेरीहीं हानि है काहेतैं तिनकी अभूतार्थवादताकूं त्यागनेवाले तुजकूं ताके विरोधतैं ॥

४१० ननु कर्मविपाकके प्रकरणकी अर्थवादताके अभाव हुयेबी ब्रह्मादिकनकूं काम्यकर्मके फलरूप होनेतैं ज्ञानसंयुक्त नित्यकर्मकी फलरूपता नहीं है। तातैं मोक्षहीं ताका फल है? यह शंका भयी। यातैं कहैहैं ॥ इहां तिनोंका कहिये काम्यकर्मोंका औ देवसार्ष्टितारूप। याका इंद्रादिक देवोंकरि समान ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप ॥ औ "उत्कट कर्मकूं सेवन करिके देवनकी सार्ष्टिता (समानैश्वर्यता)कूं पावता है" इस ठिकाने यह शेष है ॥

तिनके देवसार्ष्टितारूप फलकूं उक्त होनेतैं ॥ [४११] तौ-तैं फलाभिलाषा सहित पुरुषनकूं नित्यकर्मोंके औ सर्वमेध अश्वमेध आदिकनके ब्रह्मभाव आदिक फल होवैहैं। जिनके फेर फलाभिलाषारहित आत्माके संस्कार अर्थ नित्यकर्म करियेहैं । तिनोंके वे कर्म ज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ होवैहैं । काहेतैं " [४१२] यैंहै तनु ब्राह्मी करियेहै " इत्यादि स्मृतितैं ॥ [४१३] तिनकूं (संस्कारयुक्त बुद्धिवालेकूं) समीप उपकारक होनेतैं मोक्षके साधनरूपबी कर्म होवै-

---

४११ ननु विद्यासंयुक्त कर्मोंका फल जब ब्रह्मादिभाव होवै । तब वे कर्म ज्ञानकी उत्पत्तिरूप अर्थवाले कैसैं आस्था करिये हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां कर्मोंकूं मुक्तिरूप फलवान् ताका अभाव तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है औ अभिसंधि सहितनका कहिये देवताभावरूप फलविषै अनुराग वालोंका औ नित्यकर्म कहिये श्रौत स्मार्त्तरूप अग्निहोत्र अरु संध्योपासन आदिक औ निरभिसंधि कर्म कहिये फलाभिलाषातैं रहित परमेश्वरार्पण बुद्धिकरि क्रियमाण औ आत्मशब्द मनकूं विषय करनेवाला है ॥

४१२ कर्मोंकी चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानोत्पत्तिरूप अर्थताविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४१३ तब कर्मनकूं मोक्षकी साधनता केइक कैसैं कहते हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां तिनोंकूं कहिये संस्कारयुक्त बुद्धिमानोंकूं ॥

हैं। यातैं विरोधकूं पावते नहीं ॥ [४१४] औ जैसैं यह अर्थ है। तैसैं जनकराजाके आख्यायिकाकी समाप्तिविषै हम कहेंगे ॥ ॥ [४१५] औ जो विष दधि आदिककीन्यांई। यह पूर्व कहाथा। [४१६] तहां प्रत्यक्ष अरु अनुमानका विषय होनेतें अविरोध है [४१७] औ जो अत्यंत शब्दप्रमाणकरि गम्य अर्थ है। तिसविषै वाक्यके अभाव हुये ताके अर्थके प्रतिपादकका विष दधि आदिकका साधर्म्य। कल्पना

---

४१४ ननु कर्मोंकूं परंपराकरि मोक्षकी साधनता अर्थतैं सिद्धकी न्यांई कैसैं कहिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां जैसैं यह अर्थ है तैसैं। यह शेष है ॥

४१५ निरस्तकूंवी अधिक कहनेकी इच्छाकरि फेर अनुवाद करै हैं ॥

४१६ मंत्रादिसहित विष आदिककूं जीवन आदिककी हेतुता प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण करि सिद्ध है। यातैं दृष्टांतविषै कार्यकी आरंभकतामैं विरोध नहीं है। ऐसैं कहैहैं ॥

४१७ विद्यासंयुक्त कर्मका कार्यांतरकी आरंभकतारूप अर्थ। शब्द (शब्दप्रमाण) करिहीं जानियेहै औ तिसविषै प्रमाणांतर नहीं है औ समुच्चित कर्मकी मोक्षारंभकता नहीं देखीयेहै। ताके अभाव हुये विद्यायुक्त कर्मविषैबी विष अरु दधि आदिकका साधर्म्य कल्पना करनेकूं शक्य नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां कर्म साध्यताके हुये मोक्षकी अनित्यता होवैगी। यह भाव है ॥

करनेकूं शक्य नहीं है औ प्रमाणांतरसैं[418] विरुद्ध अर्थविषे श्रुतिका [स्वार्थविषै] प्रामाण्य नहीं कल्पना करियेहै । जैसैं शीतल अग्नि क्लेदन (जलकी न्यांई कठिन पदार्थकूं कोमल) करैहै इति ॥ औ श्रुतिविषे[419] तो वाक्यकी अर्थपरताके हुये प्रमाणांतरकी आभासरूपता होवैहै।[420] जैसैं ख-

---

४१८ "सोम (अमृत)कूं पान करैंगे । अमृतरूप होवैंगे" इत्यादि श्रुतितैं कर्मसाध्य मोक्षकीबी नित्यता होवैगी? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै।सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—"जो कृतिसाध्य है सो अनित्य है" इस अनुमानकरि अनुगृहीत "सो जैसैं इहां कर्म रचित लोक क्षीण होवैहै" इत्यादि वाक्य है । ताके विरोध हुये अर्थवाद श्रुतिकी स्वार्थविषै प्रमाणता नहीं है ॥

४१९ ननु प्रमाणांतरकरि विरुद्ध अर्थविषे जब श्रुतिकी प्रमाणता नहीं कहियेहै। तब अद्वैत श्रुतिकीबी प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि विरुद्ध स्वार्थविषै प्रमाणता कैसैं होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तत्त्वमस्यादि वाक्यकी षड्विध तात्पर्यके लिंगोंकरि सदद्वैतपरताके निर्धारित हुये असत् भेदकूं विषय करनेवाले प्रत्यक्ष आदिककी आभासरूपता होवैहै ॥

४२० ताहीकूं दृष्टांतकरि साधते हैं॥ इहां यह अर्थ है:—जो अविवेकी जनोंकूं उक्त प्रकारका प्रत्यक्ष है । सो यद्यपि प्रथम भावि होनेकरि प्रबल औ निश्चितार्थ है । तथापि तिसीहीं आकाशादिकविषै प्रवृत्त आप्त वाक्यादिक प्रमाणांतरकी

द्योत अग्नि है औ नीलरंगवाला आकाश है। ऐसैं बालकनकूं जाका प्रत्यक्षबी है ताकूं विषयकरनेहारे प्रमाणांतरकी अतथार्थताके निश्चित हुये निश्चित अर्थवालाबी बालकनका प्रत्यक्ष । आभासरूप होवैहै ॥[421] तातैं वेदके प्रामाण्यके अव्यभिचारतैं अर्थपरताके हुये वाक्यकी यथार्थता होवैहै । परंतु पुरुषकी मतिका कौशल नहीं।[422] जौतैं पुरुषकी मतिके कौशलतैं सूर्य रूपकूं नहीं प्रकाशताहै । ऐसैं नहीं । ऐसैं वेदवाक्यबी अन्य अ-

---

यथार्थताके हुये । तातैं विरुद्ध पूर्वोक्त अविवेकी जनोंका प्रत्यक्षबी आभासकी न्यांई होवैहै । तैसैं यह द्वैतकूं विषय करनेवाला प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण। अद्वैत शास्त्रके विरोधके होते आभासरूप होवैहै ॥

४२१ ननु तात्पर्य नाम पुरुषके मनका धर्म है । ताके वशतैं जब अद्वैत श्रुतिकी यथार्थता है । तब पुरुष पुरुषके प्रति अन्यथाहीं तात्पर्यके देखनेतैं ताके वशतैं अन्यथाहीं श्रुतिका अर्थ होवैगा ? यह आशंका करिके । दार्ष्टांतिककूं निगमन करते हुये उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां तादर्थ्य कहिये अर्थपरता औ तथात्व कहिये यथार्थता ॥ शब्दका धर्म तात्पर्य है सो षड्विध लिंगकरि गम्य है । तिसप्रकार हुये शब्दकी पुरुषके अभिप्रायके वशतैं अन्यथा अर्थवान्ता नहीं होवैहै । यह अर्थ है ॥

४२२ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

र्थवाले नहीं होवैहैं । [423]तातैं मोक्षरूप अर्थवाले कर्म नहीं । यह सिद्ध भया ॥ [424]यातैं कर्मफलोंकी संसाररूपताके दिखावने अर्थहीं ब्राह्मण आरंभ करियेहै:—[425]जरत्कारुके पुत्रके उपराम हुये अनंतर भुज्यु इस नामवाला लैह्यका पुत्र जो लाह्य। ताका पुत्र जो लाह्यायनि । सो पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहताभया:—[426]आदिविषै अश्वमेधका उपासन कहा। औ समष्टि व्यष्टिरूप फलवाला अश्वमेध यज्ञ कहा। सो

४२३ विचारके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां विद्यासंयुक्तबी कर्मकूं मोक्षकी आरंभकताका असंभव । तत् (तातैं) शब्दका अर्थ है ॥

४२४ ननु कर्मोंकूं मोक्षार्थता मति होहू । तितनेकरि क्या सिद्ध भया ? यह आशंका करिके । इस ब्राह्मणके आरंभकूं सूचन करैहैं ॥

४२५ ब्राह्मणके आरंभकूं ऐसैं प्रतिपादन करिके ताके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥

४२६ याज्ञवल्क्यकूं अभिमुख करिके भुज्यु नामक मुनि अपनी पूर्व निर्वृत्त कथाकूं कथन करैहै । ता कथाकूं अवतार देनेकूं अश्वमेधके स्वरूपकूं औ ताके फलकूं विभाग करिके दिखावै हैं ॥ इहां क्रतु कहा । ऐसैं पूर्वले पदके साथि संबंध है ॥

[४२७]ज्ञानसमुच्चित वा केवलज्ञानकरि संपादित भेदतैं दो प्रकारका है। सो सर्व [४२८]कर्मोंकी पराकाष्ठा (परमअवधि) है। जातैं "पुण्य अरु पापकेविषै भ्रूण[४२९]हत्या (ब्रह्महत्या) औ अश्वमेधतैं पर (उत्कृष्ट) नहीं है" ऐसैं स्मरण करेहैं ॥ तिसैं[४३०] (अश्वमेध) करिहीं समष्टिरूप औ व्यष्टिरूप देवताओंकूं पावताहै ॥ तिनमैं[४३१] ब्रह्मांडके अंतवर्ति अश्वमेध यागकी फलभूत व्यष्टिरूप देवता ज्ञात (दिखाई)हैं ॥ "मृत्यु[४३२] याका आत्मा होवैहै। इन दे-

---

४२७ क्रतुकी द्विविधताकूं कहैहैं ॥

४२८ दो प्रकारसैं विभाग किये अश्वमेधके सर्व कर्मोंतैं उत्कर्षताकूं कहैहैं ॥

४२९ ताकी पुण्योंविषै श्रेष्ठतामैं प्रमाणकूं कहैहैं ॥

४३० समष्टि व्यष्टिरूप फलवाला। ऐसैं उक्त अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:--अश्वमेधसैं सहकारी कामनाके भेदकरि समष्टि कहिये सम्यक् अनुगतरूप औ व्यष्टि कहिये व्यावृत्तरूप देवताओंकूं पावता है ॥

४३१ कौंन फेर व्यष्टिरूप देवता कहनेकूं वांछित हैं ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अग्नि आदित्य वायु इत्यादिक व्यष्टिरूप देवता " सो अग्नि होताभया " इत्यादि वाक्यविषै ब्रह्मांडके अंतवर्त्ति अश्वमेधके फलभूत दिखाये हैं ॥

४३२ कौंन तब समष्टि देवता है? ऐसैं कहे हुये। तहांहीं उक्त अर्थकूं स्मरण करावै हैं ॥

वताओंके मध्य एक होवैहै" ऐसैं । तहां कहा-है । क्षुधारूप[433] मृत्यु है सो बुद्धिस्वरूप[434] समष्टिरूप[435] प्रथमज[436] सूत्र[437] वायु[438] सत्य[439] हिरण्यगर्भ[440] है । समष्टि व्यष्टिरूप सर्व प्रपंच जिसका[441] स्वरूप है । ताका व्याकृत विषय है । जो[442] सर्व भूतनका अंतरा-

४३३ तिसीहीं समष्टिरूप देवताकूं प्रपंचन करनेकूं यह ब्राह्मण है । ऐसैं कहनेकूं पातनिकाकूं करैहैं ॥

४३४ प्राणात्मकबुद्धिका धर्म जो अशनाया (क्षुधा) सो मृत्युका लक्षण कैसैं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

४३५ तब बुद्धिकूं व्यष्टिरूप होनेतैं मृत्युबी तैसा होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

४३६ व्यष्टिकी उत्पत्तितैं पूर्वहीं उत्पन्न होनेकरि याके समष्टिपनैकूं साधते हैं ॥

४३७ सर्वाऽऽश्रयपनैकूं दिखावै हैं ॥

४३८ तिसविषै "वायुहीं हे गौतम" इत्यादि वाक्य प्रमाण है । ऐसैं सूचन करैहैं ॥

४३९ तथापि या हिरण्यगर्भकी प्रथमजन्यपना कैसैं होवैगी । भूतनकी प्रथम उत्पत्तितैं ? यह आशंका करिके कहैहैं॥

४४० हिरण्यगर्भकी उक्त लक्षणताके हुयेबी मृत्युकूं क्या आया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

४४१ समष्टि व्यष्टिरूप जगत्हीं सूत्र सहित है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां द्वैत जो व्यष्टिरूप औ एकत्व जो समष्टिरूप । सो सर्व याका स्वरूप है । ताका व्याकृत विषय है । ऐसैं संबंध है ॥

४४२ ताकी उक्त प्रमाणताकूं प्रकट करैहैं ॥

त्मा लिंग[443] अमूर्त्तरस[444] है। जिसके[445] आश्रित सर्व-भूतनके कर्म हैं। जो[446] कर्मोंका औ कर्मसैं संबंध-वाले विज्ञानोंका परागति (परमफल) है। तौंका[447] कितना विषय है औ सर्वओरतैं मंडल-भावकूं पायके स्थितहुयी कितनी[448] व्याप्ति है सो कहनेकूं योग्य है। तिसैं[449] (व्याप्ति)के कहेहुये बंधगोचर सर्व संसार कथन किया होवैहै। औ

---

४४३ विज्ञानात्माकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

४४४ "त्यत्काहीं यह रस है" इस वाक्यकूं अनुसरीके कहैहैं ॥

४४५ ताकी साधनाऽऽश्रयताकूं दिखावै हैं ॥

४४६ ताहीकी फलाऽऽश्रयताकूं कहैहैं ॥ इहां परागति। याहीका व्याख्यान परमफल है ॥

४४७ ऐसैं भूमिकाकूं रचिके अनंतर ब्राह्मणकूं अवतार देते हैं ॥

४४८ प्रश्नकूंहीं प्रकट करैहैं ॥ इहां "सर्वतः" याका सर्व ओरतैं मंडल भावकूं पायके स्थित है। यह अर्थ है ॥

४४९ ननु सो क्यूं कहने योग्य है। ताके कहे हुयेबी कहने योग्य संसारके अवशेषतैं आकांक्षाकी विश्रांतिके अभावतैं? यातैं? कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—इतना बंध है अधिक वा न्यून नहीं। ऐसैं अन्यके व्यवच्छेदकरि बंधके परिणामके परिच्छेदअर्थ कर्मफलकी व्याप्ति इहां कहियेहै औ ताका परिच्छेद। वैराग्यद्वारा मुक्तिका हेतु है ॥

तिसैं[४५०] समष्टि व्यष्टि स्वरूपके दर्शनकी अलौकिकताके दिखावनेअर्थ आपकूं व्यतीतभयी आख्यायिकाकूं भुज्यु मुनि कहैहै । औ तिसैंकरि[४५१] प्रतिवादी (याज्ञवल्क्य)की बुद्धिकूं मैं व्यामोह करूंगा ऐसैं भुज्यु मुनि मानताहै ॥ ॥ मद्रनामक देश हैं । तिनविषै अध्ययनके अर्थ व्रतके आचरणतैं चरक वा अध्वर्यु होनेतैं चरकरूप हुये हम पर्यटन करतेभये । वे हम पर्यटन करतेहुये नामकरि पतंचल ऐसे काप्य (कपिगोत्रवाले)के ग्रहोंके प्रति जातेभये । ताकी गंधर्वकरि गृहीत पुत्री होतीभयी । गंधर्व जो कोईबी अमानुषरूप जंतु । तिसकरि आविष्ट वा गंधर्व कहिये उपास्य अरु ऋत्विक्[४५२]रूप

४५० ब्राह्मणकूं ऐसैं प्रवृत्त हुयेबी भुज्यु मुनि अपनी पूर्व निर्वृत्तकथाकूं क्यूं कहताभया ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

४५१ समष्टि व्यष्टिरूप आत्माके दर्शनकी अलौकिकताके दिखावनेकरि क्या होवैगा ? सो कहैहैं ॥ इहां ऐसैं मानता है भुज्यु मुनि । यह शेष है ॥ अर्थ यह जोः—जल्पवादके हुये परंपरासैं जयकरि अपने जयकूं इष्ट होनेतैं औ इहां धिष्ण्यत्व कहिये अग्निका उपास्यपना ॥

४५२ "अग्निर्हि देवनका होता है" इस श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

अग्नि देवता। [४५३] श्रेष्ठ विज्ञानवाला होनेतें निश्चय करिये है। [४५४] जैतें जंतुमात्रकूं ऐसा विज्ञान नहीं संभवै है ॥ ताकूं वे सर्व हम इकठे हुये पूछतेभये। तूं कौंन हैं। किस नामवाला हैं। किस रूपवाला हैं? सो गंधर्व कहताभयाः—नामतें सुधन्वाहूं। गोत्रतें आंगिरसहूं ॥ ताकूं जिस कालविषै लोकनके पर्यवसानोंकूं हम पूछतेभये। अनंतर इस गंधर्वकूं [४५५] भुवन कोशके परिमाणके ज्ञान अर्थ सर्वके प्रवृत्तभये आपकूं श्लाघा करते हुये हम पूछतेभयेकिः—किस प्रकारसैं कहां पारिक्षित (अश्वमेधके कर्त्ता) होतेभये। कहां पारिक्षित होतेभये ॥ [४५६] औ सो

---

४५३ उक्तप्रकारके संक्षेपलिंगवाले गंधर्वशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

४५४ ताकी अन्यथा सिद्धिकूं दूषण देते हैं ॥

४५५ "अनंतर याकूं" इत्यादि वाक्यके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

४५६ ऐसैं गंधर्वके प्रति तेरा प्रश्न होहु। तथापि क्या आया? सो कहैहैं ॥ इहां तिसकरि याका गंधर्वके वचनकरि। यह अर्थ है ॥ औ दिव्योंतैं याका गंधर्वोतैं। यह अर्थ है ॥

गंधर्व सर्व हमारे अर्थ कहताभया ॥ तिस (गंधर्वके वचनकरि) दिव्यों (गंधर्वों) तैं मेनैं ज्ञान संपादन किया है। सो तुज (याज्ञवल्क्य) कूं नहीं है। [457]यातैं निगृहीत (पराजितभया) हैं। यह अभिप्राय है ॥ ॥ सो[458] विद्यासंपन्न गंधर्वतैं प्राप्त आगमवाला मैं तुज याज्ञवल्क्यकूं पूछताहूं:—कहां पारिक्षित होतेभये (गमन करतेभये)। सो तूं क्या जानताहैं। हे याज्ञवल्क्य! मैं पूछताहूं कहां पारिक्षित होतेभये? इति ॥ १ ॥

---

४५७ इस ज्ञानके अभाव हुये तो अज्ञान अप्रतिम होवैगा औ ब्रह्मिष्ठताके प्रतिज्ञाकी हानि होवैगी। ऐसैं कहैहैं ॥

४५८ प्रश्नकर्त्ताके अभिप्रायकूं कहिके। अब प्रश्नके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां प्रथमा विभक्ति जो है सो प्रथम "कहां पारिक्षित होतेभये" इस उक्त गंधर्वके प्रतिप्रश्न अर्थ है औ द्वितीया विभक्ति। तेरे अनुसारी उत्तरके अर्थ है। जोई कहां पारिक्षित होतेभये। ऐसा प्रश्न गंधर्वके प्रतिकिया ताका प्रत्युत्तर सर्व सो हमारे तांई कहताभया। ऐसैं तहां कहियेगा। तृतीया तो मुनिके प्रति प्रश्न अर्थ है। ऐसैं विभाग है ॥

स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वै ते तद्यत्राश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति ॥ क न्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति ॥ द्वात्रिꣳशतं वै देवरथान्ह्यान्ययं लोकस्तꣳ-

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहताभयाः— सो (गंधर्व) [तिस ज्ञानकूं] कहताभया । वे तहां जाते भये । जहां अश्वमेधके याजी जाते हैं ऐसैं ॥ कहां अश्वमेधके याजी जाते हैं ? ऐसैं ॥ बत्तीसहीं देवरथकी गतियां

टीकाः—सो[४५९] याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—[इहां "वै" शब्द गंधर्वतें प्राप्त ज्ञानके स्मरण अर्थ है] सो गंधर्व तेरे तांई कहताभयाः—वे[४६०] पारिक्षित तहां गमन करतेभये ॥ तहां कहां किः—जिस देशविषै अश्वमेधके याजी गमन करैहैं तहां । ऐसैं प्रश्नके निर्णय किये हुये कहैहैः—क-

४५९ अज्ञानादि निग्रहकूं परिहार करते हुये याज्ञवल्क्य मुनि उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां गंधर्वतैं लब्ध ज्ञानके स्मरण अर्थ। यह शेष है ॥

४६० क्या कहते भये ? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥

समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्पर्य्येति । ताँ समंतं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः पर्य्येति । तद्यावती क्षुरस्य धारा । यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं । तावानन्तरेणाऽऽकाशस्ता-

यह लोक है । ताकूं च्यारी ओरतैं पृथिवी द्विगुण परिमाणकरि वेष्टित है । ता पृथिवीकूं च्यारी ओरतैं द्विगुण परिमाणकरि समुद्र वेष्टित है । सो जितनी क्षुरकी धारा है । वा जितना मक्षीकाका पत्र है । तितना मध्यविषै आकाश है । तिन (पारि-

हां कहिये किस देशविषै अश्वमेधके याजी गमन करैहैं । यातैं तिनकी गतिके कहनेकी इच्छाकरि भुवन कोशके परिमाणकूं कहैहैंः—द्वात्रिंशत्[४६१] कहिये दो अधिक तीसहीं देवरथकी गतियां हैं

४६१ अहोरात्र आदित्यके रथकी गतिकरि जितना मार्ग परिमित है । तितना देश बतीस गुणित ताके किरणोंकरि व्याप्त है औ सो चंद्रके किरणोंकरि व्याप्तदेशाके सहित पृथिवी कही है । ऐसैं कहियेहै ॥ रवि अरु चंद्रमाके किरणोंकरि जितनी प्रकाश करिये है । तितनी समुद्र नदीयां अरु शैलकरि सहित पृथिवी । कही है ॥ ऐसैं कहैहैं

निन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्ता-
न्वायुरात्मनि धित्वा तत्रागमयद्यत्रा-
श्वमेधयाजिनोऽभवन्नित्येवमिव वै स

क्षितन) कूं इंद्र अग्निरूप परमेश्वर सुपर्ण होयके वायुके तांई देता भया। तिनकूं वायु आपविषै धारणकरिके। तहां प्राप्त करता भया जहां अश्वमेधके याजी होवैहैं इति।

कहिये देव जो आदित्य ताका जो रथ सो देव-रथ है। तिस रथकी गतिकरि जितना देशका परिमाण परिच्छेदकूं पावताहै। सो देवरथान्ह्य कहियेहै। सो बतीसकरि गुणित हुया देवरथ-की गतियां कहियेहैं। [४६२]तितने परिमाणवाला यह लोक। लोकालोक पर्वतकरि वेष्टित है। [४६३]जहां विराट्का शरीर है। औ जहां प्राणीनकूं कर्मफलका उपभोग होवैहै। सो यह लोक है॥ [४६४]इतना लोक है। यातें परे अलोक है। तिस

४६२ "यह लोक है" इस वाक्यके अर्थकूं कहैहैं ॥

४६३ तिसविषै लोकभागकूं विभाग करै हैं ॥

४६४ उक्त लोककूं अनुवाद करिके अवशेष रहेकी अलो-कताकूं कहैहैं ॥

वायुमेव प्रशशꣳस। तस्माद्वायुरेव व्यष्टि-
र्वायुः समष्टिरप पुनर्मृत्युं जयति । य

ऐसैंहीं सो वायुकूंहीं कहता भया। तातैं
वायुहीं व्यष्टि है। वायु समष्टि है। पुनर्मृ-
त्युकूं अपजय करैहै जो ऐसैं जानता है।

---

[465] लोककूं च्यारीओरतैं लोकके विस्तारतैं द्वि-
गुण परिमाणयुक्त विस्तारवाले परिमाणकरि
तिस लोककूं वेष्टित पृथिवी है। ता पृथिवी-
कूं तैसैंहीं च्यारीओरतैं द्विगुण परिमाण-
करि समुद्र वेष्टित है। जाकूं पौराणिक [466] घनो-
द कहतेहैं। [467] तहां ब्रह्मांडके दो कपालोंके विव-

---

४६५ प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अन्वयकूं दिखावनेकूं तिस लोककूं यह पुनरुक्ति है ॥

४६६ तिसविषै पौराणिकनकी संमतिकूं कहैहैं ॥ इहां सो शास्त्रांतरविषै कहा है "इस अंडके च्यारी ओरतैं तो सम्यक् स्थित अमृतोदधि है। सो च्यारी ओरतैं मेघोंके जलकरि धार्यमाण हुया स्थित होवैहै" ॥

४६७ "सो जितनी" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां "तहां" इस सप्तमीका लोकादि परिमाणके उक्त रीतिकरि स्थित होते। यह अर्थ है ॥

एवं वेद । ततो ह भुज्युर्लाह्यायनिरुपर-
राम ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

तदनंतर लाह्यायनि (लाह्यका पुत्र) भु-
ज्युमुनि प्रश्नतैं उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपीकायां तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

रका परिमाण कहियेहै । जिसै[४६८] विवररूप मा-
र्गकरि ब्रह्मांडतैं बाहिर निर्गमन करते हुये अ-
श्वमेधके याजी व्याप्त होवैहैं ॥ तहां जितने
परिमाणवाली क्षुरकी धारा (अग्र) होवैहै ।
वा जितनी सूक्ष्मताकरि युक्त मक्षिकाका प-
त्र है । तितने परिमाणवाला अंड कपालोंके
मध्यविषे आकाश (छिद्र) है । तिस आकाश-

---

४६८ कपाल विवरकूं अनुपयोगी होनेतैं तिसके परिमा-
णकी चिंताकरि क्या है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां
व्यवहारभूमि सप्तमीका अर्थ है ॥

करि तिन पारिक्षितनकूं कहिये प्राप्तभये अश्व-मेधके याजीनकेतांई इंद्र जो परमेश्वर । सो[४६९] [जो अश्वमेध यज्ञविषै चित अग्नि सुपर्ण (पक्षी) कहियेहै । जिसकूं[४७०] विषय करनेहारा उपासन पूर्व "ताका प्राचीदिशा शिर है" इत्यादि वाक्यकरि कहा है सो] सुपर्ण[४७१] (पक्षी) होयके कहिये पंक्षे[४७२] पुच्छादि स्वरूपवाला पक्षी होयके वायुकेतांई देताभया । मूर्त्तरूप[४७३] होनेतें आप-

४६९ परमात्माकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

४७० सुपर्ण शब्दके श्येन सादृश्यकूं आश्रय करिके ताकी चित्य अग्निविषै प्रवृत्तिकूं दिखावै हैं ॥

४७१ उक्त अर्थवाले पदकूं अनुवाद करैहैं ॥

४७२ " भूत्वा (होयके) " इस पदके अर्थकूं कहैहैं ॥

४७३ ननु चित्य अग्नि जो है सो ब्रह्मांडतैं बाहिर अश्वमेधके याजीकूं ग्रहण करिके आपहीं गमन करो। तिनकूं वायुके अर्थ क्यूं देता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां आत्माकी कहिये चित्य अग्निकी औ तहां ऐसैं ब्रह्मांडतैं बाहीर देशकी उक्ति है । यह युक्त है औ वायुके अर्थ प्रदान करताभया यह शेष है। आख्यायिकाकी समाप्ति अर्थ "इति" शब्द है ॥ च्यारी ओरतैं दुरित क्षीण होवैहै जिसकरि ऐसा जो अश्वमेध । ताके याजी पारिक्षित हैं । तिनकी गतिरूप वायुकूं कहताभया । ऐसैं संबंध है ॥

की तहां (ब्रह्मांडतैं बाहिर) गति नहीं है ॥ तिन पारिक्षितनकूं वायु आपविषै स्थापन करिके तहां प्राप्त करताभया॥ कहांकि? जहां:— पूर्वले पारिक्षित (अश्वमेधकेयाजी) अतिक्रांत हुये होतेभये [तहां] इति ॥ ऐसैंहीं सो गंधर्व वायुकूंहीं पारिक्षितनकी गति कहताभया ॥ [४७४]आंख्यायिका समाप्तभयी । तिसविषै व्यतीतभये अर्थकूं आख्यायिकातैं ग्रहण करिके अपने श्रुतिरूपकरिहीं हमारे तांई कहताभया ॥ [४७५]जातैं वायु जो है सो स्थावर जंगमरूप भूतनका अंतरात्मा है औ सोई बाहिर है । तातैं अध्यात्म अधिभूत अधिदैव भावकरि विविधप्रकारकी जो अष्टि (व्याप्ति) है सो वायुहीं है । तैसैं सम जो अष्टि है सो केवल सूत्र

---

४७४ मुनिवचनके वर्त्तमान हुये कैसैं आख्यायिकाकी समाप्ति भयी ? तहां कहैहैं ॥

४७५ वायुकी प्रशंसाविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

स्वरूपकरि वायुहीं है ॥ ॥ ऐसैं[४७६] वायुरूप आत्माकूं समष्टि व्यष्टि स्वरूपताकरि पावताहै ॥ जो ऐसैं जानताहै ताकूं क्या फल होवैहै ? तहां कहैहैं:—पुनर्मृत्युकूं अपजय करैहै कहिये एकवार मरिके फेर नहीं मरताहै ॥ तदनंतर आपके प्रश्नके निर्णयतैं भुज्युनामक लाह्यायनि (लाह्यका पुत्र) उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य तृतीयं भुज्यु-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ३ ॥

---

४७६ फेर उक्त प्रकारके वायुतत्वके विज्ञानविषै क्या फल है ? सो कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-तृतीय ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र भाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं उषस्त चाक्रायण

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

टीका:—अनंतर[४७७] याकूं उषस्त चाक्रायण पूछ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-चतुर्थ ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ४ ॥

४७७ ब्राह्मणांतरकूं अवतार देते हैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यत्साक्षादप-
रोक्षाद्ब्रह्म । य आत्मा सर्व्वान्तरस्तं मे
व्याचक्ष्व इत्येष त आत्मा सर्वान्तरः

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य! ऐसें कहता-
भयाः—जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो
आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मेरेतांई व्याख्या-
नकर? ऐसें ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर

ताभयाः—[४७८]पुंण्य पापकरि प्रेरित ग्रह अरु अति-
ग्रहोंकरि गृहीत हुया पुरुष । फेरि फेरि ग्रह औ
अतिग्रहोंकूं त्यागताहुया अरु ग्रहण करताहुया
संसरताहै ऐसें कहा औ [४७९]पुंण्यका पर उत्कर्ष
व्याकृतकूं विषय करनेवाला व्याख्यान किया ।
जो [४८०]समष्टि व्यष्टिरूप [४८१]द्वैत अरु एकत्व स्वरूपकी

---

४७८ ताके अपुनरुक्त अर्थकूं कहनेकूं आर्त्तभागके प्रश्न-
विषै वृत्तकूं कीर्तन करैहैं ॥

४७९ भुज्युके प्रश्नके अंतविषै सिद्ध अर्थकूं अनुवाद
करैहैं ॥

४८० नामरूपकरि व्याकृत जगत् जो हिरण्यगर्भात्मक ।
तद्विषयक उत्कर्षकूं विशेषणकरि कहैहैं ॥

४८१ उक्त प्रकारके उत्कर्षकी पुण्यकर्मफलरूपता कैसें
है? तहां कहैहैं ॥

कतमो याज्ञवल्क्य सर्व्वान्तरो यः प्रा-
णेन प्राणिति । स त आत्मा सर्व्वान्त-
रो योऽपानेनापानिति । स त आत्मा

है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! कौंनसा सर्वांतर है?
जो प्राणकरि प्राणनक्रियाकूं करताहै ।
सो तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ जो अपान-
करि अपानन क्रियाकूं करता है। सो तेरा

प्राप्ति है ॥ औ[४८२] जो ग्रह औ अतिग्रहोंकरि ग्रस्त
हुया संसारताहै । सो है वा नहीं है औ ताके
अस्तित्वके हुये। किस लक्षणवाला है। ऐसैं[४८३] विचा-
र करिके आत्माके विवेककरि अवगम (ज्ञान)
अर्थ उषस्तका प्रश्न आरंभकरियेहै औ निरूपा[४८४]-

४८२ अब संप्राप्त अनंतर ब्राह्मणके विषयकूं दिखावै हैं॥ इहां यह अर्थ है:—माध्यमिकनका (शून्यवादिनका) औ अन्योंका आद्यविवाद किस लक्षणवाला है? देहादिकनके मध्य अन्यतम है वा तिनोतैं विलक्षण है ॥

४८३ ऐसैं विचारकरिके आत्माके देहादिकतैं विवेकक-रिके अधिगम अर्थ यह ब्राह्मण है ऐसैं कहैहैं ॥

४८४ विवेककरि अधिगमकूं भेद ज्ञानरूप होनेकरि अनर्थ करता है? यह आशंका करिके । कहोल प्रश्नके तात्पर्यकूं संक्षेपकरि कहैहैं ॥

सर्व्वान्तरो यो व्यानेन व्यानिति । स त आत्मा सर्व्वान्तरो य उदानेनोदानिति । स त आत्मा सर्व्वान्तर एष त आत्मा सर्व्वान्तरः ॥ १ ॥

आत्मा सर्वांतर है ॥ जो व्यानकरि व्यानन क्रियाकूं करताहै । सो तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ जो उदानकरि उदानन क्रियाकूं करताहै । सो तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ १ ॥

धिक स्वरूपवाले अरु क्रिया कारकतैं विनिर्मुक्त स्वभाववाले तिस (आत्मा)के अधिगमतैं सप्रयोजक (कारणसहित) बंधनतैं विमुक्त होवैहै । आख्यायिकाका संबंध तो प्रसिद्ध है ॥ ॥ अनंतर इस प्रकृत याज्ञवल्क्यकूं नामतैं उषस्त ऐसा चक्रका अपत्य (पुत्र) चाक्रायण पूछताभया:—जो ब्रह्म साक्षात् (द्रष्टाकूं किसी

---

४८५ ब्राह्मणके संबंधकूं कहिके आख्यायिकाके संबंधकूं कहैहैं ॥ इहां आख्यायिका जो है । सो विद्याकी स्तुति अर्थ है औ सुखसैं अवबोध अर्थ है । यह अर्थ है ॥ भुज्युके प्रश्नके

करिवी [486](अव्यवहित) अपरोक्ष (अगौण) है। [487]श्रोत्र ब्रह्म आदिककी न्यांई नहीं ॥ ॥ [488]सो क्या है? जो आत्मा । [इहां आत्मशब्दकरि प्रत्यगात्मा कहियेहै काहेतें तिसविषै आत्मशब्दकूं प्रसिद्ध होनेतें] [489]सर्वके अभ्यंतर सर्वांतर है। [490]जो जो इन दो शब्दनकरि प्रसिद्ध आत्मा

निरर्णयके अनंतर । यह "अथ" शब्दका अर्थ है ॥ संबोधन। अभिमुख करने अर्थ है ॥

४८६ द्रष्टातें अव्यवहित है । ऐसें कहे हुये घटादिककी न्यांई अव्यवधान गौण होवैगा? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥ इहां ताके निराकरण अर्थ " अपरोक्षतें " ऐसें मुख्यहीं द्रष्टाका अव्यवहित स्वरूप ब्रह्म कहा । तिसप्रकार हुये द्रष्टाके आधीन सिद्धताके अभावतें स्वतः अपरोक्ष है । यह अर्थ है ॥

४८७ श्रोत्र ब्रह्म है । मन ब्रह्म है । इत्यादि जैसें गौण है । तैसें द्रष्टाका अव्यवहित स्वरूप ब्रह्म । गौण नहीं है । अद्वितीय होनेतें । ऐसें कहैहैं ॥

४८८ उक्त अव्यवधानकूं आकांक्षाद्वारा अनंतर वाक्यकरि साधते हैं ॥

४८९ ताके परिच्छिन्नभावकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

४९० सर्व नामोंकरि (दो यत् शब्दोंकरि) प्रत्यग् ब्रह्मरूप विशेष्य निरूपण करियेहै । इतर शब्दोंकरि तो ताके विशेषण । इस विभागकूं अभिप्रायका विषय करिके कहैहैं ॥

ब्रह्म ऐसैं कहियेहै । तिस आत्माकूं मेरेतांईं व्याख्यानकरो इति । कहियेः—विस्पष्ट[४९१] जैसैं शृंगविषै ग्रहणकरिके गौकूं दिखावैहैं । तैसैं आख्यानकरो । अर्थ यह जो "सो यह है" इस प्रकारसैं कथनकरो ? ॥ ॥ ईसैं[४९२] प्रकार उक्तिका विषयभया याज्ञवल्क्य । प्रत्युत्तर कहैहैः—यह तेरा आत्मा सर्वांतर है कहिये सर्वके भीतर है॥ इहां सर्व[४९३] विशेषणोंके उपलक्षण अर्थ सर्वांतरका ग्रहण है ॥ जो[४९४] साक्षात् (अव्यवहित) अपरोक्ष (अगौण) ब्रह्म (अत्यंतपूर्ण) आत्मा सर्वके भीतर है । इन समस्त गुणोंकरि युक्त य-

---

इहां इति शब्द जो है । सो कहियेहै इस पदके साथि संबंधकूं पावताहै औ द्वितीय इति शब्द । प्रश्नकी समाप्ति अर्थ है ॥

४९१ तिसीहीं प्रश्नकूं विवरण करैहैं ॥

४९२ वाक्यार्थसै अन्वय योग्य तिस अर्थके पूछे हुये ताके प्रदर्शन अर्थ प्रत्युत्तरकूं अवतार देते हैं ॥

४९३ सर्वांतर है । इसविशेष उक्तिकरि प्रश्नके अन्य विशेषणोंकी अनास्थाकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

४९४ यह सर्वांतर है । इस भागके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥

ह है ॥ कौंन[४९५] यह तेरा आत्मा । जो[४९६] यह तेरा कार्य करणका संघात है । सो जिस आत्माकरि आत्मवान् है सो यह तेरा आत्मा है। इहां "तेरा"[४९७] इस पदका कार्य करणके संघातका यह अर्थ है ॥ तहां[४९८] (सर्वांतर तेरा आत्मा है। ऐसैं कथन किये हुये) पिंड जो है । ताके भीतर लिंगात्मा करणोंका संघात है औ जो तृतीय संदेहयुक्त (प्रमाताका साक्षी) है । तिनविषै हे याज्ञवल्क्य! कौंनसा मेरा आत्मा सर्वांतर तुमकरि विवक्षित है? ऐसैं उक्तिका विषयभया इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैः—जो मुख अरु नासिकाविषै संचारी प्राणकरि प्राणकी चेष्टाकूं करै है । अर्थ यह जो जिसकरि प्राणवायु प्राणनरूप क्रियाकरि विशिष्ट करियेहै । सो तेरा

४९५ यह इस शब्दके अर्थकूं प्रश्नपूर्वक कहैहैं ॥

४९६ आत्मशब्दके अर्थकूं विवरण करैहैं ॥ इधर । जिसकरि इहां स (सो) शब्द । देखनेकूं योग्य है ॥

४९७ षष्ठीके अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

४९८ प्रश्नांतरकूं उठायके प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहां "तहां" इस शब्दका सर्वांतर तेरा आत्मा है। ऐसैं कहे हुये। यह अर्थ हैः—औ तृतीय कहिये प्रमाताका साक्षी औ प्रणीयते याका प्राणन क्रियाकरि विशिष्ट करियेहै । यह अर्थ है ॥

(कार्यकरणका) आत्मा विज्ञानमय है ॥ अन्य अर्थ समान है ॥ जो अपानकरि अपानकी चेष्टाकूं करैहै । व्यानकरि व्यानकी चेष्टाकूं करैहै । इहां दीर्घभाव छांदस है ॥ [४९९] सर्व कार्य-करणके संघातगत प्राणन आदिक चेष्टा । दारु-यंत्रकी न्यांई जिसकरि करियेहैं । [५००] जातैं चेतना-वालेकरि अनधिष्ठित दारुयंत्रकीन्यांई प्राणना-दि चेष्टा नहीं हैं । [५०१] तातैं अधिष्ठिततैं विलक्षण विज्ञानमयकरि दारुयंत्रकीन्यांई प्राणादिक । प्राणनआदिक चेष्टाकूं पावताहै ॥ [५०२] तातैं जो चेष्टा करावैहै ॥ सो कार्यकरणके संघाततैं वि-लक्षण है ॥ १ ॥

---

४९९ ननु इतनेकरि कैसैं संदेह दूरी किया ? यह आशंका करिके । विवक्षित अनुमानके कहनेकूं व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहां जो प्रसिद्ध अचेतनकी प्रवृत्ति है । सो चेतनरूप अधिष्ठानके पूर्वक होवैहै । जैसैं रथादिककी प्रवृत्ति है । यह अर्थ है औ जिसकरि करिये है सो है ऐसैं संबंध है ॥

५०० दृष्टांतकी साध्यविकलताकूं परिहार करैहैं ॥

५०१ अब अनुमानकूं अवतार देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विवादकी विषय जो चेष्टा । सो चेतनरूप अधिष्ठान पूर्वक है । अचेतनकी प्रवृत्ति होनेतैं । रथादिककी चेष्टाकी न्यांई ॥

५०२ अनुमानके फलकूं कहैहैं ॥ इहां:—चेष्टा करावै है । कार्यकरणके संघातकूं । यह शेष है ॥

स होवाचोषस्तश्चाक्रायणो यथा विब्रूयादसौ गौरसावश्व इत्येवमेवैतद्व्यपदिष्टं भवति । यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म । य आत्मा सर्व्वान्तरस्तं मे व्या-

अर्थः—सो उषस्त चाक्रायण कहताभया:—जैसें यह गौ है। यह अश्व है। ऐसें विपरीत कहै ॥ ऐसेंहीं यह व्यपदेशकिया होवैहै ॥ जोई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो आत्मा सर्वांतर है। ताकूं मेरेतांई व्याख्यान

टीकाः—सो[५०३] उषस्त नामवाला चाक्रायण कहताभया:—जैसें कोईक पूर्व अन्यथा प्रतिज्ञाकरिके फेर विप्रतिपन्न (विवादयुक्त) हुया अन्यथा कहैकि:—प्रत्यक्ष जैसें होवै तैसै गौकूं वा अश्वकूं दिखावताहूं । ऐसें पूर्व प्रतिज्ञा करिके । पीछे जो चलताहै येंह[५०४] गौ (बलीवर्द्द) है

५०३ प्रश्न उत्तरकी अननुरूपताकेतांई प्रतिवादी शंका करैहैं ॥

५०४ दृष्टांतकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—प्रत्यक्ष गौकूं वा अश्वकूं मैं दिखावताहूं । ऐसें पूर्व प्र-

चक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्व्वान्तरः ॥ कत-
मो याज्ञवल्क्य सर्व्वान्तरः ॥ न दृष्टेर्द्र-
ष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारꣳ शृणुया न म-

कर? ऐसें ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर है
॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! कौंनसा सर्वांतर है? दृ-
ष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख। श्रुतिके श्रोताकूं

औ जो दौडताहै यह अश्व है। ऐसे चल-
नादि लिंगोंकरि जैसें गौआदिक व्यपदेश क-
रियेहैं। ऐसेंहीं यह ब्रह्म। प्राणनआदिक लिं-
गोंसें तेरेकरि व्यपदेश किया होवैहै। बहुत
कहनेकरि क्या है! गौवनकी तृष्णारूप निमित्त-
वाले मिषकूं त्यागकरिके जोई साक्षात् अपरोक्ष

तिज्ञा करिके। पीछे जो चलता है यह गौ है। वा जो दौ-
डता है सो अश्व है। ऐसें चलनादि लिंगोंकरि जैसें गौ
आदिक व्यपदेश करियेहै॥ ऐसेंहीं ब्रह्मकूं प्रत्यक्ष दिखाव-
ताहूं। इसप्रकारसें मेरे प्रश्नके अनुसारकरि प्रतिज्ञा करिके।
प्राणनादि लिंगोंकरि ताकूं व्यपदेश करनेवाले तुज याज्ञव-
ल्क्यके प्रतिज्ञाकी हानि औ अनवधेयवचनता (प्रमादयुक्त
भाषण) होवैहै॥

५०५ बुद्धि पूर्वकारी पुरुषकरि प्रतिज्ञा औ प्रश्नके अनु-
सरनेकूं योग्य है। ऐसें फलितकूं कहैहै॥

तेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः। एष त आत्मा सर्व्वान्तरो-ऽतोऽन्यदार्त्तं ॥ ततो होषस्तश्चाक्रायण उपरराम ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

नहीं सुन। मतिके मंताकूं नहीं मनन कर। विज्ञातिके विज्ञाताकूं नहीं जान ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर है। इसतें अन्य आर्त्त (विनाशि) है॥ ॥ तदनंतर उषस्त चाक्रायण। उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीमद्बृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र भाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ-मुषस्त-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ब्रह्म है। जो आत्मा सर्वांतर है। ताकूं मेरेताांई व्याख्यान करो? ऐसें ॥ ॥ तब इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैं:[५०६]—जैसैं मुजकारि प्रथम

५०६ प्रत्युत्तरके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

तेरा आत्मा ऐसे लक्षणवाला है । ऐसैं प्रतिज्ञात है । ता प्रतिज्ञाकीन्यांई अनुसरताहींहूं । [५०७] सो तैसैंहीं है । जैसैं मैंनें कहाथा ॥ [५०८] ॥ जो फेर कहाथाकिः—तिस आत्माकूं घटादिककीन्यांई विषयकर ऐसैं ॥ [५०९] सो अशक्य होनेतैं नहीं करियेहै ॥ [५१०] ॥ कांहेतैं फेर सो अशक्य है ? यह शंकाभयी । यातैं [५११] कहैहैंः—वस्तुके स्वभावतैं ॥ [५१२] ॥ क्या फेर सो वस्तुका स्वभाव है ? [५१३] दृष्टिआदि-

५०७ प्रतिज्ञाके अनुवर्त्तनकूंहीं आकारकरि दिखावैहैं ॥

५०८ हे याज्ञवल्क्य ! कौंनसा है । इत्यादि प्रश्नके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

५०९ न दृष्टेः (दृष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख) । इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहते हुये उत्तरकूं कहैहैं ॥

५१० ननु आत्माकूं वस्तुरूप होनेतैं ताका घटादिककी न्यांई विषयीकरण अशक्य नहीं है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५११ वस्तुके स्वरूपकूं अनुसरिके सिद्धांती परिहार करैहैं॥

५१२ तब घटादिककावी वस्तुस्वभाव होनेतैं विषयीकरण मति होहु ? ऐसैं मानता हुया प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५१३ दृष्टि आदिककी साक्षीतारूप वस्तुस्वाभाव्य है औ तातैं अविषयता है औ ऐसा वस्तुस्वाभाव्य घटादिकका नहीं है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

कका कर्त्तापना वस्तुका स्वभाव है ॥ जातैं दृ-ष्टिकौं[५१४] द्रष्टा आत्मा[५१५] है। दृष्टि जो है सो लौकि-की औ पारमार्थिकी इस भेदतैं द्विविध होवैहै। [५१६] तिनमैं लौकिकी दृष्टि। चक्षु संयुक्त अंतःकरणकी वृत्तिरूप है । सो करियेहै । यातैं उपजती है औ विनाशकूं पावती है औ[५१७] जो अग्निके उष्ण प्रकाश आदिककी न्यांई आत्माकी दृष्टि है। सो द्रष्टाका स्वरूप होनेतैं उपजती नहीं औ विना-शकूं पावती नहीं[५१८] । सो क्रियमाण उपाधिभूत

---

५१४ ननु दृष्टि आदिकके साक्षीकूंबी दृष्टिकी विषयता क्यूं नहीं होवैगी ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जैसैं प्रदीप । लौकिक ज्ञानकरि प्रकाश्य है । सो अपने प्रकाशक ज्ञानकूं नहीं प्रकाशताहै । तैसैं दृष्टिका साक्षी । दृष्टिकरि नहीं प्रकाशका विषय करियेहै ॥

५१५ दृष्टिका द्रष्टाहीं नहीं है । ऐसैं सौगत (बौद्ध) मा-नते हैं । तिनके प्रति कहैहैं ॥

५१६ लौकिकी दृष्टिकूं व्याख्यान करैहैं ॥

५१७ पारमार्थिकी दृष्टिकूं व्याख्यान करैहैं ॥

५१८ ननु आत्मा जब नित्यदृष्टि स्वभाववाला होवै। तब द्रष्टा ऐसा व्यपदेश कैसैं सिद्ध होवैहै ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—साक्ष्य जो बुद्धि है । ताकी न्यांई तिङंत क-र्त्तापना औ क्रियापना । आध्यात्मिक नित्यदृष्टिरूप आत्मा-विषै व्यवहार करियेहै ॥

दृष्टिकरि मिश्रितकी न्यांईं प्रतीत होवैहै । यातैं द्रष्टा ऐसैं औ द्रष्टाकी दृष्टि ऐसैं व्यपदेश करिये है ॥ [५१९] जो चक्षुद्वारा रूप विषयके साथि संबद्ध हुयी जायमानकीन्यांईं लौकिकी दृष्टि है । यह नित्य आत्मदृष्टिकरि मिश्रितकीन्यांईं जो ताकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिंब) है । तिसकरि व्याप्त हुईहीं उपजती है औ तैसैं विनाशकूं पावती है । तिसकरि द्रष्टा सदा देखता हुयाबी देखता है औ नहीं देखता है । ऐसैं उपचार करियेहै ॥ [५२०] औ फेर द्रष्टाकी दृष्टिका कदाचित्‌बी अन्यथा भाव नहीं है । [५२१] तिसैंप्रकार आगे षष्ठविषै कहि-

५१९ ननु आत्माकूं नित्यदृष्टि स्वभाववान्‌ताके हुये देखताहै औ नहीं देखताहै । ऐसा कादाचित्क व्यवहार कैसें होवैहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां जो बहुविशेषणवाली लौकिकी दृष्टि है । यह ताकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिंब) है । ऐसैं संबंध है । तिस ताकी प्रतिच्छायाकरि व्याप्तहीं उपजे है । यह अर्थ है ॥

५२० ननु यह औपचारिक (आरोपित) व्यपदेश क्यूं है । मुख्य व्यपदेश तो क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

५२१ दृष्टिकूं वस्तुतैं विक्रियावान्‌पना नहीं है । इस अर्थविषै वाक्यशेषकूं अनकूल करैहैं ॥

येगाः—"ध्यान करते हुयेकी न्यांई है । लीला करते हुयेकी न्यांई है । औ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है" ऐसें ॥ ॥ तिसें[522] इस अर्थकूं कहैहैंः—कर्मभूत लौकिकी दृष्टिके स्वकीय नित्य दृष्टिकरि व्याप्त होनेवाले द्रष्टाकूं नहीं देख। जो येह[523] लौकिकी कर्मभूत दृष्टि है । सो रूपसें संबद्धहुयी रूपकी प्रकाशक है । आपके व्याप्ता आत्माकूं नहीं कहिये केवल मनोवृत्तिरूप मतिके व्याप्ता प्रत्यगात्माके तांई नहीं व्याप्त होवैहै । तातें[524] तिस दृष्टिके द्रष्टारूप प्रत्यगात्माकूं नहीं देख (दृष्टिका विषय मतिकर) तैसें[525] श्रुतिके श्रोताकूं नहीं सुन (श्रवणका विषय मतिकर) तैसें केवल मनोवृत्तिरूप मतिके व्याप्ताकूं नहीं मनन कर (मतिका विषय मतिकर) तैसें केवल बुद्धिवृत्तिरूप विज्ञातिके व्याप्ताकूं नहींजान

---

५२२ उक्त अर्थविषै " न दृष्टेः " इत्यादि श्रुतिकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

५२३ उक्त अर्थकूंहीं प्रपंचन करैहैं ॥

५२४ " न दृष्टेः " इत्यादि वाक्यके अर्थकूं निगमन करैहैं ॥

५२५ उक्त न्यायकूं उत्तर वाक्योंविषै अतिदेश करैहैं ॥

(बुद्धिका विषय मतिकर) ॥ [५२६] यह वस्तुका स्वभाव है । यातैं गौ आदिककीन्यांई नहीं शक्य होवैहै ॥ [५२७] ॥ "दृष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख" इस ठिकाने केईक (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) [५२८] "दृष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख" कहिये दृष्टिके कर्त्ताकूं (दृष्टिके भेदकूं न करिके दृष्टिमात्रके कर्त्ताकूं) नहीं देख । ऐसैं अक्षरोंकूं अन्यथा व्याख्यान करैहैं ॥ [५२९] इहां "दृष्टिके" यह कर्मविषै षष्ठी है ॥ [५३०] सो दृष्टि। क्रियमाणहुयी घटकीन्यांई कर्म होवैहै औ "द्र[५३१]ष्टाकूं" इस "तृच्" प्रत्यय है अंतविषै जिसके

---

५२६ उक्त वस्तुके स्वाभाव्यकूं उपसंहार करिके फलितकूं कहैहैं ॥

५२७ "न दृष्टेके" इस ठिकाने स्वपक्षकूं कहिके । अब भर्तृप्रपंचके पक्षकूं कहैहैं ॥

५२८ ननु अक्षरनकी अन्यथा व्याख्या कैसैं है ? यह आशंका करिके । ताके इष्ट अक्षरार्थकूं कहैहैं ॥ इहां "इति" शब्द । व्याख्यान करैहैं । इसपदसैं संबंधकूं पावता है ॥

५२९ ऐसैं व्याख्यान करनेवाले भर्तृप्रपंचके अनुसारीनके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥

५३० कर्मविषै षष्ठीकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

५३१ षष्ठीकूं व्याख्यान करिके । तदनंतर द्वितीयाकूं व्याख्यान करैहैं ॥

ऐसैं पदकरि द्रष्टाके दृष्टिकर्त्तापनैकूं मुनि कथन करैहैं । तिसकरि[532] यह दृष्टिका द्रष्टा । दृष्टिका कर्ता है । ऐसा व्याख्यानके कर्त्ताओंका अभिप्राय है ? तहां[533] "दृष्टिके" इस षष्ठी अंतवाले पदकरि दृष्टिका ग्रहण निरर्थक है । इस दोषकूं नहीं देखतेहैं ॥ वो[534] देखनेवालेकूं पुनरुक्त असार होवैगा । वा प्रमादपाठ है । ऐसा अनादर होवैगा ॥ ॥[535] फेर षष्ठीका आधिक्य कैसैं है ? तृच् अंतवाले द्रष्टापदकरिहीं दृष्टिके कर्त्तापनैकूं सिद्ध होनेतैं "दृष्टिके" यह षष्ठी निरर्थक है । [जब ऐसा अभिप्राय होवै] तब[536] "द्रष्टाकूं

---

५३२ पदार्थकूं कहिके । वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

५३३ उक्त परकीय (भर्त्तृप्रपंचकी) व्याख्याकूं सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दृष्टिके कर्त्तापनैकी विवक्षाके हुये । तृच् प्रत्यय है अंतविषै जिसके ऐसै द्रष्टापदकरिहीं ताकी सिद्धितैं । श्रुतिविषै " दृष्टिके " ऐसी जो षष्ठी विभक्ति है । सो व्यर्थ होवैगी ॥

५३४ ननु फेर व्याख्यानके कर्त्ता । उक्त प्रकारके दोषकूं कैसैं नहीं देखते हैं ? तहां कहैहैं ॥

५३५ पूर्व उक्त षष्ठीकी व्यर्थताकूं आकांक्षाद्वारा समर्थन करैहैं ॥

५३६ तब इहां अर्थवान् क्या है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

नहीं देख" इतनाहीं कहनेकूं योग्यथा । [५३७] जातें धातुतैंपर तृच् प्रत्यय सुनियेहै । तिस धातुके अर्थके कर्त्ताविषै जातें तृच् प्रत्यय स्मरण करिये है । जातें [५३८] गंर्ता (गतिके कर्त्ता)कूं वा भेत्ता (भिदिक्रियाके कर्त्ता)कूं ले जावैहै । इतनाहीं शब्द प्रयोग करियेहै ॥ परंतु गतिके गंताकूं वा भिदिके भेत्ताकूं। ऐसा शब्द । अर्थविशेषके नहीं होते प्रयोग करनेकूं योग्य नहीं है [५३९] औ गतिके होते अर्थवादरूप होनेकरि त्यागकरनेकूं योग्य नहीं है [५४०] औ प्रमाद पाठ नहीं है काहेतें सर्वके अवि-

५३७ तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—क्रिया "दृशिर्" धातुका अर्थ है औ कर्त्ता "तृच्" प्रत्ययका अर्थ है । तिसप्रकार हुये एकहीं कर्त्तापदकरि उभय अर्थके लाभतैं पृथक् दृष्टिरूप क्रियाका ग्रहण। भर्त्तृप्रपंचके पक्षमैं व्यर्थ होवैगा ॥

५३८ भर्त्तृप्रपंचके पक्षमैं "दृष्टिके" इसपदकी व्यर्थताकूं दृष्टांतकरि साधते हैं ॥

५३९ ननु तब अर्थवादरूप होनेकरि यह प्राप्त हुया होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—विधिशेषताके अभावतैं औ असदुक्तरीतिकरि अर्थवानृताके संभवतैं ॥

५४० अथवा परपक्षविषै निरर्थकहीं यह पद प्रमादतैं पठित होवैगा ? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं।

गान (अविवाद) तैं। तातैं[541] व्याख्यानके कर्त्ता-ओंकीहीं बुद्धिकी दुर्बलता है अध्ययनके कर्त्ता-ओंका प्रमाद नहीं है ॥ ॥ जैसैं[542] तो हमने व्याख्यान किया है:—लौकिक दृष्टितैं विवेचनकरिके नित्यदृष्टिविशिष्ट आत्मा दिखावनेकूं योग्य है। तैसैं कर्मकर्त्ताके विशेषणभावकरि दृष्टिशब्दका दो वार प्रयोग आत्मरूपके[543] निर्धारण अर्थ घटता है औ "द्रष्टाकी[544] दृष्टिका विपरिलोप नहीं है"

ऐसैं कहैहैं ॥ इहां सर्वके कहिये काण्व अरु मध्यंदिनोंके । यह अर्थ है ॥

५४१ ननु तब यह पद व्यर्थ है ऐसी अन्योंकूं प्रतीति कैसैं भई ? तहां कहैहैं ॥

५४२ ननु फेर तुमकूंबी दृशि धातुका दोवार ग्रहण कैसैं घटता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां दिखावनेकूं योग्य है । या पदतैं ऊपर इति शब्द देखनेकूं योग्य है औ कर्त्ता कर्मका विशेषण होनेकरि याका साक्षी अरु साक्ष्यका समर्पक होनेकरि । यह अर्थ है ॥

५४३ सो समर्पण कहां उपयोगकूं पावता है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है ? दृष्टि आदिकका साक्षी आत्मा । सो ताका विषय नहीं है । ऐसैं ताके स्वरूपके निश्चय अर्थ साक्षी आदिकका समर्पण है ॥

५४४ नित्यदृष्टि स्वभाववाला आत्मा । दृश्यरूप दृष्टिका विषय नहीं है । इसप्रकारका यह जब "नदृष्टेः" इत्यादि-

इस प्रदेशांतरके वाक्यके साथि ऐसैं एकवाक्यता घटित होवैहै । तैसैं[५४५] "चक्षु देखतेहैं । श्रोत्र यह सुन्या" इस अन्य श्रुतिके साथि एकवाक्यता घटित होवैहै औ न्यायतें[५४६] जातैं विक्रियाके अभाव हुये ऐसैंहीं[५४७] आत्माकी नित्यता घटित होवैहै औ विक्रियावाला[५४८] वस्तु नित्य है ॥ यह कथन निषिद्ध है "ध्यान[५४९] करते हुयेकी न्यांईं । लीला करते हुयेकी न्यांईं है ॥ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है ॥ यह नित्य महिमा ब्राह्मणका है" इन श्रुतिनके अक्षर । अन्यथा नहीं जाते हैं (विक्रियावान्ताके हुये नहीं घटते

रूप वाक्यका अर्थ होवै । तव "द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है" इत्यादि वाक्यके साथि इसवाक्यकी एकवाक्यता सिद्ध होवैहै । तातैं "नदृष्टेः" इत्यादि वाक्यका उक्त प्रकारकाहीं अर्थ है । ऐसैं कहैहैं ॥

५४५ आत्मा कूटस्थदृष्टि (निर्विकार दृष्टिवाला) है । इस अर्थविषै तलवकार श्रुतिकूं कथन करैहैं ॥

५४६ ता (आत्मा)की कूटस्थदृष्टिरूपताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

५४७ तिसीहीं न्यायकूं स्पष्ट करैहैं ॥

५४८ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

५४९ यातैंबी आत्माकूं विक्रियावान्पना नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां अन्यथा याका विक्रियावान्पनैके हुये यह अर्थ है॥

हैं) ॥ [५५०] ननु द्रष्टा । श्रोता । मंता । विज्ञाता । इत्यादिक श्रुतिनके अक्षर । आत्माकी अविक्रियताके हुये नहीं घटते हैं ? [५५१] यह शंका । बनै नहीं:—काहेतैं तिनकूं यथाप्राप्त लौकिकवाक्यके अनुवादी होनेतैं । आत्मतत्वके निर्धारणअर्थ वे नहीं हैं । [५५२] "दृष्टिके द्रष्टाकूं नहीं देख" इत्यादि वाक्यनकी अन्य अर्थके असंभवतैं यथोक्त अर्थकी परता जानीयेहै । [५५३] तातैं अनवबोधतैंहीं "दृष्टिके" यह विशेषण । परित्याग किया है ॥

---

५५० ननु आत्माकी अविक्रियताके हुयेबी श्रुतिके अक्षर अघटित होवैंगे ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५५१ तिनका विरोध देख्या नहीं । काहेतैं दृष्टि आदिकके कर्त्तापनैकूं अनुसरीके लौकिक वाक्यके प्रवर्त्त भये ताके अर्थके अनुसारी होनेतैं उक्त श्रुतिके अक्षरोंकी स्वार्थविषै प्रमाणताके अभावतैं । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

५५२ ननु तब "नदृष्टिके" इत्यादि श्रुतिके अक्षरबी स्वार्थविषै प्रमाण नहीं होवैंगे ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां अन्य अर्थ कहिये दृष्टि आदिकका कर्त्ता औ यथोक्त (उक्त प्रकारका) अर्थ कहिये दृष्टि आदिकका साक्षी ॥

५५३ द्रष्टापदकी साक्षीरूप विषयताके सिद्ध भये दृष्टिके ऐसैं साक्ष्यके समर्पणतैं तिस अर्थवान्ताकी उपपत्ति होवैहै । ऐसैं उपसंहार करै हैं ॥

यें[554] तेरा आत्मा सर्व उक्त विशेषणोंकरि युक्त है ॥ यातें इस आत्मातें अन्य कार्यरूप शरीर वा करणरूप लिंग । आर्त्त (मिथ्या) है । यैंहेंहीं[555] एक अनार्त्त अविनाशी कूटस्थ है ॥ तदनंतर उषस्त चाक्रायण उपराम होताभया ॥ २ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य चतुर्थमुषस्त-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

---

५५४ पक्षांतरकूं निराकरण करिके औ स्वपक्षकूं उपपादन करिके । अनंतर वाक्यकूं विभाग करैहैं ॥

५५५ "अन्य आर्त्त है" इस विशेषणके सामर्थ्यकरि सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-चतुर्थ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य पंचमं-कहोल-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

अथ हेनं कहोलः कौषीतकेयः पप्र-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं कहोल कौषीतकेय

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

टीकाः—कारण सहित बंधनें[५५६] पूर्व कहा औ[५५७]

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-पंचम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ५ ॥

५५६ ब्राह्मण त्रयके अर्थकूं संगति कहनेके वास्ते अनुवाद करैहैं ॥

५५७ चतुर्थ ब्राह्मणके अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

च्छ । याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म । य आत्मा सर्व्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्व्वान्तरः ॥ कतमो याज्ञवल्क्य सर्व्वान्तरो

पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसें कहताभयाः—जोई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो आत्मा सर्वांतर है । ताकूं मेरेतांई व्याख्यान कर ? ऐसें ॥ ॥ यह तेरा आत्मा सर्वांतर है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कौंनसा सर्वांतर है?

जो बद्ध है । तौंकाबी अस्तिपना औ व्यतिरिक्तपना अधिगत भया । ताकूं अब (पंचम ब्राह्मणविषै) बंधके मोक्षका साधन संन्यास सहित आत्मज्ञान कहनेकूं योग्य है । यातें कहोल मुनिका प्रश्न आरंभ करियेहैः—अनंतर या (याज्ञवल्क्य) कूं नामकरि कहोल ऐसा कुषीतकका पुत्र कौषीतकेय पूछताभया । हे याज्ञवल्क्य !

---

५५८ उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां उषस्त प्रश्नके अनंतर । यह अथ शब्दका अर्थ है । औ पूर्वकी न्यांई ऐसैं अभिमुख करनेके अर्थ संबोधन देते भये । यह अर्थ है ॥

योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति। एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणा-

---

जो अशनाया अरु पिपासाकूं। शोककूं। मोहकूं। जराकूं। मृत्युकूं। अतिक्रमण करैहै॥ तिस इस आत्माकूं जानिके ब्राह्मण।पुत्रैष-

---

ऐसें कहताभयाः—यह पूर्वकी न्यांई है॥ जोई साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है ।जो आत्मा सर्वांतर है। ताकूं मेरेतांई व्याख्यान कर ऐसें। [५५९]जाकूं जानिके बंधनतें मुक्त होवैहै? ॥ ॥ याज्ञवल्क्य कहैहैः—यह तेरा आत्मा सर्वांतर है॥ ॥ [५६०]ननु उषस्त अरु कहोल । इन दोनूंनें क्या एक आत्मा पूछ्या है किंवा तुल्यलक्षणवाले भिन्न दो आत्मा पूछे हैं? इति ॥ तिनमें

---

५५९ ननु इहां बंधध्वंसी ज्ञानका प्रश्न नहीं भासता है। किंतु अनुवाद मात्र है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥ इहां ताकूं व्याख्यानकर। ऐसैं पूर्वसैं संबंध है॥

५६० दोनूं प्रश्नोंविषै अवांतर विशेषके (बीचले भेदके) दिखावने अर्थ विचार करैहैं॥

याश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथ भि-क्षाचर्यं चरन्ति । या ह्येव पुत्रैषणा सा-वित्तैषणा । या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे

णातैं औ वित्तैषणातैं औ लोकैषणातैं व्यु-त्थान करिके अनंतर भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं ॥ जोईहीं पुत्रैषणा है सो वितैषणा है। जो वित्तै-षणा है सो लोकैषणा है। जातें ये दो एषणा-

भिन्न[561] पूछे हैं । ऐसें जो कहैं तो युक्त है। काहे-तैं दोनूं प्रश्नोंकी अपुनरुक्तताके संभवतें ॥ जेबे[562] एकहीं आत्मा उषस्त अरु कहोलके प्रश्नोंविषै विवक्षित है । तहां एकहीं प्रश्नकरि अधिगत होनेतैं ताकूं विषय करनेवाला द्वितीय प्रश्न व्य-र्थ होवैगा औ वाक्यकूं[563] अर्थवादरूपता नहीं है[564] । तातैं भिन्न ये दो आत्मा क्षेत्रज्ञ[565] अरु पर-

५६१ तहां पूर्वपक्षकूं ग्रहण करैहैं ॥

५६२ उक्त अर्थकूं व्यतिरेकद्वारा विवरण करैहैं ॥

५६३ अब एक वाक्य वस्तुपर है । ताका अर्थवादरूप द्वितीय वाक्य है ? यह कहना बनै नहीं । ऐसें कहैहैं ॥

५६४ दोनूं वाक्यनकी तुल्य लक्षणताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

५६५ तिनमैं आद्यवाक्य । क्षेत्रज्ञकूं विषय करैहै । द्वि-

ह्येते एषणे एव भवतः। तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्। बाल्यञ्च पाण्डित्यञ्च निर्विद्याथ मुनिरमौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याऽथ ब्राह्मणः स

हीं होवैहै ॥ तातें ब्राह्मण। पांडित्यकूं निःशेष जानिके बाल्यकरि स्थित होवै। बाल्यकूं औ पांडित्यकूं निःशेष जानिके अनंतर मुनि (योगी) होवैहै। अमौनकूं औ मौनकूं निःशेष जानिके अनंतर ब्राह्मण (कृतकृत्य) हो-

मात्मा नामवाले हैं? इस प्रकारसैं केईक (भर्तृप्रपंचके अनुसारी) व्याख्यान करैहैं ॥ [५६६] सो बनै नहीं:—काहेतें "तेरा" इस प्रतिज्ञातें। जातें "[५६७] येहँ तेरा आत्मा है" ऐसैं प्रतिवचनविषै प्रति-

---

तीय वाक्य। परमात्माकूं विषय करैहै। इस अभिप्राय करिके भर्तृप्रपंचके अनुसारी कहैहैं ॥

५६६ दोनूं ब्राह्मणोंकारि दो अर्थ विवक्षित हैं। ऐसैं भर्तृप्रपंचके प्रस्थानके प्रति सिद्धांती कहैहैं ॥

५६७ प्रश्न उत्तरकी एकरूपता है। अर्थका भेद नहीं है। ऐसैं उक्त अर्थकूं उपपादन करैहैं ॥

ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तं । ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

वैहै ॥ ॥ सो ब्राह्मण किसकरि होवैहै ? जिसकरि होवै तिसकरि ईदृश (ऐसा) हीं होवैहै ॥ इसतैं अन्य आर्त्त है ॥ ॥ तदनंतर कहोल कौषीतकेय उपराम होताभया ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य पंचमं कहोलब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

ज्ञात है औ ऐक कार्यकरणके संघातके दो आत्मा संभवते नहीं ॥ जातैं [५६९] ऐक कार्यकरणका संघात । एक आत्माकरि आत्मवान् होवैहै औ [५७०] उषस्तका अन्य । कहोलका अन्य ॥ जातितैं (स्व-

५६८ तथापि अर्थभेदविषै कौंन असंभव है ? तहां कहैहैं ॥

५६९ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

५७० कार्य करणके संघातके भेदतैं आत्मभेदकूं आशंका

भावतैं) भिन्न आत्मा नहीं है । काहेतैं [५७१] दोनूंको अगौणता आत्मता अरु सर्वांतरताके असंभवतैं ॥ [५७२] जैंबै दोनूंके मध्य एक अगौण ब्रह्म होवै । तब इतर गौणकरि अवश्य होना योग्य है । तैसैं आत्मता औ सर्वांतरता है । [५७३] पदार्थनकूं विरुद्ध होनेतैं ॥ [५७४] जैंबै एक सर्वांतर ब्रह्मरूप आत्मा मुख्य होवै । तब इतर असर्वांतर अनात्मारूप अमुख्यकरि अवश्य होना योग्य है । [५७५] तातैं ए-

---

करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातितैं कहिये स्वभावतैं (अहं अहं इस एक आकारतैं) ॥

५७१ यातैंबी तत्वका भेद नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

५७२ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—दोनूंके मध्य जब एक ब्रह्म अगौण (मुख्य) होवै । तब इतर गौणकरि अवश्य होना योग्य है । तैसैं आत्मता आदिक जब एककूं इष्ट होवै । तब इतरकूं अनात्मता आदिक इष्ट होवैगा ॥

५७३ किस कारणतैं होवैगा ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

५७४ उक्त अर्थके उपपादन पूर्वक दोवार श्रवणके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अनेककी मुख्यताके असंभवतैं वस्तुतैं परिच्छिन्नकूं घटकी न्यांई अब्रह्मरूप होनेतैं औ अनात्मारूप होनेतैं एकहीं मुख्य प्रत्यक्रूप ब्रह्म है ॥

५७५ ननु जब जीव ईश्वरके भेदके अभावतैं दोनूं प्रश्नोंके अर्थका भेद नहीं है । तब पुनरुक्ति व्यर्थ होवैगी ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

कहीं आत्माका दो वार श्रवण । विशेष विवक्षा-के विषै है ॥ [५७६] ॥ औ जो पूर्व उक्तकरि समान द्वितीय प्रश्नांतरविषै तावन्मात्र कहा । सो पूर्व-काहीं अनुवाद है । ताहीका अनुक्त कोईक वि-शेष कहनेकूं योग्य है इति [५७७] ॥ ॥ कौंन फेर यह अनुक्त विशेष है? [५७८] यह कहियेहैः—पूर्व प्रश्नविषै व्यतिरिक्त आत्मा है । जाकूं यह सप्रयोजक बं-ध कहा । यह कहियेहै ॥ द्वितीय प्रश्नविषै तो तिसीहीं आत्माकी अशनायाआदिक संसार धर्मतें अतीततारूप विशेष कहियेहै [५७९] ॥ संन्यो-ससहित जिस विशेषके परिज्ञानतें पूर्वउक्त बं-धनतें विमुक्त होवैहै । [५८०] तातें "यह तेरा आत्मा

---

५७६ तब सोई विशेष दिखावनेकूं योग्य है । जिसकरि पुनरुक्ति अर्थवाली होवै ? यह आशंकाकरि कहैहैं ॥

५७७ अनुक्त विशेषके कथन अर्थ उक्त परिमाणकूं निर्णय करनेकूं जब अनुवाद होवै । तब अनुक्त विशेष दिखावनेकूं योग्य है ? इसप्रकार प्रतिवादी पूछता है ॥

५७८ जाननेकूं इच्छित विशेषकूं सिद्धांती दिखावै हैं॥ इहां इति शब्द जो है सो क्रियापदके साथि संबंधकूं पावताहै ॥

५७९ ननु यह विशेष क्यूं दिखाईये है ? तहां कहैहैं ॥

५८० अर्थभेदके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां " जो अशनाया " इत्यादि वाक्यकरि तो विवक्षित विशेषकी उक्ति है । यह शेष है ॥

है" ऐसे अंतवाले प्रश्न अरु प्रतिवचनकी तुल्या-
र्थताहीं है ॥ ॥ [५८१] नंनु एकहीं आत्माकूं अशनाया
आदिकतैं अतीतपना औ बद्धपना ऐसैं विरुद्ध
धर्मोंका समवायिपना कैसें घटै ? यह शंका ब-
[५८२] नै नहीं:—काहेतैं परिहार करी हुई होनेतैं ॥
यातैं [५८३] नाम रूप अरु विकार मय कार्य करणरूप
संघातमय उपाधिभेदसैं संसर्गकरि जनित भ्रां-
तिमात्र संसारीपना है। ऐसैं हम वारंवार कहते-
भये औ [५८४] विरुद्ध श्रुतिनके व्याख्यानके प्रसंगक-

---

५८१ एकहीं आत्मतत्वकूं आश्रयकरिके । दोनूं [illegible] प्रश्न हैं इस अर्थविषै [illegible]वादी प्रश्नकूं करैहै ॥

५८२ विरुद्ध धर्मवाले होनेतैं परस्पर भिन्न दोनूं प्रश्नोंके अर्थ हैं। इस कथनकूं सिद्धांती दूषण देतेहैं ॥

५८३ परिहृतपनेकूंहीं प्रकट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिन दोनूं (नामरूप)का विकार जो कार्यकरणरूप संघात । सोई उपाधिका भेद है । तिसके साथि जो संपर्क है । तिसविषै अहं ममाध्यासकरि जनित मैं कर्ताहूं इत्यादिरूप जो भ्रांति । तावन्मात्र संसारीपना है । ऐसैं हमनैं अनेकवार प्रतिपादन किया है । तातैं वस्तुतैं विरुद्ध धर्मवान्‌पना नहीं है ॥

५८४ किंवा:—सविशेषता औ निर्विशेषताकी श्रुतिनके विषयविभागके कथनके प्रसंगकरि संसारीभावके मिथ्यापनेकूं मधुब्राह्मणके अंतविषै हम पूर्व कहतेभये । ऐसैं कहैहैं ॥

रि कहतेभये ॥ [585] जैसें रज्जुशुक्तिका अरु गगन आदिक । परकरि अध्यारोपित धर्मकरि विशिष्ट हुये सर्प रजत अरु मलिन (नील) रूप होवैहैं । स्वतः केवलहीं रज्जु शुक्तिका अरु गगन आदिक हैं ॥ [586] ऐसें विरुद्धधर्मके समवायिपनैंके हुये पदार्थनका कोईबी विरोध नहीं है ॥ ॥ [587] ननु नामरूपमय उपाधिकी अस्तिताकरि "एकहीं अद्वितीय है। इहां नाना कछुबी नहीं है" ऐसी श्रुतियां विरोधकूं पावतीयां हैं ? इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै । [588] सो बनै नहीं:—काहे-

५८५ ननु तब विरुद्ध धर्मवान्ताकी प्रनीति कैसें होवैहै ? यह आशंकाकरिके । कहैहैं ॥ इहां पर पुरुषकरि वा अज्ञानकरि अध्यारोपित सर्पभाव आदिक धर्मोंकरि विशिष्ट । यह अर्थ है औ स्वतः याका अध्यारोपसैं विना। यह अर्थ है॥

५८६ ननु प्रतिभासतैं विरुद्ध धर्मवान्ताके हुयेबी क्षेत्रज्ञ अरु ईश्वरकूं भिन्न होनेतैं भिन्न अर्थवालेहीं दोनूं प्रश्न हैं ? ऐसें जो कहै । सो बनैनहीं । ऐसें कहैहैं ॥

५८७ निरुपाधिक रूपकरि असंसारीपना है । सोपाधिक रूपकरि संसारीपना है । ऐसें अविरोध कहा ॥ अब उपाधिके अंगीकार हुये याहीकूं सद्वयपना है । काहेतैं इसीहीं घटादिककी उपाधिताकी दृष्टितैं ? इस प्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

५८८ फेन आदिकविकार सलिलतैं भिन्न नहीं हैं औ मृ-

तैं सलिलफेनके दृष्टांतकरि औ मृत्तिका आदि-
क दृष्टांतोंकरि परिहृत होनेतैं ॥ ॥ औ श्रुति
अनुसारीनकरि परमार्थदृष्टिसैं निरूप्यमाण
नाम रूप । परमात्मतत्वतैं अन्यताकरि मृदादि
विकारकीन्यांई तत्वतैं वस्तु अंतरविषै सलिल-
फेन घटादि विकारकीन्यांईहीं जब नहीं हैं ।
तब ता (परमात्मतत्व)की अपेक्षाकरि "एकहीं
अद्वितीय है । इहां नाना कछुबी नहीं है" इ-
त्यादि परमार्थदर्शनकी गोचरताकूं पावताहै ॥

त्तिकाके विकार शराव आदिकबी मृत्तिकातैं भिन्न नहीं हैं ।
इस दृष्टांतनामक युक्तिके बलतैं अविद्या अरु नामरूपकरि
रचित कार्य करणके संघातकूं अविद्यामात्र होनेतैं औ तिस
अविद्याके निरासतैं ऐसैं बनै नहीं । इसरीतिसैं सिद्धांती
परिहार करैहैं ॥

५८९ कार्यके सत्वकूं अंगीकार करिके कथनतैं निरूप्य-
माण नामरूप हैं । अब सोबी नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां "इ-
सविषै नाना कछुबी नहीं है" इत्यादि श्रुतिके अनुसारी
पुरुषनकरि वस्तुदृष्टिकरि निरूप्यमाण नामरूप परमात्म-
तत्वतैं अन्यताकरि औ अनन्यताकरि अनिरूप्यमाण हुये त-
त्वतैं वस्तु अंतररूप जब तो नहीं हैं । ऐसैं संबंध है ॥

५९० मृदादिविकारकी न्यांई ऐसैं कथन किये अर्थकूं प्र-
कट करैहैं ॥ इहां तब तिस परमात्मतत्वकूं अपेक्षाकरिके
ऐसैं योजना करनेकूं योग्य है ॥

औ [591] जब स्वाभाविक अविद्याकरि ब्रह्मस्वरूप रज्जु शुक्तिका अरु गगनके स्वरूपकीन्यांईहीं स्वरूपकरि वर्त्तमान अरु किसीकरिबी अस्पृष्ट स्वभाववालाबी हुया नाम रूप कृत कार्यकरणरूप उपाधिनतैं विवेककरि नहीं निश्चय करियेहै औ नामरूपमय उपाधिकी दृष्टिहीं स्वाभाविकी होवैहै । तब सर्व यह वस्तुके भेदकी अस्तिताका व्यवहार है औ [592] यहै भेदका किया मिथ्या व्यवहार । जिनकूं ब्रह्मतत्वतैं अन्यताकरि वस्तु है औ जिनकूं नहीं है । तिन सर्वकूं है ॥ [593] परंतु क्या द्वितीय वस्तुतत्वतैं है किंवा नहीं है

---

५९१ तब लौकिक व्यवहार कब होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

५९२ स्वाभाविक अविद्याकरि ब्रह्म जब उपाधिनतैं विवेककरि नहीं निश्चयकरियेहै । तब जो लौकिक व्यवहार होवै तो विवेकिनका यह (व्यवहार) नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां भेद प्रतीतिका किया व्यवहार । विवेकिनका औ अविवेकिनका तुल्यहीं है । यह वस्तुअंतरके अस्तित्वका अभिनिवेश तो विवेकिनकूं नहीं है । यह विशेष है ॥

५९३ ननु यथाप्रतिभास वस्तुअंतर पारमार्थिकहीं क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—द्वितीय वस्तु क्या तत्वतैं है किंवा नहीं है । ऐसें वस्तुके निरूप्यमाण हुये श्रुति अनुसारसैं तत्व दर्शिनकरि एकहीं अद्वितीय

ऐसें वस्तुके निरूप्यमाण हुये श्रुति अनुसारसैं परमार्थदर्शिनकरि एकहीं अद्वितीय सर्व संव्यवहार शून्य ब्रह्म है ऐसें निर्धार करियेहै । तिसकरि कोईबी विरोध नहीं है । [५९४]जौंतें परमार्थके अवधारणरूप निष्ठाविषै अन्यवस्तुकी अस्तितातें हम नहीं जानतेहैं "एकहीं अद्वितीय अनंतर अबाह्य है" इस श्रुतितें औ [५९५]नामरूपके व्यवहारकालविषै तो अविवेकिनकूं क्रिया कारक अरु फल आदिकका संव्यवहार नहीं है ऐसें प्रतिषेध नहीं करियेहै । [५९६]तातें ज्ञान अरु अज्ञानकूं अपेक्षाकरिके सर्व शास्त्रीय औ लौकिक

ब्रह्म अव्यवहार्य है । ऐसें निश्चयकरिये है । तिसकरि व्यवहार दृष्टिके आश्रय करनेसैं भेदका किया मिथ्या व्यवहार है औ तत्वदृष्टिके आश्रय करनेसैं ताके अभावकूं विषय करनेवाला शास्त्रीय व्यवहार होवैहै । ऐसें उभयविध व्यवहारकी सिद्धिहै ॥

५९४ तहां शास्त्रीय व्यवहारकी उपपत्तिकूं प्रपंचन करैहैं । इहां तिसप्रकार हुये विद्याअवस्थाविषै शास्त्रीय भेद व्यवहार होवैहै । तिसतें इतर (लौकिक) व्यवहार तो आभासमात्र है । यह शेषहै ॥

५९५ अविद्या अवस्थाविषै लौकिकव्यवहारकी उपपत्तिकूं विवरण करैहैं ॥

५९६ उभयविध व्यवहारकी उपपत्तिकूं उपसंहार करैहैं ॥

संव्यवहार हैं । [597]यातैं कोईबी विरोधकी शंका नहीं है ॥ औ सर्व[598] वादिनकाबी प्रत्यक्षादिकविषे अरु वेदांतोंविषे परमार्थसैं संव्यवहार (परस्पर-संबंध)का किया [599]व्यवहार अपरिहार्य है । तहां परमार्थ आत्मस्वरूपकूं अपेक्षाकरिके "हे याज्ञ-वल्क्य! कौंनसा सर्वांतर है" ऐसा पुनः प्रश्न है ॥ ॥ तहां याज्ञवल्क्य प्रत्युत्तर कहैहैं:—जो अशनाया पिपासाकूं । अशन करनेकी

---

५९७ उक्तरीतिसैं दोनूं व्यवहारनकी उपपत्तिके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां प्रत्यक्षादिकनविषै औ वेदांतनविषै [कोईबी विरोधकी शंका नहीं है] यह शेष है ॥

५९८ ज्ञान अरु अज्ञानकूं पूर्व करिके शास्त्रीय अरु लौकिक व्यवहार होवैहै । ऐसैं हमोंकरिहीं नहीं कहिये है किंतु सर्व परीक्षकोंकूं यह संमत है । काहेतैं संसारदशाविषै औ क्रिया कारक व्यवहारके मोक्षकी अवस्थाविषै ता (व्यवहार)कूं इष्ट होनेतैं । ऐसैं कहैहैं ॥

५९९ निरुपाधिक परमात्माविषै चिद्घनादिककी अविद्याकरि कल्पित उपाधिका किया अशनायादिमान्तारूप वस्तु है । तिसतैं राहित्य है । ऐसैं उपपादन करिके अनंतरके प्रश्नकूं उठायके प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहां "तहां" यह सप्तमी कल्पित अरु अकल्पित आत्मरूपके निर्धारण अर्थ है औ जो अतिक्रमण करैहै सो सर्वांतरतादि विशेषणवाला तेरा आत्मा है । यह शेष है ॥

इच्छा । अशनाया कहियेहै । पान करनेकी इ-च्छा पिपासा कहियेहै। तिन अशनाया पिपासा-कूं जो अतिक्रमण करैहै । ऐसें वक्ष्यमाणसैं संबं-धहै ॥ [६००] अविवेकीजनोंकरि तलमलवान्कीन्यांई गगन प्रतीत हुयाहीं परमार्थतें तलमलकूं उल्लं-घन करैहै । परमार्थतें तिन दोनूंके साथि सं-सर्गरहित स्वभाववाला होनेतें । तैसें मूढज-नोंकरि मैं भूख्याहूं । मैं तृषितहूं । ऐसें पिपासा आदिकवाला ब्रह्म । प्रतीयमान हुयाबी परमार्थ-तैं तिनकूं अतिक्रमण करैहीं है ॥ परमार्थतें ति-न दोनूंकरि संसर्गरहित स्वभाववाला होनेतें ॥

---

६०० ननु परमात्मा अशनायादिमान् नहीं है । अप्रसि-द्धितें । जीवबी नहीं है काहेतें तैसें ताके परमात्मातें अव्य-तिरेकतें ? यातें कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—अखंड सच्चि-दानंदरूप ब्रह्महीं अनादि अविद्या अरु तत्कार्य बुद्धि आ-दिकसैं संबंधवालाहुया आभासद्वारा स्वानुभवतें अशनाया-दिमान् प्रतीत होवैहै । वस्तुतें तत्व । अविद्या आदिकके असं-बंधतें अशनायादिकतें अतीत नित्यमुक्त स्थित होवैहै ॥ इहां आचार्य । अशनाया अरु पिपासा आदिकवाला ब्रह्म प्रतीयमान होवैहै ऐसें कहते हुये नानाजीववादकी अनिष्टताकूं सूचन करैहैं ॥

औ "बाह्य[६०१] (असंग) हुया लोकनके दुःखकरि लिप्त होता नहीं " इस श्रुतितैं ॥ इहां[६०२] लोक दुःखकरि । याका अविद्वान् लोकोंकरि आरोपित दुःखसैं । यह अर्थ है ॥ अशनाया[६०३] अरु पिपासाकूं प्राणका मुख्य धर्म होनेतैं तिनका समासकरण (एकत्र ग्रहण) है ॥ औ शोककूं मोहकूं उल्लंघन करैहै ॥ इहां शोक ऐसैं काम कहियेहै । जातैं इष्टवस्तुकूं[६०४] उद्देश करिके चिंतन करनेवाले अरु ताकी तृष्णाकरि अभिभूतकूं जो अरति (शोक) होवैहै । सो कामका वीज है । तिसकरि[६०५] जातैं काम प्रदीप्त होवैहै ॥ मोह[६०६] तो विप-

---

६०१ परमार्थतैं ब्रह्मविषै अशनायादिकके असंबंधमैं प्रमाणकूं कहैहैं ॥ इहां बाह्यपना कहिये असंगपना ॥

६०२ ननु इहां लोकके दुःखकरि यह कथन अयुक्त है काहेतैं लोक जो आत्मा । ताकूं दुःखके संबंधके अनंगीकारतैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६०३ अशनाया अरु पिपासाके साथि ग्रहणविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६०४ अरतिका वाची शोकशब्द कामकूं विषय करनेवाला नहीं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६०५ अरतिकी कामवीजताकूं अनुभवकरि प्रकट करैहैं ॥

६०६ कामका शोक वीज है । यातैं सो कामरूपताकरि

रीत भावनाकरि उत्पन्न होनेवाला अविवेकरूप भ्रम है औ सो सर्व अनर्थके प्रसवका बीजरूप अविद्या है ॥ तिन शोक मोह दोनूंकूं भिन्न कार्यवाले होनेतें तिन दोनूंका असमासकरण (भिन्न भिन्न ग्रहण) है। वे दोनूं मनरूप आश्रयवाले हैं ॥ तैसें शरीररूप आश्रयवाले (शरीरके धर्म) जराकूं औ मृत्युकूं उल्लंघन करैहै ॥ इहां जरा कहिये वलीपलितादि लिंगवाला कार्यकरणके संघातका विपरिणाम औ मृत्यु कहिये तिस (कार्यकरणके संघात)तें विच्छेदरूप विपरिणामका अवसान। तिन शरीररूप अधिकर-

व्याख्यान किया । अनित्य अशुचि दुःख अरु अनात्माविषै नित्य शुचि सुख अरु आत्माकी ख्यातिरूप जो विपरीत प्रत्यय है। तिसतें मनविषै कर्त्तव्य अरु अकर्त्तव्यका अविवेक प्रभवकूं पावता है। सो लौकिक सम्यक् ज्ञानसें विरोधवाला भ्रम अविद्या (कार्याअविद्या) ऐसें कहियेहै। ताका सर्व अनर्थकी उत्पत्तिविषै निमित्तपना है औ मूल अविद्याका उपादानपना है। सो यह कहैहैं ॥ इहां कामका हेतु शोक है औ दुःखका हेतु मोह है। ऐसें दोनूंकी भिन्न कार्यता है औ ताका विच्छेद। इस ठिकाने कार्यकरणका संघात तत् शब्दका अर्थ है ॥

णवाले जरा मृत्युकूं उल्लंघन करैहै ॥ [६०७] जे अशनाया आदिक। [६०८] प्राण मन अरु शरीरके आश्रित। [६०९] अहोरात्र आदिककीन्यांई औ [६१०] समुद्रकी उर्मिओंकी न्यांई [६११] प्राणिनविषै निरंतर वर्त्तमान हैं। वे [६१२] प्राणिनविषै संसार है। ऐसैं कहियेहै ॥ ॥

[६१३] जो यह दृष्टिका द्रष्टा। इत्यादि लक्षणवाला है। सो साक्षात् कहिये अव्यवहित औ अपरोक्ष कहिये अगौण सर्वांतर ऐसा ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत भूतनका आत्मा है। सो घनादि मलोंकरि आ-

६०७ संसारतैं विरक्तकूं पारिव्राज्य कहनेकूं उत्तर वाक्य है। इस अभिप्राय करिके संक्षेपतैं संसारके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

६०८ तिनकी आत्मधर्मताकूं व्यावर्त्तन करनेकूं विशेषण देते हैं ॥

६०९ प्रवाहरूपसैं निरंतरताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

६१० तिनकी अतिचपलताविषै दृष्टांत ॥

६११ तिनकी सरसतैं विच्छेदकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

६१२ तिनकी हेयताकूं द्योतन करैहैं ॥ इहांः—जे उक्त प्रकारके प्राणीनविषै अशनायाऽऽदिक हैं। वे तिनोंविषै संसार है। ऐसैं कहियेहै। इसप्रकारसैं योजना है ॥

६१३ "इसीहीं तिस आत्माकूं" इस ठिकाने तत् शब्दके अर्थरूप उषस्तके प्रश्नविषै उक्त त्वंपदार्थकूं कथन करैहैं ॥

काशकीन्यांई [६१४] अशनाया अरु पिपासाआदिक संसार धर्मोंकरि सदा नहीं स्पर्श करियेहै ॥ [६१५] तिसैं इस आत्मा (स्वतत्व)कूं सदा सर्व संसारतैं विनिर्मुक्त नित्यतृप्त परब्रह्मरूप [६१६] यह (आत्मा) में हूं ऐसैं जानिके ब्राह्मण व्युत्थान करिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं ॥ [६१७] ब्राह्मणनकूंहीं व्युत्थान (संन्यास) विषै अधिकार है। यातैं इहां ब्राह्मणका ग्रहण है ॥ व्युत्थानकरि कहिये विपरीत भावकरि उत्थान करिके ॥ ॥ किसतैं उत्थानकरिके ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं:—पुत्रैषणातैं । पुत्रके अर्थ जो एषणा सो पुत्रैषणा कहियेहै । [६१८] पुत्रकरि इस लोककूं मैं जय करूंगा । ऐसैं लोक जयके साधन पुत्रके प्रति

---

६१४ एतत् शब्दके अर्थरूप कहोलके प्रश्नविषै उक्त तत् पदार्थकूं दिखावै हैं ॥

६१५ तिन दोनूंका एकत्व सामानाधिकरण्यकरि सूचन किया । ऐसैं कहैहैं ॥

६१६ ज्ञानकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां:—जानिके ब्राह्मण व्युत्थानकूं करिके भिक्षाचर्यकूं चरते हैं । ऐसैं संबंध है ॥

६१७ ननु संन्यासके विधायक वाक्यविषै अधिकारीमैं ब्राह्मण पद क्यूं है ? तहां कहैहैं ॥

६१८ पुत्रके अर्थ एषणाकूंहीं विवरण करैहैं ॥

जो इच्छा सो एषणा है कहिये दारसंग्रह है। तिसतैं व्युत्थानकरिके।[619] अर्थ यह जो दारसंग्रहकूं न करिके औ वित्तैषणातैं[620] । इहां वित्तशब्दकरि [621] कर्मके साधन गौआदिकका ग्रहण है ॥ इस वित्तकरि कर्मकरिके मैं पितृलोककूं जय करूंगा वा विद्यासंयुक्त कर्मकरि देवलोककूं जय करूंगा वा केवल हिरण्यगर्भकी विद्यारूप दैव वित्तकरि देवलोककूं जय करूंगा ऐसी जो इच्छा सो वित्तैषणा है । तिसतैं व्युत्थानकरिके ॥ ॥ [622] ननु दैव वित्ततैं व्युत्थानहीं नहीं है । जातैं ताके बलतैंहीं प्रसिद्ध व्युत्थान होवेहै ? ऐसें केईक क-

६१९ तिसतैं व्युत्थानकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

६२० वित्तैषणातैंबी व्युत्थान कर्त्तव्य है ऐसैं कहैहैं ॥

६२१ मानुष औ दैव भेदतैं वित्त द्विविध है। मानुषवित्त गवादिरूप है । तिस कर्म साधनका उपादान कहिये उपार्जन । तिसकरि कर्मकूं करिके । केवल कर्मसैं मैं पितृलोककूं जय करूंगा ॥ दैववित्त विद्या है । तिसकरि संयुक्तकर्मसैं देवलोककूं औ केवल विद्याकरि तिसीहीं लोककूं जय करूंगा । ऐसी जो इच्छा सो वित्तैषणा है । तिसतैंबी व्युत्थान कर्त्तव्य है । ऐसैं व्याख्यान करैहैं ॥ इसकरि लोकैषणातैंबी व्युत्थान कहा । तैसैं जाननेकूं योग्य है ॥

६२२ दैव वित्ततैं व्युत्थानके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहैं ॥

हतेहैं ॥ सो[६२३] असत् हैः—काहेतैं " इतनाहीं काम है" इस श्रुतिविषै देव वित्तकूं एषणाके मध्य पठन किया होनेतें ॥ हिरण्यगर्भ[६२४]आदिक देवताकूं विषय करनेवालीहीं विद्या अविद्या ऐसैं कहियेहै । देवलोककी[६२५] हेतु होनेतैं ॥ जातैं[६२६] निरुपाधिक प्रज्ञानघनकूं विषय करनेवाली ब्रह्मविद्या देवलोककी प्राप्तिकी हेतु नहीं है । " तातैं[६२७] सो सर्व होताभया । जातैं इनका सो आत्मा होवैहै" इस श्रुतितैं । ताके[६२८] बलतैंहीं व्युत्थान होवैहै "तिस इस आत्माकूं जानिके" इस विशेष वचनतैं ॥ तातैं[६२९] इन तीनबी अनात्मलोक-

६२३ ताकूंबी कामरूप होनेतैं तिसतैं व्युत्थान करनेकूं योग्य है । ऐसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

६२४ तब ब्रह्मविद्यातैंबी व्युत्थानतैं ताके मूलके ध्वंस हुये ताका व्याघात होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६२५ देवताकी उपासनाके वित्तशब्दकरि उक्त विद्यापनैविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६२६ तिसकी प्राप्तिकी हेतुता ब्रह्मविद्याविषैबी तुल्य है ? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

६२७ तहां फलांतरके श्रवणकूं हेतु करैहैं ॥

६२८ यातैंबी ब्रह्मविद्या दैवावित्ततैं बाहीरहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥

६२९ पूर्वहीं जब वेदन सिद्ध होवै । तब फेर व्युत्था-

की प्राप्तिके साधनरूप एषणाके विषयनतैं व्युत्थानकरिके । [६३०] एषणा काम है "इतनाहीं काम है" इस श्रुतितैं । [६३१] इस त्रिविध अनात्मलोककी प्राप्तिके साधनविषै तृष्णाकूं न करिके । यह अर्थ है ॥ [६३२] जातैं सर्व साधनेच्छा फलेच्छाहीं है । यातैं श्रुति व्याख्यान करैहै? एकहीं एषणा है ऐसैं ॥ ॥ केसैं [६३३] किः—जोई पुत्रैषणा है । सोवित्तैषणा है । अदृष्टरूप फलकी साधनताके तुल्य होनेतैं ॥ जो कर्मभूत वित्तैषणा है । सो

नसैं क्या प्रयोजन है? यह आशंका करिके । प्रयोजक ज्ञान ताका प्रयोजक है । उद्देश्य तो तत्व साक्षात्कार है । ऐसी विवक्षा करिके कहैहैं ॥ इहां प्रयोजक ज्ञान पंचमीका अर्थ है औ व्युत्थान करिके भिक्षाचर्यकूं चरते हैं ऐसैं संबंध है ॥

६३० व्युत्थानके स्वरूपकूं दिखावने अर्थ ऐषणाके स्वरूपकूं कहैहैं ॥

६३१ ननु इतनेकारि क्या भया? यह आशंका करिके । व्युत्थानके स्वरूपकूं कहैहैं ॥ इहां संबंध तो पूर्वकी न्यांई है ॥

६३२ "जोईहीं" इत्यादि श्रुतिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—फलकूं नहीं इच्छता है औ साधनकूं करनेकूं इच्छता है । इस व्याघाततैं फलेच्छाके अंतर्भूतहीं साधनेच्छा है । तातैं दोनूं एषणाकी एकता युक्त है ॥

६३३ श्रुतिकूं तिन दोनूंकी एकताकी प्रतिपादकता है । ताकूं प्रश्नपूर्वक व्युत्पादन करैहैं ॥

लोकैषणा है । सो (साधनैषणा) फलके अर्थ-हीं है । [६३४] जातें सर्व पुरुष फलके अर्थ प्रयुक्त हुयाहीं सर्व साधनकूं ग्रहण करैहै । यातें एकहीं एषणा है [६३५] ॥ जो लोकैषणा है सो साधनविना संपादनकरनेकूं शक्य नहीं होवैहै । यातें साधन साध्यके भेदकरि दोनूं जातें ये दो एषणाहीं होवैहैं । तातें ब्रह्मवेत्ताकूं कर्म वा कर्मका साधन नहीं है ॥ [६३६] यातें जे सर्व कर्मकूं औ सर्व देव पितृ मानुष निमित्त कर्मके साधनकूं अतिक्रांत ब्राह्मण हैं [तिनकूं कर्म औ कर्मका साधन यज्ञोपवीतादि नहीं है] [६३७] जातें तिस (यज्ञोपवीता-

---

६३४ साधनैषणाके फलैषणाविषै अंतर्भावकूं समर्थन करैहैं ॥

६३५ "दोनूंहीं" इत्यादि श्रुतिकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

६३६ प्रयोजक (प्रेरक)के ज्ञानवाले औ साध्य अरु साधनरूप संसारतैं विरक्तकूं कर्म अरु तत् साधनके असंभव हुये साक्षात्कारकूं उद्देश करिके फलित संन्यासकूं दिखावैहैं ॥ इहां अतिक्रांत ब्राह्मण- प्रजाकरि हम क्या करैंगे । इत्यादि श्रुतिकरि प्रकाशित है । तिनकूं कर्म औ कर्मका साधन यज्ञोपवीतादि नहीं है । ऐसैं संबंध है ॥

६३७ देव पितृ अरु मानुष कर्मका निमित्त । इस विशे-

दि) करि दैव पित्र्य औ मानुष कर्म करियेहै । "निवीत (कंठविषै वेष्टनकिया यज्ञोपवीत) मनुष्यनका है" इत्यादि श्रुतितैं ॥ तातैं[६३८] पूर्वले ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) कर्म औ यज्ञोपवीतादिरूप कर्मके साधनोंतैं व्युत्थानकरिके कहिये परमहंस पारिव्राज्यकूं प्राप्त होयके भिक्षाचर्यकूं चरते हैं । भिक्षाके अर्थ जो चरण सो भिक्षाचर्य है ताकूं आचरतेहैं । केवल[६३९] आश्रममात्र शरणवाले पुरुषनकूं जीवनके साधन पारिव्राज्यके[६४०] प्रकाशक स्मार्त्त[६४१] लिंगकूं त्यागकरिके। "विद्वान्[६४२] लिं-

---

षणकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां प्राचीनावीत पितरनका है । उपवीत देवनका है । यह आदिशब्दका अर्थ है ॥

६३८ जातैं पूर्वले विचारके प्रयोजकके ज्ञानवाले ब्राह्मण विरक्त हुये संन्यासकूं करिके । तत् प्रयुक्त धर्मकूं अनुष्ठान करते भये । तातैं आधुनिकबी प्रयोजकके ज्ञानवाला विरक्त ब्राह्मण तैसैं करै । ऐसैं कहैहैं ॥

६३९ तिस (त्रिदंड संन्यास)कूं इष्ट फलवाला होनेतैं मुमुक्षुनकरि ताकी त्याज्यताकूं सूचन करैहैं ॥

६४० अमुख्य होनेतैंबी ताकी त्याज्यता है । ऐसैं कहैहैं ॥

६४१ " त्रिदंडकरि यतिहीं " इत्यादि स्मृतितैं इहां परमहंस संन्यास विवक्षित नहीं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६४२ तथापि तुज (सिद्धांती)कूं इष्ट जो संन्यास है सो

गवर्जित होवैहै । तातैं अलिंग धर्मज्ञ अव्यक्त-लिंग अव्यक्ताचार है" इन स्मृतिनतैं औ "[६४३]काषा-य वस्त्रवाला मुंड अपरिग्रहहीं परिव्राट् होवै-है" इत्यादि श्रुतितैं शिखासहित केशनकूं नि-काशिके औ यज्ञोपवीतकूं विसर्जन करिके इति ॥ [६४४]ननु "व्युत्थानकरिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं" ऐ-सैं वर्त्तमानके अपदेश (निमित्त)तैं यह अर्थ-वाद है । लिङ् । लोट् । तव्य प्रत्ययनके मध्य अन्यतम (एक)बी विधायक (विधिवाचक) प्र-त्यय कोईक नहीं सुनियेहै । तातैं अर्थवाद-मात्रकरि श्रुतिस्मृति विहित यज्ञोपवीतादि सा-धनोंका परित्याग करावनेकूं शक्य नहीं होवै-है । [६४५]यज्ञोपवीतीहीं हुया अध्ययन करै यजन क-

---

स्मृतिकारोंकरि निबद्ध (नियम किया) नहीं है? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

६४३ प्रत्यक्ष श्रुतिके विरोधतैंबी स्मार्त्त संन्यास मुख्य नहीं होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

६४४ "इसीहीं तिस आत्माकूं" इत्यादि वाक्यकी वि-धायकता (विधिबोधकता)कूं अंगीकार करिके सर्व कर्म अरु तत् साधनके परित्यागकी परता कही । ताके तांई प्रतिवादी आक्षेप करैहै ॥

६४५ इस कहनेके हेतुतैंबी यज्ञोपवीत अपरित्याज्य है । ऐसैं प्रतिवादी कहैहै ॥

रावै वा यजन करै । पारिव्राज्यविषे[६४६] प्रथम अध्ययन विहित है । वेदके संन्यासतैं शूद्र होवैहै। तातैं वेदकूं नहीं त्यागकरै । ऐसैं औ स्वाध्यायविषैहीं वाचाकूं त्यागता हुया । ऐसैं आपस्तंब कहैहै औ "ब्रह्म (वेद)का त्याग अरु वेदनिंदा कूटसाक्षीपना सुहृद्का वध निंदितअन्न अरु अभक्ष्यका भक्षण ये षट् सुरापानके सम हैं" ऐसैं[६४७] वेदके परित्यागविषे दोषके श्रवणतैं औ गुरुनकी वृद्धोंकी अतिथिनकी उपासनाविषे। होमविषे। जप्यकर्मविषे । भोजनविषे । आचमनविषे । औ स्वाध्यायविषे यज्ञोपवीतवाला होवै । ऐसैं गुरुउपासन आदिकनका अंग होने-

---

६४६ ननु याजन (होमादि कर्म) आदिकके सम्यक् अभिव्यवहारतैं संन्यासीकूं अविषय करनेवाला यह वाक्य है? यह आशंका करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

६४७ ननु वेदके त्यागविषे दोषकी श्रुतितैं ताके अत्यागके हुयेबी संन्यासविषै यज्ञोपवीतीपना कैसैं होवैगा? यह आशंका करिके । प्रतिवादी कहैहै ॥ इहां ऐसैं अन्वय है:— इस वाक्यकरि गुरु आदिकनकी उपासनाका अंग होनेकरि यज्ञोपवीतकूं विहित होनेतैं । पारिव्राजक धर्मोंविषै गुरु उपासना आदिककूं कर्त्तव्यताकरि श्रुति स्मृतिविषै चोदित होनेतैं । यज्ञोपवीतका परित्याग जाननेकूं शक्य नहीं होवैहै ॥

करि यज्ञोपवीतकूं विहित होनेतैं पारिव्राजक धर्मोंविषै गुरुउपासन स्वाध्याय भोजन आचमन आदिक कर्मोंकूं श्रुति स्मृतिविषै कर्त्तव्यताकरि चोदित होनेतैं ता (यज्ञोपवीत)का परित्याग ॥ जाननेकूं शक्य नहीं है ॥ यद्यपि[६४८] तीन एषणातैं व्युत्थान विधान करियेहीं है। तथापि पुत्रादिककी जे एषणा। तिनतैंहीं व्युत्थान सुनियेहै। परंतु सर्व कर्मतैं औ कर्मके साधनतैं व्युत्थान नहीं सुनियेहै। औ सर्वके[६४९] परित्याग हुये अश्रुतकिया होवैगा औ श्रुत जो यज्ञोपवीतादि सो त्यक्त होवैगा। तैसें[६५०] हुये विहितका अकरण अरु प्रतिषिद्धका आचरणरूप निमित्तका किया

६४८ अब प्रतिवादी। प्रौढि (अपनी उत्कर्षता)के प्रति आरूढ हुया व्युत्थानविषै विधिकूं अंगीकार करिके। दूषण देता है ॥

६४९ ननु तीन एषणातैं व्युत्थानके हुये एषणापनैके अविशेषतैं कर्मतैं औ ताके साधनतैं व्युत्थान होवैगा? यह आशंका करिके। यज्ञोपवीतादिकका एषणापना असिद्ध है। इस आशयकरि प्रतिवादी कहैहै ॥

६५० अश्रुतके करनेविषै औ श्रुतके त्यागविषै "विहित कर्मकूं न करता हुया" इत्यादि स्मृतिकूं आश्रय करिके प्रतिवादी दूषणकूं कहैहै ॥

महान् अपराध होवैगा । [६५१] तातैं यज्ञोपवीत आदिक लिंगका परित्याग अंधपरंपराहीं है ? [६५२] यह शंका बनै नहीं:—काहेतैं "यज्ञोपवीतकूं औ वेदनकूं तिस सर्वकूं यति वर्जना करै" इस श्रुतितैं ॥ किंवा [६५३] सर्व उपनिषद्कूं आत्मज्ञानपर होनेतैं "[६५४] आत्मा द्रष्टव्य है श्रोतव्य है मंतव्य है" ऐसैं जातैं प्रस्तुत है औ सो आत्माहीं साक्षात् अपरोक्षतैं सर्वांतर अशनायादि संसारधर्मतैं वर्जित है । ऐसैं जाननेकूं योग्य है । यह प्रथम प्रसिद्ध है ॥ [६५५] जातैं सर्व यह उपनिषद् ऐसे अर्थकेपर है । या-

६५१ ननु यज्ञोपवीतादि लिंगका त्याग देखीये है । सो तुजकरि काहेतैं निराकरण करिये है ? तहां प्रतिवादी कहेहै ॥

६५२ यह अंधपरंपरा नहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

६५३ "ब्रह्मचर्यतैंहीं गमन करै" इत्यादि विधिके उपलंभ हुयेबी प्रौढिवादकरि आत्मज्ञानके विधिके बलतैंहीं संन्यासकूं साधनेवास्ते प्रथम उपनिषदनकी आत्मज्ञानपरताकूं उपन्यास करैहैं ॥ इहां यातैंबी संन्यासविषै विधि है यह अर्थ है। ता विधिके बलतैंहीं संन्यासकी सिद्धि होवैहै यह शेष है ॥

६५४ ननु सर्व उपनिषद् आत्मज्ञानपर कैसैं अंगीकार करियेहै । ताकूं कर्त्ताकी स्तुतिद्वारा कर्मविधिकी शेष होनेकरि अर्थवादरूप होनेतैं ? यह आशंका करिके कहेहैं ॥

६५५ यथोक्त वस्तु जाननेकूं योग्य होहु । तथापि प्रस्तुतविषै क्या भया ? तहां कहेहैं ॥

तैं प्रथम अन्य विधिकी शेषता नहीं है । यातें यह अर्थवाद नहीं है औ [656]आत्मज्ञानकूं कर्त्तव्य होनेतैं आत्मा अशनायादि धर्मवाला नहीं होवैहै । ऐसैं साधन अरु फलतें विलक्षण जाननेकूं योग्य है ॥ [657]यातें आत्मातें व्यतिरेककरि जो ज्ञान सो अविद्या है । काहेतें "[658]यहै अन्य है मैं अन्यहूं" ऐसैं सो नहीं जानताहै । सो मृत्युतें मृत्युकूं पावताहै जो इहां नानाकीन्यांई देखता है । एकप्रकारकाहीं देखनेकूं योग्य है । एकहीं अद्वितीय है । "सो तूं हैं" इत्यादि श्रुतिनतें क्रि-[659]याके फल औ साधन अशनायादि संसारधर्मतें अतीत आत्मातें अन्य अविद्याका विषय है ।

---

६५६ ननु ता (आत्मज्ञान)की कर्त्तव्यताके हुयेबी कर्म अरु ताके साधनके त्यागकी सिद्धि कैसैं होवैगी? यातैं कहैहैं ॥

६५७ विपक्षविषै दोषकूं कहैहैं ॥

६५८ साधन अरु फलके अंतर्भूत होनेकरि जो आत्माका ज्ञान सो अविद्या है । इस अर्थविषै प्रमाणकूं कहैहैं ॥

६५९ क्रिया कारक अरु फलतें विलक्षण आत्माका ज्ञान कर्त्तव्य है । ताके सामर्थ्यतें साध्य अरु साधनका त्याग सिद्ध होवैहै । ऐसैं कहा ॥ अब अविद्याका विषय होनेतैंबी साध्य अरु साधनकी विद्यावान्‌करि त्याज्यता है ऐसैं कहैहैं ॥

"[६६०]जहांहीं द्वैतकीन्यांई होवैहै। यह अन्य है मैं अन्यहूं सो नहीं जानताहै । औ जे यातैं अन्यथा जानतेहैं" इत्यादि सैंकडो वाक्यनतैं औ [६६१]विद्या अरु अविद्या एक पुरुषकूं तमःप्रकाशकीन्यांई साथि नहीं होवैहैं विरोधतैं । [६६२]तातैं आत्मवेत्ताकूं अविद्याकाविषय क्रिया कारक अरु फलका भेदरूप अधिकार देखनेकूं योग्य नहीं है" "सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावताहै" इत्यादि वाक्यनकरि निंदित होनेतैं औ अविद्याके विषय [६६३]सर्व क्रिया साधन अरु फलकूं तिसतैं विपरीत आत्मविद्यासैं परित्याज्य होनेकरि इष्ट होनेतैं औ [६६४]यज्ञोपवीतादि साधनोंकूं ताका विषय होनेतैं ।

---

६६० ताकी अविद्याविषयताविषै श्रुतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥

६६१ ननु अविद्याविषयताके हुयेबी साधनादिकका व्याघातहीं होवैगा। काहेतैं अस्मदादिकनविषै विद्या अरु अविद्याके साहित्यकरि उपलंभतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६६२ विद्या अविद्याके साहित्य (सहकारिता)के असंभवविषै फलितकूं कहैहैं ॥

६६३ यातैंबी प्रयोजकके ज्ञानवाले पुरुषकरि साध्यसाधनका भेद नहीं देखनेकूं योग्य है । काहेतैं विवक्षित साक्षात्कारका विरोधि होनेतैं ऐसैं कहैहैं ॥

६६४ ननु विद्यावानोंकूं अविद्याके विषयनका त्याग होहु।

[६६५]तातें साधन फल स्वभावतें रहित आत्मातें अन्यकूं विषय करनेवाली [६६६]विलक्षण एषणा है ॥ [६६७]जातें ये दोनूं साधन अरु फल एषणाहीं होवैहैं । काहेतें [६६८]यज्ञोपवीत आदिककूं औ तिसकरि साध्यकर्मोंकूं साधनरूप होनेतें ॥ [६६९]जातें ये दोनूं एषणाहीं हैं । ऐसें हेतुवचनकरि [६७०]यज्ञोपवीत आदिक साधनतें औ तिसकरि साध्यकर्मोंतें अविद्याके विषय होनेतें औ एषणारूप होनेतें औ

तथापि यज्ञोपवीतादिकनका त्याग कहांतें होवैगा ? तहां कहैहैं ॥ इहां ताका विषय होनेतें । यह तत् शब्द । अविद्याकूं विषय करनेवाला है ॥

६६५ एषणारूप होनेतैंबी यज्ञोपवीतादिकनकी त्याज्यता है । ऐसें कहैहैं ॥ इहां तातें याका ज्ञेय होनेकरि प्रस्तुततें यह अर्थ है ॥

६६६ साध्यसाधनकूं विषय करनेवाली तदात्मिक एषणा त्याज्य है । ऐसें तहां हेतुकूं कहैहैं ॥ इहांः—पुरुषार्थरूपतें विपरीत सो हेय है । यह अर्थ है ॥

६६७ साध्य साधनके एषणापनेकूं साधते हैं ॥

६६८ तथापि यज्ञोपवीतादिकनका औ कर्मोंका एषणापना कैसें है ? यह आशंका करिके । साधनोंविषै अंतर्भावतें है । ऐसें कहैहैं ॥

६६९ ननु तिन दोनूंका एषणापना प्रतिज्ञामात्रकरि कैसें होवैगा ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

६७० तिन दोनूंके एषणापनेके सिद्ध भये फलितकूं कहैहैं ॥

त्यागने योग्य रूपवाले होनेतैं व्युत्थान विधान कियाहीं है ॥ ॥ [६७१] ननु उपनिषद्‌कूं आत्मज्ञान पर होनेतैं व्युत्थानकी श्रुतितो स्तुतिके अर्थ है। विधि नहीं ? [६७२] सो शंका बनैनहीं:—काहेतैं विधान-किये वस्तुके ज्ञानकरि समान कर्त्तव्यताके श्रव-णतैं । [६७३] जातैं अकर्त्तव्यके साथि कर्त्तव्यका समान कर्त्तव्यताकरि वेदविषै कदाचित्‌बी श्रवण नहीं संभवे है ॥ [६७४] जातैं अभिषव (कंडन) होम अरु भक्षरूप कर्त्तव्योंकाहीं जैसैं " अभिषुत्यकरिके (सोमवल्लीका खंडनकरिके) हवनकरिके । भक्ष-ण करैहैं " इस प्रकार श्रवण है ॥ तैसैं आत्म-ज्ञान । एषणातैं व्युत्थान अरु भिक्षाचर्यरूप कर्त्त-

---

६७१ आत्मज्ञानका विधिहीं संन्यासका विधि है । ऐसैं कथन किया होनेतैं " व्युत्थान करिके " याका विधिपना नहीं है ? इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६७२ " व्युत्थान करिके जानिके " ऐसैं पाठके क्रमकूं अतिक्रमण करिके । व्याख्यानके हुये यह विविदिषुका विधि होवैहीं है । इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

६७३ पाठ क्रमके हुयेबी प्रयोजकके ज्ञानवाले विरक्तकूं यह विधि होवैहीं है इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

६७४ उक्त अर्थकूंहीं अन्वयमुखसैं उदाहरणद्वारा वि-वरण करैहैं ॥ इहां अभिषुत्य कहिये सोमका कंडन करिके । अर्थ यह जो रसकूं लेके ॥

व्योंकाहीं समान कर्त्तव्यताकरि श्रवण होवैहै ॥ ॥ [६७५] ननु अविद्याके विषयतें जन्य औ एषणारूप होनेतें आत्मज्ञानके विधितेंहीं अर्थतें प्राप्तहीं यज्ञोपवीत आदिकनका परित्याग है। परंतु विधान करनेकूं योग्य नहीं है? [६७६] इस प्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं:—काहेतें। जातें निरंतर आत्मज्ञानके विधिकरिहीं विहितके समान कर्त्तव्यताके श्रवणकरि दृढताकी उत्पत्ति होवैहै। औ आत्मज्ञानके विधिकरि एक वाक्यरूप [६७७] भिक्षाचर्यकी तैसैंहीं दृढताकी उत्पत्ति होवैहै ॥ ॥ [६७८] जो फेर

६७५ पाठके क्रमकूंहीं आश्रय करिके । प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६७६ प्रयोजकके ज्ञानवाले विरक्तकूं आत्मज्ञानके विधिके सामर्थ्यतें प्राप्त यज्ञोपवीतादिकके त्यागके कर्त्तव्य आत्मज्ञानकरि समान कर्त्तव्यताके श्रवणतें अतिशयकरि आवश्यकताकी सिद्धि है । इसरीतिसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

६७७ व्युत्थानविषै दिखाये न्यायकूं भिक्षाचर्यविषैबी अतिदेश करैहैं ॥ इहां भिक्षाचर्यके आत्मज्ञानके विधिके साथि एकवाक्यकी तैसैंहीं दृढताकी उपपत्ति है । ऐसैं संबंध है ॥

६७८ व्युत्थानादि वाक्यकी पूर्व उक्त अर्थवादताकूं अनुवाद करिके । सिद्धांती दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:— "औदुंबर (उदंबरका) यूप होवैहै" इत्यादि वाक्यविषै लेट परिग्रहणकरि विधिके स्वीकारकीन्यांई । इहांबी

कहाथाकिः—वर्त्तमानके अपदेशतैं अर्थवाद मात्र है? ऐसैं। सो उदंबरके यूप आदिकके समान होनेतैं अदोष है॥ ॥ [६७९]ननु "व्युत्थानकरिके भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं" इस वाक्यकरि पारिव्राज्य (संन्यास) विधानकरियेहै औ [६८०]पारिव्राज्य आश्रमविषे यज्ञोपवीतआदिक साधन औ लिंग (त्रिदंडताआदिक) श्रुति अरु स्मृतिकरि विहित हैं। [६८१]यातैं तिनके एषणापनैके हुयेबी तिसकूं वर्जनाकरिके अन्यतैं व्युत्थान होवैहै? [६८२]ईसंप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनैनहीं:—काहेतैं विज्ञानके

पंचमलकारकरि विधिकी सिद्धितैं अर्थवादताकी शंका नहीं है ॥

६७९ अब प्रकृत वाक्यविषे पारिव्राज्यके विधिकूं अंगीकार करिके प्रतिवादी शंका करैहै ॥

६८० तब कौंन विप्रतिपत्ति है? तहां कहैहैं ॥ इहां लिंग कहिये त्रिदंडता आदिक "पुराने यज्ञोपवीतकूं हुये छोडिके नवीनकूं लेके कमंडलुमान् त्रिदंडी आश्रमके प्रति प्रवेश करै" इत्यादिक श्रुतियां औ स्मृतियां हैं ॥

६८१ एषणारूप होनेतैं यज्ञोपवीतादिकनकीबी त्याज्यता कही है? यह आशंका करिके श्रुति स्मृतिके वशतैं व्युत्थानविषै संकोचकूं अभिप्रायका विषय करिके प्रतिवादी कहैहै ॥

६८२ उदाहृत श्रुति स्मृतिनके अन्य विषयकूं दिखावते हुये सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

समान किये पारिव्राज्यतैं एषणातैं व्युत्थानरू-प अन्य पारिव्राज्यके संभवतैं ॥ जोई[६८३] सो एष-णाओंतैं व्युत्थानरूप पारिव्राज्य है सो[६८४] आत्म-ज्ञानका अंग है । काहेतैं आत्मज्ञानकी विरोधि[६८५] एषणाओंके परित्यागरूप होनेतैं औ एषणाकूं[६८६] अविद्याकीविषय होनेतैं औ तिसतैं व्यतिरेक-करि जो आश्रमरूप पारिव्राज्य है सो ब्रह्मलो-[६८७]कादि फल प्राप्तिका साधन है । जाकूं विषयक-रनेवाला यज्ञोपवीतादि साधनका विधान औ लिंगका विधान है औ एषणारूप[६८८] साधनोंके उ-

---

६८३ ताहीकूं विवरण करैहैं ॥

६८४ ताकी आत्मज्ञानकी अंगताविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

६८५ एषणाकूं ताका विरोधिपनाहीं किसतैं सिद्ध भया? तहां कहैहैं ॥

६८६ तब यथोक्त श्रुति स्मृतिनका क्या विषय है ? सो कहैहैं ॥ इहांः—आश्रमपनैकरि निरूपण करियेहै । वस्तुतैं तो आश्रम नहीं है । ताका आभास है । यह अर्थ है ॥

६८७ ताकी आत्मज्ञानकी अंगताकूं निवारण करैहैं ॥

६८८ अब लिंगादिविधानकूं व्युत्थान वाक्यकरि उक्त मुख्य पारिव्राज्यकी विषयताहीं क्यूं नहीं होवैगी ? तहां क-हैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—एषणारूप साधन यज्ञोपवीतादिक हैं । तिनका उपादान कहिये अनुष्ठान । तिस आश्रमधर्म

पादान (अनुष्ठान)कूं आश्रमधर्ममात्र अन्य पारिव्राज्यविषै संभवते हुये सर्व उपनिषदनविषै विहित आत्मज्ञानका बाध युक्त नहीं है ॥ औ [६८९] यज्ञोपवीतादि अविद्याके विषय एषणारूप साधनोंके ग्रहण हुये अवश्य असाधनफलरूप अशनायादि संसारधर्मतैं वर्जित आत्माका "मैं ब्रह्महूं" ऐसा विज्ञान बाधकूं पावताहै औ [६९०] तोंका बाध युक्त नहीं है सर्व उपनिषदनकूं तिस अर्थके परायण होनेतैं ॥ ॥ [६९१] ननु "भिक्षाचर्यकूं चरतेहैं" यह श्रुति एषणाकूं ग्रहण करावती हुयी आपहीं बाधकूं पावतीहै? ऐसैं जो कहे । क-

---

मात्रकरि उक्तका यथोक्त संन्यासाभासरूप विषयके होते प्रधानके बाधकरि मुख्य पारिव्राज्यकी विषयता अयुक्त है ॥

६८९ फेर यज्ञोपवीतादिककी मुख्य पारिव्राज्यकी विषयताके (माने) इष्ट हुये प्रधानका बाध कैसैं है? सो कहैहैं ॥

६९० साध्य अरु साधनके आसंगके हुये तिसैतैं विलक्षण आत्माका ज्ञान जब बाधकूं पावता है । तब कौंन हानि है? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

६९१ भिक्षाचर्य प्रथम विहित है औ विहितका अनुष्ठान यज्ञोपवीतादि विना नहीं संभवै है । यातैं इस श्रुतिकरिहीं आत्मज्ञान यज्ञोपवीतादिकसैं विरोधयुक्त किया? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

हिये तौबी[६९२] [यज्ञोपवीतादिकका ग्रहण] होवैगा काहेतैं किः—तीन एषणातैं व्युत्थानकूं विधानकरिके फेर एषणाके एकदेशरूप भिक्षाचर्यकूं ग्रहण करावती हुयी श्रुति ताके संबंधी अन्य (यज्ञोपवीतादिक)कूं बी ग्रहण करावती है? इसप्रकार[६९३] जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहींः—काहेतैं भिक्षाचर्यकूं अप्रयोजक (द्रव्यविशेषकी अपेक्षारहित) होनेतैं होम करिके उत्तर कालविषे भक्षणकी न्यांई ॥ जातैं[६९४] शेषकी[६९५] प्रतिपत्ति (संपादन) अर्थ कर्मरूप होनेतैं औ असंस्कारक होनेतैं सो भक्षण

---

६९२ शंकाकूंहीं प्रतिवादी स्पष्ट करैहै ॥

६९३ जैसैं हुतशेषका भक्षण विहित हुयाबी द्रव्यकी अपेक्षावाला नहीं है । परिशिष्ट द्रव्यके ग्रहणकरि प्रवृत्तितैं । तैसैं सर्वस्वत्यागके विहित हुये परिशिष्ट भिक्षाके ग्रहणकरि विहित हुयाबी भिक्षाचरण उपवीतादिककी अपेक्षासैं रहित है । ऐसैं सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

६९४ दृष्टांतकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां सो भक्षण ऐसैं संबंध है औ अप्रयोजक है कहिये द्रव्यविशेषकी अपेक्षासैं रहित है । यह अर्थ है ॥

६९५ यद्वा दार्ष्टांतिककूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—सर्वस्व त्यागके विहित हुये शेष जो शरीरपात पर्यंत काल । ताकी प्रतिपत्तिरूप कर्ममात्र भिक्षाचर्य है । यातैं सो (भिक्षाचर्य) उपवीतादिकका प्रापक नहीं है ॥

अप्रयोजक (द्रव्यविशेषकी अपेक्षारहित) है । यद्वा शेष (शरीरपातपर्यंतके काल)की प्रतिपत्ति (संपादन)रूप कर्ममात्र होनेतैं सो (भिक्षाचर्य) अप्रयोजक है (उपवीतादिकका प्रापक नहीं है) औ [६९६]असंस्कारक (संस्कारका अकर्त्ता) होनेतैं [बी अप्रयोजक है] ॥ [६९७]भैक्षण जो है सो । पुरुषके संस्कार (अदृष्ट)का कर्त्ताबी होवैहै । परंतु भिक्षाचर्य नही। काहेतैं [६९८]नियमतैं अदृष्टकूं ब्रह्मवेत्ताके ताईं अनिष्ट होनेतैं ॥ ॥ [६९९]नियमतैं अदृ-

६९६ किंवा भिक्षाचर्यकूं शरीरकी स्थितिकरिहीं तुल्य होनेतैं तहांबी विधि दूरीविषै है । ताके वशतैं उपवीतादिककी सिद्धि नहीं होवैगी । ऐसैं कहैहैं ॥

६९७ ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

६९८ “ एककाल भिक्षाकूं चरै ” इत्यादि नियमके वशतैं अदृष्ट रूप सिद्ध हुया भिक्षाचर्य उपवीतादिककूंबी आक्षेप करैहै ॥ ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह भाव हैः—विविदिषुकूं सो (भिक्षाचर्य) इष्ट है । तौबी उपवीत आदिकका आक्षेपक नहीं है । किंतु ज्ञानके उत्पादक श्रवणादिकविषै उपयोगी है । काहेतैं ता(भिक्षाचर्य)कूं देहकी स्थितिरूप अर्थवाला होनेकरिहीं चरितार्थ होनेतैं ॥

६९९ ननु तब जिस किसप्रकारकरि प्राप्त अन्नसैं शरीरकी स्थितिके संभवतैं “ भिक्षाचर्यकूं चरते हैं ” यह वाक्य व्यर्थ होवैगा ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

ष्टकी अनिवृत्तताके हुये भिक्षाचर्यसैं क्या प्रयोजन है? [७००] इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। सो बनै नहीं:—काहेतैं अन्य साधनतैं उत्थानकूं विहित होनेतैं ॥ ॥ [७०१] तथापि तिसकरि क्या है (निर्विकार आत्माके ज्ञानकरिहीं सर्व निवृत्तिकी सिद्धितैं]? इसप्रकार जो प्रतिवादी कहै। तो सो (उक्त आत्मज्ञानतैं सर्वकी निवृत्ति) [७०२] जब होवै तब सत्य है। सो हमोंकरिबी अंगीकार करियेहै ॥ [७०३] जे पारिव्राज्यविषै अभिहित "यज्ञोपवीती

---

७०० भिक्षाचर्यके अनुवादकरि प्रतिग्रह आदिककी निवृत्तिरूप अर्थवाला होनेतैं वाक्यकी व्यर्थता नहीं है। ऐसैं सिद्धांती उत्तर देते हैं ॥

७०१ निवृत्तिके उपदेशकरि वाक्यकी अर्थवान्‌ताके हुयेबी ताके उपदेशकी अर्थवान्‌ता नहीं है काहेतैं कूटस्थरूप आत्माके ज्ञानसैंहीं सर्वकी निवृत्तिकी सिद्धितैं? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

७०२ जब निष्क्रियरूप आत्माके ज्ञानतैं अशेषकी निवृत्ति होवैहै। तब सो हमोंकरिबी स्वीकार करियेहै। यातैं सो सत्य है। ऐसैं सिद्धांती अंगीकार करैहैं ॥ इहां यह भाव है:—जब तो क्षुधाआदिक दोषकी प्रबलतातैं निष्क्रियरूप आत्माकूंबी विस्मरण करिके प्रार्थना आदिकके परायण होवैहै। तब निवृत्तिका उपदेशबी अर्थवान् होवैहै ॥

७०३ पूर्व उक्त वाक्यके विरोधतैं निवृत्तिका उपदेश अशक्य है? ऐसैं जो कहै। तहां कहैहैं ॥

हुयाहीं अध्ययनकूं करै" इत्यादिक वचन हैं । ते अविद्वान्‌के पारिव्राज्यमात्रकूं विषय करनेहारे हैं । यातें परिहार किये हैं । [704]अन्यथा आत्मज्ञानका बाध होवैगा । ऐसें जातें कहाहै:— "[705]निराशा अनारंभ निर्नमस्कार अस्तुति अक्षीण अरु क्षीणकर्मवाले तिस पुरुषकूं देव। ब्राह्मण जानतेहैं" ऐसें औ "विद्वान् लिंगतें वर्जित है । तातें अलिंग धर्मज्ञ होवै" ऐसें स्मृति विद्वानकूं सर्व कर्मका अभाव दिखावैहै ॥ [706]तातें आत्मवेत्ता सर्व कर्म औ तत्साधनके परित्यागरूप व्युत्थानलक्षण परमहंस पारिव्राज्यकूंहीं प्राप्त होवै ॥ ॥ [707]जातें पूर्वले ब्राह्मण इस फलसाधनरूप स्वभावसें रहित आत्माकूं जानिके साध-

७०४ इनवाक्यनकी मुख्य संन्यासकी विषयताविषै दोषकूं स्मरण करावै हैं ॥

७०५ निवृत्तिके उपदेशकी अनुग्राहकताकरि स्मृतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥

७०६ अमुख्य संन्यासकी विषयताके असंभवतें मुख्य संन्यासकूं विषय करनेवाला व्युत्थान वाक्य है । ऐसें उपसंहार करैहैं ॥ इहां इति शब्द जो है सो व्युत्थान वाक्यके व्याख्यानकी समाप्ति अर्थ है ॥

७०७ "तातें" इत्यादि वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

नस्वरूप एषणालक्षण सर्वतैं व्युत्थानकरिके क-हिये [708] दृष्ट अदृष्टरूप अर्थवाले कर्मकूं औ ताके साधनकूं त्याग करिके भिक्षाचर्यकूं चरतेभये ॥ तातैं अद्यताके हुयेबी ब्राह्मण कहिये ब्रह्मवित् पांडित्यकूं कहिये पंडितभावरूप इस आत्म-विज्ञानकूं निःशेष जानिके। अर्थ यह जो आ-त्मविज्ञानकूं आचार्यतैं औ आगमतैं निरवशेष-करिके। तीन एषणातैं व्युत्थानकरिके ॥ [709] जातैं एषणातैं व्युत्थानरूप अवसानवालाहीं सो पां-डित्य है। काहेतैं [710] एषणाके तिरस्कारतैं उद्भव-

७०८ उक्त व्युत्थानकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहांः—विवेक वैराग्यकरि तीन एषणातैं व्युत्थान करिके श्रुति अरु आचा-र्यकरि कर्त्तव्य ज्ञानकूं निःशेष करिके बाल्यकरि स्थित होवै। ऐसैं व्यवहितपदके साथि संबंध है ॥

७०९ पांडित्यकूं निःशेष जानिके। इस वाक्यकरिहीं व्यु-त्थान विहित है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—जातैं सो पांडित्य तीन एषणातैं व्युत्थानके हुये संभवै है। तातैं इहां व्युत्थानका विधि है ॥

७१० ताहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिन तीन एषणाओंके तिरस्कारकरि पांडित्य उद्भव होवैहै। का-हेतैं ता (पांडित्य)कूं एषणातैं विरुद्ध होनेतैं। तिसप्रकार हुये पांडित्यकूं निःशेष जानिके। इस वाक्यविषै तिन तीन एषणातैं व्युत्थानका विधान उचित है ॥

वाला होनेतैं । एषणातैं विरुद्ध होनेतैं ॥ जैंतैं[711] एषणाकूं अतिरस्कार करिके आत्मविषयक पांडित्यका उद्भव नहीं होवैहै । यांतैं[712] आत्मज्ञानकरिहीं विहित एषणातैं व्युत्थान आत्मज्ञानके[713] समान कर्तृक "क्त्वा" प्रत्ययके उपादानरूपहीं लिंगभूत श्रुतिकरि दृढकीया है (नियमकरि प्रापित व्युत्थान है) । तांतैं[714] (पांडित्यतैं) तीन एषणातैं व्युत्थानकरिके ज्ञानके बल भावरूप बाल्यकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥ इतर अना-

---

७११ ननु व्युत्थानविनाबी पांडित्य उद्भवकूं पावैगा? ऐसैं जो कहै । सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

७१२ पांडित्यकूं निःशेष जानिके । इस ठिकाने उक्त व्युत्थानके विधिकूं उपसंहार करैहैं ॥

७१३ ननु तब जानिके व्युत्थान करिके । इस ठिकाने व्युत्थानविषै विधि कैसैं अंगीकार करिये है? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिसकरि व्युत्थानकी समान कर्त्तव्यताके हुये "क्त्वा" प्रत्ययकी उपादानरूपहीं लिंग भूत श्रुति है । तिसनैं व्युत्थान दृढ किया कहिये नियमसैं प्राप्त किया है ॥

७१४ बाल्यकरि । इत्यादि वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां ऐसैं योजना है:—विवेकादिकके वशतैं तीन एषणातैं व्युत्थान करिके । पांडित्य संपादन करिके । तिस पांडित्यतैं ज्ञान बलके भावकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥

त्मवेत्ताओंका साधन फलका आश्रय करनाहीं बल है। तिस बलकूं छोडिके विद्वान् (विवेकी) असाधन फलस्वरूप आत्माका विज्ञानरूपहीं बल है। ताके भावकूंहीं केवल आश्रय करै ॥ जातैं ताके आश्रय करनेके हुये करण जे हैं। वे एषणाविषै प्राप्त यापुरुषकूं हरणकरिके स्थापन करनेकूं उत्साह करैहैं । जातैं ज्ञानके बलकरि हीन मूढ यापुरुषकूं करण दृष्ट अदृष्टकूं विषय करनेवाली एषणाविषैहीं योजना करैहैं ॥ बल नाम आत्मविद्याकरि अशेष विषयदृष्टिका तिरस्कार है ॥ यातैं तिस (ज्ञानबल)के भावरूप

---

७१५ ननु कौन यह ज्ञान बलके भावकरि स्थिति है? यह आशंका करिके ताकूं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां विद्वान् ऐसैं विवेकी भावका कथन है ॥

७१६ यथोक्त बलभावके आश्रयके हुये करणोंके विषय पारवश्यताकी निवृत्तिकरि पुरुषकूंबी विषयके पारवश्यताकी निवृत्ति फलती है। ऐसैं कहेहैं ॥

७१७ उक्त अर्थकूंहीं व्यतिरेक मुखकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७१८ ननु अद्यापि (अबीबी) ज्ञानका बल कैसा है। यह नहीं जानिये है? तहां कहेहैं ॥

७१९ बाल्य वाक्यके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥ इहां:— जैसैं ज्ञानबलकरि विषयके अभिमुखहुयी दृष्टि तिरस्कार करिये है। तैसैं यह अर्थ है औ आत्माकरि याका तिस विज्ञा-

बाल्यकरि स्थित होनेकूं इच्छे ॥ तैसें "आत्मा-करि वीर्यकूं पावताहै" इस अन्यश्रुतितें औ "यह आत्मा बलहीनकरि लभ्य नहीं है" इस अन्यवाक्यतैं ॥ ॥ औ बाल्यकूं[720] अरु पांडि-त्यकूं निःशेष जैसें होवै तैसें करिके अनंतर मुनि (योगी) होवैहै। इतनाहीं[721] ब्राह्मण-करि कर्त्तव्य है। जोबी सर्व अनात्मप्रत्ययोंका तिरस्कार है। याकूं करिके कृतकृत्य योगी हो-वैहै ॥ औ अमौनरूप[722] आत्मज्ञान अरु अनात्म-प्रत्ययोंका तिरस्कार पांडित्य अरु बाल्य संज्ञक

नके अतिशयकरि। यह अर्थ है औ वीर्यकूं । याका विषय दृष्टिके तिरस्कार करनेके सामर्थ्यकूं । यह अर्थ है औ बल-हीनकरि कहिये विषय दृष्टिके तिरस्कार करनेके सामर्थ्यतें रहित पुरुषकरि। यह आत्मा लभ्य नहीं है । अर्थ यह जो साक्षात्करनेकूं शक्य नहीं है ॥

७२० औ बाल्यकूं । इत्यादि वाक्यकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां पूर्व उक्त दोनूंके मध्य पीछलेविषै हेतुके द्यो-तन अर्थ "अथ" शब्द है ॥

७२१ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

७२२ वाक्यांतरकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां मौन अरु अमौनके ब्राह्मणभावके प्रति सामग्रीपनैका द्योतक "अथ" शब्द है ॥

हैं । तिन दोनूंकूं निःशेष (संपूर्ण) करिके । औ मौन नाम अनात्मप्रत्ययोंके तिरस्करणका पर्यवसानरूप फल है । ताकूं निःशेषकरिके अनंतर ब्राह्मण (कृतकृत्य) होवैहै ॥ कहिये ब्रह्म[७२३]हीं सर्व है ऐसा प्रत्यय उपजताहै ॥ सो ब्राह्मण (कृतकृत्य) होवैहै । यातैं ब्राह्मण है ॥ [७२४]जौतैं तब ताका ब्राह्मणपना उपचाररहित प्राप्त है । यातैं कहैहैः—[७२५]सो ब्राह्मण किसकरि होवै कहिये किस चरणकरि होवै? [७२६]जिसकरि होवै कहिये जिस चरणकरि होवै तिसकरि ऐसाहीं यह

---

७२३ ब्राह्मणभावकूं उपपादन करै हैं ॥ इहां यह विभाग हैः—आचार्यकी सेवापूर्वक उपनिपदनके तात्पर्यका निश्चय पांडित्य है । युक्तितैं अनात्मदृष्टिका तिरस्कार बाल्य है । मैं आत्मा परब्रह्महूं मुजतैं अन्य कछुबी नहीं है ऐसा मनकरिहीं अनुसंधान मौन है । औ महावाक्यके अर्थका निश्चय ब्राह्मण्य (ब्राह्मणपना) है ॥

७२४ ननु पूर्वबी ब्राह्मणपना प्रसिद्ध है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

७२५ ब्रह्मवेत्ताके सम्यक् आचारकूं पूछता है ॥

७२६ अनियमितताका चरण (आचार) है । ऐसैं उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां उक्तलक्षणवान्पना कहिये कृतकृत्यपना ॥

है ॥ कहिये जिस किसीबी चरणकरि होवै तिस-करि ऐसाहीं (उक्तलक्षणवालाहीं) ब्राह्मण होवैहै ॥ [७२७] इहां जिस किसीबी चरणकरि । यह कथन स्तुति अर्थ है । जो यह ब्राह्मण्य अवस्था है सो यह स्तुतिकी विषय करियेहै परंतु चरणविषे अनादर नहीं है ॥ ॥ [७२८] ईसें अशनाया आदिकतें अतीत आत्मस्वरूपभूत नित्यतृप्त ब्रह्मभावकरि अवस्थानतें अन्य कहिये अविद्याका विषय एषणारूप वस्तु अंतर है सो आर्त्त कहिये विनाशी (आर्त्तिपरिगृहीत) स्वप्न माया

---

७२७ ननु अव्यवस्थित आचरणकूं इच्छनेवाले ब्रह्मवेत्ताकूं यथेष्ट चेष्टा अभीष्ट होवैगी । तिसप्रकार हुये " जो जो श्रेष्ठ आचरता है । सो सो इतर जन आचरताहै " इस गीता स्मृतितैं इतर पुरुषनकूंबी आचारविषै अनादर होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— विहित कर्मकूं आचरनेवाले औ निषिद्धकूं त्यागनेवाले शुद्ध बुद्धिमान् पुरुषकूं श्रवण किये महावाक्यतैं सम्यक् बुद्धि उत्पन्न होवैहै औ ताकी बुद्धि । शुभ वासनाके वशतैं व्यवस्थितहीं होवैहै । अव्यवस्थित नहीं ॥ यातैं ब्रह्मवेत्ताकूं यथेष्ट चेष्टाके आचरणका किया दोष [तद भावतैं] नहीं होवैहै॥

७२८ यातैं अन्य । इत्यादि वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां स्वप्न इत्यादि बहु दृष्टांतनका ग्रहण । दार्ष्टांतिककी बहुरूपताके द्योतन अर्थ है ॥

मरीचिजलके सम असार है । आत्माहीं[७२९] एक केवल नित्यमुक्त है इति ॥ ॥ तदनंतर कहोल कौषीतकेय उपराम होताभया ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य पचमं कहोल-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

---

७२९ यातैं अन्य । यह विशेषण किस कारणतैं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायगत-पंचम ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ । याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ यदिदꣳ सर्व-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं गार्गी वाचक्नवी पूछतीभई । हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहतीभ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

टीकाः—जो[७३०] साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म सर्वांतर

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-षष्ठ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ६ ॥

७३० पूर्वले दो ब्राह्मणोंविषै आत्माकी सर्वांतरता कही । ताके निर्णय अर्थ पीछले तीन ब्राह्मण हैं । ऐसैं संगतिकूं कहैहैं॥

मप्स्वोतश्च प्रोतश्च । कस्मिन्नु खल्वाप ओताश्च प्रोताश्चेति । वायौ गार्गीति । कस्मिन्नु खलु वायुरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्त-

ई:—जो यह सर्व (पार्थिव धातुनका समूह) जलविषै ओत है अरु प्रोत है। किसविषै निश्चयकरि जल ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसें [पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि? वायुविषै। ऐसें [कहतेभये]॥ ॥ किसविषै निश्चयकरि वायु ओत है अरु प्रोत है? ऐसें [पू-

आत्मा है ऐसें कहा। तिस सर्वांतरके स्वरूपके अधिगम अर्थ शाकल्य ब्राह्मणपर्यंत ग्रंथ आरंभ करियेहै। जातैं [731] पृथिवी आदिक आकाशपर्यंत

731 उक्त संबंधकूंहीं विवरण करैहैं ॥ इहां अंतर्बहिर्भावकरि। याका सूक्ष्म स्थूलके तारतम्यके क्रमकरि। यह अर्थ है औ बाह्य बाह्यकूं। ऐसैं वीप्सा है। औ ऊपरतैं तत् शब्द देखनेकूं योग्य है। काहेतैं यत् औ तत् शब्दके नित्य संबंधतैं ॥ निराकरण करता हुया जैसैं मुमुक्षु सर्वांतर आत्माकूं पावता है। तैसैं सो उक्तप्रकारके विशेषणवाला देखनेकूं योग्य है। यातैं उत्तर ग्रंथका आरंभ है। ऐसैं योजना है औ कहोल प्रश्नके निर्णयके अनंतर। अथ शब्दका अर्थ

रिक्षलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खल्व-
न्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति । ग-
न्धर्वलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु ग-

छतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि ! अंतरिक्ष लो-
कनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किस-
विषै निश्चयकरि अंतरिक्ष लोक ओत हैं
औ प्रोत हैं ? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे
गार्गि ! गंधर्व लोकनविषै । ऐसैं [कहते-

भूत अंतर्बहिर् भावकरि व्यवस्थित हैं । तिनके
मध्य जो बाह्य बाह्यकूं जानिके निराकरण क-
रताहुया द्रष्टाका साक्षात् सर्वांतर अगौण सर्व
संसारधर्मतैं निर्मुक्त आत्मा है सो दिखावनेकूं
योग्य है । यातैं यह आरंभ है ॥ ॥ अनंतर
या (याज्ञवल्क्य)कूं नामतैं गार्गी ऐसी वाच-
क्नवी (वचक्नुकी पुत्री) पूछतीभयी ! हे या-
ज्ञवल्क्य ! ऐसैं कहतीभयीः—जो यह सर्व
पार्थिव (पृथिवीका कार्य) धातुजात (धातुनका-

है ॥ जो पार्थिव धातुनका समूह है । सो यह सर्व जलविषै
ओत प्रोत है । इत्यादि योजना करनेकूं योग्य है ॥

न्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्चेत्यादित्य-
लोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खल्वादित्य-
लोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु

भये] ॥ ॥ किसविषे निश्चयकरि गंधर्व
लोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसें [पूछ-
तीभई] ॥ हे गार्गि! आदित्य लोकन-
विषे । ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ किसविषे
निश्चयकरि आदित्य लोक ओत हैं औ प्रो-

समूह) है सो उदकविषै दीर्घपटतंतुकीन्यांई
ओत है औ तेढेतंतुकीन्यांई प्रोत है वा वि-
परीत है । [732] सर्व ओरतें अंतर्बहिर्भूत जलकरि
व्याप्त है यह अर्थ है । [733] अन्यथा शक्तु (भुंजेधा-
न्यके चूर्ण विशेषरूपसत्तु)की मुष्टिकी न्यांई वि-
शीर्ण होवै (विखर जावै) ॥ [734] यँहूं प्रथम अनुमान
उपन्यास किया है ॥ [735] जो कार्य परिच्छिन्न अरु

७३२ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

७३३ पार्थिव धातु समूहकी जलकरि व्याप्तिके अभाव-
विषै दोषकूं कहैहैं ॥

७३४ इहां गार्गीकूं विवक्षित क्या है ? यातैं सो कहैहैं ॥

७३५ ताहीकूं दिखावनेकूं व्याप्तिकूं कहैहैं ॥ इहां कारण-

गार्गीति । कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति । नक्षत्रलोकेषु गा-

---

त हैं? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि! चंद्रलोकनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किसविषै चंद्रलोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि नक्ष-त्र लोकनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥

स्थूल है। सो कारण अपरिच्छिन्न अरु सूक्ष्मकरि व्याप्त है । ऐसैं देख्या है ॥ [७३६] जैसैं पृथिवी जल-करि व्याप्त है । [७३७] तैसैं पूर्व पूर्व उत्तर उत्तर व्या-

---

रूप व्यापककरि । यह शेष है ॥ जो कार्य है । सो कारण-करि व्याप्त है। जो परिच्छिन्न है । सो व्यापकरि व्याप्त है औ जो स्थूल है सो सूक्ष्मकरि व्याप्त है। ऐसैं तीन प्रकारकी व्याप्ति होवैहै ॥ इहां इति शब्द जो है। सो ताकी समाप्ति अर्थ है ॥

७३६ भूमिकी व्याप्तिकूं कहैहैं ॥

७३७ अब अनुमानकूं कहैहैं ॥ इहां पूर्व पूर्व ऐसैं जल आदिक धर्मीका निर्देश है औ उत्तर उत्तर वायु आदिकारण अपरिच्छिन्न सूक्ष्मकरि व्याप्त है । यह शेष है ॥ इहां यह अ-नुमान है:—विमत जल आदिक।कारणकरि व्यापककरि सू-क्ष्मकरि व्याप्त है । कार्य होनेतैं । परिच्छिन्न होनेतैं औ स्थूल होनेतैं । पृथिवीकी न्याईं । यह अर्थ है ॥

र्गीति । कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओ-
ताश्च प्रोताश्चेति। देवलोकेषु गार्गीति। क-

किसविषै निश्चयकरि नक्षत्र लोक ओत हैं
औ प्रोत हैं? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ हे
गार्गि! देव लोकनविषै । ऐसैं [कहतेभ-

पककरि होनेकूं योग्य है। ऐसैं यँहँ[738] सर्वांतर आ-
त्मापर्यंत प्रश्नका अर्थ है ॥ तँहां[739] पंचभूत संहत
(मिलित) हुयेहीं उत्तर उत्तर सूक्ष्मभाव व्या-
पक अरु कारणरूपकरि व्यवस्थित होवैहैं औ
परँमात्मातैं[740] अर्वाक् (अर्वाचीन) तिसतैं व्यति-

७३८ सर्वांतर आत्मातैं नीचे उक्त न्याय सर्वत्र संच-
रता है ॥

७३९ ननु तथापि भूत पंचकतैं व्यतिरिक्त गंधर्व लोका-
दिकनकेबी आंतरताकरि उपदेशतैं भूतपंचकके व्युदास (उडा-
वने)करि सर्वांतरकी प्रतिपत्ति कैसैं विवक्षित है? ऐसी
शंका भयी। तहां कहैहैं॥ इहां "तहां" याका उक्त नीतिकरि
प्रश्नार्थके स्थित हुये। यह अर्थ है ॥ वा यह सप्तमी । भूता-
त्माओंविषै। ऐसैं निर्धारणविषै है ॥

७४० अब परमात्माकूं औ भूतनकूं छोडीके गंधर्वलोका-
दिरूप वस्तु अंतर होवैंगे? सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥
इहां:—गंधर्व लोकादिकबी भूतनकीहीं अवस्थाविशेष हैं।
तिनतैं सत्य भूतपंचक है। ताका सत्य परब्रह्म है। तिन दो-

स्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चे-
तीन्द्रलोकेषु गार्गीति। कस्मिन्नु खल्वि-

ये] ॥ ॥ किसविषै निश्चयकरि देवलोक
ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसें [पूछतीभई]
॥ ॥ हे गार्गि! इंद्र लोकनविषै। ऐसें

रेककरि अन्यवस्तु नहीं है "सत्यका सत्य है"
इस श्रुतितैं । सत्य भूतपंचक है औ सत्यका
सत्य परमात्मा है ॥ किसविषै[741] निश्चयकरि
जल ओत प्रोत हैं ऐसें। तिनकूंबी कार्य हो-
नेतैं स्थूल होनेतैं औ परिच्छिन्न होनेतैं कहींबी
ओत प्रोत भावकरि होना योग्य है। कहां ति-
नका ओत प्रोत भाव है ऐसें[742] उत्तर उत्तर प्रश्न-
का प्रसंग योजना करनेकूं योग्य है॥ हे गार्गि!

नूंतैं अन्य सो जाननेकूं योग्य नहीं है। ऐसैं अन्यके प्रतिषेध
अर्थ दोनूं "च" शब्द हैं ॥

७४१ तात्पर्यकूं कहिके। प्रश्नकूं उठायके ताके अक्षरनकूं
व्याख्यान करैहैं ॥

७४२ तिसविषै निश्चयकरि वायु ओत प्रोत है। इत्यादि-
विषै उक्त न्यायकूं अतिदेश करैहैं ॥

न्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति । प्रजाप-
तिलोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु प्र-

[कहतेभये] ॥ ॥ किसविषै इंद्रलोक ओ-
त हैं औ प्रोत हैं? ऐसें [पूछतीभई] ॥ ॥
हे गार्गि! प्रजापति लोकनविषै । ऐसें [क-
हतेभये] ॥ ॥ किसविषै निश्चयकरि प्र-

वायुविषै ऐसें॥ ॥ नँनु[७४३] अग्निविषै ऐसें कहनेकूं
योग्यथा? यँह[७४४] दोष नहीं है:—काहेतें अग्निका
पृथिवीके वा जलके धातुकूं अनाश्रयकरिके इतर
भूतकीन्यांई स्वतंत्रताकरि स्वरूपका लाभ नहीं
है। यातें तिस (अग्नि)विषै ओत प्रोत भाव नहीं
उपदेश करियेहै ॥ ॥ किसविषै निश्चयक-

७४३ वायुविषै ऐसा जो प्रयोग सो अयुक्त है। काहेतें
जलकूं अग्निका कार्य होनेतें अग्निविषै ऐसें कहनेकूं योग्य
होनेतें? इसप्रकारसें प्रतिवादी शंका करैहै ॥

७४४ अग्निकी उदकविषै व्यापकताके हुयेबी काष्ठ अरु
विद्युत् आदिककी परतंत्रतातें। किसीबी स्वतंत्रकरि जलकी
व्याप्ति कहनेकूं योग्य है। यातें अग्निकूं छोडिके तिसके का-
रण वायुविषै ऐसें कहा औ वायुकूं स्वकारणकी आधीनताके
हुयेबी उदककी आधीनता नहीं है। यातें ताके व्यापकताकी
सिद्धि है। इसरीतिसें सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

जापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्म-
लोकेषु गार्गीति । कस्मिन्नु खलु ब्रह्म-

जापति लोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसैं
[पूछतीभई] ॥ ॥ हे गार्गि ? ब्रह्म लो-
कनविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ किसवि-

रि वायु ओत प्रोत है? ऐसैं । हे गार्गि !
अंतरिक्ष लोकनविषै ऐसैं ॥ [७४५]वेही भूत सं-
हत हुये अंतरिक्ष लोक हैं ॥ वेबी गंधर्व लो-
कनविषै । गंधर्वलोक आदित्य लोकनविषै ।
आदित्यलोक चंद्रलोकनविषै । चंद्रलोक न-
क्षत्रलोकनविषै । नक्षत्रलोक देवलोकनवि-
षै । देवलोक इंद्रलोकनविषै । इंद्रलोक वि-
[७४६]राट् शरीरके आरंभक भूतरूप प्रजापति लो-
कनविषै । प्रजापति लोक ब्रह्मलोकनविषै ।
ब्रह्मलोक नाम अंडके आरंभक भूत हैं ॥ जा-

---

७४५ अंतरिक्ष लोक शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

७४६ प्रजापति लोक शब्दके अर्थकूं कथन करैहैं ॥

लोका ओताश्च प्रोताश्चेति। स होवाच गार्गि! मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्द्धा व्यपप्तद-नतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि!

षै ब्रह्मलोक ओत हैं औ प्रोत हैं? ऐसैं [पूछतीभई] ॥ ॥ सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभये:—हे गार्गि! अतिप्रश्नकूं मतिकर। तेरा मूर्द्धा विस्पष्ट मति पतन होवै। अतिशयकरि नहीं पूछने योग्य देवता (सूत्रा-

---

तैं [७४७] सर्व ठिकानैं सूक्ष्मके तारतम्यके क्रमकरि प्राणिनके उपभोगके आश्रयके आकारकरि परिणामकूं प्राप्तभये भूत संहत हैं। वे ऐसैं पंच हैं। यातैं बहुवचनके भागी हैं॥ किसविषै निश्चयकरि ब्रह्मलोक ओत प्रोत हैं? ऐसैं पूछतीभयी॥[७४८] सो याज्ञवल्क्य कहतेभये:—हे गा-

---

७४७ अंतरिक्ष लोक आदिकनकूं एक एकरूप होनेतैं बहुवचन किस कारणतैं है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥

७४८ पूर्वकी न्यांईं अनुमानकरि सूत्रकूं पूछनेवाली गार्गीकूं याज्ञवल्क्य निषेध करैहैं॥

मातिप्राक्षीरिति ॥ ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य
षष्ठं गार्गि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

त्मा)कूं तूं अतिशयकरि पूछती है । हे गार्गि ! अतिप्रश्नकूं मतिकर । ऐसैं [कहते-भये] ॥ ॥ तदनंतर गार्गी वाचक्नवी [प्रश्नतैं] उपराम होतीभयी ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गि-
ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

र्गि ! अतिप्रश्नकूं मतिकर । अपने न्याय प्रकारवाले प्रश्नकूं अतिक्रमण करिके आगमकरि पूछने योग्य देवताकूं अनुमानकरि मतिपूछ यह अर्थ है ॥ औ पूछनेवाली जो तूं । तिस तेरा मूर्द्धा (शिर) विस्पष्टमतिपडे (मतिगिरे) ॥

---

७४९ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करते हुये वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥
७५० प्रतिषेधके अतिक्रमविषै दोषकूं कहैहैं ॥

देवता[७५१]का स्वप्रश्न आगम विषयक है । ता प्रश्नके विषयकूं अतिक्रांत हुया गार्गीका प्रश्न आनुमानिक होनेतें सो जिस देवताका प्रश्न है सो देवता अतिप्रश्न्या कहियेहै । नहीं जो अतिप्रश्न्या सो अनतिप्रश्न्या (स्वप्रश्नकी अविषयहीं) है । केवल आगमगम्य है यह अर्थ है । तिस अनतिप्रश्न्या देवताकूं तूं अतिशयकरि पूछती हैं । यातें हे गार्गि! जो तूं मरनेकूं नहीं इच्छती हैं तो अतिप्रश्नकूं मतिकर ॥ तदनंतर गार्गी वाचक्नवी प्रश्नतें उपराम होतीभयी ॥ १ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य षष्ठं गार्गि-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ६ ॥

---

७५१ मूर्द्धापातके प्रसंगकूं प्रकट करते हुये प्रतिषेधकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-षष्ठ-ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य सप्तम-मंतर्यामि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ७॥

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ।

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य सप्तम-मंतर्यामि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं उद्दालक आरुणि

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य सप्तममंतर्यामि-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

टीकाः—[७५२]अबे ब्रह्म लोकनके अत्यंत अंतर (अं-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाषादीपिकायास्तृतीयाध्याय गत-सप्तम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ७ ॥

७५२ पूर्व ब्राह्मणविषै सूत्रतैं अर्वाक्तन व्यापक कहा। अब सूत्रकूं औ ताके अंतर्गत अंतर्यामीकूं स्पष्ट करनेकूं उत्तर ब्राह्मण है। ऐसें संगतिकूं कहैहैं ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच ॥ मद्रेष्ववसाम । पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु । यज्ञमधीयानास्तस्यासीद्भार्य्या गन्धर्वगृहीता ।

पूंछताभया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसें [संबोधनकरिके] कहताभयाः—हम मद्रदेशनविषै पतंचल काप्यके ग्रहनविषै यज्ञकूं अध्ययनकरते हुये वासकरतेभये ॥ ताकी भार्या गंधर्वकरि गृहीत होतीभयी ॥ ता

तर्यामी) औ सूत्रात्मा वक्तव्य हैं।यातें तिस अर्थ
७५३
आरंभ है।औ सो आगम (आचार्योपदेश)करिहीं पूछनेकूं योग्य है । यातें इतिहासकरि आगमका उपन्यास करियेहैः—अनंतर याकूं नामतें उद्दालक ऐसा अरुणका अपत्य आरुणि पूछता भया । हे याज्ञवल्क्य ! ऐसें कहताभयाः— हम मद्र नामक देशनविषै पतंचल नामक

७५३ ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहिके । आख्यायिकाके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां आचार्यका उपदेश आगम शब्दका अर्थ है औ गार्गीकी मूर्द्धपातके भयतैं उपरतितैं अनंतर । अथ शब्दका अर्थ है ॥ सो कहताभया । ऐसैं प्रतीकका ग्रहण है ॥

तमपृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्रवीत् कबन्ध आथर्वण इति । सोऽब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाꣳश्च । वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येनायञ्च लोकः परश्च लोकः

(गंधर्व)कूं हम पूछतेभयेः—तूं कौंन हैं ? ऐसें ॥ ॥ सो कहताभयाः—मैं कबंध नामवाला अथर्वणका पुत्र हूं । ऐसें ॥ फेर सो (गंधर्व) पतंचल काप्यकूं औ याज्ञिकन (ताके शिष्यन)कूं कहताभयाः—हे काप्य ! तूं तिस सूत्रकूं जानताहै । जिसकरि यह

कपिगोत्रवाले काप्यके ग्रहोंविषै यज्ञशास्त्रके अध्ययनकूं करतेहुये वास करनेभये ॥ ताकी गंधर्वकरी गृहीत भार्या होतीभयी । ता (गंधर्व)कूं हम पूछतेभये "तूं कौंन हैं ऐसें" । सो कहताभयाः—नामतें कबंध ऐसा अथर्वणका अपत्य आथर्वण मैं हूं ऐसें । सो गंधर्व पतंचल काप्यकूं औ यज्ञशास्त्रके पढनेवाले ताके शिष्यनकूं कहताभयाः—हे का-

सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भव-
न्तीति ॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं
तद्भगवन्वेदेति॥सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं
याज्ञिकाꣳश्च । वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्त-

लोक औ परलोक औ सर्वभूत सम्यक् ग्र-
थित होवैहैं ? ऐसैं ॥ ॥ सो पतंचल काप्य
कहताभयाः—हे भगवन् ! मैं ताकूं नहीं जा-
नताहूं । ऐसैं ॥ ॥ फेर सो (गंधर्व) पतंचल
काप्यकूं औ याज्ञिकनकूं कहताभयाः—हे

प्य ! तूं तिस सूत्रकूं जानताहैं ॥ सो कौं-
नकिः—जिस सूत्रकरि यह लोक (यह जन्म)
औ परलोक (परप्राप्त होने योग्य जन्म) औ
ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत सर्वभूत सूत्रकरि मालाकी
न्यांई जिसकरि सम्यक् ग्रथित होवैहैं ।
तिस सूत्रकूं तूं क्या जानताहै ? ऐसैं पूंछ्याहु-
या सो काप्य कहताभयाः—हे भगवन् ! मैं
ताकूं नहीं जानताहूं कहिये हे भगवन् ! तिसैं[७५४]

---

७५४ तत् शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

र्यामिणं य इमञ्च लोकं परञ्च लोकꣳ सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयतीति॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तं भगवन्वेदेति॥ सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं या-

---

काप्य! तूं तिस अंतर्यामीकूं जानताहैं। जो इस लोककूं औ परलोककूं औ सर्व भूतनकूं जो अंतर हुया नियम करैहै? ऐसैं॥ ॥ सो पतंचल काप्य कहताभयाः—हे भगवन्! मैं तिसकूं नहीं जानताहूं। ऐसैं॥ ॥ सो (गंधर्व) पतंचल काप्यकूं औ याज्ञिक-

---

सूत्रकूं मैं नहीं जानताहूं। ऐसैं सम्यक् पूछता हुया कहताभया॥ ॥ सो गंधर्व फेर उपाध्यायकूं औ हमकूं कहताभयाः—हे काप्य! तूं तिस अंतर्यामीकूं जानताहैं। इहां अंतर्यामी ऐसैं विशेषणयुक्त करियेहै। जो इस लोककूं औ परलोककूं औ सर्व भूतनकूं जो भीतर हुया नियमन करैहै कहिये दारुयंत्रकीन्याईं भ्रमण करावैहै (अपने अपने उचि-

ज्ञिकांश्च। यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्त-
ञ्चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्स लोक-
वित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आ-

नकूं कहताभया:–हे काप्य गे तिस सूत्रकूं
औ तिस अंतर्यामीकूं ए ताहै। सो
ब्रह्मवित् है। सो लोक सो देववित्
है। सो वेदवित् है। स ...है। सो आ-

त व्यापारकूं करावैहै)? ऐसैं ॥ ॥ जो इस प्र-
कार उक्तभया। सो पतंचल काप्य कहता-
भया:–हे भगवन्! मैं तिसकूं नहीं जान-
ताहूं। ऐसैं सम्यक् पूजताहुया कहताभया ॥ ॥
सो गंधर्व फेर कहताभया:–[इहां सूत्र औ
तदंतर्गत अंतर्यामीके विज्ञानकी स्तुति करिये
है:–] हे काप्य! जो कोईबी पुरुष तिस सू-
त्रकूं जानै औ सूत्रके अंतर्गत तिसीहीं सूत्रके
नियंता तिस अंतर्यामीकूं जो इस उक्त[७५५] प्रका-

७५५ इति शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां “औ जिसकरि यह” इत्यादिरूप उक्त प्रकार है। औ सो सर्व लोकनकूं जानता है ऐसैं संबंध है ॥

त्मवित्स सर्वविदिति ॥ तेभ्योऽब्रवीत्त-
दहं वेद । तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमवि-
द्वाँ स्तञ्चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे

त्मवित् है । सो सर्ववित् है । ऐसैं हुये तिन
(हमारे) अर्थ कहताभया ॥ ता (सूत्र अरु-
अंतर्यामीके विज्ञान)कूं मैं (उद्दालक)
जानताहूं ॥ हे याज्ञवल्क्य ! तूं तिस सूत्रकूं
औ ता अंतर्यामीकूं जब अविद्वान् हुया
ब्राह्मणनकी गौवनकूं लेजाताहै तब तेरा

रकरि जानै । सोई ब्रह्मवित् (परमात्मवित्)
है । सो अंतर्यामीकरि नियमनकिये भूरादिक[७५६]
लोकनकूं जानताहै । औ सो अग्निआदिक
लोकपति देवनकूं जानताहै औ सो सर्व प्र-
माणभूत वेदनकूं जानताहै औ सो सूत्रकरि
धारणकिये अरु तदंतर्गत अंतर्यामीकरि नियम-
नकिये ब्रह्मादिक भूतनकूं जानताहै औ सो

७५६ विशेषकरि उक्ति पूर्वक तिन लोकनकूंहीं अनुवाद करैहैं ॥

मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति॥ वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तञ्चान्तर्यामिणमिति ॥ यो वा इदं कश्चिद्ब्रूयाद्वेद वेदेति। यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ॥ १ ॥

मूर्द्धा (शिर) विस्पष्ट पतन होवैगा। ऐसैं [उद्दालकनैं कहा॥तब याज्ञवल्क्य कहैहैंः—] हे गौतम (उद्दालक)! मैं तिस सूत्रकूं औ ता अंतर्यामीकूं जानताहूं। ऐसैं [कहतेभये। तब उद्दालक कहैहैंः—] जो कोईक (प्राकृतपुरुष) यह कहै जानताहूं जानताहूं ऐसैं। तूं जैसैं जानताहैं तैसैं कहिदे। ऐसैं [उद्दालक कहताभया] ॥ १ ॥

कर्तृत्व भोक्तृत्वकरि विशिष्ट तिसीहीं अंतर्यामीकरि नियमनकिये आत्माकूं जानता है औ[७५७] तिस प्रकारके सर्व जगत्कूं जानता है[७५८] ॥ ऐसैं स्तुत

---

७५७ "सो ब्रह्मवित्" इत्यादि वाक्यकरि उक्त अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥ इहां तथाभूत। याका सूत्रकरि विधृत औ अंतर्यामीकरि नियम्यमान। यह अर्थ है ॥

७५८ प्रस्तुत स्तुतिके प्रयोजनकूं कहैहैं ॥

हुये सूत्र अरु अंतर्यामीके विज्ञानविषै प्रलुब्ध हुया काप्य अभिमुखीभूत होताभया औ हम [अभिमुखीभूत होतेभये] ॥ तिन अभिमुखीभूतभये हमारेतांई गंधर्व सूत्रकूं औ अंतर्यामीकूं कहताभया ॥ मैं (उद्दालक) गंधर्वतें लब्ध आगम (प्राप्तउपदेश) वाला हुया तिस सूत्र अरु अंतर्यामीके विज्ञानकूं जानताहूं ॥ हे याज्ञवल्क्य ![७५९] तूं तिस सूत्रकूं औ तिस अंतर्यामीकूं नहीं जानताहैं। ऐसें अब्रह्मवित् हुया जब ब्रह्मवेत्ताओंकी स्वभूत गौवनकूं तूं अन्यायकरि लेजाताहैं । तातें मेरे शापकरि दग्धभये तुज याज्ञवल्क्यका मूर्द्धा (शिर) विस्पष्ट पतन होवैगा? ऐसें उक्त याज्ञवल्क्य कहताभयाः–हे गौतम ! [ऐसें गोत्रतें कहा है] मैं तिस सूत्रकूं जानताहूं जाकूं गंधर्व तेरेतांई कहताभया । औ जिस अंतर्यामीकूं तुम गंधर्व-

---

७५९ ऐसें तुजकूं सूत्रका अज्ञान होहू । तिसकरि मुज (याज्ञवल्क्य)कूं क्या आया? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां तिसकरि क्या है । इस ठिकाने ताका ऐसें अध्याहार है॥

स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायञ्च लोकः परश्च-

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः— हे गौतम! वायुहीं सो सूत्र है। हे गौतम! वायुरूप सूत्रकरि यहलोक औ परलोक औ

तैं जानतेभये तिस अंतर्यामीकूं मैं जानताहूं ॥ इस प्रकारसें कहेहुये। गौतम (उद्दालक) कहताभयाः—जो कोईबी प्राकृत पुरुष जो तुजकरि कहा याकूं कहै ॥ कैसें किः—मैं जानताहूं जानताहूं। ऐसें आपकूं श्लाघा करताहुया। ताके तिस गर्जितकरि क्याभया। कार्यकरि दिखायदे[७६०]। जैसें जानताहैं तैसें कहिदे। ऐसें [कहताभया] ॥ १ ॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहते भयेः—[७६१]ब्रह्मलोक जिसविषै ओत औ प्रोत हैं। वर्त्तमान

७६० कार्यकरि दिखायदे। ऐसें उक्त अर्थकूं विवरणकरैहैं॥

७६१ याज्ञवल्क्यकी उक्तिके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अभीष्ट आगमवेद्य है। ऐसें अध्याहार करिके आद्य इति शब्दकी योजना है ॥ प्रश्नांतर कहिये सूत्रविषयक गौतमवाक्य ॥

लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति। तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहु-र्व्यस्त्रꣳसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि

सर्वभूत सम्यक् (ग्रथित) होवैहैं । तातैं हे गौतम! मृत पुरुषकूं कहतेहैंः—याके अंग विस्त्रस्त हैं। यातैं हे गौतम! वायुरूपहीं

कालविषै जैसैं पृथिवी जलविषै है। सो सूत्र आगमगम्य कहनेकूं योग्य है। यातैं तिस अर्थ प्रश्न उत्तर उठाया है॥ यातैं ताके निर्णय अर्थ कहैहैंः—हे गौतम (उद्दालक)। वायु सो सूत्र है [७६२] अन्य नहीं। वायु यह सूक्ष्म [७६३] आकाशवत्। पृथिवी आदिकनका आश्रय है। जिसका [७६४] स्व-रूप सप्तदशविध लिंग प्राणीनके [७६५] कर्म अरु वा-

७६२ वैशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

७६३ सूक्ष्मताविषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

७६४ वायुकूंहीं विशेषण देते हैं ॥ इहा पंच भूत । दश बाह्यइंद्रियां। पंच वृत्तिवाला प्राण। चतुर्विध अंतःकरण। ऐसैं सप्तदशविधपना है ॥

७६५ उत्तर सृष्टिके हेतु। प्राणीनकरि संपादित कर्मनका औ वासनाओंका आश्रय होनेतैं अपेक्षितहीं लिंग है। ऐसैं कहैहैं ॥

गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्ती-
त्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूही-
ति ॥ २ ॥

सूत्रकरि सम्यक् ग्रथित होवैहैं । ऐसैं [नि-
श्चय करै हैं] ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य । यह
ऐसैंहीं है ॥ [अब] अंतर्यामीकूं कथन कर ?
ऐसैं [उद्दालक कहताभया] ॥ २ ॥

सनाका समवायी है ॥ जो तिसकी समष्टि[766] व्य-
ष्टि स्वरूप है । समुद्रकी लहरीनकीन्यांई[767] जिस-
के बाह्यभेद सप्त सप्त (एकोनपंचाशत्) मरु-
द्गण हैं । सो यह वायव्यतत्व सूत्र ऐसैं कहिये
है ॥ हे गौतम ! [768]वायुरूप सूत्रकरि यह लो-
क औ परलोक औ सर्वभूत । सम्यक् ग्रथि-
त होवैहैं यह प्रसिद्ध है औ लोकविषै प्रसिद्धि

---

७६६ तिसीहीं सामान्य विशेष स्वरूपकी बहुरूपताकूं कहैहैं ॥

७६७ तिसीहींकी लोकपरिक्षित प्रसिद्धिकूं कहैहैं ॥

७६८ ता (वायु)की सूत्रताकूं साधते हैं ॥ इहां प्रसिद्ध यह सूत्रके वेत्ताओंकूं है । यह शेष है ॥

है ॥ [७६९] कैसैं किः—जातैं वायु सूत्र है वायुकरि धारणक्रिया सर्व है । तातैं हे गौतम! पुरुषकूं प्रेत कहतेहैं शिथिलभये इस पुरुषके अंग [वे वायुरूप सूत्रकरि ग्रथित हैं]। [७७०] सूत्र (तंतु) के अपगम हुये तिसविषै प्रोत मणिआदिकनका पतन देख्या है। ऐसैं वायु सूत्र है तिसविषै मणिनकीन्यांई प्रोत जब याके अंग होवैहैं । तातैं यह युक्त है वायुके अपगम हुये अंगनका शिथिलपना होवैहै । [७७१] यातैं हे गौतम ! वायुरूप सूत्रकरिहीं ग्रथित होवैहैं ऐसैं सूचन करैहैं ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! ऐसैंहीं यह सूत्र सम्यक् कहा । अबतो ताके अंतर्गत तिसीहीं सूत्रके नियंता अंतर्यामीकूं कहो ? ऐसैं उक्त हुये याज्ञवल्क्य । कहैहैं ॥ २ ॥

---

७६९ लौकिकी प्रसिद्धिकूंहीं प्रश्नपूर्वक अनंतर श्रुतिके आश्रयकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७० उक्त दृष्टांतकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

७७१ वायुकी सूत्ररूपताके सिद्ध भये फलितकूं कहैहैं ॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद । यस्य पृथिवी-

अर्थः–[अब याज्ञवल्क्य कहैहैं:–] जो पृथिवीविषै स्थित हुया पृथिवीतैं अंतर है । जाकूं पृथिवी नहीं जानती है । जाका पृ-

टीका:–जो पृथिवीविषै स्थित हुया होवैहै सो अंतर्यामी है ॥ ॥ सर्व पृथिवीविषै स्थित होवैहै । यातैं सर्वत्र प्रसंग मति होहू । यातैं विशेषण देतेहैं पृथिवीके अंतर (भीतर) है ॥ ॥ तहां यह पृथिवी देवताहीं अंतर्यामी होवैहै ? यातैं कहैहैं:–जिस अंतर्यामीकूं पृथिवी देवताबी मेरेविषै अन्य कोईबी वर्त्तताहै ऐसैं नहीं जानतीहै ॥ औ जाका[७७२] पृथिवीहीं शरीर है अन्य नहीं । कहिये[७७३] पृथिवी देवताका जो शरीर है सोई जाका शरीर है ॥ इहां शरीरका ग्रहण

---

७७२ नियंता ईश्वरके लौकिक नियंताकी न्यांई कार्यकरणवान्पनैकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

७७३ ननु पृथिवीकूं शरीरीपनाहीं है । शरीरपना तो नहीं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां वा पृथिवीका जो करण है । सोई ताका करण है ऐसैं योजना है ॥

शरीरं। यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ३ ॥

थिवी शरीर है। जो पृथिवीकूं अंतर हुया नियमन करै है। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ३ ॥

उपलक्षण अर्थ है ॥ औ पृथिवीका जो करण है सोई ताका करण है ॥ जातैं स्वकर्मका[७७४] किया कार्य अरु करण पृथिवीदेवताकाबी है[७७५] । सो याका है। अंतर्यामीकूं स्वकर्मके[७७६] अभावतैं नित्य-मुक्त होनेतैं पर[७७७] अर्थ कर्त्तव्यताके स्वभावतैं प-रका जो कार्य औ करण है। सोई याका है। स्वतः नहीं। सो कहैहैं:—जाका पृथिवी शरीर है ऐसैं। देवताके[७७८] कार्यकरणकी ईश्वरसाक्षी मात्रके सान्निध्यकरि जातैं नियमकरि प्रवृत्ति

---

७७४ पृथिवीकूं शरीर अरु इंद्रियवान्पना कैसैं है ? सो कहैहैं ॥

७७५ अंतर्यामीकूंबी तैसैं क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहैहैं ॥

७७६ अंतर्यामीका सोई कार्य औ करण है अन्य नहीं। इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

७७७ ताहीकूं अन्य हेतुकरि स्पष्ट करैहैं ॥

७७८ "जो पृथिवीकूं" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्याऽऽपः शरीरं। योऽपोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥४॥

अर्थः—जो जलविषै स्थित हुया जलतैं अंतर है ॥ जाकूं जल नहीं जानतेहैं। जाका जल शरीरहै। जो जलकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ४ ॥

निवृत्ति होवैहैं।[७७९] जो ऐसा नारायण नामवाला ईश्वर पृथिवी देवताकूं भीतर स्थितहुया स्वव्यापारविषै नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा है [इहां तेरा शब्द मेरा औ सर्व भूतनका इस उपलक्षण अर्थ है] अंतर्यामी है। जो तैनैं पूछ्या था अमृत (सर्व संसार धर्मतैं वर्जित। सो) है। [७८०]अन्य अर्थ समान है ॥ ३ ॥

टीकाः—जो जलविषै स्थितहुया। अग्नि-

७७९ तहां वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—जाका पृथिवी देवताके कार्य अरु करणकरिहीं कार्यकरणवान्पना ईदृशपना है ॥

७८० पृथिवी पर्यायविषै दिखाये न्यायकूं अन्य पर्यायविषै

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद। यस्याग्निः शरीरं। योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥५॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद। यस्यान्तरिक्षꣳ शा-

अर्थः—जो अग्निविषै स्थित हुया अग्नितैं अंतर है। जाकूं अग्नि नहीं जानताहै। जाका अग्नि शरीर है। जो अग्निकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है॥ ५॥

अर्थः—जो अंतरिक्षविषै स्थित हुया अंतरिक्षतैं अंतर है। जाकूं अंतरिक्ष नहीं जानताहै। जाका अंतरिक्ष शरीर है। जो

विषै। अंतरिक्षविषै। वायुविषै। स्वर्गविषै। आदित्यविषै। दिशाओंविषै। चंद्रतारकविषै। आकाशविषै औ आवरण स्वरूप बाह्य त-

अतिदेश करैहैं ॥ इहां सर्वत्र प्राणादिकविषै स्थितहुया अंतर्यामी तेरा आत्मा है। ऐसैं संबंध है ॥

रीरं । योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ६ ॥

योवायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद । यस्य वायुः शरीरं । यो वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ७ ॥

यो दिवि तिष्ठन्दिवोऽन्तरो यं द्यौ-

अंतरिक्षकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ६ ॥

अर्थः—जो वायुविषै स्थित हुया वायुतें अंतर है । जाकूं वायु नहीं जानताहै । जाका वायु शरीर है । जो वायुकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ७ ॥

अर्थः—जो स्वर्गविषै स्थित हुया स्वर्गतें अंतर है । जाकूं स्वर्ग नहीं जानता

म (अंधकार)विषै तिसतें विपरीत प्रकाशके सामान्यरूप तेजविषै ॥ इस प्रकारसें अधि-

र्न वेद । यस्य द्यौः शरीरं । यो दिवमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्य्याम्यमृतः ॥ ८ ॥

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद । यस्याऽऽदित्यः शरीरं । य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्य्याम्यमृतः ॥ ९ ॥

है । जाका स्वर्ग शरीर है । जो स्वर्गकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ८ ॥

अर्थः–जो आदित्यविषै स्थित हुया आदित्यतैं अंतर है । जाकूं आदित्य नहीं जानताहै । जाका आदित्य शरीर है । जो आदित्यकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ९ ॥

दैवतरूप अंतर्यामी विषयक दर्शन देवताओंविषै कहा है ॥ अनंतर अधिभूत हैः–ब्रह्मादि स्तंबपर्यंत भूतनविषै अंतर्यामीका दर्शन अ-

यो दिक्षु तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं। यो दिशोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १० ॥

यश्चन्द्रतारके तिष्ठꣳश्चन्द्रतारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद । यस्य चन्द्रतारकꣳशरीरं। यश्चन्द्रतारकमन्तरो

अर्थः—जो दिशाओंविषै स्थित हुया दिशाओंतैं अंतर है। जाकूं दिशा नहीं जानतीयां हैं। जाका दिशा शरीर है। जो दिशाओंकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥१०॥

अर्थः—जो चंद्रतारकविषै स्थित हुया चंद्रतारकतैं अंतर है। जाकूं चंद्रतारक नहीं जानताहै । जाका चंद्रतारक शरीर

धिभूत है ॥ अनंतर अध्यात्म है ॥ जो प्राण (प्राणवायुसहित घ्राण)विषै। जो वाक्‌विषै। चक्षुविषै। श्रोत्रविषै। मनविषै। त्वचाविषै।

यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ११ ॥

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद । यस्याऽऽकाशः शरीरं । य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १२ ॥

है । जो चंद्रतारककूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ११ ॥

अर्थः—जो आकाशविषै स्थित हुया आकाशतैं अंतर है । जाकूं आकाश नहीं जानता है । जाका आकाश शरीर है । जो आकाशकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है॥१२॥

विज्ञाति (बुद्धि)विषै रेत (प्रजा उत्पत्तिके साधन)विषै ॥ ॥ ⁷⁸¹नंनु फेर किस कारणतैं पृ-

---

७८१ वाक्यांतरकूं प्रश्नपूर्वक व्याख्यान करैहैं ॥ इहांः—जैसैं मनविषै है । तैसैं बुद्धिविषैबी सन्निधानतैं ज्ञातृता है । यह अर्थ है औ "तहां" ऐसैं पूर्व ग्रंथरचनाकी उक्ति है ॥

यस्तमसि तिष्ठꣳस्तमसोऽन्तरो यं तमो न वेद । यस्य तमः शरीरं । यस्तमोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १३ ॥

यस्तेजसि तिष्ठꣳस्तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद । यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृत इत्यधिदैवतमथाधिभूतम् ॥१४॥

अर्थः—जो तमविषै स्थित हुया तमतैं अंतर है। जाकूं तम नहीं जानता है ॥ जाका तम शरीर है । जो तमकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १३ ॥

अर्थः—जो तेजविषै स्थित हुया तेजतैं अंतर है । जाकूं तेज नहीं जानता है । जाका तेज शरीर है । जो तेजकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी

थिवीआदिक देवता महाभागवाली हुयी म-

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं । यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृत इत्याधिभूतमथाध्यात्मम् ॥ १५ ॥

अमृतरूप है ॥ ॥ यह अधिदैवत है । अनंतर अधिभूत [कहिये] है ॥ १४ ॥

अर्थः—जो सर्व भूतनविषै स्थित हुया सर्व भूतनतैं अंतर है । जाकूं सर्वभूत नहीं जानते हैं । जाका सर्वभूत शरीर है । जो सर्वभूतनकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ ॥ यह अधिभूत है । अनंतर अध्यात्म [कहिये] है ॥ १५ ॥

नुष्यआदिककीन्यांई आपविषै स्थित आपके नियंता अंतर्यामीकूं नहीं जानैहैं ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं:—अदृष्ट (नदृष्ट) है कहिये

यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद। यस्य प्राणः शरीरं। यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १६ ॥

यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाङ्न वेद। यस्य वाक् शरीरं। यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ १७ ॥

अर्थः—जो प्राणविषै स्थित हुया प्राणतैं अंतर है। जाकूं प्राण नहीं जानतेहैं। जाका प्राण शरीर है ; जो प्राणकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १६ ॥

अर्थः—जो वाक्विषै स्थित हुया वाक्तैं अंतर है। जाकूं वाक् नहीं जानतीहै। जाका वाक् शरीर है। जो वाक्कूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १७ ॥

किसीकेबी चक्षुके दर्शनका विषयीभूत नहीं है।

यश्चक्षुषि तिष्ठꣳश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद । यस्य चक्षुः शरीरं । यश्च-क्षुरन्तरो यमꣳ त्येष त आत्माऽन्तर्या-म्यमृतः ॥ १८ ॥

यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यꣳ श्रोत्रं न वेद। यस्य श्रोत्रꣳ शरीरं । यः

अर्थः—जो चक्षुविषै स्थित हुया चक्षुतैं अंतर है । जाकूं चक्षु नहीं जानता है । जाका चक्षु शरीर है। जो चक्षुकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १८ ॥

अर्थः—जो श्रोत्रविषै स्थित हुया श्रो-त्रतैं अंतर है । जाकूं श्रोत्र नहीं जानता है । जाका श्रोत्र शरीर है । जो श्रोत्रकूं

आपतो चक्षुविषै सन्निहित होनेतैं दृशिस्वरूप है । यातैं द्रष्टा है । तैसैं अश्रुत है कहिये कि-सीकेबी श्रोत्रकी गोचरताकूं अप्राप्त है । आपतो अलुप्त श्रवणशक्तिवाला हुया सर्व श्रोत्रनविषै

श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्त-
र्याम्यमृतः ॥ १९ ॥

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं
मनो न वेद । यस्य मनः शरीरं । यो
मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्त-
र्याम्यमृतः ॥ २० ॥

अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा
अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ १९ ॥

अर्थः—जो मनविषे स्थित हुया मनतैं
अंतर है । जाकूं मन नहीं जानताहै ।
जाका मन शरीर है । जो मनकूं अंतर हुया
नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी
अमृतरूप है ॥ २० ॥

सन्निहित होनेतैं श्रोता है । तैसैं अमत है क-
हिये मनके संकल्पके विषयकूं अप्राप्त है । जातैं
दृष्टश्रुतविषैहीं सर्वजन संकल्पकूं करैहैं । अदृष्ट
होनेतैं अरु अश्रुत होनेतैंहीं अमत है । औ अ-
लुप्त मननशक्तिवाला होनेतैं अरु सर्व मनोंवि-

यस्त्वचि तिष्ठꣳस्त्वचोऽन्तरो यं त्वङ्न वेद । यस्य त्वक् शरीरं । यस्त्वचमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ २१ ॥

अर्थः—जो त्वचाविषै स्थित हुया त्वचातैं अंतर है । जाकूं त्वचा नहीं जानती है । जाका त्वचा शरीर है । जो त्वचाकूं अंतर हुया नियमन करैहै । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ २१ ॥

षै संनिहित होनेतैं मंता है । तैसैं अविज्ञातहै कहिये रूपादिककीन्यांई वा सुखादिककीन्यांई निश्चयके गोचरकूं अप्राप्त है । आपतो अलुप्त विज्ञानशक्तिवाला होनेतैं अरु संनिहित होनेतैं विज्ञाता है ॥ ॥ तहां (पूर्वग्रंथकी रचनाविषै) जाकूं पृथिवी नहीं जानतीहै औ जाकूं सर्वभूत नहीं जानतेहैं । यातैं (इसकारणतैं) अन्य नियमन करने योग्य विज्ञाता होवैंगे । अन्य नि-

योविज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद। यस्य विज्ञानꣳ शरीरं। यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ २२ ॥

अर्थः—जो विज्ञान (बुद्धि) विषै स्थित हुया विज्ञानतैं अंतर है। जाकूं विज्ञान नहीं जानताहै। जाका विज्ञान शरीर है। जो विज्ञानकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है ॥ २२ ॥

यंता अंतर्यामी है। ऐसैं प्राप्तभया। तिसतैं अन्यभावकी आशंकाकी निवृत्ति अर्थ कहियेहैः—

[७८२] ऐसैं अंतर्यामीतैं अन्य द्रष्टा नहीं है। तैसैं इसतैं अन्य श्रोता नहीं है। इसतैं अन्य मंता नहीं है। इसतैं अन्य विज्ञाता नहीं है॥

७८२ अन्वयकूं लखावनेकूं। यातैं अन्य। ऐसैं उक्त पदार्थनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अन्य द्रष्टा नहीं है। ऐसैं संबंध है ॥

योरेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यꣳरेतो न वेद। यस्य रेतः शरीरं। यो रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ता-

अर्थः—जो रेतविषै स्थितहुया रेततैं अंतर है। जाकूं रेत नहीं जानता है। जाका रेत शरीर है। जो रेतकूं अंतर हुया नियमन करैहै। यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृतरूप है॥ अदृष्ट हुया द्रष्टा है। अश्रुत हुया श्रोता है। अमत हुया मंता है। अविज्ञात

[७८३]जीतैं पर (अन्य) द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता नहीं है। जो अदृष्ट हुया द्रष्टा है। अश्रुत हुया श्रोता है। अमत हुया मंता है। अविज्ञात हुया विज्ञाता है। औ अमृत कहिये सर्व संसारधर्मतैं वर्जित सर्व संसारीनके कर्मफलके विभागका

७८३ यह तेरा आत्मा है। इत्यादि वाक्यके अर्थकूं कहैहैं॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां तृतीयाध्यायगत-सप्तम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

ऽविज्ञातो विज्ञाता । नान्योऽतोऽस्ति द्र-ष्टा । नान्योऽतोऽस्ति श्रोता । नान्योऽतो-ऽस्ति मंता । नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तं । त-तो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य सप्तममंतर्यामि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

हुया विज्ञाता है ॥ इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं है । इसतैं अन्य श्रोता नहीं है । इसतैं अ-न्य मंता नहीं है । इसतैं अन्य विज्ञाता नहीं है ॥ यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अ-मृतरूप है ॥ इसतैं अन्य आर्त्त है ॥ ॥ तदनंतर उद्दालक आरुणि उपराम होता-भया ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभा-षादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य सप्तम-मंतर्यामि-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

कर्त्ता है । यह तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृत

है । इस ईश्वररूप आत्मातैं अन्य वस्तु आर्त्त (विनाशी) है ॥ तदनंतर उद्दालक आरुणि उपराम होताभया ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्य सप्तममंतर्यामि-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षरब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

अथ ह वाचक्नव्युवाच ॥ ब्राह्मणा भ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षरब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अनंतर वाचक्नवी (गार्गी) कहतीभयीः—हे भगवाले ब्राह्मणो ! अब मैं

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षर-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

टीकाः—यातेंपरे[७८४] अशनाया आदिकतें विनि-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-अष्टम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ८ ॥

७८४ पूर्व ब्राह्मणविषै सूत्र औ अंतर्यामी प्रश्न उत्तरकरि निर्धार किये । अब उत्तर ब्राह्मणके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां सोपाधिक वस्तुके निर्धारणके अनंतर अथ शब्दका अर्थ है ॥

गवन्ते हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि । तौ चेन्मे वक्ष्यति । न वै जातु युष्मा-कमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ॥ पृच्छ गा-र्गीति ॥ १ ॥

याकूं दो प्रश्न पूछती हूं । तिनकूं जो मेरे-ताईं कहैगा तो कदाचित् तुह्मारे मध्य को-ईबी याकूं ब्रह्मवादके प्रति जीतनेवाला न-हींहै । ऐसैं [उक्तब्राह्मण आज्ञा देतेभयेः—] हे गार्गि ! पूंछ । ऐसैं ॥ १ ॥

मुक्त निरुपाधिक साक्षात् अपरोक्ष सर्वांतर ब्र-ह्म कहनेकूं योग्य है । यातैं आरंभ हैः—अनंतर गार्गी कहतेभयी ॥ [७८५] पूर्व याज्ञवल्क्यकरि नि-षिद्ध अरु मस्तक पतनके भयकरि उपरत हुयी फेर पूंछनेवास्ते ब्राह्मणनकी आज्ञाकूं प्रार्थना क-रैहैः—हे ब्राह्मणो ! भगवन् (पूजावाले) मेरे वचनकूं सुनो । अब मैं इस याज्ञवल्क्यके प्रति

७८५ ननु जातैं भयतैं गार्गी पूर्व उपरत भयी । ताकूं तिस अवस्थावाली होनेतैं फेर सो पूछनेकूं कैसैं प्रवर्त्त होवैहै ? तहां कहैहैं ॥

सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य । यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं

अर्थः—सो निश्चयकरि कहतीभयीः—हे याज्ञवल्क्य ! मैं तुजकूं [दो प्रश्न पूछती हूं] जैसें काश्य वा वैदेह उग्रपुत्र (शूरवी-

फेर दो प्रश्न पूंछूंगी । [786]जब तुह्मारी अनुमति है ॥ तिन दो प्रश्नोंकूं जब मेरेतांई किसीप्रकारसैंबी कथन करैगा। तब निश्चयकरि [787]कदाचित्‌बी तुह्मारेमध्य कोईबी इस याज्ञवल्क्यकूं ब्रह्मकथन (ब्रह्मवाद)केप्रति जीतनेवाला नहीं होवैगा ॥ ऐसें उक्त ब्राह्मण। अनुज्ञाकूं देतेभयेः—हे गार्गी ! पूंछ ॥ ऐसैं प्राप्त अनुज्ञावाली हुयी याज्ञवल्क्यके प्रति ॥ १ ॥

टीकाः—सो कहतीभयीः—मैं तेरे प्रति दो प्रश्नोंकूं कहूंगी । ऐसैं अनुषंग करियेहै ॥ ॥

७८६ हंत । याके अर्थकूं कहैहैं ॥

७८७ नहीं कदाचित् । इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करै हैं ॥ इहां आश्चर्य दिखावनेकूं कोईबी ऐसैं पुनरुक्ति संधान करियेहै । सो कहियेहै ऐसैं ॥

धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपतिष्ठेदेवमेवाहं त्वां द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति ॥ पृच्छ गार्गीति ॥ २ ॥

रका वंशरूप राजा)। उज्य धनुषकूं अधिज्यकरिके। शत्रुनकूं अतिव्याधिकर बाणवाले दो शरोंकूं हस्तविषै करिके समीप स्थित होवै॥ ऐसैं ही मैं तेरेताईं दो प्रश्नोंकरि समीप स्थितभई हूं। तिन दोनूं (प्रश्नों)कूं मेरेताईं कथन कर। ऐसें [कहतीभई। तब याज्ञवल्क्य कहैहैं:—] हे गार्गि! पूछ। ऐसे॥ २॥

कौंनसे वे दो प्रश्न हैं? इस जिज्ञासाके हुये तिन दोनूं प्रश्नोंकी दुरुत्तरता (दुःखसैं उत्तर देना) जनावनेकूं प्रथम दृष्टांतपूर्वक कहैहैः—हे याज्ञवल्क्य! जैसैं लोकविषै काशीमैं होनेवाला काश्य [प्रसिद्ध शौर्य काश्यविषै होवैहै] वा वैदेह (विदेहोंका राजा) उग्रपुत्र। अर्थ यह

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य ! दि-

अर्थः—सो कहतीभई:—हे याज्ञवल्क्य !

जो शूर वंशवाला । अवतारित दोरवाले ध-नुषकूं फेर अधिज्य (आरोपित दोरवाला) करिके । दो बाणवाले [बाण शब्दकरि शरके अग्रविषै जो वंशका टुकडा संधान करिये है । तिसविनाबी शर होवैहै । यातैं बाणवाले यह विशेषण देती है ॥ तिन दो बाणवाले] शरोंकूं [तिनहींका विशेषण शत्रुकूं अतिशयकरि पी-डाकर] हस्तविषै करिके जो समीपतैं स्थित होवै अरु आपकूं दिखावै ॥ ऐसैंहीं मैं तेरे-तांई शर स्थानीय दो प्रश्नोंकरि तेरे समीप स्थितभयीहूं । तूं जो ब्रह्मवेत्ता होवैं तो तिन दो प्रश्नोंकूं मेरेतांई कथनकर ? इतर (याज्ञ-वल्क्य) कहैहैं:—हे गार्गि ? पूंछ ऐसैं ॥ २ ॥

टीकाः—सो कहतीभयी:—हे याज्ञवल्क्य !

७८८ शेष दो प्रश्नोंकी अवश्य प्रत्युत्तर देनेकीं योग्यता-विषै ब्रह्मनिष्ठताका अंगीकार हेतु है । ऐसैं कहैहैं ॥

वो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा-
पृथिवी इमे यद्भूतञ्च भवच्च भविष्यच्चे-
त्याचक्षते। कस्मिंᳲ स्तदोतं च प्रोतं
चेति ॥ ३ ॥

जो स्वर्गतैं ऊपर है। जो पृथिवीतैं नीचे है।
जो [ब्रह्मांडके] मध्य ये स्वर्ग अरु पृथिवी
हैं औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ भवि-
ष्यत् है। ऐसैं [आगमतैं] कहते हैं॥ सो
(सूत्र) किसविषै ओत है औ प्रोत है?
ऐसैं ॥ ३ ॥

जो स्वर्ग (अंडकपाल)तैं ऊपर औ जो पृ-
थिवी (अधः अंडकपाल)के नीचे औ जो म-
ध्य स्वर्ग अरु पृथिवी है कहिये दोनूं अंडकपा-
लनके मध्य है औ ये दो स्वर्ग अरु पृथिवी
हैं। औ जो भूत (अतीत) है औ भवत्
(स्वव्यापारविषै स्थित वर्तमान) है औ भवि-
ष्यत् (वर्त्तमानकालतैं उर्द्धकालभाविलिंगग-

स होवाच ॥ यदूर्द्ध्वं गार्गि ! दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—हे गार्गि ! जो स्वर्गतैं ऊपर है। जो पृथिवीतैं नीचे है। जो मध्यमें ये स्वर्ग अरु पृथिवी हैं

म्य) है। जो सर्व यह है ऐसें शास्त्रतैं कथन करैहैं । सो[७८९] सर्व द्वैतजात जिसविषे एकरूप होवैहै यह अर्थ है। सो पूर्व उक्त सूत्रसंज्ञक । जलविषे पृथिवी धातुकीन्यांई किसविषै ओत है औ प्रात है ॥ ३ ॥

टीकाः—सो[७९०] इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैंः—हे गार्गि ? जो तैनें कहा "अंडकपालतैं ऊपर" इत्यादि। सो सर्व। जाकूं सूत्र कहतेहैं । सो सूत्र आकाशविषै ओत है औ प्रोत है॥ क-

---

७८९ सूत्रके आधारके पूछनेकूं योग्य हुये । सर्व जगत् क्यूं अनुवाद करीये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां पूर्वोक्त सर्व जगदात्मक है ॥ यह अर्थ है ॥

७९० जैसें प्रश्न है। तैसें ताकूं अनुवाद करिके प्रत्युत्तरकूं ग्रहण करैहैं ॥

इमे यद्भूतञ्च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतञ्च प्रोतञ्चेति ॥ ४ ॥

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य !

औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ भविष्यत् है। ऐसें कहते हैं॥[ऐसा जो सूत्र]सो आकाशविषै (अव्याकृताकाशविषै) ओत है औ प्रोत है । ऐसें ॥ ४ ॥

अर्थः—सो (गार्गी) कहतीभईः—हे या-

हिये जो यह[७९१] व्याकृतरूप सूत्रात्मक जगत् है। सो जलविषै पृथिवी धातुकीन्यांई अव्याकृताकाशविषै तीन कालविषैबी वर्त्तता है। उत्पत्ति[७९२]विषै स्थितिविषै औ लयविषै ॥ ४ ॥

टीकाः—फेर सो कहती भयीः—तेरेअर्थ नमस्कार होहू। इत्यादि प्रश्नकी दुर्वचनता-

---

७९१ ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां जो जगत् व्याकृत सूत्रात्मक है। यह अव्याकृत आकाशविषै वर्तता है। ऐसैं संबंध है ॥

७९२ तीनबी कालविषै ऐसैं जो कहा। ताकूं स्पष्ट करैहैं॥ इहां वक्ष्यमाण वाक्य अन्य ऐसैं कहैहैं ॥

यो म एतं व्यवोचोऽपरस्मै धारयस्वेति ॥ पृच्छ गार्गीति ॥ ५ ॥

ज्ञवल्क्य! तेरे अर्थ नमस्कार होहू। जो मेरे इस [प्रश्न]कूं विशेषकरि कहताभया है ॥ [अब] अपर (द्वितीय प्रश्न)के अर्थ धारणकर (आपकूं दृढकर)॥ ॥हे गार्गि! पूंछ। ऐसैं [याज्ञवल्क्य कहतेभये] ॥ ५ ॥

प्रदर्शन अर्थ है। जो तूं मेरे इस प्रश्नकूं विशेषकरि कहताभया है ॥ इसकी दुर्वचनता (दुःखसैं कहनेकी योग्यता)विषै कारणः—सूत्रहीं प्रथम अगम्य (इतरोंकरि दुर्वाच्य) है। तब सो जिसविषै ओत है औ प्रोत है। सो दुर्वाच्य होवै यामैं क्या कहना! यातैं तेरे अर्थ नमस्कार होहू। अपर (द्वितीय प्रश्न)के अर्थ धारणकर। अर्थ यह जो आपकूं दृढकर ॥ ॥ हे गार्गि! पूंछ। ऐसैं इतर (याज्ञवल्क्य) कहते भये। अन्य (वक्ष्यमाणवाक्य) व्याख्यान किया है ॥ ५ ॥

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य ! दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा पृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते। कस्मिꣳ स्तदोतश्च प्रोतश्चेति ॥ ६ ॥

अर्थः—सो (गार्गी) कहतीभईः—हे याज्ञवल्क्य! जो स्वर्गतें ऊपर है। जो पृथिवीतें नीचे है। जो मध्यमें ये स्वर्ग अरु पृथिवी है औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ भविष्यत् है। ऐसें कहते हैं॥ सो किसविषे ओत है औ प्रोत है। ऐसें ॥ ६ ॥

टीकाः—सो[७९३] कहती भयीः—हे याज्ञवल्क्य! जो ऊपर है। इत्यादि प्रश्न है ॥ औ प्रतिवचन उक्तही[७९४] अर्थके अवधारण अर्थ फेर कहियेहै। कोईबी अपूर्व अर्थांतर नहीं कहियेहै ॥ गार्गी[७९५]नें जैसें कहा। सो सर्व प्रतिउच्चार करिके। ति-

७९३ तिसीहीं प्रतिवचनके रूपकूं अनुवाद करैहै ॥
७९४ पुनरुक्तिकी अकिंचित्करताकूं व्यावर्त्तन करैहै ॥
७९५ प्रतिवचनके अनुवादके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

स होवाच यदूर्द्ध्वं गार्गि ! दिवो यद-वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावा पृथिवी इमे यद्भूतश्च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति ॥ क-स्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ७॥

अर्थः—सो कहताभया:—हे गार्गि ! जो स्वर्गतैं ऊपर है जो पृथिवीतैं नीचे है । जो मध्यमैं ये स्वर्ग अरु पृथिवी हैं औ जो भूत है औ वर्त्तमान है औ भविष्यत् है । ऐसैं कहते हैं ॥ सो (सूत्र) आकाशविषैहीं ओत है औ प्रोत है । ऐसैं ॥ ॥ [गार्गी कहैहै:—] किसविषै निश्चयकरि आकाश (अव्याकृ-ताकाश) ओत है औ प्रोत है ? ऐसैं ॥ ७ ॥

सीहीं पूर्वोक्तअर्थकूं "[७९६]आकाशविषैहीं है" ऐसैं याज्ञवल्क्य अवधारण करतेभये ॥ ॥ गार्गी कहैहै:—किसविषै निश्चयकरि आकाश ओत है औ प्रोत है ऐसैं ॥ आकाशहीं प्रथम तीन

७९६ प्रश्नके अभिप्रायकूं प्रकट करैहैं ॥

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ! ब्राह्मणा

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—हे गार्गि ! तिस इसकूं ब्राह्मण अक्षर कहते हैं ॥

कालतैं अतीत होनेतैं दुर्वाच्य है। तिसतैंबी कष्टतर अक्षर है। जिसविषे आकाश ओत है औ प्रोत है। यातैं अवाच्य है ऐसैं करिके जो प्रतिपत्तिका विषय नहीं करियेहै सो अप्रतिपत्ति नाम निग्रहस्थान है। तार्किकमतविषे। औ अवाच्यकूंबी कहताहै। तथापि विप्रतिपत्ति नाम निग्रहस्थान है। जातैं सो विरुद्ध प्रतिपत्ति है। जो अवाच्यका वदन है। यातैं दुर्वचन प्रश्नकूं गार्गी मानती है। तिन दो दोषनकूंबी परिहार करते हुये याज्ञवल्क्य कहैहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहते भयेः—इसीहीं तिस (अक्षर)कूं [ब्राह्मण अभिवदन करैहैं] जाकूं तूं पूछती हैं। किसविषे निश्चयकरि आकाश ओत है औ प्रोत है ऐसैं ॥ [७९७] ॥ सो

७९७ अप्रतिपत्ति औ विप्रतिपत्ति। ये दोनूं दोष सामान्यकरि कहे। ताकूं विशेषकरि जाननेकूं गार्गी पूछती है ॥

अभिवदन्त्यस्थूल मनण्वह्रस्वमदी-
र्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्व-

[जो] अस्थूल है । अनणु है । अह्रस्व है । अदीर्घ है । अलोहित है । अस्नेह है । अच्छाय है । अतम है । अवायु है । अ-

---

क्या है किः—अक्षर है ! जो क्षयकूं पावता नहीं औ क्षरता नहीं । यातें अक्षर है ॥ हे गार्गि ! तिस अक्षरकूं ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अभिवदन करैहैं ॥ ब्राह्मणोंके अभिवदनके कथनकरि मैं अवाच्यकूं नहीं कहताहूं औ नहीं जानताहूं ऐसें नहीं ॥ इसप्रकार दोषद्वयकूं परिहार करैहैं ॥ ऐसें[७९८] प्रश्नके निराकरण किये हुये फेर गार्गीका प्रतिवचन देखनेकूं योग्य है ॥ जाकूं ब्राह्मण अभिवदन करैहैं सो अक्षर क्या है कहहू ? ऐसें उक्त हुये याज्ञवल्क्य कहैहैंः—सो अस्थूल (स्थूलतें अन्य) है ॥ जब ऐसें है तब अणु होवैगा ? अनणु है ॥ तब ह्रस्व होहू ? अह्रस्वहीं है ॥ तब

---

७९८ अस्थूलादि वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

नाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कम-
श्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणमःख-

नाकाश है । असंग है । अरस है । अगंध
है । अचक्षुष्क है । अश्रोत्र है । अवाक् है ।
अमन है । अतेजस्क है । अप्राण है । अ-

दीर्घ होहू ? दीर्घबी नहीं । किंतु अदीर्घहीं है ॥
ऐसें इन च्यारी परिमाणोंके निषेधोंकरि द्रव्यके
धर्मका प्रतिषेध किया । यातें जो द्रव्य नहीं सो
अक्षर है । यह अर्थ सिद्ध भया ॥ तब लोहित
गुण होहू ? तिसतैंबी अन्य अलोहित है । [७९९] जो
लोहित गुण है सो अग्निका है ॥ तब जलका
स्नेह गुण होहू ? सो नहीं किंतु अस्नेह है ॥ तब
छाया होहू ? सर्वथाबी अनिर्देश्य होनेतें छाया-
तैंबी अन्य अच्छाय है ॥ तब तम होहू ? अ-
तम है ॥ तब वायु होहू ? अवायु है ॥ तब आ-
काश होहू ? अनाकाश है ॥ तब जतु (लाख)

---

७९९ जो अग्निका लोहितरूप है । इत्यादि श्रुतिकूं आ-
श्रय करिके । कहैहैं ॥

ममात्र मनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति कि-
ञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥ ८ ॥

मुख है । अमात्र है । अनंतर है । अबाह्य है । सो किसीकूंबी नहीं भक्षण करैहै । ताकूं कोईबी नहीं भक्षण करैहै ॥ ८ ॥

की न्यांई संगात्मक होहू ? असंग है ॥ तब रस होहू ? अरस है । तैसें अगंध है ॥ तब चक्षुवाला होहू! अचक्षु है । जातें चक्षु याका करण नहीं है । यातें अचक्षु है । " चक्षुरहित हुया देखता है " इस मंत्रवर्णतें ॥ तैसें अश्रोत्र है । " सो कर्ण रहित हुया सुनताहै " इस मंत्रवर्णतें ॥ तब वाक् होहू ? अवाक् है । तैसें अमन है । तैसें अतेजस्क है । अविद्यमान है तेज याकूं सो अतेजस्क कहियेहै । जातें अग्निआदिकके प्रकाशकीन्यांई याका तेज नहीं है ॥ अप्राण है ॥ इहां अप्राण ऐसें आध्यात्मिक वायु प्रतिषेध क-

---

८०० अवायुविशेषणकरि अप्राणविशेषणकी पुनरुक्तिकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां अमात्र । ऐसें प्रमाण प्रमेयका

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गा-

अर्थः—हे गार्गि ! इस अक्षरके प्रशा-

रियेहै ॥ तब मुखरूप द्वार होहू ? सो अमुख है ॥ औ अमात्र है । जिसकरि प्रमाज्ञानका विषय करियेहै सो मात्र है । जो मात्ररूप नहीं होवै । सो अमात्र है । तिसकरि कछुबी प्रमाका विषय नहीं करियेहै ॥ तब छिद्रवाला (अंतरवाला) होहू ? अनंतर है । याका अंतर नहीं है ॥ तब बहि (बाहिर) संभवैगा ? ता (आत्मा)का अबाह्य है ॥ तब सो भक्षक होहू ? सो किसकूंबी भक्षण नहीं करैहै ॥ तब भक्ष्य (किसीकाबी भक्ष्य) होवैगा ? ताकूं कोईबी भक्षण नहीं करैहै ॥ [८०१] सर्व विशेषणोंतैं रहित है । यह अर्थ है ॥ जातैं [८०२] एकैहीं अद्वितीय है । तातैं सो किसकरि क्यूं विशेषणयुक्त करिये ॥ ८ ॥

टीकाः—[८०३] अनेक विशेषणोंके प्रतिषेधके प्रया-

संबंध निराकरण करियेहै औ ताका । ऐसैं आत्माका कथन है ॥

८०१ संपिंडित (मिलित) अर्थकूं कहैहैं ॥

८०२ ताकूं उपपादन करैहैं ॥

८०३ अब यथोक्तनीतिसैं श्रुतिकरिहीं अक्षरकी अस्तिताके

र्गि ! सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि !

सनविषै सूर्य औ चंद्रमा विधृतहुये स्थित होवैहैं ॥ हे गार्गि ! इस अक्षरके प्रशासनविषै स्वर्ग अरु पृथिवी विधृतहुये स्थित

सतैं प्रथम अक्षरका अस्तिपना श्रुतिकरि जनाया । तथापि लोक बुद्धिकूं अपेक्षा करिके जातैं आशंका करियेहै । यातैं अस्तित्वके अर्थ अनुमान प्रमाणकूं उपन्यास करैहैं:—औ इसीहीं अक्षरके कहिये जो[८०४] यह अधिगत अक्षर सर्वांतर

ज्ञापित हुये वक्तव्यके अभावतैं उत्तर ग्रंथकरि क्या है ? यह शंका भयी। तहां कहैहैं ॥ इहां जो है सो विशेषण सहितहीं है । ऐसैं लौकिकी बुद्धि है । " यातैं अक्षर निर्विशेषण नहीं है " ऐसैं आशंका करियेहै यह शेष है॥ औ यह भाव है:— अंतर्यामी जगत्के कारण अनुमानकरि सिद्ध परमात्माविषै विवक्षित निरुपाधि अक्षर होवैगा काहेतैं जगत्की कारणताकूं उपलक्षण होनेकरि जन्मादि सूत्रविषै स्थित होनेतैं । उपलक्षणद्वारा ब्रह्मविषै स्वरूपलक्षणकी प्रवृत्तितैं अंतर्यामीविषै अनुमानकरि प्रकृत श्रुति उपयुक्त (उपयोगी) है ॥

८०४ अनुमान श्रुतिके अक्षरनकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां अक्षरके प्रशासनविषै सूर्य अरु चंद्रमा विधृत होवैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा

होवैहैं ॥ हे गार्गि! इस अक्षरके प्रशासनविषै । निमेष । मूहूर्त्त । अहोरात्र । अर्द्धमास । मास । ऋतुआं । औ संवत्सर । ऐसैं विधृतहुये स्थित होवैहैं ॥ हे गार्गि !

साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । जो अशनायादि धर्मतैं अतीत आत्मा है । इसीहीं अक्षरके प्रशासनविषै [सूर्य अरु चंद्रमा विधृत होवैहैं] जैसैं[८०५] राजाके प्रशासनविषै राज्य अस्फुटित नियत वर्त्तता है । ऐसैं इस अक्षरके प्रशासनविषै हे गार्गि[८०६] ! दिन रात्रविषै लोकनके प्र-

---

८०५ उक्त अर्थकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहांबी पूर्वकी न्यांई अन्वय है औ यह अनुमान हैः—जगत्की व्यवस्था । प्रशासिताके पूर्वक होवैहै । व्यवस्था होनेतैं । राज्यव्यवस्थाकी न्यांई । यह अर्थ है ॥

८०६ सूर्य अरु चंद्रमा । इत्यादि वाक्यविषै विवक्षित अ-

अक्षरस्य प्रशासने गार्गि! प्राच्यो-
ऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्व्वते-
भ्यः प्रतीच्योऽन्या यां याश्च दिशम-

इस अक्षरके प्रशासनविषै पूर्व दिशाके त-
रफ गमन करनेवालीयां । अन्य नदीयां
श्वेत पर्वतोंतैं श्रवतीयां हैं ॥ पश्चिम दि-
शाके तरफ गमन करनेवालीयां अन्य औ
जिस जिस दिशाके प्रति अनुगमन करै-

दीप अरु तादर्थ्य (लोकप्रकाशार्थता)करि ति-
न दोनूंसें [807] वर्त्तनेवाले लोकके प्रयोजनके विज्ञा-
नवाले प्रशासिताकरि निर्मित ऐसें सूर्य औ चं-
द्रमा विधृत होवैहैं । साधारण सर्व प्राणिनके

नुमानकूं कहैहैं ॥ इहां तादर्थ्यकरि कहिये लोकके प्रकाशरूप अर्थवान्ताकरि प्रशासिताकरि निर्मित हैं । ऐसैं संबंध है ॥

८०७ निर्माताके विशिष्ट विज्ञानवान्पनैकूं कहैहैं ॥ इहां सूर्य अरु चंद्रमा । तत् शब्दके वाच्य हैं ॥ इहां यह अनुमानरूप अर्थ है:—विवादके विषय सूर्य औ चंद्र । विशिष्ट विज्ञानवालेकरि निर्मित हैं। प्रकाशरूप होनेतैं। प्रदीपकी न्यांई ॥

८०८ विवादके विषय सूर्य औ चंद्र । नियंतापूर्वक हैं । विशिष्ट चेष्टावाले होनेतैं । भृत्य आदिककीन्यांई । इस अभिप्राय करिके । कहैहैं ॥ इहां प्रकाशकरि उपकारकता अरु

न्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ! ददतो मनुष्याः प्रशꣳसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः ॥ ९ ॥

हैं ॥ हे गार्गि ! इस अक्षरके प्रशासनविषै दाता पुरुषनकूं मनुष्य प्रशंसा करैहैं ॥ यजमानके प्रति देव औ दर्वीके प्रति पितर अनुगत होवैहैं ॥ ९ ॥

प्रकाशविषै उपकारक होनेतैं । लौकिक प्रदीपकी न्यांईं ॥ तातैं सो है । जिसकरि विधृत ईश्वर स्वतंत्र हुये निर्मित होयके स्थित होवैहैं । औ नियंत देश काल अरु निमित्तवाले उदय अ-

---

ताकी जनकतारूप विशेषण । निर्माताके विशिष्ट विज्ञानाविषै संभावना अर्थ है औ साधारण सर्व प्राणिनका जो प्रकाश है ताका जनक होनेतैं । यह अर्थ है औ दृष्टांतविषै लौकिक विशेषण जो है । सो प्रासाद आदिक विशिष्ट देशविषै स्थितताकी सिद्धि अर्थ है ॥

८०९ अनुमानके फलकूं उपसंहार करैहैं ॥

८१० विशिष्ट चेष्टावाले होनेतैं । ऐसैं उपदेशकिये हेतुकूं स्पष्ट करैहैं ॥ नियत देशकाल औ नियत निमित्त जो प्राणीनका अदृष्ट । तिसवाले सूर्य अरु चंद्रमा । उदय अरु अस्तकूं पावते हैं औ वे दोनूं जिसकरि विधृत हुये उदय अरु अस्त-

स्त अरु वृद्धि क्षयकरि वर्त्ततेहैं ऐसैं (कर्त्तापनेकरि औ विधारयितापनेकरि) प्रदीपके कर्त्ता अरु विधारयिताकीन्यांई इन दोनूंका प्रशासिता सो अक्षर है ॥ वा इसीहीं अक्षरके प्रशासनविषै हे गार्गि! स्वर्ग अरु पृथिवी। सावयव होनेतैं फूटनेके स्वभाववालेबी हुये। गुरु (भारी) होनेतैं पतन स्वभाववाले। संयुक्त होनेतैं वियोग स्वभाववाले। चेतनावाले अभिमानी देवताकरि अधिष्ठित होनेतैं स्वतंत्रबी हुये इस अक्षरके प्रशासनविषै विधृत हुये स्थित होवैहैं कहिये वर्त्ततेहैं ॥ जातैं यैहै अक्षर सर्व व्य-

करि अरु वृद्धि क्षयकरि वर्त्तते हैं ॥ इहां उदय औ अस्तमय सो कहिये उदयास्तमय औ वृद्धि अरु क्षय सो कहिये वृद्धिक्षय। ऐसैं द्वंद्वसमासकूं ग्रहण करिके द्विवचन है ॥ ऐसैं कर्त्तापनैकरि औ विधारयितापनैकरि। यह अर्थ है ॥ इहां यह साधारण अनुमान है। विवादके विषय स्वर्ग अरु पृथिवी। प्रयत्नवान्‌करि विधृत हैं। काहेतैं सावयवताके हुयेबी अस्फुटित होनेतैं। गुरुताके हुयेबी अपतित होनेतैं। संयुक्त हुयेबी अवियुक्त होनेतैं। औ चेतनावान्‌ताके हुयेबी अस्वतंत्र होनेतैं ॥ हस्तविषै धारण किये पाषाण आदिककी न्यांई ॥

८११ द्वितीय पर्यायके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

८१२ इस अक्षरके प्रशासनविषै स्वर्ग अरु पृथिवी क्यूं

वस्थाका सेतु अरु सर्व मर्यादाका[८१३] विधरण है।[८१४] यातैं इस अक्षरके प्रशासनकूं स्वर्ग अरु पृथिवी नहीं अतिक्रमण करैहैं।[८१५] तातैं इस अक्षरका अस्तिपना सिद्धभया ॥ जातैं सो लिंग अव्यभिचारी[८१६] है जो स्वर्ग अरु पृथिवी नियत वर्त्तते हैं। चेतनावाले[८१७] अ-संसारी प्रशासिता विना यह युक्त नहीं है "जि-सैंकरि स्वर्ग उग्र है औ पृथिवी दृढ है" इस मं-

---

वर्त्तते हैं ? तहां कहैहैं ॥ पृथिवी आदिककी व्यवस्था नियंता-विना अघटित हुयी ताकी कल्पक है ॥

८१३ ऐसें इस अक्षरकरि स्वर्ग अरु पृथिवी क्यूं विधृत हैं ? तहां कहैहैं ॥

८१४ "यह (परमात्मा) सेतु विधरण है" इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके फलितकूं कहैहैं ॥

८१५ द्वितीय पर्यायके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

८१६ तत्शब्दकरि ग्रहण किये अर्थकूं स्पष्ट करैहैं ॥

८१७ अव्यभिचारीपनैकूं प्रगट करैहैं ॥ इहां पृथिवी आ-दिकका नियंतापना एतत् शब्दका अर्थ है ॥

८१८ नियंतापनैके सिद्ध हुयेबी ईश्वरकी सिद्धि कैसें है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां पृथिवी आदिकका उग्र-पना कहिये चेतनावाले अभिमानी देवतावाला होनेकरि स्व-तंत्रपना ॥ "जिसकरि स्वर्गस्तंभित है । जिसकरि नाक है । जो अंतरिक्षविषै रजका विमान है । किस देवके अर्थ हवि-करि करैं" इस ठिकाने हिरण्यगर्भका अधिष्ठाता ईश्वर पृ-थिवी आदिकका नियंता कहिये है । जातैं हिरण्यगर्भमात्रका

त्ररूप वाक्यतैं ॥ ॥ इसीहीं अक्षरके प्रशासनविषे हे गार्गि! निमेष। मुहूर्त्त ऐसे ये कालके अवयव [८१९] सर्व अतीत अनागत वर्त्तमान जन्मवाले वस्तुके कलयिता (गणनाके कर्त्ता) विधृत हुये स्थित होवे हैं ॥ [८२०] जैसें लोकविषे प्रभुकरि नियतहुया गणक सर्व आयकूं औ व्ययकूं अप्रमत्त हुया गणना [८२१] करैहै। तैसें प्रभुस्थानीय इनकालके अवयवोंका नियंता है॥ ॥ तैसें पूव दिशाविषे गमन करनेवालियां [८२२] गंगाआदिक

इस प्रकरणविषै पूर्वापर ग्रंथमैं कथन किया निरंकुश सर्वका नियंतापना नहीं संभवै है । यह भाव है ॥ ये कालके अवयव विधृत हुये स्थित होवैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

८१९ तहां अनुमानकूं कहनेकूं हेतुकूं कहैहैं ॥

८२० जो कलयिता है सो नियंता पूर्वक है । तिस व्याप्तिकी भूमिकूं कहैहैं ॥

८२१ दार्ष्टांतिककूं दिखावते हुये अनुमानकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—निमेष आदिक नियंता पूर्वक हैं गणनाके कर्त्ता होनेतैं । लोक प्रसिद्ध गणककी न्यांई ॥

८२२ कौंनसी वे नदीयां है ? इस अपेक्षाके हुये कहैहैं ॥ इहां अन्यथा प्रवर्त्त होनेकूं उत्सहमान्पना कहिये तिस तिस देवताओंका चेतनताकरि स्वतंत्रपना ॥ इहां यह अनुमान है:—विवादकी विषय जे नदीयां । वे नियंताके पूर्वक हैं

नदीयां श्वेत (हिमवान् आदिक) पर्वतन (गिरिन) तैं श्रवतीयां हैं। वे जैसैं प्रवर्त्तित हीं हैं तैसैं नियत हुईयां प्रवर्त्त होवैहैं। अन्यथाबी प्रवर्त्तनेकूं उत्साहकूं पावतीयां नहीं। यातैं सो यह प्रशास्ताका लिंग है॥ अन्य सिंधुआदिक नदीयां प्रतीची (पश्चिम) दिशाके प्रति गमन करैहैं औ अन्य जिस जिस दिशाके प्रति अनुप्रवृत्त होवैहैं । तिस तिस दिशाकेतांई व्यभिचारकूं पावतीयां नहीं। सो बी लिंग है॥ ॥ किंवा[८२३]:—हिरण्य आदिकनकूं देनेवाले ऐसे आपकूं पीडाकरनेवाले पुरुषनकूंबी प्रमाणके जाननेवालेबी मनुष्य प्रशंसा करैहैं। [८२४]तहां जो व-

---

नियंताकरि प्रवृत्तिवालीयां होनेतैं। भृत्यआदिकनकी प्रवृत्तिकी न्यांई। यह चतुर्थ पर्यायका अर्थ है॥ इहां नियत प्रवृत्तिमान्पना। सो यह ऐसैं कहिये है औ सो लिंग है। ऐसैं तत् शब्दकरि अव्यभिचारीपनैका कथन है॥

८२३ विवादका विषय जो दानका फल । सो विशिष्ट ज्ञानवालेका दिया होवैहै। कर्मका फल होनेतैं। सेवाके फलकीन्यांई। इस अभिप्राय करिके। पंचमपर्यायकूं उठावते हैं॥

८२४ दाता । देने योग्य दानकूं देता है । प्रतिग्रहीता देने योग्य फलकूं देवैगा। ईश्वरकरि क्या है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—दाताआदिकनका इ-

स्तु दिया जावैहै औ जो देतेहैं औ जे प्रतिग्रहण करैहैं । तिनका इहांहीं समागम औ विलय अन्वक्ष (प्रत्यक्ष) देखियेहै । [८२५] परं समागम तौ अदृष्टहै । [८२६] तथापि मनुष्य देनेवाले पुरुषनके दानके फलके साथि संयोगकूं देखते हुये [८२७] प्रमाणज्ञता करि प्रशंसा करैहैं ॥ औ सो कर्मफलके साथि सम्यक् योजना करनेहारे अरु [८२८] कर्त्ताके कर्मफलके विभागके जाननेहारे प्रशास्ताके न होते नहीं होवैगा । [८२९] दानक्रियाकूं प्रत्यक्ष विनाशी होनेतैं

इहांहीं प्रत्यक्ष नाश देखीयेहै । तिसकरि ताका किया अदृष्टरूप पुरुषार्थ कोईबी नहीं है ॥

८२५ अदृष्टरूप पुरुषार्थके प्रति कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—समागम कहिये फलका प्रतिलाभ । सो निश्चयकरि ऐहिक नहीं होवैहै किंतु पारलौकिक होवैहै । तिसप्रकार हुये यह इहांहीं नष्ट दाता आदिकका किया नहीं संभवैहै ॥

८२६ तब फलदाताके अभावतैं स्वार्थका भ्रंशहीं मूर्खता है । इस न्यायतैं दाताकी प्रशंसाहीं मति होहु ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८२७ फलसंयोगकी दृष्टिविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

८२८ " हिरण्यके दाते अमृतभावकूं भजते हैं " इत्यादि प्रमाण है । तथापि ईश्वरकी सिद्धि कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—सोई दाताका प्रशंसन । विशिष्ट नियंताके न होते अघटित हुया ता (नियंता)का कल्पक है ॥

८२९ ननु दानक्रियाके वशतैंहीं ताके फलकी सिद्धिके

[830]तातैं दानके कर्त्ताओंकूं फलके साथि संयोजयिता (योजक) है॥ ॥ननु [831]अपूर्व [फलदाता] होवैगा? ऐसें जो कहै। सो [832]बनै नहीं:—काहेतैं ताके सद्भावविषै प्रमाणके असंभवतैं॥ ॥[833]ननु प्रशास्ताकेबी [सद्भावविषै प्रमाणका असंभव होवैगा]? ऐसें जो कहै। सो बनै [834]नहीं:—काहेतैं आगमके तात्पर्यकूं सिद्ध होनेतैं। [835]जातैं आ-

---

हुये नियंतानैं क्या किया? ऐसें जो कहै। सो बनै नहीं ऐसें कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—कर्मकूं क्षणिक होनेतैं। औ फलकूं कालांतरविषै भावी होनेतैं [केवल दानक्रियाकूं फलकी] साधनताका संभव नहीं है॥

८३० अनुमान अरु अर्थापत्ति प्रमाणकरि सिद्ध अर्थकूं उपसंहार करैहैं॥

८३१ ननु अपूर्वकूंहीं फलदाता होनेतैं ईश्वरनैं क्या किया? इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै॥

८३२ आप अचेतन वा चेतनकरि अनधिष्ठित अपूर्व। फलका दाता कलपनेकूं योग्य नहीं है। अप्रामाणिक होनेतैं। इसरीतिसैं सिद्धांती परिहार करैहैं॥

८३३ ईश्वरका द्वेषी शंका करैहै॥

८३४ [प्रशास्ताकेबी] सद्भावविषै प्रमाणका असंभव है। इस शेषकूं सिद्धांती परिहार करैहैं॥

८३५ ननु कार्यके पर आगमकी वस्तुपरता कैसैं है? यह आशंका करिके। कहैहैं॥

गमकी वस्तुपरताकूं हम कहतेहैं ॥ औ [836]अन्य क्या है किः—[837]अपूर्वकी कल्पनाविषैबी अर्थापत्तिका अन्यथाहीं उपपत्तितैं क्षय होवैहै । काहेतैं इस [838]सेवाफलकी सेव्यतैं प्राप्तिके दर्शनतैं औ [839]सेवाकूं क्रियारूप होनेतैं औ ताके सामान्यतैं याग दान अरु होम आदिकनकी सेव्य ईश्वरादिकतैं फ-

---

८३६ जातैं कर्मविधि फलदातासैं विना बनै नहीं औ आशुतर विनाशी कर्मबी बनै नहीं । यातैं कालांतरभावी फलके अनुकूलताकी अर्थापत्तिकरि सिद्ध अपूर्वविषै प्रमाणकी असिद्धि कैसैं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—केवल सद्भावविषै प्रमाणका असद्भावहीं अपूर्वका दूषण नहीं किंतु अन्य किंचित् (कछुक दूषण) है ॥

८३७ सो ताहीकूं प्रगट करैहैं ॥ इहांः—अपूर्वकी कल्पनाविषै जो अर्थापत्ति शंका करियेहै । ताका कल्पित अपूर्व विनाबी उपपत्तितैं क्षय होवैहै । ऐसैं योजना है ॥

८३८ अन्यथाबी उपपत्तिकूं (अपूर्वकी कल्पनाविनाबी फलके संभवकूं) विवरण करैहैं ॥ इहांः—यागादिकका फलबी ईश्वरतैं संभवै है । यह शेष है ॥

८३९ यागादिकके फलकी प्राप्ति ईश्वरके आधीन कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां आदिपदकरि इंद्रादिक देवता ग्रहण करियेहैं ॥ विवादकी विषय जो यागादि क्रिया । सो विशिष्ट ज्ञानवालेकरि दीयमान फलवाली है। विशिष्ट क्रियारूप होनेतैं । प्रसिद्ध क्रियाकी न्यांई । यह भाव है ॥

लकी प्राप्ति संभवे है । दृष्ट[840] जो क्रियाका धर्मताकरि सामर्थ्य (सेव्यतैं फलप्रापकता)। ताकूं अपरित्यागकरिकेहीं (अनुसरीके) फलप्राप्तिकी [841]कल्पनाके संभव हुये दृष्ट जो क्रियाका धर्मताकरि सामर्थ्य। ताका परित्याग। न्याय्य (श्रेष्ठ) नहीं है औ कल्पनाकी अधिकतातें [842]ईश्वर कल्पना करनेकूं योग्य है वा अपूर्व ॥ [843]तहां क्रियाका स्वभाव । सेव्यतैं फलकी प्राप्ति देखी है । अपूर्वतैं तो नहीं ॥ औ अपूर्व देख्या नहीं । तहां [844]अपूर्व

---

८४० यातैंबी अपूर्वकी कल्पना युक्त नहीं है । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—इष्ट जो सेवाका धर्मरूप होनेकरि सेव्यतैं फलकी प्रापकतारूप सामर्थ्य। ताकूं अनुसरीके दानआदिकविषै फलकी प्राप्तिके संभव हुये । ताके निरासकरि अपूर्वतैं ताकी कल्पना न्याय्य (युक्त) नहीं है । काहेतैं दृष्टके अनुसारी कल्पनाके हुये तिसतैं विरोधी कल्पनाके अयोगतैं ॥

८४१ अपूर्वकी फलहेतुताविषै अन्य दोषकूं कहैहैं ॥

८४२ कल्पनाकी अधिकताके कहनेकूं विचार करैहैं ॥

८४३ ननु अपूर्वकल्पना करनेकूं योग्य है । निश्चित होनेतैं । तहां कल्पनाकी अधिकता नहीं है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां व्यवहारभूमि । सप्तमीका अर्थ है ॥

८४४ भूमिकाकूं करिके । कल्पनाकी अधिकताकूं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां अपूर्वकी अदृष्टरूपताके हुये । यह "तहां" इस

अदृष्टरूप कल्पना करनेकूं योग्य है औ ताका फलदातापनैविषै सामर्थ्य है औ सामर्थ्यके (अपूर्वकी अदृष्टताके) हुये दानबी अधिक होवैगा [यातैं कल्पनाकी अधिकता होवैगी] ॥ ईहां[८४५](हमारे पक्षविषै) तो सेव्य ईश्वरका सद्भवमात्र कल्पना करनेकूं योग्यहै । परंतु फलदानका सामर्थ्य औ दातापना [कल्पना करनेकूं योग्य नहीं] काहेतैं सेव्यतैं फलप्राप्तिके दर्शनतैं (प्रत्यक्षसिद्धितैं) औ [८४६]अनुमान दिखाया है "स्वर्ग अरु पृथिवी विधृतहुये स्थित होवैहैं" इत्यादि ॥ तिसैं[८४७] प्रका-

---

सप्तमीका अर्थ है औ ऐसैं कल्पनाकी अधिकता है । यह शेष है ॥

८४५ ननु अन्य ठिकाने (ईश्वरपक्षविषै) बी तुल्य कल्पना है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां यह भाव है:—स्वपक्षविषै धर्मीमात्र कल्पना करनेकूं योग्य है औ परपक्षविषै धर्मी औ धर्म दोनूं कल्पना करनेकूं योग्य होवैंगे। ऐसैं कल्पनाकी अधिकता है । तातैं " फलवालेकी उपपत्तितैं " इस न्यायकरि परमात्माकूंहीं फलकी दातृता है ॥

८४६ धर्मीकीबी प्रामाण्यता कल्पना करनेकूं योग्य है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

८४७ ईश्वरकी अस्तितविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां देव यजमानके तांई अनुगत होवैहैं । ऐसैं संबंध है औ जीवनके अर्थ । याका जीवनकूं निमित्तकरि यह अर्थ है ॥ ईश्वर (समर्थ) देवनकाबी हव्यकी अर्थिताकरि मनुष्यनके

योवा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा
ऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते ब-

अर्थः—हे गार्गि! जो इस अक्षरकूं न
जानिके इस लोकविषै होमकूं करैहै । य-

र हुये यजमानकूं देव । ईश्वर हुये जीवनअर्थ
(जीवनकूं निमित्त करिके) अनुगत होयके चरु
पुरोडाशआदिक उपजीवनरूप प्रयोजनकरि
औरप्रकारसैं बी जीवनेकूं उत्साह करते हुये
कृपण दीन वृत्तिकूं आश्रयकरिके स्थित होवैहैं ।
सोबी प्रशास्ताके प्रशासनतैं होवैगा ॥ तैसैं
पितरबी तिस (जीवन)के अर्थ दर्वी (दर्वीहोम)
केताँई अनुगत होवैहैं । यह अर्थ है ॥ अन्य
सर्व समान है ॥ ९ ॥

टीकाः—यातैंबी[८४८] सो अक्षर है । जातैं तिसके
अज्ञानके हुये संसारकी उपपत्ति नियमित है ।

आधीन हीन वृत्तिका भागीपना नियंतानैं कल्प्या है । यह अर्थ
है ॥ जो किसीकाबी प्रकृति होनेकरि वा विकृति होनेकरि
नहीं वर्त्तता है । सो दर्वी होम है ॥

८४८ ईश्वरकी अस्तितताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

हूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भव-
ति । यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा

जनकूं करैहै । बहुत वर्षनके सहस्त्र तपकूं
तपता है । याका सो (फल) अंतवालाहीं
होवैहै ॥ हे गार्गि ! जो इस अक्षरकूं न जा-

जिसके [849] विज्ञानतैं ताका विच्छेद होवैहै । न्याय-
की उपपत्तितैं । तिसकरि तो सो होनेकूं योग्य
है ॥ [850] ननु क्रियातैंहीं ता (संसार)की विच्छत्ति
होवैगी ? ऐसैं जो कहै । सो बनै [851] नहीं:—ऐसैं
कहैहैं:—" हे गार्गि ! जोई इस अक्षरकूं न-

---

८४९ मोक्षके हेतु ज्ञानका विषय होनेकरिबी सो (अ-
क्षर) है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां " जाके अज्ञानतैं जो प्रवृत्ति हो-
वैहै । सो ताके ज्ञानतैं निवर्त्त होवैहै ॥ यह न्याय है ॥

८५० ननु कर्मके वशतैंहीं मोक्षकी सिद्धितैं ताके हेतु
ज्ञानकी विषयताकरि अक्षर अंगीकार करनेकूं योग्य नहीं है ?
इसप्रकारसैं प्रतिवादी शंका करैहै ॥

८५१ उत्तर वाक्यकरि सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥ इहां
यह भाव हैः—जाके अज्ञानतैं वारंवार अनुष्ठित विशिष्ट फ-
लवालेबी सर्वकर्म । संसाररूप फलकूंहीं देते हैं । सो अज्ञात
अक्षर नहीं है । यह कहना अयुक्त है । काहेतैं ऐसैं हुये सं-
सारके अभावके प्रसंगतैं ॥

ऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतद-
क्षरं गार्गि! विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स
ब्राह्मणः ॥ १० ॥

निके इस लोकतैं मरताहै ॥ सो कृपण
है ॥ औ हे गार्गि! जो अक्षरकूं जानिके
इस लोकतैं मरताहै सो ब्राह्मण (ब्रह्म-
वेत्ता) है ॥ १० ॥

जानिके इस लोकविषै होमकूं करैहै । यज-
न करैहै । तपकूं तपता है। यद्यपि वर्षोंके स-
स्त्रपर्यंत [तथापि] अंतवालाहीं याका सो
फल होवैहै । तिस फलके भोगके अंतविषै या-
के कर्म क्षीण होवैहीं हैं ॥ ॥ किंवा[८५२] जि-
सके विज्ञानतें कृपणताका नाशरूप संसारका
विच्छेद होवैहै औ जिसके विज्ञानके अभावतैं
कर्मका कर्त्ता कृपण कृतके फलकाहीं उपभो-
क्ताहुया जननमरणरूप प्रबंधविषै आरूढहुया
संसरताहै । सो प्रशासिता अक्षर है । सो

---

८५२ अक्षरकी अस्तिताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतꣳ श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ । नान्य-

अर्थः—हे गार्गि! सो यह अक्षर अदृष्टहुया द्रष्टा है। अश्रुतहुया श्रोता है। अमतहुया मंता है । अविज्ञातहुया विज्ञाता

[८५३] यहै कहिये हैः—हे गार्गि ! जोई इस अक्षरकूं न जानिके इस लोकतैं मरता है सो मोलसैं लिये दास आदिककी न्यांई कृपण है ॥ औ हे गार्गि ! जो इस अक्षरकूं जानिके इस लोकतैं मरता है । सो ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) है ॥ १० ॥

टीकाः—[८५४] अग्निके दाहकता अरु प्रकाशकताकी न्यांई स्वाभाविक याका प्रशास्तापना अचेतनकी न्यांईहीं है? यह शंकाभयी । यातैं कहै-

---

८५३ पूर्व वाक्य जीवत अवस्थावाले पुरुषकूं विषय करनेवाला है। यह तो परलोककूं विषय करनेवाला है। ऐसैं विशेष (विलक्षणता)कूं मानिके । उत्तर वाक्यकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥

८५४ प्रधानवादी (सांख्य)की शंकाकूं अनुवाद करिके । उत्तर वाक्यकरि निराकरण करैहैं ॥

दतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ११ ॥

है ॥ इसतैं अन्य द्रष्टा नहीं है। इसतैं अन्य श्रोता नहीं है। इसतैं अन्य मंता नहीं हैं। इसतैं अन्य विज्ञाता नहीं है॥हे गार्गि! इस अक्षरविषै निश्चयकरि आकाश ओत है औ प्रोत है। ऐसैं (याज्ञवल्क्य कहतेभये) ॥ ११ ॥

हैंः—हे गार्गि! सोई यह अक्षर अदृष्ट है कहिये किसीनैंबी नहीं देख्या है। अविषय होनेतैं। आप तो द्रष्टा है दृशिस्वरूप होनेतैं ॥ तैसैं अश्रुत है श्रोत्र आदिकका अविषय होनेतैं। आप श्रोता है श्रुतिस्वरूप होनेतैं ॥ तैसैं अमत है। मनका अविषय होनेतैं ॥ आप मंता है। मतिस्वरूप होनेतैं ॥ तैसैं अविज्ञात है। बुद्धिका अविषय होनेतैं ॥ आप विज्ञाता

है। विज्ञान स्वरूप होनेतैं ॥ ॥ किंवा[855]:—इस अक्षरतैं अन्य कछुबी द्रष्टा (दर्शन क्रियाका-कर्त्ता) नहीं है। यहि[856]हीं अक्षर सर्वत्र दर्शनक्रियाका कर्त्ता है ॥ तैसैं इसतैं अन्य श्रोता नहीं है। सोई अक्षर सर्वत्र श्रोता है ॥ इसतैं अन्य मंता नहीं है। सोई अक्षर सर्वत्र सर्व ःनरूप द्वारकरि मंता है ॥ इसतैं अन्य विज्ञाता (विज्ञान क्रियाका कर्त्ता) नहीं है। सोई अक्षर सर्व बुद्धिरूप द्वारकरि विज्ञानक्रियाका कर्त्ता है ॥ अचेतन प्रधान वा अन्य नहीं है ॥ ॥ हे गार्गि[857]! इस प्रसिद्ध अक्षरविषै आकाश ओत है औ प्रोत है ऐसैं ॥ जोई साक्षात् अपरोक्षतैं ब्रह्म है। जो आत्मा सर्वांतर अश-

---

८५५ यातैंबी अक्षरका अचेतनपना नहीं है ऐसैं कहैहैं ॥ इहां नहीं है। ऐसैं अन्वयका प्रदर्शन है ॥

८५६ इसतैं अन्य। इस विशेषणकरि सिद्ध अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां अन्य वा कहिये पूर्व उक्त अव्याकृतादि पृथिवी पर्यंत ॥

८५७ निगमन वाक्यकूं उदाहरण करिके। ताके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां:—परा काष्ठा कहिये पर्यवसान। अर्थ यह जो इसतैं ऊपर अधिष्ठान किंचित् नहीं है ॥

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं । यदस्मान्नमस्कारेण मु-

---

अर्थः—सो (गार्गी) कहतीभईः—हे भगवाले ब्राह्मणो! सोई बहु मानो । जो इसतैं नमस्कारकरि छूटो । निश्चयकरि क-

---

नायादि (क्षुधादि) संसार धर्मतैं अतीत है। जिसविषै आकाश ओत है औ प्रोत है । यह परा (उत्कृष्ट) काष्ठा (पर्यवसान) है यैंहै[858] परागति है। यैंहै[859] परं ब्रह्म ईसैं[860] पृथिवी आदिक आकाशपर्यंत जो सत्य है ताका सत्य है ॥ ११ ॥

टीकाः—सो गार्गी कहतीभयीः हे ब्राह्मणो

---

८५८ तिसीहींके परम पुरुषार्थपनैकूं कहैहैं॥ इहां "पुरुषतैं पर किंचित् नहीं है। सो काष्ठा है। सो परागति है" ऐसीहीं अन्य श्रुति है ॥

८५९ ननु ब्रह्म। इस अक्षरतैं अन्य है ? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

८६० ननु चतुर्थ (द्वितीय अध्याय)विषै सत्यका सत्य ब्रह्म व्याख्यान किया। अक्षर तो ऐसा नहीं ? ऐसैं जो कहै। तहां कहैहैं ॥

च्येध्वं। न वै जातु युस्माकमिमं कश्चि-
द्ब्रह्मोद्यं जेतेति। ततो ह वाचक्नव्युप-
राम ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्या-
ष्टममक्षर-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

दाचित्बी तुह्मारे मध्य कोईबी याकूं ब्रह्म-
वादके प्रति जीतनेवाला नहीं है । ऐसैं ॥
तदनंतर वाचक्नवी (गार्गी) उपराम हो-
तीभई ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषा-
दीपिकायां तृतीयाध्यायस्याष्टम-
मक्षर-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

भगवाले ! मेरा वचन[८६१] सुनो। सोई[८६२] बहु मानो ॥
सो क्याकिः—जो[८६३] इस[८६४] याज्ञवल्क्यतें नमस्कार

---

८६१ सो वचन क्या है ? सो कहैहैं ॥

८६२ बहुमानके विषयभूत वस्तुकूं गार्गी पूंछती है ॥

८६३ जो आदिविषै मेरा वचन है । सोई बहुमानके योग्य है । ऐसैं कहैहैं ॥

८६४ ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां:—नमस्कारकूं क-

करि (इसके तांई नमस्कारकूं करिके अरु हमारी आज्ञाकूं पायके) मुक्त होहू (छूटो) सोई बहु मानो । यह अर्थ है । [८६५] याका जय तो तुमसैंबी इच्छाकरनेकूं योग्य नहीं है । तब कार्यतैं कहातैं होवैगा ॥ [८६६] काहेतैं किः—तुह्मारेमध्य कदाचित्‌बी उस याज्ञवल्क्यकूं ब्रह्मवादके प्रति जेता (जीतनेवाला) नहीं है ॥ [८६७] जब मेरेतांई दो प्रश्नोंकूं कहैगा तब याका जेता नहीं होवैगा । ऐसैं पूर्वहीं मेरेकरि प्रतिज्ञात है । अबबी मेरा यहहीं निश्चय हैः—ब्रह्मवादके प्रति याके तुल्य कोईबी नहीं है इति ॥ ॥ तदनंतर वाचक्नवी (गार्गी) । प्रश्नतैं उपराम होतीभयी [॥ १२ ॥]

रिके । हमारी आज्ञाकूं पायके यह शेष है ॥ ताहीकूं । ऐसैं प्रथमके वचनका कथन है ॥

८६५ तेरे पूर्वले वचनकूं क्यूं बहु मानें । फेर हम इस याज्ञवाल्क्यकूं जीतनेकूं आशा करैहैं ? तहां गार्गी । बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

८६६ तहां प्रश्नपूर्वक पूर्वोक्तहीं बहुमानके विषयभूत वाक्यकूं अवतार देके गार्गी व्याख्यान करैहै ॥

८६७ ननु पराजित तुज गार्गीका वचन ग्रहण करनेकूं योग्य नहीं है ? यह आशंका करिके गार्गी कहैहै ॥ इहांः— तातैं कहिये प्रश्नके निर्णयतैं । याज्ञवल्क्यके अजेयपनैकूं प्र-

इस अंतर्यामी[८६८] ब्राह्मणविषे यह कहाः— जोकूं[८६९] पृथिवी नहीं जानती है औ जिसकूं सर्वभूत नहीं जानते हैं ऐसैं ॥ जिस अंतर्यामीकूं नहीं जानते हैं औ[८७०] जे नहीं जानते हैं औ सर्व विषयनका दर्शनादि क्रियाका कर्त्ता होनेकरि चेतना धातु है । ऐसैं जो[८७१] सो अक्षर कहा ॥ तिनमैं[८७२] कौंन विशेष है किंवा सामान्य है ऐसैं ॥ तहां[८७३] केईक कहते हैंः—महासमुद्र स्थानीय अप्रचलित स्वरूप परब्रह्मरूप अक्षरकी किंचित् प्रचलित अवस्था अंतर्यामी है । अत्यंत प्रचलित अवस्था क्षेत्रज्ञ है । जो तिस[८७४] अंतर्यामीकूं

तिपादन करिके । औ ब्राह्मणोंके प्रति हितकूं कहिके । यह अर्थ है ॥

८६८ अंतर्यामी । क्षेत्रज्ञ औ अक्षर । इनके अवांतर विशेषके दिखावने अर्थ प्रकृतपनैकूं दिखावैहैं ॥

८६९ तहां अंतर्यामीके प्रकृतपनैकूं प्रकट करैहैं ॥

८७० क्षेत्रज्ञके प्रकृतपनैकूं स्पष्ट करैहैं ॥

८७१ अक्षरके प्रस्तुतपनैकूं प्रतीति करावै हैं ॥ इहांः— सर्व विषयनकी दर्शन श्रवणादि क्रियाका कर्ता होनेकरि चेतनाधातु । ऐसा जो है । सो अक्षर कहा है। ऐसैं अन्वय है॥

८७२ तिनविषै विचारकूं अवतार देते हैं ॥

८७३ तिसविचारविषै स्वयूथ्यके मतकूं उठावते हैं ॥

८७४ क्षेत्रज्ञके अप्रस्तुतपनैकी शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

नहीं जानताहै ॥ ८७५ तैसें अन्य पंच अवस्था । तथा अष्ट अवस्था । ब्रह्मकी होवैहैं । ऐसें कहतेहुये कल्पना करैहैं ॥ ॥ औ ८७६ अन्य अक्षरकी ये शक्तियां हैं । ऐसें ८७७ अनंत२[illegible] अक्षरकूं कहतेहैं औ अन्य अक्षरके विकार हैं ऐसें कहते हैं? तिनमें ८७८ अवस्था अरु शक्ति प्रथम बनते नहीं:—काहेतें अक्षरकी अशनायादि संसारधर्मतें अतीतताकी श्रुतितें ॥ ८७९ जौतें अशनायादि धर्म-

---

८७५ जैसें परमात्माकी अंतर्यामी औ जीव । ये दो अवस्था कलिपयेहैं । तैसें तिसीहींकी अन्य पंच अवस्था। पिंड। जाति । विराट् । सूत्र । दैव । इस लक्षणवाले महाभूत संस्थानके भेदकरि कल्पते हैं । ऐसें कहैहैं ॥ इहांः—उक्तरीतिकरि कलपनाविषै पिंड । जाति । विराट् । सूत्र । दैव । अव्याकृत । साक्षी औ क्षेत्रज्ञ । ऐसी अष्ट अवस्था ब्रह्मकी होवैहैं । ऐसें कहते हुये कल्पते हैं । ऐसें संबंध है ॥

८७६ अवस्थाकूं कहिके शक्तिपक्षकूं कहैहैं ॥

८७७ "तु" शब्दकरि अवयवपक्षकूं दिखावते हुये विकार पक्षकूं दालते हैं ॥

८७८ तहां दो पक्षके तांई सिद्धांती प्रत्युत्तर देते हैं ॥ इहांः—अंतर्यामी आदिकनकी यह शेष है ॥

८७९ ताकी संसारसंबंधी धर्मकी अतीतताकी श्रुतिविषैबी अवस्थावान्‌पना वा शक्तिमान्‌पना कैसें नहीं सिद्ध होवैहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

कीन्यांई एककूं एक कालविषे अवस्थावान्पना नहीं संभवै है औ तैसें शक्तिमान्पना नहीं संभवै है औ विका[880] वान्ता अरु अवयववान्ता-विषे दोष पूर्व चतुर्थ (द्वितीय) अध्यायविषै दिखाये। तातें[881] ये सर्व कल्पना असत्य हैं॥ ॥ तबि[882] इनका कौंन भेद है? उपाधिकृत[883] भेद है। ऐसें हम कहतेहैं। स्वतः इनका भेद वा अभे-द नहीं है। काहेतें सैंधवघनकी[884] न्यांई प्रज्ञान-घन एकरस स्वभाववाला होनेतें औ "अपूर्व[885] अ-नपर अनंतर (अकारण) अबाह्य (अकार्य) यह आत्मा ब्रह्म है" इस श्रुतितें औ "बाह्य अभ्यं-तर सहित अज है" ऐसें अथर्वण वेदविषै कहा

---

८८० अवशिष्ट दो पक्षका निराकरण पूर्वहीं प्रवर्त्त भया है। ताकूं स्मरण करावे हैं॥

८८१ परपक्षके निराकरणकूं उपसंहार करैहैं ॥

८८२ परकीय कल्पनाके असंभव हुये प्रतिवादी पूंछताहै ॥

८८३ सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

८८४ आत्माविषै स्वतः विशेषके अभावमैं हेतुकूं कहैहैं ॥

८८५ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥ इहां:—बाह्य कहिये कार्य। आभ्यंतर कहिये कारण। तिन दोनूं कलिपतोंकरि स-हित अधिष्ठान होनेकरि (सत्तास्फूर्तिके प्रदानताकरि) ब्रह्म वर्त्तता है। स्वभावतें तो जन्मादि सर्व विक्रियाकरि शून्य कूटस्थरूप है। ताकी न्यांई। यह अथर्वण श्रुतिका अर्थ है॥

है । ^{८८६}तातैं निरुपाधिक आत्माकूं निरुपाख्य (मनवाणीका अगोचर) होनेतैं निर्विशेष होनेतैं औ एक होनेतैं "नेति नेति" ऐसा व्यपदेश होवैहै ॥ अविद्याँ काम अरु कर्मकरि विशिष्ट कार्यकरणरूप उपाधिवाला आत्मा संसारी जीव कहियेहै ॥ नित्यै निरतिशय ज्ञानशक्तिरूप उपाधिवाला आत्मा अंतर्यामी ईश्वर कहियेहै ॥ ^{८८९}सोई निरुपाधिक केवल शुद्ध हुया अ-

---

८८६ आत्माके स्वतः विशेषके अनिश्चयके हुये फलितकूं कहैहैं ॥ इहां निरुपाख्यपना कहिये वाणीनका औ मनका अगोचरपना । तहां निर्विशेषपना औ एकपना हेतु है । निरुपाधिककूं । ऐसैं निर्विशेषपनैकूं साधनेकूं कहा औ तहां वीप्सारूप वाक्य प्रमाण किया ॥

८८७ फेरहीं इस वस्तुका संसारीपना कैसैं है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तिनकरि विशिष्ट जो कार्य करण । तिस उपाधिकरि उपहित परमात्मा जीव औ संसारी इस व्यपदेशका भागी होवैहै ॥

८८८ तथापि ताका अंतर्यामीपना कैसैं है ? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नित्य निरतिशय सर्वत्र अप्रतिबद्धज्ञान है । तिस सत्वगुणके परिणामके हुये सत्वप्रधान माया शक्तिरूप उपाधि होवैहै । तिसकरि विशिष्ट हुया आत्मा ईश्वर अरु अंतर्यामी कहिये है ॥

८८९ तब तिसविषै अक्षर शब्दकी प्रवृत्ति कैसैं है ? तहां

पने स्वभावकरि अक्षर परमात्मा कहियेहै ॥ [८९०] तैसें हिरण्यगर्भ अव्याकृत देवता जाति पिंड मनुष्य तिर्यक् प्रेत आदिक कार्यकारणरूप उपाधिनकरि विशिष्ट हुया तिस नामवाला तिस रूपवाला होवैहै ॥ [८९१] तैसें "सो चलता है। सो न चलता है" ऐसें पूर्वहीं व्याख्यान किया है। [८९२] तैसें "यह तेरा आत्मा है। यह सर्व भूतनका अंतरात्मा है। यह सर्व भूतनविषै गूढ है। सो तूं हैं। मैंहीं यह सर्वहूं। आत्माहीं यह सर्व है। इसतें अन्य द्रष्टा नहीं है" इत्यादि श्रुतियां विरोधकूं पावतीयां नहीं। [८९३] अन्य कल्पनाओंविषै

कहैहैं ॥ इहां निरुपाधिपना शुद्धताविषै हेतु है । केवलपना अद्वयताविषै हेतु है ॥

८९० तथापि तिसविषै हिरण्यगर्भ आदिक शब्दनकी प्रवृत्ति कैसें है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

८९१ जैसें एकहीं परमात्माविषै कल्पित उपाधिका किया नानात्व है। तैसें "सो चलता है। सो नहीं चलता है" इत्यादि वाक्यकूं आश्रय करिके पूर्वहीं कहा है। ऐसें कहैहैं ॥

८९२ कल्पनाकरि परमात्माका नानात्व है। वस्तुतैं तो एकरसता है। इस अर्थविषै श्रुतिनकूं उदाहरण करैहैं ॥

८९३ अवस्था। शक्ति। विकार। अवयव। पक्षविषैबी उक्त श्रुतिनके संभवकूं आशंका करिके। कहैहैं ॥

ये श्रुतियां नहीं गमन करैहैं ॥ [८९४]तौतैं उपाधिके भेदकरिहीं इनका भेद है अन्यथा नहीं । काहेतैं "[८९५]एकेही अद्वितीय है" ऐसैं सर्व उपनिषदनविषै अवधारण (निश्चय)तैं ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायस्याष्टममक्षर-ब्राह्मणं
समाप्तम् ॥ ८ ॥

---

८९४ औपाधिक अंतर्यामी आदिकनका भेद है । स्वाभाविक नहीं ऐसैं उपसंहार करैहैं ॥

८९५ स्वतः वस्तुविषै भेद नहीं है किंतु एकरसहीं है इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायां
तृतीयाध्यायगत-अष्टम ब्राह्मणस्य टिप्पणं
समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषदस्तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्र-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्रभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

अर्थः—अनंतर याकूं विदग्ध शाकल्य

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

टीकाः—[८९६]अनंतर याकूं विदग्ध शाकल्य पूंछ-

अथ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यभाषादीपिकायास्तृतीयाध्यायगत-नवम-ब्राह्मणस्य टिप्पणं प्रारभ्यते ॥ ९ ॥

८९६ अन्य ब्राह्मणकूं उत्थापन करैहैं ॥ इहांः—गार्गीके प्रश्नके निर्णीत हुये तिसकरि ब्रह्मकथनके प्रति याके तुल्य नहीं है । ऐसैं सर्व ब्रह्मणोंके प्रति कथनके अनंतर अथशब्दका अर्थ है ॥

च्छ । कति देवा याज्ञवल्क्येति । स है-
तयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदे-
वस्य निविद्युच्यन्ते ॥ त्रयश्च त्री च श-
ता । त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति हो-

पूंछताभया:—हे याज्ञवल्क्य ! कितने देव
हैं? ऐसें ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य इसीहीं
निवित्करि प्राप्त होताभया । जितने वै-
श्वदेवकी निवित्विषै कहियेहैं [तितने दे-
व हैं] ॥ तीन औ तीन शत । तीन औ तीन
सहस्र [देव] हैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ

ताभया:—[८९७]पृथिवी आदिकनकी सूक्ष्मताके तार-
तम्यके क्रमकरि पूर्व पूर्वके उत्तरविषै ओत प्रो-
तभावकूं कथन करतेहुये सर्वांतरब्रह्मकूं प्रका-
शित करतेभये औ ति[८९८]सैं ब्रह्मका व्याकृतविषय-

---

८९७ संगतिकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो साक्षात् । इत्यादि प्रस्तुत करिके सर्वांतरताके निरूपणद्वारा साक्षीभाव आदिक आर्थिक अर्थ तीन ब्राह्मणविषै निरूपण किया ॥

८९८ अंतर्यामी ब्राह्मणविषै आगेतैं निर्देशकीये अर्थकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां:—नामरूपकरि व्याकृत विषय जो द्वैत

वाच ॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति । त्र-
यस्त्रिंशदित्योमिति होवाच ॥ कत्येव
देवा याज्ञवल्क्येति । षडित्योमिति हो-

ऐसैं कहता भया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितने-
हीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य क-
हैहैं:–] तेंतीस हैं । ऐसैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ
ऐसैं कहताभया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं
देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैं:–]
षट् हैं । ऐसैं ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ ऐसैं कह-

विषै सूत्रके भेदनमैं नियंतापना कहा । ८९९व्यां-
कृतविषयविषै । अतिशय स्पष्ट लिंग है [यातैं
तहांहीं नियंतापना कहा] ॥ ९००तिसीहीं ब्रह्मका

प्रपंच । तिसविषै सूत्रके भेद जे पृथिवी आदिक । तिन निय-
म्योंविषै ताका नियंतापना कहा । ऐसैं योजना है ॥

८९९ व्याकृतविषयविषै नियंतापना क्यूं कहा ? यह शं-
का भई । तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—तहां जातैं पर-
तंत्र पृथिवी आदिकका ग्रहण नियम्यताविषै अत्यंत स्पष्ट
लिंग है । यातैं तहांहीं नियंतापना कहा ॥

९०० वृत्तकूं अनुवाद करिके । उत्तरब्राह्मणके तात्पर्यकूं
कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—नियमन करने योग्य देवताओंके
भेदनका प्राणपर्यंत संकोच है औ अनंततापर्यंत विकास

वाच ॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति। त्रय इत्योमिति होवाच ॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति। द्वावित्योमिति होवाच ॥

ताभया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसें ॥ ॥ तीन हैं ऐसें। [याज्ञवल्क्य कहतेभये] ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ ऐसें कहताभया ॥ हे याज्ञवल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसें ॥ ॥ दो हैं। ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ [शाकल्य] ॐ ऐसें कहताभया ॥ हे याज्ञ-

नियंतव्य देवताभेदनके संकोचरूप द्वारकरि सक्षात्पना अरु अपरोक्षपना जाननेकूं योग्य है। ऐसें करिके तिस अर्थ शाकल्य ब्राह्मण आरंभ करिये है ॥ ॥ [९०१] अनंतर याकूं नामकरि वि-

है। तिसद्वारा प्रकृतहीं ब्रह्मका साक्षात्पना औ अपरोक्षपना “ सो यह नेति नेति आत्मा है ” इत्यादि वाक्यकरि जान-नेकूं योग्य है। इस अभिप्राय करिके। प्रथम देवताओंके सं-कोच अरु विकासकी उक्ति है। अनंतर वस्तुका निर्देश है। ऐसें इस अर्थवाला यह ब्राह्मण है ॥

९०१ ब्राह्मणके आरंभकूंहीं कहिके। ताके अक्षरनकूं व्या-ख्यान करैहैं ॥ इहां:—निवित्‌विषै सुनिये हैं। तितने देव। ऐसें उत्तरविषै संबंध है ॥

कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्द्ध इत्यो-
मिति होवा ॥ कत्येव देवा याज्ञव-
ल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच ॥ कतमे

वल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥ अ-
ध्यर्ध (दीड) है। ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥
[शाकल्य] ॐ ऐसैं कहताभया ॥ हे याज्ञ-
वल्क्य ! कितनेहीं देव हैं ? ऐसैं ॥ ॥
एक है। ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ [शाक-

दग्ध ऐसा शकलका अपत्य शाकल्य पूंछता-
भयाः—हे याज्ञवल्क्य ? कितनी संख्यावा-
ले देव हैं ! ऐसैं ॥ ॥ सो याज्ञवल्क्य नि-
श्चयकरि इसीहीं वक्ष्यमाण निवित्करि प्राप्त
होताभया ॥ ॥ शाकल्यमुनि । संख्याविषै सं-
ख्याकूं पूंछताभयाः—जितने (जितनी संख्या-
वाले) देव वैश्वदेव नामक शस्त्रकी निवित्-
विषै [निवित्[९०२] नाम ? देवता[९०३]की संख्याके वाचक

---

९०२ कौन यह निवित् है ? ऐसैं प्रतिवादी पूंछताहै॥
९०३ सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

ते । त्रयश्च त्री च शता । त्रयश्च त्री च सहस्रेति ॥ १ ॥

ल्य] ॐ ऐसें कहताभया ॥ कौंनसे वे तीन औ तीन शत । तीन औ तीन सहस्र [देव] हैं ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ १ ॥

मंत्रनके पद । कितनेक वैश्वदेव नामक शस्त्रविषै कथन करिये हैं । वे निवित् संज्ञक हैं ॥ तिसैं[९०४] निवित्विषै जितने देव] सुनियेहैं तितने देव कहिये हैं ऐसैं ॥ [९०५] ॥ कौंन फेर सो निवित् है ? यातें वे निवित्रूप पद दिखाईयेहैं:—तीनसैं अरु तीन औ फेरबी ऐसैं[९०६] तीन सहस्र अरु तीन । इतने देव हैं ऐसैं ॥ ॥ शाकल्यबी ॐ (सत्य) ऐसैं कहताभया ॥ ऐसैं इनकी म-

९०४ पदार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कथन करैहैं ॥

९०५ यद्यपि भाष्यविषै "निवित्" व्याख्यान करी । तथापि प्रश्नद्वारा श्रुतिकरि ताकूं व्याख्यान करैहैं ॥

९०६ अनुज्ञा वाक्यकूं व्याख्यान करैहैं ॥ इहां मध्यमसंख्या तीन हजार तीनसैं औ छ (३३०६) ॥

स होवाच महिमान एवैषामेते त्रय-

अर्थः—सो (याज्ञवल्क्य) कहतेभयेः—इनके महिमा (विभूतियां)हीं हैं। ये तेंती-

ध्यम संख्या सम्स्कृताकरि जानी ॥ फेर[907] तिन देवनकीहीं संकोचरूप विषयवाली संख्याकूं शाकल्य पूंछता हैः—हे याज्ञवल्क्य! कितनेहीं देव हैं? ऐसें ॥ ॥ त्रयस्त्रिंशत् । षट् । तीन । दो । अध्यर्ध (दीड) । एक ॥ ऐसें दे-[908]वताके संकोच अरु विकासकूं विषय करनेवाली संख्याकूं पूंछिके । फेर संख्येयके स्वरूपकूं शाकल्य पूंछता हैः—कौंनसे वे तीनसें औ तीन अरु तीन सहस्र औ तीन देव हैं? ॥ १ ॥

टीकाः—सो याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—इन तेंतीस देवनके ये तीनसें तीन। इत्यादिक बडी विभूतियां हैं। [909]परमार्थतें तो तेंतीसहीं देव

---

९०७ कितनेहीं । इत्यादि प्रश्नोंकी पूर्व प्रश्नकरि पुनरुक्तिकूं आशंका करिके परिहार करैहैं ॥

९०८ कौंनसें वे तीन । इत्यादि प्रश्नके विषयके भेदकूं दिखावै हैं ॥

९०९ तब कितने देव होवैहैं? तहां कहैहैं ॥

स्त्रिꣳशत्त्वेव देवा इति । कतमे ते त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्यास्त एकत्रिꣳशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिꣳशा इति ॥ २ ॥

सहीं देव हैं । ऐसें ॥ ॥ कौंनसे वे तेंतीस हैं ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैं:—] अष्ट वसु । एकादश रुद्र । द्वादश आदित्य । वे एकतीस हैं । औ इंद्र अरु प्रजापति [मिलिके] तेंतीस हैं । ऐसें [कहते भये] ॥ २ ॥

हैं ऐसें ॥ ॥ कौंनसे वे तेंतीस[९१०] देव हैं ? यह शंकाभयी । यातें कहिये हैं:—अष्ट वसु । एकादश रुद्र । द्वादश आदित्य । वे एकत्रिंशत् औ इंद्र औ प्रजापति ॥ ॥ तीन औ तीश । ये दो शब्द तेंतीसके पूरण हैं ॥२॥

---

९१० तेंतीस (३३) देवनके स्वरूपकूं प्रश्नद्वारा निर्धार करैहैं ॥

कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षश्चादित्यश्च द्यौश्च चंद्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्व्वं हितमिति तस्माद्वसव इति ॥ ३ ॥

अर्थः—कौंनसे वसु हैं? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी औ वायु औ अंतरिक्ष औ आदित्य औ स्वर्ग औ चंद्रमा औ नक्षत्र। ये वसु हैं ॥ इनविषे जातें यह सर्व वसु स्थित है ऐसें है। तातें वसु हैं। ऐसें [कहतेभये] ॥ ३ ॥

टीकाः—[९११]कौंनसें वसु हैं? ऐसें तिनका स्वरूप प्रत्येक पूंछीये है ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी। ऐसें अग्निसें आदिलेके नक्षत्रपर्यंत ये वसु । [९१२]प्राणिनके कर्मफलके आश्रय होनेकरि कार्यक-

९११ उत्तर प्रश्नके प्रपंचके प्रतीककूं ग्रहण करिके ताके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिन वसुआदिकनके मध्य प्रत्येक वस्तु आदिकके त्रयविषे प्रतिगण हैं । इंद्रविषे औ प्रजापतिविषै एक एकका है ॥

९१२ तिनके वसुपनेकूं "इनविषे जातैं" इत्यादि वाक्यके आश्रयकरि स्पष्ट करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—तिनके

कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदाऽस्माच्छरीरान्म-

अर्थ—कौंनसे रुद्र हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ दश ये पुरुषविषे प्राण (इंद्रिय) हैं एकादश (ग्यारवां) आत्मा है ॥ वे जब मर्त्यरूप इस शरीरतें उत्क्रमण करैहैं

रण संघातरूपसैं तिनके निवासरूप होनेकरि परिणामकूं पावतेहुये इस सर्व जगत्कूं वास करावते हैं औ आप वसते हैं ॥ वे जौंतैं[913] वास करावते हैं । तातैं वसु हैं इति ॥ ३ ॥

टीकाः—कौंनसे रुद्र हैं ? ऐसैं[914] [पूंछताभया] ॥ ॥ दश ये पुरुषविषे कर्मेंद्रिय अरु ज्ञानेंद्रियरूप प्राण हैं औ आत्मा (मन) एकाद-

कर्मके औ ताके फलके आश्रय होनेकरि औ तिनहींका निवास होनेकरि शरीर इंद्रियके समुदायके आकारसैं विपरिणामवाले हुये अग्नि आदिक इस जगत्कूं आश्रय करैहैं औ आप तहां वसते हैं । तातैं तिनका वसुपना युक्त है ॥

९१३ वसुपनैकूं निगमन करैहैं ॥

९१४ प्राणशब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

र्त्याद्युत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति । तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ४ ॥

कतम आदित्या इति । द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ

तब रुदन करावै हैं ॥ तहां जातैं रोदन करावै हैं । तातैं रुद्र हैं ऐसैं [कहतेभये] ॥ ४ ॥

अर्थः—कौंनसे आदित्य हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ संवत्सरके द्वादश मास प्रसिद्ध हैं । ये आदित्य हैं ॥ ये जातैं इस

श (एकादशनका पूरण) हैं ॥ वे[९१५] ये प्राण जब प्राणीनके कर्मफलके उपभोगके क्षयभये इस मरने योग्य शरीरतैं उत्क्रमण करैहैं (निकसते हैं) तब रोदन करावते हैं ॥ तहां (मरणकालविषै) जातैं वे संबंधिनकूं रोदन करावते हैं । तातैं रुद्र हैं इति ॥ ४ ॥

टीकाः—कौंनसे आदित्य हैं ? ऐसैं [पूंछ-

९१५ "ये जब इसतैं" इत्यादि वाक्यकूं अनुसरीके तिनके रुद्रपनैकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां मरण काल "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है ॥

सर्व्वमाददाना यन्ति ते यदिदꣳसर्व्वमाददाना यन्ति । तस्मादादित्या इति ॥ ५ ॥

सर्वकूं आदान करते हुये गमन करैहैं । जातैं आदान करते हुये जाते हैं तातैं आदित्य हैं । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ५ ॥

ताभया] ॥ ॥ द्वादशहीं मास संवत्सररूप कालके अवयव प्रसिद्ध हैं । ये आदित्य हैं ॥ ॥ कैसैं[९१६] किः—वे जातैं[९१७] पुनः पुनः परिवर्त्तमानहुये प्राणिनके आयुषनकूं औ कर्मफलकूं ग्रहण करतेहुये गमन करैहैं । जातैं ऐसैं इस सर्वकूं ग्रहण करतेहुये जाते हैं । तातैं आदित्य हैं इति ॥ ५ ॥

९१६ ननु तिनका आदित्यपना अप्रसिद्ध है ? इसप्रकार प्रतिवादी शंका करैहै ॥

९१७ "ये जातैं" इत्यादि वाक्यकरि सिद्धांती उत्तरकूं कहैहैं ॥

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति । स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति ॥ कतमस्तनयित्नुरित्यशनिरिति । कतमो यज्ञ इति, पशव इति ॥ ६ ॥

अर्थः—कौंनसा इंद्र है ? कौंनसा प्रजापति है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ स्तनयित्नुहीं इंद्र है । यज्ञ प्रजापति है। ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ कौंनसा स्तनयित्नु है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ अशनि (बलरूप वज्र) है। ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ कौंनसा यज्ञ है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ पशु हैं। ऐसें [कहतेभये] ॥ ६ ॥

टीकाः—कौंनसा इंद्र है। कौंनसा प्रजापति है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ स्तनयित्नुहीं इंद्र है। यज्ञ प्रजापति है इति ॥ ॥ कौंनसा स्तनयित्नु है ? ऐसें [पूंछताभया] अशनि। ऐसें [कहतेभये]। अशनि कहिये वज्र[९१८] । याकूं

९१८ प्रसिद्ध वज्रकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

कतमे षडित्यग्निश्च पृथिवी च वायु-

अर्थः—कौंनसे षट् [देव] हैं ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ अग्नि औ पृथिवी औ

वीर्य अरु बलबी[९१९] कहते हैं । जो[९२०] (जिसतैं) प्राणीनकूं प्रमापण (हिंसन) करैहै । सो इंद्र है । [९२१]जौतैं इंद्रका सो कर्म है ॥ ॥ कौंनसा यज्ञ है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ पशु हैं । ऐसें [कहतेभये] ॥ [९२२]जौतैं यज्ञके साधन पशु हैं । [९२३]यज्ञकूं अरूप होनेतैं औ पशु साधनरूप आश्रयवाला होनेतैं पशु यज्ञ ऐसें कहियेहैं ॥ ६ ॥

टीकाः—कौंनसे षट् देव हैं ? ऐसें [पूंछ-

---

९१९ ताहीकूं संघातविषै स्थितहोनेकरि स्पष्ट करैहैं ॥

९२० सो क्या है ? याके उत्तरकूं कहैहैं ॥

९२१ ता (बल)का इंद्रपना कैसें है ? उपचारतैं है । ऐसें कहैहैं ॥

९२२ पशुनका यज्ञपना अप्रसिद्ध है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

९२३ कारणविषै कार्यके उपचारकूं साधते हैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अमूर्त्तरूप होनेतैं साधनव्यतिरिक्त रूपके अभावतैं औ यज्ञकूं पशुरूप आश्रयवाला होनेतैं पशु “यज्ञ” ऐसें कहिये है ॥

श्चान्तरिक्षञ्चादित्यश्च द्यौश्चैते षडेते हीदꣳ सर्व्वꣳ षडिति ॥ ७ ॥

कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो

वायु औ अंतरिक्ष औ आदित्य औ स्वर्ग। ये षट् हैं ॥ जातें यह सर्व ये षट् होवैहैं। ऐसें [कहतेभये] ॥ ७ ॥

अर्थः—कौंनसे वे तीन देव हैं ? ऐसें

ताभया] ॥ ॥ वेहीं अग्नि आदिक वसुरूपताकरि पठनकिये ॥ तिनमैं चंद्रमा अरु नक्षत्रनकूं वर्जनाकरिके षट् (षट् संख्याविशिष्ट) होवैहैं ये [९२४]जातें तेंतीस आदिक जो कहा । यह सर्व येहीं षट् होवैहैं । [९२५]सर्वहीं वसुआदिकका विस्तर इन षट्‌विषैहीं अंतर्भावकूं पावताहै । यह अर्थ है ॥ ७ ॥

टीकाः—कौंनसें वे तीन देव हैं ? ऐसें [पूं-

---

९२४ "ये जातैं" इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां—जो तेंतीस आदिक कहा । सो सर्व येहीं हैं । जातैं ये षट् होवैहैं । ऐसैं योजना है ॥

९२५ अक्षरार्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

लोका एषु हीमे सर्व्वे देवा इति॥ कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नञ्चैव प्राणश्चेति ॥ कतमोऽध्यर्द्ध इति योऽयं पवत इति ॥ ८ ॥

[पूंछताभया] ॥ ॥ येही तीन लोक हैं । जातैं इनहुंविषै ये सर्व देव हैं ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ कौंनसे वे दो देव हैं? ऐसैं [पूंछताभया]॥ ॥ अन्न औ प्राण ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ कौंनसा अध्यर्द्ध (सार्द्धैक) [देव] है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ जो यह (वायु) पवता है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ ८ ॥

छताभया] ॥ ॥ येहीं तीन लोक हैं । ऐसैं [कहतेभये] । पृथिवीकूं अरु अग्निकूं एक करिके एक देव है । अंतरिक्षकूं औ वायुकूं एककरिके द्वितीय देव है । स्वर्गकूं औ आदित्यकूं एककरिके तृतीय है । वेई तीन देव हैं इति ॥ औ [९२६]जातैं इन तीन देवनविषै सर्व देव अंत-

९२६ प्रतिज्ञाकी समाप्तिविषै इति शब्द है । तिसविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथ-

अर्थः–तहां प्रश्न करैहैंः–जो यह (वायु) एकहीं पवताहै औ अध्यर्द्ध किसकीन्यांई

भावकूं पावते हैं। तिसकरि येही तीन देव हैं। येहँ[९२७] कितनेक नैरुक्तनका पक्ष है ॥ ॥ कौंनसे-वे दो देव हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ अन्न औ प्राण। ये दो देव हैं। इन दोनूंविषे सर्व उक्त देवनका अंतर्भाव है ॥ ॥ कौंनसा अ-ध्यर्ध (दीड देव) है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ जो यह वायु पवताहै ॥ ८ ॥

टीकाः–तहां[९२८] आशंका करैहैंः–जो यह वायु एकहीं पवताहै औ अध्यर्ध किसकी न्यांई है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ जो ईसैं[९२९]-

---

९२७ देवलक्षणके करनेवाले किनहुका यह पक्ष दिखाया। अन्योंका तो तीन लोक हैं। याका यथाश्रुत अर्थ है। ऐसैं कहैहैं ॥

९२८ एकके अध्यर्द्ध (सार्धैक) पनैके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहै ॥ इहां इव शब्द तो कैसैं है। इसठिकाने संबंधकूं पावता है ॥

९२९ सिद्धांती परिहार करैहैं ॥

मध्यर्द्ध इति । यदस्मिन्निदꣳ सर्व्वमध्याध्नोंत्तेनाध्यर्द्ध इति ॥ कतम एको देव

है? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ जातैं इस (वायु)के होते यह सर्व ऋधि (वृद्धि)कूं पावताहै । तिसकरि अध्यर्द्ध है ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ कौंनसा एक देव है? ऐसैं [पूंछता-

विषै यह सर्व इस वायुके होते ऋधिकूं पावताहै । तिसकरि वायु अध्यर्ध है इति ॥ ॥ कौंनसा एक देव है? ऐसैं [पूंछताभया]॥ प्राण है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ सो प्राण ब्रह्म है । काहेतैं [९३०] सर्व देवस्वरूप होनेतैं महद्ब्रह्मरूप है । तिस ब्रह्मकूं "[९३१] त्यंत्" ऐसैं परोक्षके वाचक शब्दकरि कहतेहैं ॥ ॥ [९३२] देवनेका यह

---

९३० प्राणके ब्रह्मभावकूं साधते हैं ॥

९३१ ताकी परोक्षताकी प्रतिपत्तिविषै प्रयत्नके गौरवरूप अर्थकूं कथन करैहैं ॥

९३२ उक्त अर्थकूं प्रतिपत्तिकी सुकरता अर्थ संग्रह करैहैं ॥ इहां एकत्व कहिये प्राणविषै पर्यवसान औ नानात्व कहिये अनंतता ॥

इति प्राण इति । स ब्रह्म त्यदित्याचक्ष-
ते ॥ ९ ॥

भया] ॥ ॥ प्राण है । ऐसैं ॥ सो (प्राण)
ब्रह्म त्यत् (परोक्ष) है । ऐसैं कहतेहैं ॥ ९ ॥

एकत्व औ नानात्व है । अनंत[९३३] देवनका निवित्
संख्याविशिष्ट देवनविषै अंतर्भाव है । एकै[९३४] प्रा-
णविषै पर्यवसान यावत् होवै तावत् पर्यंत उत्त-
रोत्तर तेंतीस आदिक देवनविषै तिनकाबी अं-
तर्भाव है । औ एकै[९३५] प्राणकाहीं सर्व अनंत सं-
ख्याकरि विस्तर है । ऐसैं[९३६] एक औ अनंत औ
अवांतर संख्याविशिष्ट प्राणहीं है ॥ औ तहां[९३७]

---

९३३ ननु तीन हजार तीनसैं औ छ संख्यावाले देवनकूं इहां उक्त होनेतैं तिनकी अनंतता कैसैं होवैहै ? यह आशंका करिके । शत औ सहस्र शब्दकरि अनंतताबी कहीहीं है । इस आशयकरि कहैहैं ॥

९३४ एक प्राणविषै पर्यवसान यावत् होवैहै तावत् पर्यंत उत्तर तेंतीस आदिकनविषै तिनकाबी अंतर्भाव है । ऐसैं कहैहैं ॥

९३५ प्राणका किसविषै अंतर्भाव है ? तहां कहैहैं ॥

९३६ संगृहीत अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

९३७ एकके अनेक प्रकारसैं होनेविषै क्या निमित्त है ?

पृथिव्येव यस्याऽऽयतनमाग्निर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्व-

---

अर्थः—पृथिवीहीं जाका आयतन है। अग्नि लोक है। मनो ज्योति है॥ जो तिस

(उक्तरीतिकरि प्राणस्वरूपके स्थितहुये) प्रकृत प्राणरूपहीं एक देवका अधिकारके भेदतें नाम-रूप कर्म गुण अरु शक्तिका भेद है ॥ ९ ॥

टीकाः—[९३८]अब तिसीहीं प्राणरूप ब्रह्मका फेर अष्टप्रकारका भेद। ध्यान अर्थ उपदेश करिये

यह आशंका करिके। कहैहैं ॥ इहांः—उक्तरीतिकरि प्राण-स्वरूपके स्थित हुये। यह "तहां" इस सप्तमीका अर्थ है औ एक देवका। याका प्रकृत प्राणकाहीं अह अर्थ है औ प्राणि-नके ज्ञानविषै औ कर्मविषै अधिकार जो स्वामीपना। ताका भेद अधिकारभेद है। तिस निमित्तवाला होनेकरि देवके अनेक संस्थानोंके परिणामकी सिद्धि है। जातें प्राणी जे हैं वे ज्ञानकूं औ कर्मकूं अनुष्ठान करिके अग्नि आदिरूप सूत्रां-शकूं पावते हैं। तिसकरि युक्त उक्तप्रकारका भेद है। यह अर्थ है ॥

९३८ संकोच अरु विकासकरि प्राणस्वरूपकी उक्तिके अनंतर अवसरकी प्राप्ति अब कहियेहै ॥ इहां उपदेश क-रियेहै। ध्यान अर्थ। यह शेष है ॥

स्याऽऽत्मनः परायणꣳस वै वेदिता स्या-
द्याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषꣳसर्व-

पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै ।
सो वेदिता (पंडित) होवैहै॥हे याज्ञवल्क्य!

है:–पृथिवीहीं[939] जिस देवका आयतन (आ-
श्रय) है। अग्नि जाका लोक है। लोकता
है (देखताहै) इसकरि सो लोक है। अग्निक-
रि देखता है यह अर्थ है ॥ मनोज्योति है ।
मनरूप ज्योतिकरि संकल्प विकल्पादि कार्यकूं
जो करताहै। सो यह मनोज्योति है[940] ॥ पृथि-
वीरूप शरीरवाला। अग्निरूप दर्शनवाला । म-
नकरि संकल्पका कर्त्ता । पृथिवीका अभिमानी।
कार्यकरणके संघातवाला । देव है। यह अर्थ
है ॥ ॥ जो इस प्रकारके विशेषणवाले इस
सर्व आध्यात्मिक कार्यकरणके संघातरूप आ-

---

९३९ भिन्न भिन्न अवयवकरि वाक्यकूं जोडते हैं ॥

९४० मिलित तीन वाक्यके अर्थकूं कथन करैहैं ॥ इहां "वै" शब्द अवधारणके अर्थ है औ तिस परायणकूं जोई जानै सोई वेदिता होवै। ऐसैं संबंध है ॥

स्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ? य ए-
वायꣳशारीरः पुरुषः स एष वदैव शाक-

मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जा-
नताहूं। जिसकूं तूं कहताहैं? ॥ ॥ [याज्ञव-
ल्क्य कहैहैंः—]। जोइ यह शारीर पुरुष है सो

त्माके परायण (उत्कृष्ट आश्रय) रूप कहिये
[९४१] मांतातैं जन्य त्वचा मांस अरु रुधिररूप क्षेत्र-
स्थानीयकरि बीजस्थानीय पितातैं जन्य अस्थि-
मज्जा अरु शुक्ररूप कारणात्माके पर अयनके
रूप पुरुषकूं जानै। सोई [९४२] वेदिता होवै। जो
याकूं ऐसैं जानता है। सोई वेदिता (पंडित)

---

९४१ अब तिसरूपकरि पृथिवी देवकी कार्यकरणके सं-
घातके प्रति आश्रयता है? सो कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—
पृथिवीकूं मातृ शब्दकी वाच्य होनेतैं जोई देव मैं पृथिवीहूं
ऐसैं मानता है। सोई शरीरके आरंभक मातृजन्य तीन को-
शका अभिमानी होनेकरि वर्त्तता है। तिसप्रकार हुये ताका
तिसरूपकरि पितृजन्य तीन कोशरूप कार्यके प्रति औ लिंग-
रूप करणके प्रति आश्रयता संभवै है ॥

९४२ पृथिवी देवके परायणपनेकूं उपपादन करिके ।
अनंतर वाक्यकूं उठायके व्याख्यान करैहैं ॥

ल्य! तस्या का देवतेत्यमृतमिति हो-
वाच॥ १०॥

यह है ॥ हे शाकल्य! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥
ता (शारीर देव)की कौंन देवता है ? ऐसें
[पूंछताभया] ॥ ॥ अमृत (भुक्तान्नरस)
है। ऐसें कहतेभये ॥ १० ॥

होवै यह अभिप्राय है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य[९४३]!
तूं ता (पुरुष)कूं नहीं जानताहुयाहीं पंडिताभि-
मानी हैं। यह अभिप्राय है ॥ जब तिसके वि-
ज्ञानविषै पांडित्य प्राप्त होवैहै। तो मैं तिस पु-
रुषकूं जानताहूं। जाकूं तूं सर्व आत्माका
परायण कहताहैं । ताकूं मैं जानताहूं ॥ तहां
शाकल्यका वचन देखनेकूं योग्य हैः—हे याज्ञव-
ल्क्य! जैवैं[९४४] तूं जानताहैं। तब तिस पुरुषकूं क-

९४३ तब मुजकूं क्या आया ? यह आशंका करिके।
कहैहैं ॥

९४४ सो पुरुष जिस विशेषणकरि विशिष्ट है उच्यमान
तिस विशेषणकूं सुन। ऐसें कहिके सोई कहैहैं ॥ इहांः—
शारीरहीं पंचभूतात्मक है। तहां पार्थिव अंशसैं जनकता-
करि जो स्थित होवै सो शारीर है। यह अर्थ है ॥

हिदे किस विशेषणवाला यह है? तहां कहैहैं:—श्रवणकर। जोई (जिस विशेषणवाला) है। सोई यह शारीर पार्थिव अंश है। शरीरविषे होनेवाला शारीर कहियेहै। [९४५] मांतातैं जन्य तीन कोशरूप है। यह अर्थ है। सो यह देव है। जो तुज (शाकल्य) नैं पूंछया है॥ ॥ हे शाकल्य! [९४६] तहां वक्तव्य विशेषणांतर क्या है। सो कथनकर। अर्थ यह जो पूंछै [९४७] ॥ ॥ सोई (शाकल्य) प्रक्षोभित होयके तोत्र ([९४८] चाबुक) करि पीडित गजकी न्यांई क्रोधके वशकूं प्राप्तहुया कहैहैं:—तिस शारीर देवकी कौंन देवता है? [९४९] [जो जिसतैं निष्पन्न होवैहे। सो ताकी देवता इस प्रकरणविषै विवक्षित है] अमृत है। ऐ-

---

९४५ ताके जीवपनेकूं निवारते हैं ॥

९४६ पृथिवी देवके निर्णीतपनैकी शंकाकूं निवारते हैं ॥

९४७ याज्ञवल्क्य वक्ताहुया पूंछनेवाले शाकल्यके प्रति कहिदे इसप्रकार कैसें कथन करैहैं? तहां कहैहैं ॥

९४८ क्षोभितके अमर्ष (क्रोध)की वशगता (वशकूं प्राप्त होने)विषै दृष्टांतकूं कहैहैं ॥

९४९ प्रकरणगत देवता शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥ इहां निष्पत्तिका कर्त्ता पुरुष षष्ठीकरि कहिये है ॥

काम एव यस्याऽऽयतनꣳ हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्या-

अर्थः—कामहीं जाका आयतन है । हृदय लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिससैं याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ इहां "अमृत" ऐसैं भुक्त अन्नका रस कहियेहै। जो भुक्त अन्नका रस मातृजन्य लोहितकी निष्पत्तिका हेतु है । जातैं तिसं[९५०] अन्नरसतैं स्त्रीकरि आश्रित लोहित (रक्त) निष्पन्न होवैहै औ[९५१] तिसतैं लोहितमय शरीर बीजका आश्रय निष्पन्न होवैहै ॥ अन्य[९५२] अर्थ समान है ॥ १० ॥

टीकाः—कामहीं[९५३] जिस देवका आयतन है।

९५० लोहितके निष्पत्तिकी हेतुताकूं इहां रसके अनुभवकरि साधते हैं ॥

९५१ ताके कार्यकूं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—अद्वितीय पदार्थविषै स्थित लोहिततैं ताका कार्य त्वचा मांस अरु रुधिररूप बीज (अस्थि मज्जा अरु शुक्ररूप)का आश्रयभूत होवैहै ॥

९५२ पर्यायोंका सप्तक आद्यपर्यायकरि तुल्य अर्थवाला होनेतैं पृथक् व्याख्यानकी अपेक्षावाला नहीं । ऐसैं कहैहैं ॥

९५३ उत्तर पर्यायोंविषै जिन पदनके अर्थका भेद है तिनके तिस पालन अर्थ प्रतीककूं ग्रहण करैहैं ॥

त्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य एवायं काममयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? स्त्रिय इति होवाच ॥ ११ ॥

पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता है। सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं। जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैं:–] जोई यह काममय पुरुष है। सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ स्त्रियां हैं। ऐसैं कहतेभये ॥ ११ ॥

स्त्रीके संगका अभिलाष काम है। अर्थ यह जो [९५४] कांमरूप शरीरवाला है ॥ हृदय जाका लोक

९५४ वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥ इहां सो हृदयरूप दर्शनवाला मनकारि संकलपका कर्त्ता। यह पूर्वकी न्यांई है ॥

रूपाण्येव यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्व-स्याऽऽत्मनः परायणꣳस वै वेदिता स्या-

अर्थः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है। चक्षु लोक है। मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै।

है। हृदय जो बुद्धि तिसकरि देखता है। जोई [955] यह काममय पुरुष है। अध्यात्मबी कामम-य है ॥ [956] ताकी कौंन देवता है? ऐसें [पूंछ-ताभया] ॥ स्त्रीयां हैं ऐसें कहताभया ॥ [957] जातें स्त्रीतें कामकी दीप्ति उपजेहै ॥ ११ ॥

टीकाः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है। रूप शुक्लकृष्णादिक हैं ॥ जोई यह आदित्य-विषै पुरुष है ॥ जातें सर्व [958] रूपनका विशिष्ट

९५५ ताके विशेषणकूं दिखावै हैं ॥

९५६ आध्यात्मिक काममय पुरुषके कारणकूं पूंछताहै ॥

९५७ ता (स्त्री)कूं ता (काम)की कारणताहै ताकूं अनुभवकरि स्पष्ट करते हैं ॥

९५८ रूपमय शरीरवाले चक्षुरूप दर्शनवाले मनकरि संकलपके कर्त्ता देवका। आदित्यविषै पुरुष है यह विशेषण

त् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य एवासावादित्ये पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? सत्यमिति होवाच ॥ १२ ॥

सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं । जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैं] जोई यह आदित्यविषे पुरुष है सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथन कर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ सत्य (चक्षु) है। ऐसें कहतेभये ॥ १२ ॥

कार्य आदित्यविषे पुरुष है ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ सत्य है । ऐ-

---

कैसें है ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां:—रूपमात्रके अभिमानी देवका आदित्यविषे पुरुष विशेषका अवच्छेद है औ सो सर्व रूपनका प्रकाशक होनेतें सर्व रूपोंनें अपने प्रकाश करने अर्थ आरंभ किया है । तातें उक्त प्रकारका विशेषणयुक्त है । यह अर्थ है ॥

आकाश एव यस्याऽऽयतनꣳ श्रोत्रं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं य-

---

अर्थः—आकाशहीं जाका आयतन है । चक्षु लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानता है । सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण

सें कहतेभये ॥ "सत्य" ऐसें चक्षु कहियेहै । च-[९५९]क्षुरूप अध्यात्मतें आदित्यरूप अधिदैवतकी उ-त्पत्ति होवैहै ॥ १२ ॥

टीकाः—आकाशहीं जाका आयतन है ।

---

९५९ चक्षुतें आदित्यकी उत्पत्ति कैसें है ? यह आशंका करिके । "चक्षुतें सूर्य उपजताभया" इस श्रुतिकूं आश्रय करिके । कहैहैं ॥ इहांः—तहांबी ऐसें श्रौत्रका कथन है ॥ प्रतिश्रवण कहिये संवाद वा प्रतिविषय श्रवण वा सर्व श्र-वण । तिस दशाविषै । यह अर्थ है ॥

मात्थ ? य एवायꣳ श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? दिश इति होवाच ॥ १३ ॥

जानताहूं । जाकूं तूं कहता हैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य कहैहैं] जोई यह श्रौत्ररूप प्रातिश्रुत्क पुरुष है । सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ दिशा हैं । ऐसैं कहतेभये ॥ १३ ॥

जोई यह श्रोत्रविषे होनेवाला श्रौत्र है । तहांबी प्रतिश्रवण वेलाविषे विशेषकरि होवैहै यातैं प्रातिश्रुत्क है ॥ ताकी कौंन देवता है! ऐसैं [पूंछताभया] ॥ दिशा हैं । ऐसैं कहतेभये ॥ जातैं दिशाओंतैं[९६०] यह आध्यात्मिक निष्पन्न होवैहै ॥ १३ ॥

---

९६० " दिशा तहां अधिदैवत हैं " इस श्रुतिकूं आश्रय करिके कहैहैं ॥

तम एव यस्याऽऽयतनᳪ हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्याऽऽत्मनः परायणᳪ स वै वेदिता स्यात् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषᳪ सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य एवायं छायामयः पुरुषः स एष वदैव

अर्थः—तम (अंधकार) हीं जाका आयतन है। हृदय लोक है। मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै। सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं। जाकूं तूं कहताहैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०] जोई यह छायामय (अज्ञानमय) पुरुष है। सो यह है ॥ हे शा-

टीकाः—तमहीं जाका आयतन है। इहां तम ऐसैं रात्रि आदिकका अंधकार ग्रहण करियेहै। अध्यात्मरूप छायामय अज्ञानमय पुरुष है ॥ ताकी कौंन देवताहै ? ऐसैं [पूंछ-

शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? मृत्यु-
रिति होवाच ॥ १४ ॥

रूपाण्येव यस्याऽऽयतनं चक्षुर्लोको
मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्व-
स्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्या-

कल्य ! कथनकर ॥ ॥ ताकी कौंन देव-
ता है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ मृत्यु
(ईश्वर) है । ऐसें कहतेभये ॥ १४ ॥

अर्थः—रूपहीं जाका आयतन है । चक्षु
लोक है । मनोज्योति है ॥ जो तिस पुरु-
षकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै । सो

ताभया] ॥ [९६१] मृत्यु है । ऐसें कहतेभये ॥ मृत्यु
अधिदैवत । ताकी निष्पत्तिका कारण है ॥ १४ ॥

टीकाः—अनेक रूपहीं जाका आयतन है ॥

---

९६१ अधिदैवत मृत्यु ईश्वर है । " मृत्युकरिहीं यह आवृत होताभया " इस श्रुतितें । औ सो तिस अज्ञानमय आध्यात्मिक पुरुषकी उत्पत्तिका कारण है । अविवेकी जनोंकी प्रवृत्तितें ईश्वरकरि प्रेरित हुया स्वर्गकूं वा अंतरिक्षकूंहीं जावै ऐसैंहीं पठन करैहैं । सो कहैहैं ॥

त् ॥ याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषं सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ? य एवायमादर्शे पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेत्यसुरिति होवाच ॥ १५॥

वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं। जाकूं तूं कहता हैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०] जोई यह आदर्शविषै पुरुष है। सो यह है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ असु (प्राण) है। ऐसें कहतेभये॥१५॥

९६२
पूर्व साधारणरूप कहे। इहांतो प्रकाशक श्रेष्ठरूप ग्रहण करियेहैं । रूपमय आयतनवाले देवका विशेष आयतन प्रतिबिंबका आधार आ-

९६२ पुनरुक्तिके प्रति कहैहैं ॥ इहां आधार शब्द भावप्रधान है। तिस प्रकार हुये प्रतिबिंबकी आधारता जहां है सो ऐसैं कथन किया होवैहै। आदिशब्दकरि स्वच्छ स्वभाववाले खड्ग आदिक ग्रहण करियेहैं ॥

आप एव यस्याऽऽयतनं हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात्। याज्ञवल्क्य! वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ?

अर्थः—आप (जल) हीं जाका आयतन है। हृदय लोक है। मनोज्योति है॥ जो तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहै। सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं। जाकूं तूं कहता हैं?॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०]

दर्श आदिक है ॥ ताकी देवता असु (प्राण) है ऐसैं कहतेभये ॥ तिस[९६३] प्रतिबिंब नामक रूपकी निष्पत्ति असु (प्राण) तैं । होवैहै ॥ १५ ॥

टीकाः—आपहीं जाका आयतन है । सा-

९६३ जातैं प्राणकरि घसे हुये प्रतिबिंबकी अभिव्यक्तिके योग्य दर्पण आदिकविषै रूपविशेष निष्पन्न होवैहै । तातैं प्राणकूं प्रतिबिंबकी कारणता युक्त है । इस अभिप्राय करिके कहैहैं ॥

य एवायमप्सु पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? वरुण इति होवाच ॥ १६ ॥

जोई यह जलविषे पुरुष है । सोई यह है ॥ हे शाकल्य ! कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ वरुण है । ऐसैं कहतेभये ॥ १६ ॥

धा[९६४]रण सर्व आप आयतन है । वापी तडाग आदिक आश्रयवाले जलविषे विशेष अवस्थान है ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ वरुण है । ऐसैं [कहतेभये] ॥ व[९६५]रुणतैं संघात-

९६४ जलहीं याका आयतन है । जोई यह जलविषे पुरुष है । इहां दोनूं ठिकाने सामान्य विशेष भाव नहीं भासता है । ऐसैं शंका करनेवालेके प्रति कहैहैं ॥

९६५ ननु फेर वापी कूप विशेषरूप आयतनवालेका वरुण देवता कैसैं है । जातैं ताके अधिष्ठाता देवतारूप वरुणकूं ताकी कारणता नहीं है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— वापीकूपादिरूप जल । पान कियेहुये अध्यात्म शरीरविषे मूत्रादि संघातकूं करते हैं औ वे आप वरुणतैं होवैहैं । वरुण शब्दकरि रश्मिद्वारा भूमिके प्रति पतन हुये जलहीं कहिये हैं । तिस प्रकार हुये वे जलहीं वरुणात्मकहुये पीयमान

रेत एव यस्याऽऽयतनꣳ हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य ! वेद वा अहं तं पुरुषं सर्व्वस्याऽऽत्मनः परायणं यमात्थ ?

अर्थः—रेतहीं जाका आयतन है । हृदय लोक है। मनोज्योति है॥ जो तिस पुरुषकूं सर्वआत्माका परायण जानताहै।सो वेदिता होवैहै ॥ हे याज्ञवल्क्य ! मैं तिस पुरुषकूं सर्व आत्माका परायण जानताहूं। जाकूं तूं कहता हैं ? ॥ ॥ [याज्ञवल्क्य०] जोई

की कर्त्ता अध्यात्मरूप आपहीं वापी आदिकनके जलनकी निष्पत्तिका कारण है ॥ १६ ॥

टीकाः—रेतहीं[९६६] जाका आयतन है । जोई यह पुत्रमय विशेष आयतन है औ रेतरूप आ-

---

वापी आदिकनके जलोंकी उत्पत्तिका कारण है । यातैं वरुणकूं वापी तडाग आदिक आयतनवाले पुरुषके प्रति कारणपना युक्त है ॥

९६६ दोनूं वाक्यनकूं ग्रहण करिके । तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

य एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य ! तस्य का देवतेति ? प्रजापतिरिति होवाच ॥ १७ ॥

शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्य-

यह पुत्रमय पुरुष है। सो यह है ॥ हे शाकल्य? कथनकर (पूंछ) ॥ ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ प्रजापति (पिता) है। ऐसैं कहतेभये ॥ १७॥

अर्थः—हे शाकल्य ! तेरे तांई निश्चयकयतनवाले देवका पुत्रमय[९६७] ऐसैं कहनेकरि पितातैं उत्पन्नभये अस्थि मज्जा अरु शुक्र ग्रहण करियेहैं ॥ ताकी कौंन देवता है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ प्रजापति है। ऐसैं कहतेभये ॥ प्रजापति पिता कहियेहै। जातैं पितातैं पुत्रकी उत्पत्ति होवैहै ॥ १७ ॥

टीकाः—देव[९६८]। लोक अरु पुरुष भेदकरि ती-

९६७ पुत्रमय शब्दके अर्थकूं व्याख्यान करैहैं ॥

९६८ हे शाकल्य ! ऐसैं कहैहैं । इत्यादि ग्रंथके तात्पर्यकूं कहनेकूं वृत्तकूं कीर्त्तन करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—लोक

स्त्वा३ँ स्विदिमे ब्राह्मणा अङ्गारावक्षय-
णमक्रता ३ इति ॥ १८ ॥

रि ये ब्राह्मण अंगारावक्षयण करतेभये।
ऐसैं याज्ञवल्क्य कहतेभये ॥ १८ ॥

न तीन प्रकारसैं आत्माकूं विभागकरिके अव-
स्थितभया एक एक देव प्राणहीं है । औ सो
उपासनाके अर्थ नीचे अष्टप्रकारसैं उपदेश कि-
या ॥ [९६९] अब आगे दिशाओंके विभागकरि पांच
प्रकारसैं विभागकिये सर्व जगत्के आत्मा (हृ-
दय) विषै उपसंहार अर्थ कहेहैं ॥ तूष्णीभूत शा-
कल्यकेताईं याज्ञवल्क्य [९७०] ग्रहंकरि आवेश करते

सामान्याकार । पुरुषविशेषावच्छेद । देवताका कारण इस
प्रकारकरि तीन तीन प्रकारसैं आत्माकूं पायके स्थितहुया
जो एक एक देव है सो कहा । सो प्राणहीं सूत्रात्मा है ।
पूर्व उक्त सर्वकूं ताका भेद होनेतैं औ सो उपासनाके अर्थ
नीचे अष्ट प्रकारका उपदेश किया ॥

९६९ उत्तरके तात्पर्यकूं दिखावै हैं ॥ इहां प्रविभक्त सर्व
जगत्का । यह शेष है ॥ औ आत्मशब्द हृदय विशेष है ॥

९७० याज्ञवल्क्यकी शाकल्यविषै पूंछने योग्य बुद्धि पू-
र्वकारिताकी आपादकताकूं दिखावै हैं ॥ इहांः—सर्वहीं
ब्राह्मणनकूं बहुतकरि हंतव्य होनेकरि तूं संमत हैं । यह मु-
निका अभिप्राय है ॥

याज्ञवल्क्येति होवाच शाकल्यो यदिदं कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादीः

अर्थः—[तब] शाकल्य। हे याज्ञवल्क्य! ऐसैं कहताभयाः—जो यह कुरु अरु पंचाल देशनके ब्राह्मणनके प्रति तूं अति उक्ति

हुयेकी न्यांई कहेहैंः—याज्ञवल्क्य कहतेभये किः—हे शाकल्य! तेरे प्रति ये ब्राह्मण अंगारावक्षयण करते हैं॥ अंगार नाश करतेहैं जिस संदेश आदिकविषे सो अंगारावक्षयण है। ताकूं निश्चयकरि तेरे प्रति ब्राह्मण करते हैं। तूं तो ताकूं नहीं जानताहैं॥ मुजकरि दह्यमान आत्माकूं नहीं जानता हैं। यह अभिप्राय है॥ १८॥

टीकाः—शाकल्य कहताभयाः—हे याज्ञवल्क्य! जो यह[९७१] तूं कुरु पांचाल देशनके ब्रा-

९७१ शाकल्य तो कालकरि प्रेरित होनेतैं अनुसारिणी अन्यथा प्रतिपत्तिकूंहीं लेके प्रश्नकूं करैहै। ऐसैं कहैहैं॥ इहांः—दिशाओंकूं विषय करनेवाले विज्ञानकूं मैं जानताहूं। अर्थ यह जो सो मुजकूं है॥

किं ब्रह्म विद्वानिति॥ दिशो वेद स देवाः सप्रतिष्ठा इति ॥ यद्दिशो वेत्थ सदेवाः सप्रतिष्ठाः ॥ १९ ॥

करताभया । क्या ब्रह्मकूं विद्वान् हुया [ऐसैं कहताभया] ? ऐसैं ॥ ॥ [तब याज्ञवल्क्य कहतेभयेः—] मैं देव सहित प्रतिष्ठा सहित दिशाओंकूं जानताहूं ऐसैं ॥ ॥ [तब शाकल्य कहैहैः—] जब तूं देव सहित प्रतिष्ठा सहित दिशाओंकूं जानता हैं ॥ १९ ॥

ह णनके प्रति अतिवाद करताभयाहैं [यातैं] आप भयकूं प्राप्तहुये तेरेप्रति अंगारावक्षयण करते हैं ऐसैं क्या ब्रह्मकूं विद्वान्हुया ब्राह्मणनकूं अधिक्षेप करता ॥ ॥ याज्ञवल्क्य कहैहैंः— प्रथम यह ब्रह्मका विज्ञान मुजकूं है ॥ सो क्या किः—दिशाओंकूं जानताहूं कहिये दिशाविषयक विज्ञानकूं[९७२] जानताहूं । औ सो केवल दिशा-

---

९७२ औ सो विज्ञान केवल दिशामात्रका नहीं होवैहै

किंदेवतोऽस्यां प्राच्यां दिश्यसीत्या-
दित्यदेवत इति ॥ स आदित्यः कस्मि-

अर्थः-[तब] किस देवतावाला हुया तूं इस प्राची दिशाविषै हैं ? [ऐसैं पूंछता-भया] ॥ ॥ आदित्य देवतावालाहूं ऐसैं [उत्तर देते भये] ॥ ॥ सो आदित्य कि-

ओंकूंहीं नहीं किंतु दिशाओंके अधिष्ठाता देवनकरि सहित। किंवाः-प्रतिष्ठाओंकरि सहित तिनकूं जानताहूं ॥ ॥ इतर (शाकल्य) कहेहैः-जब तूं देवसहित अरु प्रतिष्ठासहित दिशाओंकूं जानता हैं। ऐसैं जब [९७३] सैफल विज्ञान तैनैं प्रतिज्ञा किया (तब) ॥ १९ ॥

टीकाः-कौंन है देवता इस तुज दिग्भूतकी सो कहिये किंदेवत ॥ जातैं [९७४] यँहं याज्ञव-

किंतु देवनकरि सहित औ प्रतिष्ठाओंकरि सहित दिशाओंकूं मैं जानताहूं। ऐसैं कहेहैं ॥

९७३ अवतारित वाक्यके अर्थकूं संक्षेपसैं कहेहैं ॥

९७४ प्राची (पूर्व) दिशाविषै कौंनसी देवता है । ऐसैं कहनेकी योग्यताकेहुये अन्यथा कैसैं पूंछीये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां आत्माकूं । याका आत्माके संबंधीकूं । यह अर्थ

न्नु प्रतितिष्ठत इति ? चक्षुषीति ॥ कस्मिन्नु चक्षुः प्रतिष्ठितमिति ? रूपेष्वि-

---

सविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ चक्षुविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ चक्षु किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ रूपनविषै ऐसैं [कहते-

---

लक्य हृदयरूप आत्माकूं दिशाओंविषै पांच प्रकारसैं विभक्त दिशाओंका आत्मभूत [जानिके] औ तिसद्वारा सर्व जगत्कूं आत्मभावकरि जानिके। मैं दिगात्माहूं । ऐसैं व्यवस्थितहुया पूर्वाभिमुख[९७५] होवैहै । मैं दिशाओंकूं प्रतिष्ठा[९७६]सहित

है औ उक्त प्रकारके हृदयकूं आत्मभावकरि पायके (जानिके)। ऐसैं संबंध है ॥

९७५ तथाऽपि प्रथम प्राची दिशाकूं विषय करिके प्रश्नविषै कौंन हेतु है ? ऐसैं जो कहै । तहां कहैहैं ॥

९७६ यद्यपि दिशारूप मैं हूं ऐसैं स्थित है। तथापि सर्व जगत्कूं आत्मभावकरि पायके स्थित होवैहै। यह कैसैं जानिये है ? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—प्रतिष्ठा सहित दिशाओंकूं मैं जानताहूं। इस वचनतैं सर्व जगत्कूंबी हृदयद्वारा आत्मभावकरि पायके स्थित मुनि है। ऐसैं भासता है ॥

ति । चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥ क-
स्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति? हृदय
भये] जातैं चक्षुकरि रूपनकूं देखताहै ॥
रूप किसविषै प्रतिष्ठित हैं ? ऐसें [पूंछता-

जानताहूं । इस वचनतैं[977] जैसें याज्ञवल्क्यकी प्र-
तिज्ञा है । तैसैंहीं शाकल्य पूंछता है:—किंदेवत
(किस देवतावाला) हुया तूं इस दिशाविषै
हैं? ऐसें ॥ ॥ जातैं वेदविषै[978] सर्वत्र जिस जि-
स देवताकूं उपासताहै । इहांहीं तिसरूपहु-
या तिस तिस देवताकूं पावताहै ॥ [979] तिसप्रकार
यह उपनिषत् आगे कहैगी:—"देवरूप होयके
देवनकूं पावताहै" यातैं[980] ईस प्राचीदिशाविषै

---

९७७ प्रतिज्ञाके अनुसारी होनेतैं यह प्रश्न युक्तिवाला है । ऐसें कहैहैं ॥

९७८ दिशारूप मैंहूं इस प्रतिज्ञाके अनुसारी प्रश्नविषैबी देहपातके उत्तरभावी देवताभाव पूंछीये है । देहके होते ध्याताकूं तिस भावके योगतैं ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां:—ऐसें आधिदेवताभाव प्रश्न गोचर नहीं है । यह शेष है ॥

९७९ उक्त अर्थविषै वाक्यशेषकूं अनकूल करैहैं ॥

९८० प्रश्नके अर्थकूं उपसंहार करैहैं ॥

इति होवाच । हृदयेन हि रूपाणि जानाति । हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ! ॥ २० ॥

भया] ॥ ॥ हृदयविषै रूप प्रतिष्ठित होवैहैं ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २० ॥

दिशारूप भये तुज याज्ञवल्क्यकी अधिष्ठात्री कौंन देवता है ? किस देवताकरि तूं प्राचीदिशारूपकरि संपन्न भया । यह अर्थ (प्रश्नका अभिप्राय) है ॥ ॥ इतर (याज्ञवल्क्य) कहैहैं:—आदित्यदेवत (आदित्यरूप देवतावाला)हूं ऐसैं । प्राचीदिशाविषै मेरी आदित्य देवता है । सो मैं आदित्य देवतहूं । "देवसहित" यह कहा ॥ ॥ "प्रतिष्ठासहित" यह तो कहनेकूं योग्य है ऐसैं शाकल्य कहैहै:—सो आदित्य किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं ॥ ॥ चक्षुविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं अध्यात्मरूप, चक्षुतैं

---

९८१ आदित्यके चक्षुविषै प्रतिष्ठितपनैकूं प्रकट करनेकूं तिन दोनूंके कार्यकारणभावकूं दिखावै हैं ॥ इहां:—" च-

३॥दित्य निष्पन्न भया। ऐसैं "चंद्रमा मनतैं भया चक्षुतैं सूर्यभया" इत्यादिक मंत्रनके औ तदनुसारी ब्राह्मणोंके वाद हैं। जातैं कार्य[९८२] जो है सो कारणविषै प्रतिष्ठित होवैहै॥ ॥ चक्षु किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछता भया]॥ रूपनविषै। ऐसैं [कहतेभये] । जातैं रूपके[९८३] ग्रहण अर्थ रूपात्मक चक्षु। रूपकरि प्रयुक्त (प्रेरित) होवैहै॥ जातैं जिन[९८४] रूपोंकरि प्रयुक्त भया है। तिन रूपोंनें आपके ग्रहण अर्थ चक्षु आरंभ किया है। तातैं[९८५] आदित्य सहित चक्षु प्राचीदिशासहित अरु तिसविषै सर्व वस्तुनकरि सहित रूपनविषै प्रतिष्ठित है। चक्षुकरि सहित प्राचीदिशा औ सर्व रूपभूत वस्तु प्रति-

---

क्षुतैं सूर्य उपजताभया" इत्यादिक मंत्रनके वाद हैं। औ तिनके अनुसारी ब्राह्मणोंके वाद हैं॥

९८२ ननु सूर्य अरु चक्षुका कार्यकारणभाव होहु। तथापि चक्षुविषै सूर्यका प्रतिष्ठितपना कैसैं है? तहां कहैहैं॥

९८३ ननु चक्षुका रूपनविषै प्रतिष्ठितपना कैसैं है? तहां कहैहैं॥

९८४ तथापि उक्त प्रकारका आधार आधेयभाव कैसैं है? यातैं कहैहैं॥

९८५ चक्षुके रूप आधारताकेहुये फलितकूं कहैहैं॥

ष्ठित है [वा ९८६चक्षुकरि सहित प्राचीदिशा सर्व (सारी) रूप भूत है ऐसा पाठ है] ॥ ॥ औ वे रूप किसविषै प्रतिष्ठित होवैहैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ हृदयविषै । ऐसैं कहतेभये ॥ जातैं हृदयकरि आरब्ध रूप हैं। रूपा९८७आरब्धकरि हृदय परिणामकूं पाया है। ९८८जातैं हृदयकरि हीं रूपनकूं सर्व लोक जानताहै ॥ इहां ९८९हृदय ऐसैं बुद्धि अरु मनकूं एकरूपकरिके निर्देश है । तातैं हृदयविषैहीं रूप प्रतिष्ठित हैं । जातैं ९९०हृदयकरि ९९१वासनात्मक रूपनका स्मरण होवैहै। हृदयविषै रूप प्रतिष्ठित हैं। यह अर्थ है ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २० ॥

---

९८६ उपसंहार किये अर्थकूं संग्रह करैहैं ॥

९८७ रूपनकी हृदयकरि आरब्धताकूं स्पष्ट करैहैं ॥

९८८ हृदयविषै रूपनकी प्रतिष्ठितताविषै अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

९८९ हृदय शब्दकी मांस खंडकी विषयताकूं व्यावर्त्तन करैहैं ॥

९९० फेर बहिर्मुखरूप अंतर्हृदयविषै कैसैं स्थित होनेकूं शक्य हैं ? तहां कहैहैं ॥

९९१ तथापि तिनका हृदयविषै प्रतिष्ठितपना कैसैं है ? तहां कहैहैं ॥

किंदेवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति ? यमदेवत इति ॥ स यमः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति ? यज्ञ इति ॥ क-

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस दक्षिण दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ यमदेवतावाला ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ सो यम किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ यज्ञविषै ऐसैं

टीकाः—किंदेवत हुया तूं इस दक्षिण[992] दिशाविषै हैं । यह पूर्ववत् है ॥ दक्षिणदिशाविषै तेरी कौंन देवता है ? यमदेवत हूं । ऐसैं । दक्षिणादिग्भूत मेरी यमदेवता है ॥ ॥ सो यम किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया]॥ यज्ञविषै । ऐसैं [कहतेभये] । कहिये सो यम दिशाकरि सहित यज्ञरूप कारणविषै प्रतिष्ठित है ॥ ॥ [993]कैसैं फेर यज्ञका कार्य यम है ? यह

९९२ पूर्वकी न्यांई । ऐसैं उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

९९३ यमकूं यज्ञकी कार्यता अप्रसिद्ध है ? ऐसैं शंका करिके । व्युत्थापन (निवारण) करैहैं ॥

[कस्मिन्नु यज्ञः प्रतिष्ठित] इति ? दक्षिणायामिति ॥ कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति ? श्रद्धायामिति । यदा ह्येव श्रद्धत्तेऽथ

[कहतेभये] ॥ ॥ यज्ञ किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ दक्षिणाविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ दक्षिणा किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ श्रद्धाविषै ऐसैं [कहतेभये] जातैं

कहियेहैः—ऋत्विजोंकरि निष्पादित यज्ञ है। दक्षिणाकरि यजमान तिनतैं यज्ञकूं मोल लेके तिस यज्ञकरि यम सहित दक्षिणदिशाकूं अभिजय करैहै। तिसंकरि[९९४] यज्ञविषै यम कार्य होनेतैं दक्षिणे[९९५] दिशासहित प्रतिष्ठित है ॥ ॥ यज्ञ किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] दक्षिणाविषै । [ऐसैं कहतेभये] । दक्षिणाकरि सो (यज्ञ) मोललेईता है। [तिसकरि] दक्षिणाका

९९४ ता (यम)कूं यज्ञकी कार्यताके हुये फलितकूं कहैहैं ॥

९९५ यज्ञके दक्षिणाविषै प्रतिष्ठितपनैकूं साधतेहैं ॥ इहां कार्य । कारणविषै प्रतिष्ठित होवैहै । यह शेष है ॥

दक्षिणा ददाति। श्रद्धायाꣳ ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति ॥ कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति? हृदय इति होवाच। हृदयेन हि

जबहीं श्रद्धा करताहै तब दक्षिणाकूं देता है। तातैं श्रद्धाविषैहीं दक्षिणा प्रतिष्ठित है इति ॥ ॥ श्रद्धा किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ हृदयविषै ऐसैं

कार्य यज्ञ है ॥ ॥ दक्षिणा किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ श्रद्धाविषै। ऐसैं [कहतेभये] ॥ श्रद्धा नाम भक्तिसहित आस्तिक्य बुद्धिरूप दित्सुपना (दानकरनेकी इच्छावावान्पना) ॥ तिसविषै दक्षिणा कैसैं प्रतिष्ठित है? [९९६] जातैं जबहीं श्रद्धा करता है। तब दक्षिणाकूं देता है। अश्रद्धा करताहुआ दक्षिणाकूं देता नहीं। तातैं श्रद्धाविषैहीं दक्षिणा प्रतिष्ठित है ॥ ॥ श्रद्धा किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ हृदयविषै।

---

९९६ दक्षिणाके श्रद्धाविषै प्रतिष्ठितपनैकूं प्रकट करैहैं ॥

श्रद्धां जानाति। हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ! ॥ २१ ॥

कहतेभये। जातें हृदयकरि श्रद्धाकूं जानता है। तातें हृदयविषैहीं श्रद्धा प्रतिष्ठित होवैहै इति ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! यह ऐसैंहीं है ॥ २१ ॥

ऐसैं कहतेभये ॥ जातें [९९७] हृदयकी वृत्ति श्रद्धा है। जातें [९९८] हृदयकरिहीं श्रद्धाकूं जानता है। औ [९९९] वृत्ति जो है सो वृत्तिमान्विषै प्रतिष्ठित होवैहै। तातें हृदयविषैहीं श्रद्धा प्रतिष्ठित होवैहै ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! यह ऐसैंहीं है ॥ २१ ॥

---

९९७ सो (श्रद्धा) हृदयविषै प्रतिष्ठित है । इस अर्थविषै हेतुकूं कहैहैं ॥

९९८ श्रद्धाकूं हृदयकी व्याप्य होनेतें ताका तिसविषै प्रतिष्ठितपना है। ऐसैं कहैहैं ॥

९९९ ननु हृदयकी श्रद्धा वृत्ति होहु । तथापि प्रकृतविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

किंदेवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति ? वरुणदेवत इति । स वरुणः कस्मिन् प्रतिष्ठित इत्यप्स्विति ॥ कस्मि-

---

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस प्रतीची दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ वरुण देवतावालाहूं ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ सो वरुण किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ आपविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ आप (जल) किसविषै

टीकाः—किंदेवत हुया तूं इस प्रतीची (पश्चिम) दिशाविषै हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ तिसविषै मेरा वरुण अधिदेवता है ॥ ॥ सो वरुण किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ आप (जल)विषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं जलोंका वरुण कार्य है । "श्रद्धारूपहीं आप हैं । श्रद्धातैं वरुणकूं सृजताभया" इस श्रुतितैं ॥ ॥ आप किसविषै प्र-

न्वापः प्रतिष्ठिता इति? रेतसीति ॥ क-
स्मिन्नु रेतः प्रतिष्ठितमिति? हृदय इति।
तस्मादपि प्रतिरूपं जातमाहुर्हृदयादि-

प्रतिष्ठित हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥
रेतविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ रेत किस-
विषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥
हृदयविषै ऐसैं ॥ तातैंबी प्रतिरूप (अनु-
रूप पुत्र)कूं हृदयतैं निकसेहुयेकी न्यांईं ।

तिष्ठित हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ रेत (वीर्य)
विषै। ऐसैं [कहतेभये] "रेतकरि जातैं आप
रचे हैं" इस श्रुतितैं ॥ ॥ रेत किसविषै प्र-
तिष्ठित है? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ हृदयविषै।
ऐसैं [कहतेभये] ॥ जातैं हृदयका कार्य रेत है।
[1000] कामी हृदयकी वृत्ति है । जातैं [1001] कामी पुरुषके
[1002] हृदयतैं रेत स्खलित होता है। तातैंबी प्रति-

१००० रेतकी हृदयकार्यताकूं साधते हैं ॥
१००१ तथापि रेत हृदयका कार्य कैसैं है? सो कहैहैं ॥
१००२ तहांहीं लोकप्रसिद्धिकूं प्रमाण करैहैं ॥ इहां अपि शब्द संभावनाके अर्थ है वा अवधारणके अर्थ है ॥

व सृप्तो हृदयादिव निर्मित इति। हृद-
ये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैत-
द्याज्ञवल्क्य! ॥ २२ ॥

किंदेवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसी-

हृदयतैं निर्मितहुयेकी न्यांई जन्म्या कह-
तेहैं। यातैं हृदयविषैहीं रेत प्रतिष्ठित हो-
वैहै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य!
यह ऐसैंहीं है ॥ २२ ॥

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस
उदीची दिशाविषे हैं? ऐसैं [पूंछताभ-

रूप (अनुरूप) पुत्रकूं लौकिक जन जन्म्या क-
हते हैं। इस पिताके हृदयतैं निकसेहुयेकी
न्यांई पुत्र निर्मित होवैहै। जैसैं सुवर्णकरि नि-
र्मित कुंडल है। तातैं हृदयविषैहीं रेत प्रति-
ष्ठित होवैहै॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य! यह ऐ-
सैंहीं है ॥ २२ ॥

टीकाः—किंदेवत हुया तूं इस उदीची
(उत्तर) दिशाविषे हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥

ति? सोमदेवत इति ॥ स सोमः कस्मि-
प्रतिष्ठित इति? दीक्षायामिति ॥ कस्मि-
न्नु दीक्षा प्रतिष्ठितेति? सत्य इति । त-

या] ॥ ॥ सोम देवतावालाहूं ऐसें [कहते-
भये] ॥ ॥ सो सोम किसविषै प्रतिष्ठित है?
ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ दीक्षाविषै ऐसें
[कहतेभये] ॥ ॥ दीक्षा किसविषै प्रतिष्ठि-
त है? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ सत्यविषै

सोमदेवत हूं। ऐसें [कहतेभये] इहां सोमल-
ताकूं औ सोमदेवताकूं एकरूपकरिके निर्देश
है ॥ ॥ सो सोम किसविषै प्रतिष्ठित है?
ऐसें [पूंछताभया] ॥ दीक्षाविषै। ऐसें [कह-
तेभये] ॥ जातें दीक्षित[1003]हुया यजमान सोमकूं
मोल लेता है। मोललये सोमकरि यजनकरिके
ज्ञानवान् उत्तर दिशाकूं पावताहै ॥ सोमदेव-
ताकरि अधिष्ठित दिशाकूं सौम्या कहैहैं ॥ ॥
दीक्षा किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसें [पूंछ-

१००३ सोमके दीक्षाविषै प्रतिष्ठितपनैकूं साधतेहैं ॥

स्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति । स-
त्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति ॥ कस्मिन्नु
सत्यं प्रतिष्ठितमिति ? हृदय इति हो-

ऐसें [कहतेभये] जातें सत्यविषैहीं दीक्षा
प्रतिष्ठित है तातैंबी दीक्षितकूं कहते हैं "स-
त्यकूं कथनकर" ऐसें ॥ ॥ सत्य किसविषै
प्रतिष्ठित है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ हृ-

ताभया] ॥ सत्यविषै । ऐसें [कहतेभये] ॥
[१००४] कैसें किः—जातें सत्यविषै दीक्षा प्रतिष्ठित है । ता-
तैंबी दीक्षित पुरुषकूं कहतेहैंः—सत्यकूं क-
थनकर ऐसें । [१००५] कारणके भ्रंशहुये कार्यका भ्रंश
(नाश) मति होहू । [यह तिनका अभिप्राय
है] यातें [१००६] सत्यविषैहीं दीक्षा प्रतिष्ठित है ॥ ॥

१००४ ननु दीक्षाका सत्यविषै प्रतिष्ठितपना अप्रसिद्ध है ? ऐसैं शंका करिके । समाधान करैहैं ॥ इहां "अपि" शब्द अवधारण (निश्चय)के अर्थ है ॥

१००५ सत्यकूं कथनकर । ऐसैं कहनेवालेके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां यह तिनका अभिप्राय है । यह शेष है ॥

१००६ प्रकृतका उपसंहार करैहैं ॥

वाच। हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैत-द्याज्ञवल्क्य ! ॥ २३ ॥

किंदेवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्य-

दयविषै ऐसें कहतेभये ॥ जातें हृदयकरि सत्यकूं जानताहै तातें हृदयविषैहीं सत्य प्रतिष्ठित होवैहै ऐसें ॥ ॥ हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसैंहीं है ॥ २३ ॥

अर्थः—किस देवतावाला हुया तूं इस ध्रुव (उर्ध्व) दिशाविषै हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥

सत्य किसाविषै प्रतिष्ठित है? ऐसैं [पूंछता-भया] ॥ हृदयविषै । ऐसैं कहतेभये । जातैं हृदयकरि सत्यकूं जानताहै । तातैं हृदय-विषैहीं सत्य प्रतिष्ठित होवैहै ॥ ॥ हे या-ज्ञवल्क्य! यह ऐसैंहीं है ॥ २३ ॥

टीकाः—किं देवत हुया तूं इस ध्रुव (ऊर्ध्व)[१००७] दिशाविषै हैं? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ मेरुके

१००७ फेर ऊर्ध्वदिशा कैसैं अवस्थित हुयी "ध्रुवा" ऐसैं कहिये है ? तहां कहैहैं ॥

ग्निदेवत इति ॥ सोऽग्निः कस्मिन्प्रति-
ष्ठित इति ? वाचीति ॥ कस्मिन्नु वाक्
प्रतिष्ठितेति ? हृदय इति ॥ कस्मिन्नु हृ-
दयं प्रतिष्ठितमिति ? ॥ २४ ॥

अग्नि देवतावालाहूं ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥
सो अग्नि किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें [पूं-
छताभया] ॥ ॥ वाक्विषै ऐसें [कहतेभ-
ये] ॥ ॥ वाक् किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें
[पूंछताभया] ॥ ॥ हृदयविषै ऐसें [कह-
तेभये] हृदय किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें
[पूंछताभया] ॥ २४ ॥

च्यारी ओरतें वसनेवाले प्राणिनकूं अव्यभिचा-
रतें ऊर्ध्वदिशा "ध्रुवा" ऐसें कहियेहै ॥ ॥ अ-
ग्निदेवतहूं[१००८] । ऐसें [कहतेभये] ॥ जातें ऊर्ध्व दि-
शाविषै प्रकाशकी बहुलता है औ प्रकाशरूप
अग्नि है ॥ ॥ सो अग्नि किसविषै प्रतिष्ठित
है । ऐसें [पूंछताभया] ॥ वाक्विषै । ऐसें

१००८ तहां अग्निके देवताभावकूं प्रकट करैहैं ॥

[कहतेभये] ॥ ॥ वाक् किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसें [पूंछताभया] ॥ हृदयविषै । ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ तहां[1009] (उक्त प्रकारके विभाग- हुये) याज्ञवल्क्य । सर्व दिशाओंविषै प्रसृत हृदयकरि सर्व दिशाओंकूं आत्मभावकरि अभिसंपन्न है। देवसंहित[1010] प्रतिष्ठासहित दिशा नाम- रूप अरु कर्मके आत्मभूत तिस याज्ञवल्क्यकी आत्मभूत[1011] हैं ॥ जो रूप है । सो प्राचीदिशासहित याज्ञवल्क्यका हृदयभूत है॥ औ जो ज्ञाने[1012]-

---

१००९ दिशाकूं जानताहूं । इत्यादि श्रुतिकरि जगत्का विभागसैं पंचविधपना ध्यान अर्थ कहा । अब विभाग वादिनी श्रुतिके अभिप्रायकूं कहैहैं ॥ इहां:—"तहां" याका उक्त प्रकारके विभागके होते । यह अर्थ है ॥

१०१० उक्त अर्थकूं संक्षेपसैं कहैहैं ॥

१०११ तहां अवांतर विभागकूं कहैहैं ॥ इहां:—आद्य- पर्यायविषै हृदयमैं रूप प्रपंचका उपसंहार दिखाया । "हृद- यविषैहीं रूप प्रतिष्ठित हैं" इस श्रुतितैं । यह अर्थ है ॥

१०१२ दक्षिणाविषै । इत्यादि तीन पर्यायोंकरि तहांहीं कर्मका उपसंहार कहा । ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:— जोई केवल कर्म है सो फल आदिककरि सहित दक्षिणदिशारूप हुया हृदयविषै उपसंहार करियेहै । दक्षिण दिशाके यज्ञ दक्षिणादेवताका हृदयविषै प्रतिष्ठितपनैकी उक्तितैं औ

सहित पुत्रोत्पादनरूप केवल कर्म है। सो फल-सहित औ अधिष्ठात्री देवताकरि सहित कर्म अरु फल स्वरूप दक्षिणा प्रतीची अरु उदीची दिशा। ताके हृदयकूंहीं प्राप्त भई हैं ॥ [1013] ध्रुवं दिशासहित सर्व नाम वाक्‌रूप द्वारकरि ताके हृदयकूंहीं प्राप्त भया है ॥ [1014] इतनाहीं यह सर्व है। जो रूप है वा कर्म है वा नाम है। यह सर्व हृदय है ॥ यह सर्वात्मके हृदय [1015] पूछियेहै:- हृदय किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसें ॥ २४ ॥

ताका फलरूप होनेतैं पुत्रजन्म इस नामवाला कर्म प्रतिची-रूपहुया तहांहीं उपसंहार किया "हृदयविषैहीं रेत प्रतिष्ठित है" इस श्रुतितैं। औ पुत्रजन्मकूं ताका कार्य होनेतैं। ज्ञानसहितबी कर्म फल प्रतिष्ठा अरु देवताकरि सहित उदीची स्वरूप हुया तहांहीं उपसंहार किया। सोमदेवताके दीक्षादिद्वारा तिसविषै प्रतिष्ठितपनैकी श्रुतितैं ॥ ऐसैं तीन दिशाओंविषै सर्व कर्म हृदयाविषै संहार किया ॥

१०१३ पंचमपर्यायके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

१०१४ नाम रूप अरु कर्मके उपसंहार कियेहुयेबी किंचित् उपसंहार करने योग्य अन्य अवशिष्ट है? यह आशंका करिके। निराकरण करैहैं ॥

१०१५ अन्य प्रश्नकूं उठावते हैं ॥

अहल्लिकेति होवाच याज्ञवल्क्यो यत्रैतदन्यत्रास्मन्मन्यासै यद्ध्येतदन्यत्रास्मत्स्याच्छ्वानो वैनदद्युर्वयाꣳसि वैनद्विमथ्नीरन्निति ॥ २५ ॥

अर्थः—[तब] याज्ञवल्क्य हे अहल्लिका ! ऐसें कहतेभयेः—जहां (जिस कालमैं) यह (हृदय) शरीरतैं अन्य ठिकाने [वर्त्तता है ऐसैं] जानता हैं। जब यह (हृदय) इसतैं अन्य ठिकाने होवै [तब] इस (शरीर)कूं श्वान भक्षण करैहैं वा पक्षी इसकूं विखेरते हैं [यातैं मुज शरीरविषै हृदय प्रतिष्ठित है] ॥ २५ ॥

टीकाः—हे अहल्लिका ! ऐसैं कहतेभये ॥ इहां याज्ञवल्क्य ! "अहनि लीयते (दिनवि-षै लीन होवैहै)" ऐसैं विग्रह करिके । प्रेत (मृतक)के वाची नामांतर[1016]करि संबोधनकूं करतेभ-

१०१६ हृदयपदकरि नाम आदिकके आधारकी न्यांई "अहल्लिका" शब्द करिबी हृदयाधिकरण विवक्षित होवैहै। वाक्यछायाकी समतातैं ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

ये ॥ ॥ जिसं[१०१७] कालविषै यह हृदयरूप आत्मा इस शरीरके अन्य ठिकाने किसीबी देशांतरविषै हमारेतें वर्तताहै। ऐसैं मानताहैं [तिसकालविषै शरीर मृत होवैहै] ॥ जातें[१०१८] जब यह हृदय हमारेतें (देहतें) अन्य ठिकाने होवैं तब श्वान इस शरीरकूं भक्षण करैहैं वा पक्षी इसकूं मथन (विलोडन) करैहैं कहिये बिखेरते हैं ऐसें[१०१९] होवैहै। तातें मुज शरीरविषै हृदय प्रतिष्ठित है। यह अर्थ है ॥ शरीरकूंबी[१०२०] नामरूप अरु कर्मात्मक होनेतें हृदयविषै प्रतिष्ठितपना है ॥ २५ ॥

इहांः—अह्न जो दिवस तिसविषै लीन होवैहै । ऐसैं विग्रह करिके । प्रेतवाची [नामांतरकरि] यह शेष है ॥

१०१७ देहविषै हृदय प्रतिष्ठित है । ऐसैं व्युत्पादन करैहैं ॥ इहां तिस कालविषै शरीर मृत होवैहै। यह शेष है ॥

१०१८ शरीरकूं हृदयकी आश्रयता स्पष्ट करैहैं ॥

१०१९ देहतें अन्य ठिकाने हृदयके अवस्थानविषै उक्त प्रकारके दोषकूं इति शब्दसैं स्मरण करिके। फलितकूं कहैहैं ॥

१०२० तब देह किसविषै प्रतिष्ठित है ? यह आशंका भयी । यातें कहैहैं ॥

कस्मिन्नु त्वञ्चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति ? प्राण इति ॥ कस्मिन्नु प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति ॥ कस्मिन्न्वपानः

अर्थः—तूं (शरीर) आत्मा (तेरा हृदय) किसविषै प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ प्राणविषै ऐसैं [कहतेभये] ॥ ॥ प्राण किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसैं [पूंछताभया] ॥ ॥ अपानविषै ऐसैं [कह-

---

टीकाः—कार्य अरु करणरूप हृदय अरु शरीरकी[1021] ऐसैं परस्परविषै प्रतिष्ठा कही । यातैं तुजकूं पूंछताहूं किः—तूं (शरीर) औ आत्मा (तेरा हृदय) किसविषै प्रतिष्ठित हैं ? ऐसैं॥ ॥ प्राणविषै । ऐसैं [कहतेभये] ॥ देह अरु आत्मा (हृदय) । प्राण (प्राणवृत्ति)विषै प्रतिष्ठित होवैहैं ॥ ॥ प्राण किसविषै प्रतिष्ठित

१०२१ वृत्तकूं अनुवाद करिके । अन्य प्रश्नकूं ग्रहण करैहैं ॥ इहां प्राण शब्दकी सूत्रविषयताकूं दूरी करनेकूं "वृत्ति" ऐसा विशेषण है ॥

प्रतिष्ठित इति ? व्यान इति ॥ कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति ॥ कस्मिन्नूदानः प्रतिष्ठित इति ? समान इति ॥

तेभये] ॥ ॥ अपान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ व्यानविषै ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ व्यान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥ उदानविषै ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ उदान किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसें [पूंछताभया] ॥ ॥

है? ऐसें [पूंछताभया] ॥ अपानविषै । ऐसें [कहतेभये] ॥ सो प्राणवृत्तिबी[1022] जो अपानवृत्तिकरि निग्रहकूं नहीं प्राप्त होवै तो पूर्वहीं जावै ॥ ॥ अपान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें पूंछताभया ॥ व्यानविषै । ऐसें [कहतेभये] ॥ मध्यविषै स्थित व्यानवृत्तिकरि जो निग्रहकूं नहीं प्राप्त होवै तो सो अपानवृत्तिबी[1023] नीचेहीं

१०२२ प्राणके अपानविषै प्रतिष्ठितपनैकूं व्यतिरेकद्वारा स्पष्ट करैहैं ॥

१०२३ प्राण अरु अपान दोनूंकीबी व्यानाधीनताकूं साधते हैं ॥

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्य-
तेऽशीर्यो नहि शीर्य्यतेऽसङ्गो नहि स-
ज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्येता-
न्यष्टावायतनन्यष्टौ लोका अष्टौ देवा

समानविषै ऐसें ॥ सो यह नेति नेति ऐसें
[निर्देश किया] आत्मा जातें नहीं ग्रहण
करियेहै यातें अग्रह्य है। जातें नहीं शीर्ण
होवैहै यातें अशीर्य है। जातें असंग है
यातें सज्जमान होता नहीं। असित (अ-
बद्ध) है [यातें] व्यथाकूं पावता नहीं [या-
हीतें] विनाशकूं पावता नहीं ॥ ये (पृथ्वी)
आदिक अष्ट आयतन हैं। अष्ट लोक हैं।

जावै औ प्राणवृत्ति पूर्वकूंहीं (ऊपरहीं) जावै ॥
व्यान किसविषै प्रतिष्ठित है? ऐसें [पूंछता-
भया] ॥ उदानविषै। ऐसें [कहतेभये] ॥
१०२४
सर्व तीनबी वृत्तियां कीलस्थानीय उदानविषै

१०२४ उक्त तीन वृत्तिनकी उदानविषै निबद्धताकूं दि-
खावैहैं। इहां विष्वक्। ऐसैं नाना गतिभावकी उक्ति है ॥

अष्टौ पुरुषाः स यस्तान् पुरुषान्निरुह्य प्रत्युह्यात्यक्रामत्तं त्वौपानेषदं पुरुषं पृच्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ? तꣳ ह न मेने शाक-

अष्ट देव हैं। अष्ट पुरुष हैं ॥ सो जो (कोईकबी) तिन पुरुषनकूं निश्चयकरि जानिके उपसंहार करिके अतिक्रमण करताभया तिस औपनिषद (उपनिषदनविषैहीं जानने योग्य) पुरुषकूं तेरेप्रति पूंछताहूं। ताकूं जो मेरेतांई विस्पष्ट नहीं कहैगा तो तेरा मूर्द्धा (मस्तक) पतन होवैगा। ऐसें [कहतेभये] ॥ ॥ ता (उक्तपुरुष)कूं शाकल्य

जो निबद्ध नहीं होवैं तो नाना गतिभावकूं प्राप्त होवैं ॥ ॥ उदान किसविषै प्रतिष्ठित है ? ऐसें [पूंछताभया] ॥ समानविषै। ऐसें [कहतेभये] ॥ जातैं समानविषै प्रतिष्ठित ये सर्व वृत्तियां हैं ॥ ॥ इहां [१०२५] यह कथनकिया होवैहैः—

१०२५ "किसविषै हृदय" इसतैं आदि लेके समान पर्यंतके तात्पर्यकूं कहैहैं ॥

ल्यस्तस्य ह मूर्द्धा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यपजह्रुरन्यन्मन्यमानाः ॥ २६ ॥

नहीं जानताभया। ताका मूर्द्धा पतन होताभया ॥ औ याके अस्थिनकूंबी तस्कर अन्य (धन) मानतेहुये हरण करतेभये ॥ २६ ॥

शरीर हृदय अरु वायु। अन्योन्य (परस्पर)विषै प्रतिष्ठित अरु विज्ञानमय[१०२६] (जीव)के अर्थ प्रयुक्त हुये संघातसैं नियत होयके वर्ततेहैं ॥ सर्व[१०२७] यह आकाशपर्यंत जिसकरि नियतहुया जिसविषै प्रतिष्ठित है कहिये ओत है औ प्रोत है। तिस निरुपाधिक साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्मका निर्देश (कथन) कर्तव्य है । यातैं यह आरंभ है:—सो यह[१०२८] है। कहिये सो[१०२९] जो "नेति नेति"

१०२६ तिनकी प्रवर्त्तकताकूं दिखावै हैं ॥

१०२७ "सो यह" इत्यादि वाक्यके तात्पर्यकूं कहेहैं ॥

१०२८ जिस कूटस्थ दृष्टिमात्र अंतर्यामी भावकी कल्पनाके अधिष्ठानके अज्ञानके वशतैं प्रशासनविषै स्वर्ग अरु पृथिवी आदिक स्थित है । सो परमात्मा यह प्रत्यगात्माहीं है। ऐसैं इन दो पदनके अर्थकूं विवक्षा करिके कहेहैं ॥

१०२९ दो निषेध मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणविषै व्याख्यान किया

ऐसैं मधुकांडविषै निर्देश किया है। यह सो है॥ सो [१०३०] यह आत्मा अग्रह्य (ग्रहण करनेकूं योग्य नहीं) है ॥ कैसैं कि:—जातैं सर्व कार्यके धर्मोंतैं अतीत है। तातैं अग्रह्य है ॥ [१०३१] किसैंकारणतैं [अग्रह्य] है? जातैं नहीं ग्रहण करियेहै ॥ जोई करणगोचर व्याकृत वस्तु है। सो ग्रहणगोचर होवैहै। यह तो तिसतैं विपरीत आत्मतत्व है ॥ ॥ तैसैं अशीर्य है। जोई मूर्त्त अरु संहत (मिलित) शरीरादिक है। सो विशीर्ण होवैहै। यह तो तिसतैं विपरीत है। यातैं नहीं विशीर्ण होवैहै ॥ ॥ अरु असंग है। जो मूर्त्तरूप है। सो मूर्त्तांतरकरि संबन्ध्यमान हुया सज्जताहै औ यह तिसतैं विपरीत (अ-

---

है। ऐसैं कहैहैं ॥ इहां:—जो मधुकांडविषै चतुर्थमैं नेति नेति ऐसैं निषेधमुखकरि निर्देश किया। सो यह कूर्च ब्राह्मणविषै तिस मुखकरिहीं आगे कहियेगा। ऐसैं योजना है ॥

१०३० निषेधद्वारा निर्देश किये अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां कार्यधर्म। शब्दादिक औ अशनादिक हैं ॥

१०३१ श्रुति उक्त हेतुकूं अवतार देके व्याख्यान करैहैं ॥ इहां:—तिसतैं विपरीतपना कहिये अकरणगोचरपना। "चक्षुकरि नहीं" इत्यादि श्रुतितैं औ तिसतैं विपरीत होनेतैं याका अमूर्त्त होनेतैं। यह अर्थ है ॥

मूर्त्त) है । यातैं सज्जमान नहीं होवैहै ॥ ॥ तैसैं आसित (अबद्ध) है । जोई मूर्त्त है सो बद्ध होवैहै । यह तो तिसतैं विपरीत (अमूर्त्त) होनेतैं अबद्ध है औ व्यथाकूं पावता नहीं । यातैं रिष्ट नहीं होवैहै । [1032] ग्रहण शरण संग बंधरूप कार्यके धर्मोंतैं रहित होनेतैं रिष्ट नहीं होवैहै कहिये हिंसाकूं पावता नहीं । अर्थ यह जो विनाशकूं पावता नहीं ॥ [1033] क्रमकूं अतिक्रमण करिके औपनिषद पुरुषका आख्यायिकातैं अपसरण करिके श्रुतिनैं स्वरूपकरि [1034] स्वरांसैं निर्देश किया ॥ [1035] तातैं फेर आख्यायिकाकूंहीं आश्रयक-

---

१०३२ पूर्वविषैबी दोनूं ठिकाने तिसतैं विपरीतपना यहहीं अतः (यातैं) शब्दका अर्थ है । ताकूं स्पष्ट करतेहुये उक्त अर्थकूं उपपादन करैहैं ॥ इहां कार्यके धर्म शब्दादिक औ अशनादिक पूर्व कहे ॥

१०३३ ननु शाकल्य औ याज्ञवल्क्यके संवादरूप यह आख्यायिका है । तहां शाकल्यकरि नहीं पूंछे आत्माकूं याज्ञवल्क्य कैसैं व्याख्यान करते भये ? तहां कहैहैं ॥

१०३४ विज्ञानादि वाक्यविषै वक्ष्यमाण होनेतैं इहां निर्देश क्यूं है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥

१०३५ ये अष्ट । इत्यादि वाक्यकी पूर्वके साथि असंगतिकूं आशंका करिके कहैहैं ॥

रिके कहैहैंः—ये जे उक्त "पृथिवीहीं जाका आयतन है" इत्यादिक[1036] अष्ट आयतन हैं । अग्नि-लोक आदिक अष्ट लोक हैं । "अमृत है । ऐसैं कहतेभये" इत्यादिक अष्ट देव हैं । "शारीर पुरुष है" इत्यादिक अष्ट पुरुष हैं । सो जो कोईक तिन शारीर आदिक पुरुषनकूं निश्चयकरि जानिके कहिये अष्ट चतुष्क भेदकरि लोकनकी स्थितिकूं उपपादनकरिके । फेर प्राची-दिशारूप द्वारकरि हृदयरूप स्वात्माविषै उप-संहारकरिके हृदयादिककी आत्मतारूप उपाधिके धर्मकूं अतिक्रमण करताभया कहिये स्वस्वरूपकरि व्यवस्थितभया ॥ जो औपनिषद अशनायादि धर्मतें वर्जित उपनिषदनविषैहीं[1037] जानने योग्य अन्य प्रमाणकरि अगम्य पुरुष है । तिस औपनिषद पुरुषकूं तुज विद्याभि-मानीके प्रति मैं (याज्ञवल्क्य) पूंछताहूं । ताकूं जब मेरेतांईं विस्पष्ट नहीं कथन करैगा

१०३६ निश्चयकरि जनायके याहीकूं स्पष्ट करैहैं ॥

१०३७ पुरुषके औपनिषदपनैकूं व्युत्पादन करैहैं ॥

तब तेरा मूर्द्धा (मस्तक) पतन होवैगा । ऐसैं [कहतेभये] ॥ तिस औपनिषद पुरुषकूं शाकल्य नहीं जानताभया । ताका मूर्द्धा पतनभया ॥ [१०३८] आख्यायिका समाप्तभयी ॥ इहां "ताकूं न जानताभया" इत्यादि श्रुतिका वचन है ॥ ॥ [१०३९] किंवाः—संस्कार अर्थ शिष्योंकरि गृहोंकेप्रति नीयमान याके अस्थिनकूंबी तस्कर (चोर) हरण करतेभये ॥ किस निमित्तकिः— [१०४०] अन्यत् (धन)कूं नीयमान मानतेहुये ॥ पूर्व व्यतीतभयीहीं आख्यायिका इहां सूचन करी ॥ [१०४१] अष्टाध्यायीविषै प्रसिद्ध । शाकल्यके साथि या-

---

१०३८ ताकूं । इत्यादिकरि याज्ञवल्क्यका वा मध्यमका वाक्य है । या शंकाकूं निवारण करैहैं ॥

१०३९ ब्रह्मवेत्तासैं विद्वेषके हुये परलोकका विरोधबी होवैहै । ऐसैं कहैहैं ॥

१०४० मूर्द्धा तेरा पडेगा । इस शापकरि मस्तकके पतन हुये शाकल्य । अग्नि होत्रादि संस्कारकूंबी क्यूं न प्राप्त होताभया ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०४१ तिसीहीं आख्यायिकाकूं अनुक्रमसैं कहैहैं ॥ इहांः— अष्टाध्यायी कहिये बृहदारण्यकतैं प्राचीन (पूर्वगत) कर्मकूं वि-

ज्ञवल्क्यका समानपर्यंतहीं संवाद निर्वृत्तभया । तहां याज्ञवल्क्यनें शाप दीया किः—पुरविषै (पुण्यक्षेत्रतें अतिरिक्त देशविषै) औ अतिथ्यविषै (पुण्यतिथितें शून्य कालविषै) तूं मरैगा । औ तेरे अस्थिबी ग्रहोंकूं नहीं प्राप्त होवैंगे ऐसा ॥ सो तैसेंहीं मरताभया ॥ ताके अस्थिनकूंबी अन्य (धन) मानते हुये परिमोषी (चोर) हरण करतेभये । तातें उपवादी (परिभवका कर्त्ता) नहीं होवै । [1042]जातें ऐसैं जाननेवाला (विद्वान्) पर (परब्रह्म) होवैहै ऐसैं ॥ सो [1043]यह आख्यायिका आचारके अर्थ सूचन करी । विद्या स्तुतभयी ॥ २६ ॥

य करनेवाली है । पुरविषै कहिये पुण्यक्षेत्रतैं अतिरिक्त देशविषै । अतिथ्यविषै कहिये पुण्यतिथिशून्यकालविषै । उपवादी कहिये परिभवका कर्त्ता ॥

१०४२ तत् शब्दके अर्थकूं कहैहैं ॥

१०४३ ननु यह आख्यायिका इहां विद्याके प्रकरणविषै क्यूं सूचन करी है ? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां ब्रह्मवेत्ताविषै विनययुक्तकरि होना योग्य है । यह आचार है । जातैं बडी यह ब्रह्मविद्या है । यातैं तिसविषै निष्ठावाले पुरुषकी अवज्ञाके हुये इस लोक औ परलोकका विरोध होवैहै । यह विद्याकी स्तुति है ॥

अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो! यो वः कामयते स मा पृच्छतु । सर्वे वा मा

अर्थः—अनंतर [याज्ञवल्क्य] कहतेभये:—हे भगवन् ब्राह्मणो ! जो तुह्मारे मध्य इच्छता है सो मुजकूं पूंछहू । वा सर्व मु-

टीकाः—जो[1044] इहां "नेति नेति" ऐसैं अन्यके प्रतिषेधरूप द्वारकरि जिस ब्रह्मका निर्देश किया । ताका विधिमुखकरि कैसैं निर्देश करनेकूं योग्य है । यातैं फेर आख्यायिकाकूंहीं आश्रयकरिके कहैहैं ॥ औ जगत्का मूल कहनेकूं योग्य है ऐसैं आख्यायिकाका[1045] संबंध तो अब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणनकूं जीतिके गोधन हरण करनेकूं योग्य है । ऐसैं न्यायकूं[1046] मानिके याज्ञवल्क्य कहैहैंः—

१०४४ "अनंतरहीं कहतेभये" इत्यादि उत्तर ग्रंथकूं अवतार देते हैं ॥ इहां जगत्का मूल कहनेकूं योग्य है । यातैं आख्यायिकाकूंहीं आश्रय करिके कहैहैं । ऐसैं संबंध है ॥

१०४५ आख्यायिका किस अर्थ है ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहां इति शब्द संबंधकी समाप्ति अर्थ है ॥

१०४६ ननु ब्राह्मणोंके तूष्णींभूत हुये निषेध कर्त्ताके अभावतैं गोधन हरण करनेकूं योग्य था । तिन ब्राह्मणके प्रति

पृच्छत । यो वः कामयते तं वः पृच्छामि । सर्व्वान्वा वः पृच्छामीति ? ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ॥ २७ ॥

जकूं पूंछहू ॥ जो तुह्मारे मध्य इच्छता है ताकूं तूह्मारे मध्य मैं पूंछूं वा तुम सर्वकूं मैं पूंछूं । ऐसैं ॥ ॥ वे ब्राह्मण प्रगल्भ नहीं होतेभये ॥ २७ ॥

अनंतर ब्राह्मणोंके तूष्णींभूत हुये याज्ञवल्क्य कहतेभये । हे भगवन् ब्राह्मणो ! [ऐसैं संबोधन देके] जो [१०४७] तुह्मारे मध्य मैं याज्ञवल्क्यकूं पूंछुं ऐसैं इच्छताहै । सो मेरे प्रति आयके पूंछे । वा तुम सर्व मेरेप्रति पूंछो ॥ जो [१०४८] तुह्मारे

याज्ञवल्क्य क्यूं कहतेभये ? यह शंका भयी । यातैं कहैहैं ॥ इहांः—ब्रह्मस्व (ब्राह्मणोंका धन) ब्राह्मणोंकी अनुमतिकूं न पायके लीयाहुया अनर्थके अर्थ होवैगा । यह अभिप्राय है औ संबोधन करिके कहतेभये । ऐसैं संबंध है ॥

१०४७ " जो तुह्मारे मध्य " इस प्रतीककूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥

१०४८ व्याख्यान किये भागकूं अनुवाद करिके व्याख्यान करनेयोग्य भागकूं लेके व्याख्यान करैहैं ॥

तान् हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ ॥ यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ॥ तस्य लोमानि पर्णानि । त्वगस्योत्पा-

अर्थः—तिन (ब्राह्मणन)कूं इन श्लोकोंकरि [याज्ञवल्क्य] पूंछताभयाः—जैसें वृक्ष वनस्पति है। तैसेंहीं पुरुष है अमृषा (यह सत्य) है ॥ ताके लोम पर्ण हैं। याकी बाहिर-

मध्य याज्ञवल्क्य मेरेप्रति पूंछे ऐसें इच्छता है। ताकूं तुह्मारे मध्य मैं पूंछताहूं । वा तुम सर्वकूं मैं पूंछताहूं ॥ ॥ वे ब्राह्मण[1049] ऐसें उक्तहुयेबी किंचित्बी प्रत्युत्तर कहनेकूं प्रगल्भ नहीं भये ॥ २७ ॥

टीकाः—तिन ब्राह्मणोंके[1050] अप्रगल्भभूतहुये तिनके प्रति इन वक्ष्यमाण श्लोकनकरि याज्ञवल्क्य पूंछतेभयेः—जैसें लोकविषै वृक्ष व-

१०४९ उक्तप्रकारके प्रश्नके अनंतर ब्राह्मणोंकी अप्रतिभा (निस्तेजता)कूं दिखावै हैं ॥

१०५० अपने ज्ञानके प्रकर्षके प्रकट करने अर्थहीं प्रश्नांतरकूं अवतार देते हैं ॥

टिका बहिः ॥ १ ॥ त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः ॥ तस्मात्तदातृणात्प्रैति रसो वृक्षादिवाऽऽहतात् ॥२॥

की त्वक् उत्पाटिका (नीरस) है ॥ १ ॥ याकी त्वचातैंहीं रुधिर स्रवताहै [वनस्पतिकी] त्वचातैं उत्पट (निर्यास) स्रवता है ॥ तातैं आहत वृक्षतैं रसकी न्यांई त्रणपर्यंत [हिंसित किये]तैं सो (रुधिर) निकसता-

नरूपति है ॥ इहां वृक्षका[1051] वनस्पति यह विशेषण है ॥ तैसेंहीं पुरुष है । यह सत्य है ॥ तिस पुरुषके[1052] लोम हैं । इतर (वनस्पति)के पर्ण हैं ॥ इस पुरुषकी औ इतर (वनस्पति)की

१०५१ वृक्ष कहिये वनस्पति । ऐसैं दोनूं शब्दनकूं पर्यायरूप होनेतैं इहां पुनरुक्ति होवैहै ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां सो (विशेषण)ता (वृक्ष)की महत्ताकूं कहैहै। यातैं अपुनरुक्ति है । पुरुषकूं वृक्षका साधर्म्य यह ऐसैं कहिये है ॥

१०५२ साधर्म्य (समान धर्मवान्ता)कूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥ इहां नीरस (रसरहित) जो त्वचा सो उत्पाटिका ऐसैं कहिये है ॥ औ उत्पट कहिये वृक्षका निर्यास (गूंद) ॥

माꣳसान्यस्य शकराणि किनाटꣳ स्नाव तत्स्थिरं ॥ अस्थीन्यंतरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥ ३ ॥ यद्वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः ॥

है ॥ २ ॥ मांस याके शकर (काष्ठके तुकडे) हैं ॥ स्थिर किनाट स्रवता है ॥ भीतरतें अस्थि दारु (काष्ठ) हैं ॥ मज्जा मज्जाकी उपमा करी है ॥३॥ जब वृक्ष छिन्न हुया प्ररोहकूं पावता है । मूलतें फेर नवतर होवे-

---

बाहिरकी त्वचा उत्पाटिका (नीरस) है ॥१॥ इस पुरुषकी त्वचातैंहीं रुधिर स्रवता है । वनस्पतिकी त्वचातैंहीं उत्पट (वृक्षका निर्यास) ऊपरतें फूटताहै ॥ जातें ऐसें वनस्पतिका औ [illegible]रुषका सर्व समानहीं है । तातें त्रणपर्यंत हिंसित कियेतें सो (रुधिर) । छिन्न वृक्षतें रसकीन्यांईं निर्गमन करैहै ॥२॥ ऐसें इस [illegible] मांस हैं । वनस्पतिके वे शकर (टुकडे) हैं । यह अर्थ है ॥ वृक्षका किनाट नाम टुकडोंतें भीतर

मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ? ॥ ४ ॥ रेतस इति ॥ मा-वोचत । जीवतस्तत्प्रजायते ॥ धानारुह इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य सम्भवः ॥ ५ ॥

है ॥ मर्त्यबी मृत्युकरि छिन्न हुया किस मूल-तैं प्ररोहकूं पावताहै ? ॥ ४ ॥ ॥ रेततैं ॥ ऐसैं मति कहो । सो (रेत) जीवत [पुरुष]तैं उपजता है ॥ धाना (बीज)तैं उजनेवाला वृक्ष साक्षात् मृत होयके संभव होवै है ॥५॥

वल्कलरूप काष्ठविषै संलग्न पदार्थ है । सो स्रव ताहै पुरुषका सो स्थिर है कहिये सो (वृक्षका) किनाट स्रावचाला है औ सो (पुरुषका) दृढ है ॥ पुरुषके उक्तस्रावके भीतरतैं आस्थि (ह-ड्डियां) होवैहैं । तैसैं वनस्पतिके किनाटके भीतरतैं दारु (काष्ठ) होवैहैं ॥ वनस्पतिकी औ पुरुषकी मज्जाहीं मज्जाकी उपमा करी है । मज्जाका जो उपमा सो मज्जोपमा है । अन्यविशेष नहीं है । यह अर्थ है ॥३॥ जैसैं[१०५३] वनस्पतिकी मज्जा है ।

१०५३ विलक्षणताके अभावकूंहीं आकारकरि दिखावै हैं ॥

यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत् ॥ मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥ ६ जात एव न जायते

जब मूलकरि सहित वृक्षकूं उखाडडारें। फेर होवै नहीं ॥ मर्त्यबी मृत्युकरि छिन्न हुया किस मूलतें प्ररोहकूं पावता है ॥ ६ ॥ जात (जन्म्या)हीं नहीं जन्मता है। कौंन फेर इस

तैसें पुरुषकी है । जैसें पुरुषकी है । तैसें वनस्पतिकी है ॥ [१०५४]जब वृक्ष वृक्ण (छिन्न) होवैहै । तब प्ररोहकूं पावताहै कहिये मूलतें फेर नवतर (पूर्वतें अभिनवतर) हुया पुनः प्ररोह (प्रादुर्भाव)कूं पावताहै ॥ [१०५५]इसें विशेषणतें पूर्व वनस्पतिका औ पुरुषका सर्व सामान्य जान्या है। यह

१०५४ साधर्म्यके होते वैधर्म्य कहनेकूं अशक्य है । इस आशयकरि कहैहैं ॥

१०५५ ननु यहबी साधर्म्यहीं क्यूं नहीं होवैगा ? यह आशंका करिके । कहैहैं ॥ इहां:—तातैं इस विशेषणतैं पूर्व जो विशेषण कहा । सो सर्व वृक्ष अरु पुरुष दोनूंका सामान्य जान्या है । ऐसें संबंध है औ वृक्ण (छिन्न) अंगका यह शेष है ॥

कोऽन्वेनं जनयेत्पुनः ॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति ॥ ७ ॥ २८ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

(मृत)कूं जन्म देताहै? ॥ ॥ विज्ञान आनंद ब्रह्म है। राति (धन)के दाताका पारायण है औ तिष्ठमान (स्वरूपमें स्थित) ब्रह्मवेत्ताका परायण है। इति ॥ ७ ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्बृहदारण्यकोपनिषन्मूलमात्र-भाषादीपिकायां तृतीयाध्यायस्य नवमं शाकल्य-ब्राह्मणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

तो वनस्पतिविषै विशेष देखियेहै जो छिन्नका प्ररोहण होवैहै। परंतु पुरुषके मृत्युकरि वृकृण[१०५६] हुये फेर प्ररोहण नहीं देखीयेहै औ किसीतैंबी प्ररोहणकरि होना योग्य है ॥ तातैं तुमकूं मैं पूं-

---

१०५६ ननु ताका प्ररोहण मति होहू? ऐसैं जो कहै। सो बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—मृतका जन्म निश्चित होवैहै ॥

छताहूं किः—मर्त्य (मनुष्य) जब मृत्युकरि वृक्ण होवैहै। तब किस मूलतैं प्ररोहकूं पावता है। मृत पुरुषका किसतैं प्ररोहण होवैहै। यह अर्थ है?॥ ४॥ ॥ जब तुम ऐसैं कहते होकिः—रेततैं प्ररोहकूं पावता है॥ ऐसैं तुम कहनेकूं योग्य नहीं हो। काहेतैं किः—[1057] जातैं जीवते पुरुषतैं सो रेत उपजता है। मृततैं नहीं [1058] किंवाः—धाना जो बीज तिसतैं उपजनेवालाबी वृक्ष होवैहै। केवल कांड (शाखा)तैं उपजनेवालाहीं नहीं॥ इहां इव शब्द अनर्थक है॥ [1059] प्रसिद्ध वृक्ष साक्षात् मरिके संभव है कहि-

---

१०५७ जीवत् पुरुषतैं रेत होवैहै। सोई काहेतैं होवैहै। यह विचार करिये है। औ असिद्धकरि सिद्धका साधन नहीं होवैहै औ अन्य पुरुषतैं होवैहै यह कहनेकूं योग्य नहीं है। काहेतैं एककी असिद्धिके हुये अन्यतरके प्रयोगके असंभवतैं। ऐसैं [illegible]हुये हेतुकूं कहैहैं॥

१०५८ वृक्ष औ पुरुषके अन्य वैधर्म्य (विरुद्ध धर्मवान्पनै)कूं कहैहैं॥ इहां कांडतैंबी प्ररोहवाला होवैहै। यह अपि शब्दका अर्थ है॥

१०५९ वैशब्द प्रसिद्धिका द्योतक है। इस अभिप्राय करिके कहैहैं॥

ये वनस्पतिका मरिके फेर धानातैंबी[1060] साक्षात् संभव होवै है ॥ ५ ॥ जब[1061] मूलकरि वा धाना (बीज) करि सहित वृक्षकूं उखाडदालें तब फेर आयके नहीं होवै है[1062]। तातैं तुमकूं सर्वहीं जगतके मूलकूं पूंछताहूं किः—मर्त्य जब मृत्युकरि वृक्ण होवै। तब किस मूलतें प्ररोहकूं पावताहै? ॥६॥ ननु[1063] सो जब जात (जन्म्या) हीं है ऐसें मानतेहो? तब इहां क्या पूंछनेकूं योग्य है इति कहिये जातैं आगे जन्मकूं[1064] पावनेवालेका संभव पूंछनेकूं योग्य होवैहै। जात (जन्मकूं प्राप्तभये) का नहीं। यह (मनुष्य) तो जातहीं है। यातैं इस विषयविषै प्रश्नहीं बनता

१०६० "अंजसा (अनायाससैं)" इत्यादि वाक्यके अर्थकूं कहिके वाक्यार्थकूं कहैहैं ॥

१०६१ तथापि कैसैं वैधर्म्य है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

१०६२ ननु पुरुषकीबी फेरी उत्पत्ति मति होहू? यह आशंका करिके। पूर्व उक्तकूं निगमन करैहैं ॥

१०६३ अब प्रतिवादी स्वभाववादकूं उठावता है ॥ इहां इतिशब्द प्रश्नकी समाप्तिअर्थ है ॥

१०६४ ताहीकूं स्पष्ट करैहै ॥

नहीं? इस प्रकार जो स्वभाववादी (चार्वाकादि) कहै। सो बनै नहीं[१०६५]:—तब क्या कि। मृतहुया फेरबी जन्मकूं पावताहीं है। अन्यथा[१०६६] अकृताभ्यागम (नहीं किये कर्मतैं फलकी प्राप्ति) औ कृतनाश (इस जन्मविषै किये कर्मके फलके अभाव)के प्रसंगतैं ॥ ॥ यातैं[१०६७] तुमकूं पूंछताहूं किः—इस मृतभये पुरुषकूं फेर कौंन जन्म देता है? ॥ ताकूं ब्राह्मण नहीं जानतेभये। जिसतैं मृतपुरुष फेर प्ररोहकूं पावताहै। सो जगत्[१०६८]का मूल ब्राह्मणोंनैं जान्या नहीं है। यातैं ब्रह्मिष्ठ होनेतैं याज्ञवल्क्यनैं गौवां लेलै औ ब्राह्मण जीतलिये ॥ आख्यायिका[१०६९] समाप्तभयी ॥ ॥ जो जगत्[१०७०]का मूल है जिस शब्दकरि साक्षात्

१०६५ अब सिद्धांती भागकरि उत्तरकूं कहैहैं ॥

१०६६ स्वभाववादविषै दोषकूं कहैहैं ॥

१०६७ स्वभाववादके असंभव हुये फलितकूं कहैहैं ॥

१०६८ उक्त अर्थकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

१०६९ याज्ञवल्क्यकी ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य श्रेष्ठताके सिद्ध भये फलितकूं कहैहैं ॥ इहांः—आख्यायिका समाप्त भयी कहिये ब्राह्मण सर्व यथायोग्य जातेभये। यह अर्थ है ॥

१०७० विज्ञानादि वाक्यकूं उठावते हैं ॥

ब्रह्म व्यपदेश करियेहै । जिसकूं याज्ञवल्क्य ब्राह्मणनकूं पूंछतेभये । तातैं तिसरूपकरि श्रुति हमारे (मुमुक्षुनके) अर्थ कहैहैः—ब्रह्म विज्ञान[1071] (विज्ञप्ति)रूप है औ सो आनंदरूप है । कहिये[1072] विषयके विज्ञानकी न्यांईं दुःखकरि अनुविद्ध (संबद्ध) नहीं किंतु प्रसन्न । शिव । अतुल[1073] । अनायास[1074] । नित्यतृप्त[1075] । एकरस[1076] है । यह अर्थ है ॥ सो उभयविशेषणवाला ब्रह्म क्या हैः—राति कहिये रातिका[1077] (धनका) [यह अर्थ

१०७१ विज्ञान शब्दकी करणादि विषयताकूं निवारते हैं ॥

१०७२ आनंद विशेषणके कृत्यकूं दिखावते हैं ॥ इहां प्रसन्न कहिये दुःखके हेतु काम क्रोधादिकसैं संबंधरहित । शिव कहिये कामादिकके कारण अज्ञानसैंबी संबंधशून्य ॥

१०७३ सातिशयताके किये दुःखसैं रहितपनैकूं कहैहैं ॥

१०७४ साधन साध्यताके दुःखसैं रहितताकूं कहैहैं ॥

१०७५ दुःखकी निवृत्तिमात्र सुख है । इस नैयायिकके पक्षकूं निषेध करैहैं ॥

१०७६ आनंद ज्ञान है । ऐसैं ब्रह्मविषै आकारके भेदकूं आशंका करिके । कहैहैं ॥

१०७७ "फलवालेकी उपपत्तितैं" इस न्यायकरि ब्रह्मकूं जगत्की मूलता कहैहैं ॥

है ॥ इहां षष्ठीके अर्थ प्रथमा है] । तिनका दाता जो कर्मका कर्त्ता यजमान । ताका परअयन (परागति) है । कर्मफलका प्रदाता होनेतैं ॥ [1078] किंवा तीन एषणातैं व्युत्थानकरिके तिसीहीं ब्रह्मविषै कर्मकूं न करताहुया जो स्थित होवैहै सो तिष्ठमान है औ जो तिस ब्रह्मकूं जानताहै सो तद्वित् है । तिस तिष्ठमान औ तद्वित् (ब्रह्मवित्)का परायण हैइति [॥ ७ ॥ २८ ॥]

[1079] इहां यह विचार करियेहै:—आनंद शब्द लोकविषै सुखवाची प्रसिद्ध है औ [1080] इहां "आनंद ब्रह्म है" ऐसैं ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंदशब्द सुनियेहै औ [1081] अन्य श्रुतिविषै

१०७८ "ब्रह्मविषै सम्यक् स्थितहुया अमृतभावकूं पावता है" इस अन्य श्रुतिकूं आश्रय करिके । याहीके ऐसैं उक्त नित्य तृप्तपनेकूं उपदेश करैहैं ॥ इहां अक्षरके व्याख्यानकी समाप्तिके अर्थ इति शब्द है ॥

१०७९ सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म । विद्या अरु अविद्याकरि बंध मोक्षका विषय है । ऐसैं कहा ॥ अब ब्रह्मानंदके विचारकूं अवतार देतेहुये अविगीत (निर्विवाद) अर्थकूं कहैहैं ॥

१०८० तथापि प्रकृत वाक्यविषै क्या आया ? सो कहैहैं ॥

१०८१ केवल इहांहीं आनंदशब्द ब्रह्मके विशेषणरूप अर्थवाला होनेकरि नहीं सुन्या । किंतु तैत्तिरीयक आदिक-

ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंद शब्द सुनिये है। "आनंद ब्रह्म[१०८२] है ऐसें जानना। ब्रह्मके आनंदकूं जाननेवाला। जो यह आकाशविषै आनंद है। जोई भूमा है सोई सुख है ऐसें। औ यह परमानंद है" इत्यादिक श्रुतियां हैं॥ औ [१०८३]संवेद्य (सम्यक् जानने योग्य) सुखविषै आनंद शब्द प्रसिद्ध है औ ब्रह्मानंद[१०८४] जब संवेद्य होवै तब ये आनंद शब्द। ब्रह्मविषै युक्त होवैं॥

॥ ॥ ननु[१०८५] श्रुतिके प्रामाण्यतैं संवेद्य आनंदस्वरूपहीं ब्रह्म है। तिसविषै विचारनेकूं योग्य क्या

विषैबी सुन्या है। ऐसें कहैहैं॥ इहां ब्रह्मका विशेषण होनेकरि आनंदशब्द सुनिये है ऐसें संबंध है॥

१०८२ अन्य श्रुतिनकूंहीं उदाहरण करैहैं ॥ इहां:—इत्यादिक श्रुतियां हैं। यह शेष है॥

१०८३ तथापि कैसें विचारकी सिद्धि है? तहां कहैहैं॥ इहां यह अर्थ है:—लोक प्रसिद्धितैं औ अद्वैतश्रुतितैं ब्रह्मविषै आनंद संवेद्य है वा असंवेद्य है। यह विचार कर्त्तव्य है॥

१०८४ अभय ठिकाने फलकूं दिखावै हैं॥ इहां यह भाव है:—अन्यथा लोक वेदविषै शब्दार्थके भेदतैं "अविशिष्ट तो वाक्यार्थ है" इस न्यायका विरोध होवैगा। फेर असंवेद्यताके हुये अद्वैत श्रुति अविरुद्ध होवैगी॥

१०८५ विचारके प्रति प्रतिवादी आक्षेप करैहै॥

है? यह [१०८६] शंका बनै नहीं:—काहेतैं विरुद्ध श्रुति-वाक्यनके दर्शनतैं कहिये तुह्मारा कथन [१०८७] सत्य है आनंद शब्द ब्रह्मविषै सुनियेहै औ एकताके हुये विज्ञानका प्रतिषेध सुनियेहै:—"[१०८८] जहां तो इस (ज्ञानी)कूं सर्व आत्माहीं होताभया । तहां किसकरि किसकूं देखै । किसकरि किसकूं जानै ॥ ताकूं किसकरि जानै । जहां अन्य देखता नहीं अन्य जानता नहीं । प्राज्ञरूप आत्माके साथि आलिंगित हुया किंचित्‌बी बाह्यकूं नहीं जानताहै" इत्यादि [१०८९] विरुद्ध श्रुतिवाक्यनके दर्शनतैं । तिसकरि विचार कर्त्तव्य है । [१०९०] तातैं वेदवाक्यार्थके निर्णय अर्थ विचार करनेकूं युक्त है औ [१०९१] मोक्षवादीनकी विप्रतिपत्तितैं ॥ ॥

१०८६ विरुद्ध श्रुति अर्थके निर्णय अर्थ विचारकी कर्त्तव्यताकूं दिखावै हैं ॥

१०८७ संग्रहवाक्यकूं विवरण करैहैं ॥

१०८८ एकताके हुये विज्ञानके प्रतिषेधकी श्रुतिकूंहीं उदाहरण करैहैं ॥ इहां:—इत्यादि श्रवण है । यह शेष हैं ॥

१०८९ फलितकूं कहैहैं ॥

१०९० श्रुतिनकी विप्रतिपत्तितैं विचारकी कर्त्तव्यताकूं उपसंहार करैहैं ॥

१०९१ तहांहीं अन्य हेतुकूं कहैहैं ॥

[१०९२] सांख्य औ वैशेषिकरूप जे मोक्षवादी हैं । वे मोक्षविषै संवेद्य (जानने योग्य) सुख नहीं है। इस प्रकारसैं निश्चयकूं प्राप्तभयेहैं औ अन्य निरतिशयसुख स्वसंवेद्य है ऐसैं निश्चयकूं प्राप्त-भयेहैं ॥ [१०९३] तिनमैं प्रथम क्या युक्त हैः—आनंदादिकके श्रवणतैं (विज्ञान आनंद ब्रह्म है इस श्रुतितैं) मोक्षविषै सुख जो है सो संवेद्य है । यह युक्त है ॥ काहेतैं " [१०९४] हँसताहुया क्रीडा करताहुया रममाण है । सो जब पितृलोककी कामनावाला होवैहै । सो सर्वज्ञ है सर्ववित् है । सर्व कामोंकूं सम्यक् भोगताहै " इत्यादि श्रुतिनतैं ॥ ॥ [१०९५] ननु एकताके हुये कारकविभा-

---

१०९२ ताही विप्रतिपत्तिकूं विवरण करैहैं ॥

१०९३ विचारपूर्वक पूर्वपक्षकूं प्रतिवादी ग्रहण करैहै ॥ इहांः—आनंदादिकके श्रवणतैं "विज्ञान आनंदरूप ब्रह्म है" इस श्रुतितैं मोक्षविषै सुख संवेद्य (जानने जोग्य) है । यह युक्त है । ऐसैं संबंध है ॥

१०९४ तहांहीं अन्य वाक्यनकूं उदाहरण करैहैं ॥

१०९५ पूर्वपक्षके प्रति सिद्धांती आक्षेप करैहैं ॥ इहां यह अर्थ हैः—मोक्षविषै जब सुखका ज्ञान अंगीकार करिये है । तब सो अनेक कारकोंकरि साध्य कहना होवैगा । क्रियारूप होनेतैं । पाक आदिककी न्यांई औ सर्वकी एकतारूप मोक्षविषै कारक विभागके अभावतैं सुखका ज्ञान नहीं होवैहै ॥

गके अभावतैं विज्ञानका असंभव है औ क्रिया[1096] अनेक कारकोंकरि साध्य होनेतैं औ विज्ञानकूं क्रियारूप होनेतैं? यह दोष[1097] बनै नहीं:—काहेतैं शब्दके प्रामाण्यतैं आनंदविषै[1098] विज्ञान होवैगा कहिये "विज्ञान आनंद है" इत्यादिक आनंद-स्वरूपकी असंवेद्यताविषै अघटित वचन हैं। ऐसैं हम कहते हैं ॥ ॥ ननु[1099] वचनकरिबी अ-

१०९६ जन्यकूं कारकोंकी अपेक्षाके हुयेबी सुखज्ञानकूं अजन्य होनेतैं ताकी अपेक्षा नहीं है? यह आशंका करिके कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जो क्रिया है। सो अनेक कारकोंकरि साध्य है। इस व्याप्तितैं। गमन आदिकविषै अवगत ताके ज्ञानकूंबी धातुके अर्थकरि क्रियारूप होनेतैं अनेक कारकोंकरि साध्यता सिद्धहीं है ॥

१०९७ श्रुतिकी प्रमाणताकूं आश्रयकरि पूर्ववादी परिहार करैहै ॥

१०९८ ताहीकूं पूर्ववादी स्पष्ट करैहै ॥

१०९९ अद्वय ब्रह्मविषै श्रुतिकी प्रमाणतातैं उक्त आनंदके ज्ञानके प्रति सिद्धांती आक्षेप करैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—अद्वैत श्रुतिके विरोधतैं ब्रह्मविषै विज्ञानरूप क्रिया अरु कारकोंके विभागकी अपेक्षा नहीं संभवै है। जातैं "विज्ञान आनंद है" इत्यादि वचन। प्रमाणके विरोधकरि ब्रह्मविषै विज्ञानरूप क्रियाकूं नहीं उत्पादन करैहैं। तिन (वचनों)कूं ज्ञापक होनेतैं औ ज्ञापककूं अविरोधकी अपेक्षावाला होनेतैं। अन्यथा अतिप्रसंगतैं ॥

ग्निकी शीतता औ उदककी उष्णता नहीं करि-
येहीं है । वचनोंकूं ज्ञापक होनेतैं औ[1100] देशांतर-
विषै "अग्नि शीत है" ऐसैं वा अगम्य देशांतर-
विषै "उदक उष्ण है" ऐसैं जनावनेकूं शक्य न-
हीं होवैहै ? यह [1101]कथन बनै नहीं:—काहेतैं प्रत्य-
गात्माविषै आनंदविज्ञानके दर्शनतैं कहिये "वि-
[1102]ज्ञानं आनंद है" इत्यादि वचनोंकी "अग्नि शीत
है" इत्यादि वाक्यकी न्यांई प्रत्यक्षादि प्रमाण-
सैं विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता नहीं है। [1103]अवि-

११०० ननु लौकिक ज्ञानकूं क्रियारूपताके हुयेबी मो-
क्षविषै जो सुखका ज्ञान है । सो क्रियाहीं नहीं होवैहै ।
यातैं तहां विज्ञानादि वाक्यका अद्वैत श्रुतिसैं विरोध नहीं
है ? यह आशंका करिके । सिद्धांती कहैहैं ॥ इहां यह भाव
है:—पय (जल) अरु पावक (पवित्र)की सर्वत्र एकरूप-
ताकी न्यांई विज्ञानकीबी लोक अरु वेदविषै ऐकरूपताहीं है ॥

११०१ प्रमाणांतरके विरोधतैं आत्माविषै आनंदके ज्ञा-
नका सद्भावहीं निषेध करिये है वा ताका क्रियापना नि-
राकरण करिये है ? ये दो विकल्प हैं । तिनमैं प्रथमपक्षकूं
सिद्धांती दूषण देते हैं ॥

११०२ ताहीकूं सिद्धांती स्पष्ट करैहैं ॥

११०३ सुखके ज्ञानके गुणभावके अंगीकारतैं क्रियाभा-

रुद्धार्थता तो अनुभव करियेहै। मैं [1104] सुखी हूं ऐसैं सुखात्मक आत्माकूं आपहीं जानताहै। [1105] तातैं अविरुद्धार्थता अत्यंत प्रत्यक्ष है। [1106] तातैं आनंदकूं ब्रह्म विज्ञान स्वरूप हुया आपहीं जानताहै ॥ [1107] तैसैं हुये "हसताहुया क्रीडताहुया रममाण है" इत्यादिक पूर्वोक्त आनंदकी प्रति-

वका निराकरण हमकूं इष्टहीं है । ऐसैं मानिके पूर्ववादी कहैहै ॥

१९०४ अनुभवकूंहीं पूर्ववादी आकारकरि दिखावै है ॥

११०५ ननु तथापि श्रुतिनका विरोध होवैगा ? यह आशंका करिके। सो (श्रुति)बी प्रत्यक्ष प्रमाणके अनुसारकरि लेजानेकूं योग्य है। इस आशयकरि पूर्ववादी कहैहै ॥ इहां यह अर्थ है:—आत्माविषै आनंदके ज्ञानके क्रियाभावके अनंगीकारतैं कारकभेदकी अपेक्षाके अभावतैं औ गुणभावके पक्षविषै आगमकूं प्रत्यक्षका अनुसारी होनेतैं। विरोधी आगमकूं ताके अनुसारकरि लेजानेकूं योग्य होनेतैं। अविरुद्ध होनेतैं याकी बहुलतातैं। यह आशय है औ अविरुद्धार्थता विज्ञानादि श्रुतिकी है। यह शेष है ॥

११०६ ननु गुणगुणीभावविषैबी अद्वैत श्रुति लेजानेकूं शक्य नहीं है ? यह आशंका करिके। स्ववेद्यता (आपकरि आपके जाननेकी योग्यता)के पक्षकूं आश्रय करिके पूर्ववादी कहैहै ॥

११०७ जिस किस प्रकारकरि ब्रह्ममैं आनंदकी वेद्यताविषै श्रुतिनकी अनुसारिता है। ऐसैं पूर्ववादी कहैहै ॥

पादक श्रुतियां समंजस होवैंगी? सो [1108] कथन ब-
नै नहीं:—काहेतें मोक्षविषै [1109] कार्य अरु करणके
अभाव हुये विज्ञानके असंभवतें। जातें शरी-
[1110] रको वियोग आत्यंतिक मोक्ष है औ शरीरके
अभाव हुये आश्रयके अभावतें करणोंका असं-
भव होवैगा औ तातें कार्यकरणके अभावके हो-
नेतें विज्ञानका [1111] असंभव है औ देहादिकके अ-
भावके होते विज्ञानकी उत्पत्तिके हुये सर्वकूं
कार्यकरणके ग्रहणकी व्यर्थताका प्रसंग हो-
वैगा औ [1112] एकताके विरोधतें ॥ औ [1113] परब्रह्म जब

१९०८ ब्रह्मविषै आनंद वेद्य है। इसप्रकारसैं पूर्वपक्षके किये हुये। अब सिद्धांतकूं कहैहैं ॥

११०९ आगंतुक वा अनागंतुक ज्ञान मुक्तिविषै आनंदकूं विषय करैहै? ये दो विकल्प हैं। तिनमैं प्रथम पक्ष बनै नहीं ऐसैं कहैहैं ॥

१११० अनुपपत्तिकूंहीं स्पष्ट करैहैं ॥

११११ ननु कार्यकरणके अभाव हुयेबी मोक्षविषै ब्रह्मानंदका ज्ञान उपजेगा। जातैं संसारविषै हेतुकी अपेक्षा है? यह आशंका करिके। कहैहैं ॥

१११२ द्वितीय पक्षके प्रति दूषण देते हैं ॥ इहां यह अर्थ है:—जातैं ब्रह्म स्वरूपज्ञानकरिहीं वेद्य आनंदरूप होनेकूं उत्साह करता नहीं। काहेतैं विषय अरु विषयीकी एकताके विरोधतैं औ तातैं अनागंतुक (ब्रह्मरूप)बी ज्ञान मुक्तिविषै आनंदकूं नहीं विषय करैहै ॥

१११३ किंवा:—ब्रह्म वा मुक्त वा संसारी । ब्रह्मानंदकूं

आनंदात्मक आत्माकूं नित्य विज्ञानरूप होनेतैं नित्यहीं जानैगा[1114] तव तहां[1115] संसारीबी संसारतैं विनिर्मुक्त हुया स्वाभाव्य (ब्रह्म)कूं प्राप्त होवैगा। [1116]जलाशयविषै डारे उदकांजलिकी न्यांईं आनंदात्मक ब्रह्मके विज्ञानअर्थ पृथक्भावकरि नहीं स्थित होवैहै । [1117]तब मुक्तहुया आनंदस्वरूप आत्माकूं जानताहै । इसप्रकारका यह वाक्य

विषय करैगा ? ये तीन विकल्प हैं । तिनमैं आद्यपक्षकूं अनुवाद करैहैं ॥

१११४ तिस (आद्य) पक्षविषै ब्रह्म स्वरूपानंदकूं नहीं जानता है । काहेतैं तिसके साथि एकतातैं । एक ठिकाने विषयविषयीभावके असंभवकूं उक्त होनेतैं । इसरीतिसैं दूषण देते हैं ॥

१११५ संसारीबी ब्रह्मानंदकूं विषय नहीं करैहै । सो (संसारी) निश्चयकरि संसारके अनिवृत्त हुये आपकूं संसारी जानताहुया ब्रह्मानंदकूं जाननेकूं परिपूर्ण नहीं होवैहै । संसारके निवृत्त हुये तो तिसतैं विनिर्मुक्त ब्रह्मके स्वभावकूं प्राप्त हुया तिसके आनंदकूं ताकी न्यांईंहीं विषय करनेकूं योग्य नहीं है । इसरीतिसैं तृतीयपक्षके प्रति जवाव देतेहैं ॥

१११६ द्वितीयपक्षविषै । मुक्त पुरुषबी ब्रह्मतैं भिन्न है वा अभिन्न है ? ऐसैं विकल्प करिके । अभेदपक्षकूं अनुवाद करैहैं ॥

१११७ ब्रह्मसैं अभिन्न मुक्तके ब्रह्मानंदके विषयीकरणकूं उक्त न्यायकरि निषेध करैहैं ॥

व्यर्थ होवैगा ॥ औ [1118]जब अन्य हुया मुक्त पुरु-
ष मैं [1119]आनंदस्वरूपहूं ऐसैं ब्रह्मानंदरूप प्रत्यगा-
त्माकूं जानताहै। [1120]तब एकताका विरोध हो-
वैगा औ तिसप्रकार हुये सर्व श्रुतिनका विरोध
होवैगा औ [1121]तृतीय (भेदाभेदरूप) कल्पना न-
हीं संभवै है ॥ [1122]किंवा अन्यबी दूषण है। सो
क्या कि:—ब्रह्मकूं निरंतर आत्मानंदके वि[illegible]
हुये विज्ञान अरु अविज्ञानकी कल्पना व्यर्थ हो-
वैगी कहिये [1123]जब निरंतर आत्मानंदकूं विषय
करनेवाला ब्रह्मका विज्ञान होवै तब सोई ताका
स्वभाव है। यातैं आत्मानंदकूं जानताहै यह

१११८ भेदपक्षकूं अनुवाद करैहैं ॥ इहां ब्रह्मानंदरूप प्रत्यगात्माकूं। ऐसैं संबंध है ॥

१११९ वेदनके प्रकारकूं आकारकरि दिखावै हैं ॥

११२० "तत्त्वमसि" आदिक श्रुतिके विरोधकरि भेदपक्षकूं निराकरण करैहैं ॥

११२१ ननु मुक्तपुरुष । ब्रह्मतैं भिन्न वा अभिन्न नहीं होहु। भिन्नाभिन्न तो होवैगा? यह आशंका करिके [illegible] इहां यह अर्थ है:—सर्वत्र भेदाभेदवादकूं दूषित [illegible]

११२२ ब्रह्मके स्वरूपानंदकी अवेद्यताविषै अन्य दूषण कहैहैं ॥

११२३ ताहीकूं उपपादन करैहैं ॥

कल्पना अघटित होवैगी ॥ जातैं अंतद्[1124] विज्ञान-के प्रसंग हुये कल्पनाकूं अर्थवान्पना होवैहै । जैसें आपकूं औ परकूं जानताहै ऐसें ।[1125] वीणे आदिकविषै आसक्त मनवाले पुरुषकूं निरंतरताकरि ज्ञान अरु अज्ञानकी कल्पनाका अर्थवान्पना नहीं है ॥ औ[1126] जब विच्छिन्न जैसें होवै तैसें आत्माकूं जानताहै? ऐसें कहै। तब वि-[1127]ज्ञानकूं आत्मविज्ञानके छिद्र हुये अन्य विषय-

---

११२४ तब आख्यात प्रयोगकूं कर्त्तारूप अर्थवान्पना कैसें होवैगा? तहां कहैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—देवदत्त जातैं अबुद्धिपूर्वकारितारूप अवस्थाविषै आपकूं औ अन्यकूं विवेचन करिके। नहीं जानता है। अन्य नहीं । ऐसें उभय प्रकारताके देखनेतैं तहां आख्यात प्रयोग जुडता है ॥ ऐसें ब्रह्मविषै अज्ञानका प्रसंग नहीं है। नित्यज्ञान स्वभाववाला होनेतैं । तिसप्रकार हुये तहां आख्यात प्रयोग अर्थवान् नहीं है ॥

११२५ ब्रह्मविषै आख्यात प्रयोगकी व्यर्थताकूं दृष्टांतकरि स्पष्ट करैहैं ॥

११२६ प्रत्यगात्माविषै नित्यज्ञानताकी असिद्धिकूं पूर्व-वादी शंका करैहै ॥

११२७ विच्छिन्न जैसें होवै तैसें। इस क्रियाविशेषणकूं सिद्धांती परिहार करैहैं ॥ इहां यह अर्थ है:—आत्माके वि-ज्ञानका छिद्र कहिये अंतराल (असद्भावकी अवस्था) है।